मैं सुभाष बोल रहा हूँ



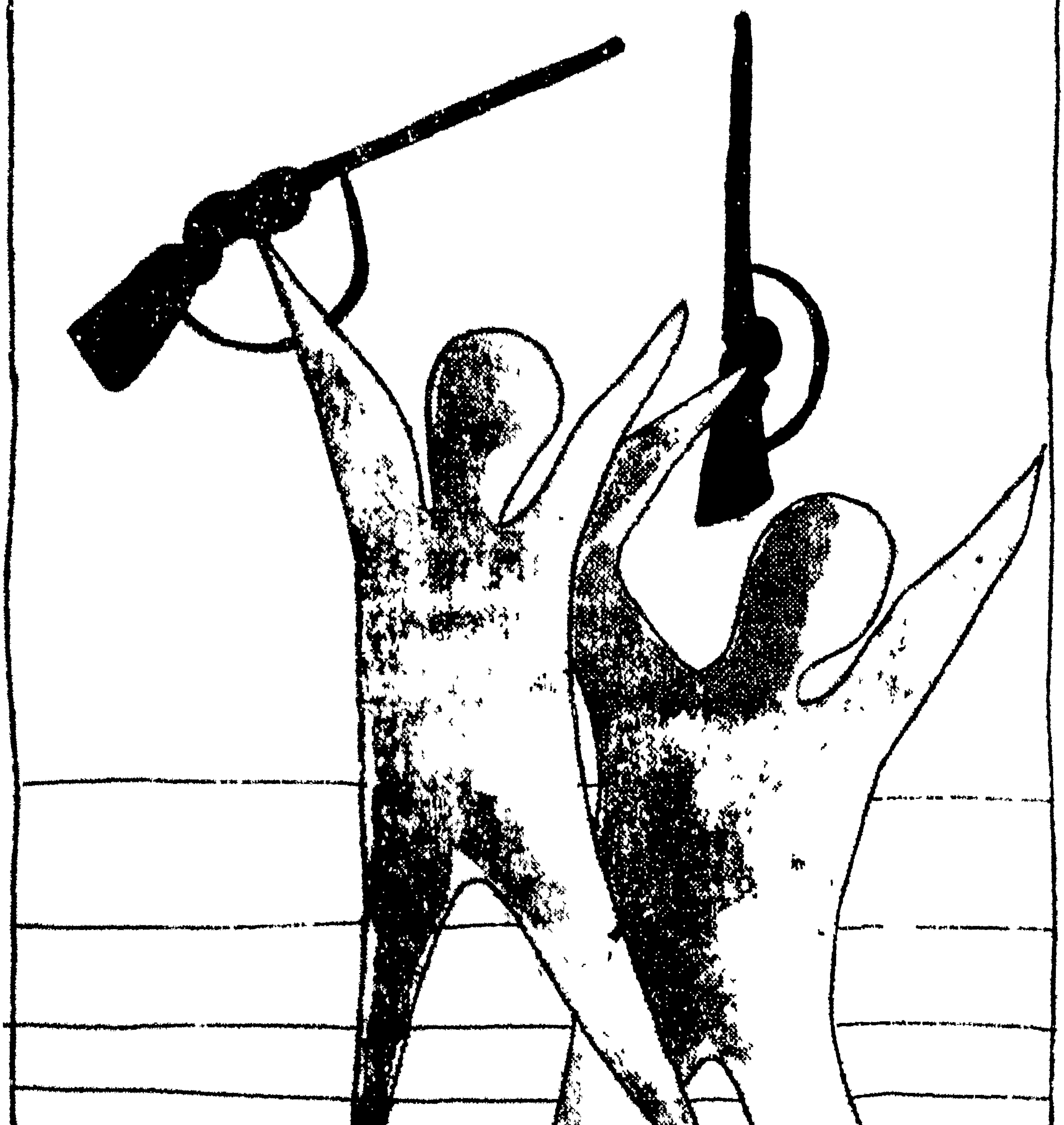
शैलेश डे

अनुवाद

[illegible]

मैं सुभाष बोल रहा हूँ

[खण्ड एक]



MAIN SUBHASH BOL RAHA HUN VOL-I

(Biographical History)

By

SHAILESH DEY

Translation Mamta Khare

लेखक : शैलेश डे

अनुवाद : ममता खरे

प्रकाशक : रवीन्द्र प्रकाशन
३/१ बी० के० बनर्जी मार्ग,
नया कटरा, इलाहाबाद-२११००२

आवरण व सज्जा : इम्पैक्ट, इलाहाबाद
अंशुमान खरे

द्वितीय संस्करण : १९९२

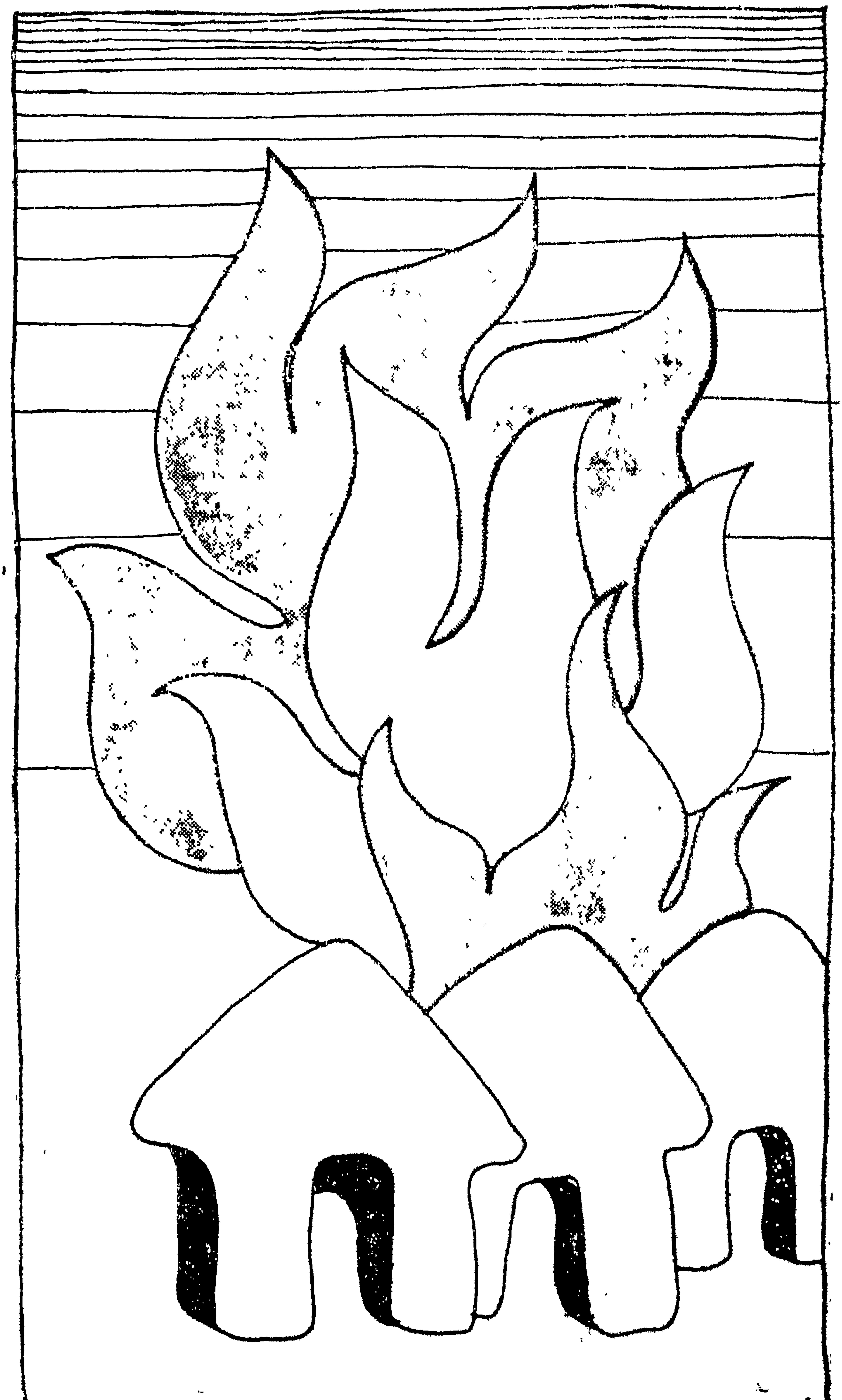
मुद्रक : एशिया आफसेट, यूनिवर्सिटी रोड,
इलाहाबाद।
जनता प्रेस, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

मूल्य : अजिल्द साठ रुपया
सजिल्द एक सौ पचास रुपया

मैं सुभाष बोल रहा हूँ

शैलेश डे
अनु० ममता खरे





मूल-ग्रन्थ की भूमिका

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' प्रथम-खण्ड प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक को देख कर जो सबसे अधिक प्रसन्न होते वह थे मेरे परम मित्र प्रसाद सिंह, परन्तु वे आज सब की पहुँच के बाहर हैं।

मैं राजनीति का छात्र नहीं था। कभी किसी राजनैतिक दल के साथ सम्बद्ध भी न था। आज भी वैसा ही हूँ। फलस्वरूप एक तरफ जैसे दल-मत के प्रभाव से बच कर निष्पक्ष दृष्टिकोण बनाये रख सका, उसी तरह, दूसरी तरफ, राजनीति से सम्पर्क न रहने के कारण, अग्नियुग के इतिहास का सूक्ष्म निरीक्षण कर सकना भी मेरे लिए दुरूह हो गया।

आत्मत्याग के ऐसे दृष्टान्त, अभूतपूर्व तेजस्वी चरित्रों का सामना हो जाने पर विस्मित रह गया हूँ कभी-कभी। किस भाषा से, कैसी शब्द रचना द्वारा इन अतुलनीय चरित्रों का वर्णन करूँ, कभी-कभी समझ नहीं पाता था।

फिर भी, जिस अथाह समुद्र में मैंने डुबकी लगाने का साहस किया है, उसके पीछे प्रेरणा स्वरूप, उत्साह बढ़ाने को हैं, अग्नियुग के विभिन्न दलों के विप्लवी वीरगण। उत्साह, परामर्श और नाना प्रकार के बहुमूल्य तथ्यों द्वारा उन्होंने मुझे इस काम के लिए प्रेरित किया है। ऐसा केवल वे ही कर सकते हैं।

प्रख्यात विप्लवी नेता श्रद्धेय भूपेन्द्र किशोर रक्षित ने, मुझे हर बात स्पष्ट रूप से समझाने में अपना बहुत समय लगाया। मैं मुग्ध होकर सुनता था, प्रश्न पूछता था। विरक्त न होकर वे और भी विस्तार से बताते और मेरी आँखों के आगे सजीव चित्र खींच देते। उस समय की घटनाएँ चलचित्र की तरह मुझे अभिभूत कर देती थीं।

विप्लवी नेता श्रद्धेय नलिनी किशोर गुहा, गनेश घोष, जतीश भौमिक, श्रीमती शान्ति दास, बीना भौमिक, कमला दासगुप्ता, विनोद बिहारी दत्त, हरिपद भट्टाचार्य, कामाक्षा राय, अमलेन्दु घोष, विप्लवी बंधु लोकेन्द्र कुमार सेनगुप्ता और प्रसिद्ध लेखक शंकु महाराज की बात इसमें विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने भी ग्रन्थ रचना में मेरी हर प्रकार से मदद की है।

चट्टगाँव अध्याय की अधिकांश तस्वीरें दी हैं युवा विद्रोही सैनिक अर्धेन्दु शेखर गुहा ने। उन्हीं के सौजन्य से, फाँसी के कुछ घंटे पहले का मास्टर दा का अंतिम संदेश भी मिलना सम्भव हुआ है।

विश्व भारती ने अपने कृतज्ञता पाश में बाँध लिया है। क्योंकि कविगुरु रवीन्द्र-नाथ की रचनाओं के कुछ अंश उद्धृत करने की अनुमति उन्होंने दी है। 'रवीन्द्रनाथ और सुभाषचन्द्र' ग्रन्थ के रचयिता श्री नेपाल मजुमदार ने भी ग्रन्थ रचना में मुझे असीमित सहयोग प्रदान किया है।

अक्सर सुनने में आता है—इस युग के लड़के-लड़कियाँ अतीत का इतिहास जानना नहीं चाहते। परन्तु यह अभियोग गलत है। जब यह ग्रन्थ 'उल्टोरथ' मासिक पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था, तब मुझे अनेक पत्र मिले थे। इच्छा रहने पर भी उनका उत्तर न दे सका था। आज उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद देता हूँ 'उल्टोरथ' के कर्मीवृन्दों को जिन्होंने बार-बार तगादा अगर न दिया होता तो शायद किताब लिखी ही न जाती।

इसी के साथ स्मरण करता हूँ कलकत्ते के श्रेष्ठ पुस्तकालय—बालीगंज इन्स्टीट्यूट को। यहाँ से मुझे अनेक पत्र-पत्रिकायें सहायता के लिए चाहिये थीं। पाठागार के तरुण मित्रों ने अपने परिश्रम से मेरा वह कार्य सहज सरल बना दिया था।

अन्त में धन्यवाद देता हूँ तरुण प्रकाशक श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ विश्वास को। इस पुस्तक को सर्वांगीण सुन्दर बनाने में उन्होंने जो अथक परिश्रम और बिना सोचे-समझे अर्थ-व्यय किया, उसी से साबित होता है कि बंगाल और बंगाली की शौर्य-गाथा को कितना भी कलुषित करने का प्रयास क्यों न किया जाए, अतीत का यह वीरतापूर्ण इतिहास मिट नहीं सकता है।

संस्था के श्री परितोष चक्रवर्ती और श्री शैलेन्द्र नाथ सरकार का भी मैं कम ऋणी नहीं। उन्हें भी साधुवाद देता हूँ।

विनीत
ग्रन्थकार
२१ अक्टूबर, आजाद हिन्द सरकार
(रजत जयन्ती) प्रतिष्ठा दिवस, १९६८

२१ बी, फर्न रोड,
कलकत्ता
७०००१९

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ।

प्रथम संस्करण प्रकाशित होने के बाद से असंख्य आशीर्वाद और शुभेच्छा प्रकट करते हुये पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। इन सभी पाठक-पाठिकाओं को इस अवसर पर आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ।

विनीत
ग्रन्थकार
२१ मार्च, १९६९ साल

२१ बी०, फर्न रोड,
कलकत्ता
७०००१९

यह अनुवाद

इस ग्रंथ के अनुवाद की प्रेरणा स्वयं लेखक स्वनामधन्य श्री शैलेश डे ने ही दी।

अपने पहले पत्र में उन्होंने लिखा था....'तुमने दादा कह कर सम्बोधित किया है तो कुछ उपदेश देने का अधिकार मुझे हो गया है। मेरा विश्वास है और अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ कि हल्के किस्म के उपन्यासों का पाठक वर्ग पर स्थाई प्रभाव नहीं पड़ता। दो-तीन सालों में इसका स्थायित्व धूमिल पड़ जाता है। अगर चिर-स्थाई कुछ पाना चाहती हो तो फिर ऐसी कोई सृजनशील चीज तुम्हें रख जानी होगी जिसका मूल्य असीमित हो। यहाँ तक कि तुम्हारे न रहने पर भी इसका मूल्य ज़रा कम नहीं होगा।

'....इसलिए तुमसे कह रहा हूँ, संभव हो सके तो 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' का अनुवाद करने की चेष्टा करके देखो।' (दिनांक २१. २. ८४)

अपने अगले पत्र में श्री डे ने पुनः लिखा—

'मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कहता हूँ, यदि साहित्य के क्षेत्र में चिरंजीवी होना चाहो तो केवल मामूली उपन्यासों का अनुवाद करने से काम नहीं चलेगा। ऐसा कुछ करना जरूरी है कि समाज में, देश में तहलका मच जाए। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ, यदि इसे तुम प्रकाशित करवा सको तो कोई भी तुम्हारा गतिरोध न कर सकेगा। मैं ज़ोर डालते हुए कह रहा हूँ, तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ नहीं जाएगा।

'....अविचल निष्ठा के साथ बढ़ो—मैं कह रहा हूँ—सब ठीक होगा।' (दिनांक ८.४.८४)

साफल्य की कामना करते हुए, एक और पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा था—

'केवल एक ही कामना है— मैं तुम्हारी नई किताब देख कर जा सकूँ। जिस पुस्तक ने मुझे सम्मान, स्वीकृति और ख्याति दी, उसके प्रति मेरी यह दुर्बलता तो स्वाभाविक है।'

मुझे प्रसन्नता है कि इस महाग्रन्थ का सम्पूर्ण अनुवाद मैं पूज्यपाद श्री शैलेश डे की प्रेरणा व आशीर्वाद से पूरा कर सकी। और अब दादाजी (शैलेश डे) अपनी महानतम कृति 'आमी सुभाष बोलची' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित रूप में देख कर संतुष्ट होंगे, और अब मुझे उनका जो आन्तरिक आशीष प्राप्त होगा, उसके बल पर मैं बंगला की और भी अमर कृतियाँ हिन्दी में लाने में सफल हो सकूँगी।

इस बृहद् ग्रंथ का प्रकाशन शायद संभव न होता और यह महाकृति हिन्दी में छप कर पाठकों के सामने आ ही न पाती यदि प्रकाशक महोदय—श्री टी० एन० भार्गव

इसके शीघ्र प्रकाशन में इतनी रुचि न लेते। तीन खण्डों में प्रकाशित इस ग्रंथ के हजार से अधिक पृष्ठों को कुछ ही हफ्तों में मुद्रित व प्रकाशित करा कर उन्होंने अपनी निष्ठा का परिचय ही नहीं दिया है, बल्कि हिन्दी पाठकों को एक महान् व चिरस्थायी ग्रंथ भी वे दे सके हैं। मैं उनका आभार स्वीकार करती हूँ।

अंत में मैं बड़े संकोच से हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री ओंकार शरद के प्रति अपना आभार निवेदित करती हूँ, जिन्होंने सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को 'साहित्य व राजनीति' दोनों दृष्टियों से सुधारने का कष्ट उठाया। श्री ओंकार शरद ने सुभाष बाबू और उनके युग को निकटता से देखा है, अतः उनकी लेखनी छू जाने से मेरा परिश्रम परिमार्जित हो गया और उसमें निखार आ गया। क्योंकि मैं तो भावना में डूबी लगातार ग्रन्थ का अनुवाद एक बहाव में करती चली गई और उसमें भावावेश के कारण जो भी त्रुटि रह गयी थी, उसे श्री ओंकार शरद ने बड़े मनोयोग से सम्हाल कर इस कृति को सजा दिया। उन्हें बहुत धन्यवाद।

इस ग्रंथ के प्रकाशन से मेरे भीतर एक स्थायी आत्मविश्वास भी जागा है, जो मुझे सदा प्रेरित करता रहेगा।

—ममता खरे

प्रस्तुत ग्रंथ पर
विशिष्ट विप्लवियों के विचार

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ', तथ्यों की दृष्टि से बिल्कुल प्रमाणित है। और इतनी मर्मस्पर्शी है कि जिस किसी के भी मन को छू सकेगी।

मैं इस पुस्तक का बहुत प्रचार हो यही कामना करता हूँ। इति—

हेमचन्द्र घोष

'....आज के दिनों में, हमारे देश के हजारों युवक-युवतियाँ, हमारे स्वाधीनता संग्राम के अतीत के गौरवोज्ज्वल अध्याय के बारे में बहुत कुछ नहीं जानती हैं। जानने का मौका भी नहीं मिलता है। असीमित त्याग, अतुलनीय वीरता और अकृत्रिम निष्ठा से उज्ज्वल हमारे देश के उस अतीत-युग की घटनाएँ ही, आज के युवक-युवतियों का पथ-प्रदर्शन करेंगी।

शैलेशबाबू ने उसी कहानी को कहने का प्रयास कर सचमुच ही एक देशप्रेमी का उत्तरदायित्व निभाया है। देश के असंख्य जन-समूह के साथ मिल कर मैं भी उनका यह ऋण स्वीकार करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ।'

गनेश घोष

'....पूजा-स्थल के नियोन लाइट पर ही हमारी नज़र रहती है, माँ के चरणों के पास मिट्टी का दिया जल रहा है या नहीं, उधर कोई नहीं देखता है। जबकि यही दिया भक्ति का चिह्न है।

आपका 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' पढ़ कर हम सचमुच मुग्ध हुए, आनन्दित हुए। भविष्य के लड़के-लड़कियों के सामने आपने एक शाश्वत 'सच' को प्रस्तुत किया है। खासकर उस समय जब इसी 'शाश्वत सच' को भुला देने का प्रयास चल रहा है—हर तरफ।

आज इतिहास को डस्टबिन के कूड़े के बीच फेंक देने का षड्यंत्र चल रहा है। आपने उस कूड़े में से ऐतिहासिक तथ्य खोज कर भविष्य निर्माण का जो प्रयास किया है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। आपको इसके लिए भविष्य आजीवन-काल स्मरण करेगा।

आपका यह प्रयास साफल्यमंडित हो, यही कामना करता हूँ। जयहिन्द।

देवनाथ दास
जनरल सेक्रेटरी,
इन्डियन इन्डीपेन्डेन्स लीग, पूर्वी एशिया
मन्त्री—आजाद हिन्द सरकार

'....हम लोगों का जमाना होता तो इस कहानी ने लड़के-लड़कियों को पागल कर दिया होता।

....आज, लड़के-लड़कियाँ समझ सकें उस भाषा में, उनके मन का मनुष्य बन वह जो कहते जा रहे हैं उसका दोहरा मूल्य है।

पहला—उनकी कहानी कल्पना से परे है। दूसरा—उनकी लेखनी में वह शक्ति है, वह रचना-कौशल का आकर्षण है कि जो अतीत की बातें नहीं सुनना चाहता है, वह भी उत्साह से भर जाता है।

मैं तो आश्चर्यचकित इस बात से हूँ कि वे कुशल लेखक हैं, बल्कि यह देख कर ज्यादा हुआ हूँ कि विप्लवियों के बारे में उनकी समझ और विप्लवियों का चरित्र-चित्रण उन्होंने कैसे इतना सजीव कर डाला है। उनकी पुस्तक को पढ़ कर बहुतों को यही लगा कि उन्होंने विप्लवियों के बीच ही जीवन बिताया है। पर ऐसी बात नहीं है। उन्हें तो कभी किसी गुप्त समिति के साथ जुड़ने तक का मौका नहीं मिला। तब फिर? उनके लिए यह कैसे संभव हुआ कि ऐसा प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभूति लेकर चित्रण करें?'

श्री भूपेन्द्रकिशोर रक्षित राय

'....स्वाधीनता संग्राम में जिन लोगों ने कभी हँसते-हँसते प्राण त्याग दिए थे, मुँह बन्द कर, अमानुषिक अत्याचार सहे थे, अग्नियुग के उन समस्त विप्लवियों के प्रति आपके मन में कितनी गम्भीर श्रद्धा है, यह मैंने बहुत बार, बहुत तरह से देखा है। आप उम्र में छोटे होते हुए भी इस काम के लिए श्रद्धा के पात्र हैं।

सहानुभूति से भरपूर मन से आपने जो 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' लिखा है वह वर्त्तमान काल के लड़के-लड़कियों के चरित्र-निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध होगा—मेरी यही धारणा है।'

श्री नलिनी किशोर गुहा

'....चट्टगाँव युवा विद्रोहियों के एक सैनिक होने के नाते मैं आपको जी भर कर

धन्यवाद दे रहा हूँ। धन्यवाद जताता हूँ, आपके निष्पक्षीय दृष्टिकोण को। जिस असीमित निष्ठा और अकृत्रिम सहानुभूति के साथ आपने अग्नियुग की कहानी का वर्णन किया है, सचमुच वह अतुलनीय है।

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' कहानी के माध्यम से बंगाल और बंगाली को पुनः देश-प्रेम, त्याग, चरित्र-निर्माण और आत्मशुद्धि का मन्त्र याद दिला कर आपने निस्सन्देह जनसाधारण का उपकार किया है। इसके लिए अवश्य ही वे कृतज्ञ होंगे।

श्री विनोद बिहारी दत्त

'....आज का स्वार्थ, अग्नियुग के विप्लवियों के महान् इतिहास पर कालिख पोतने के लिए कटिबद्ध है। उस तरफ देखा जाए तो शैलेश बाबू ने 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' के माध्यम से अग्नियुग के इतिहास को जिस तरह से जन-समूह की नजरों के सामने पेश किया है, निस्सन्देह यह एक अमूल्य प्रयास है।

देश की उन्नति के लिए आज जरूरत है विप्लवी प्रेरणा और देश की आत्मा को समझने की....जो कि वर्त्तमान युग में मिटती जा रही है। इस पुस्तक से देश के युवक-युवतीगण, अग्निहोत्रियों की बात याद कर, देश के काम में लगने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।'

हरिपद भट्टाचार्य

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ', मुझे अच्छी लगी है। मुझे तो अच्छी लगेगी ही, क्योंकि मैं उसी युग का आदमी हूँ जिस युग में भारत ने शहीदों की रचना की थी.... अरविन्दो और नेता जी को जन्म दिया था। आज मैं छियासी साल का हो गया हूँ फिर भी अपने चारो तरफ दीवाल पर टँगे शहीदों की तस्वीरों का मैंने सहारा लिया है। शहीदों और नेताओं की अवश्य ही पठनीय पुस्तकें मैं धर्म-ग्रन्थ की तरह पढ़ता हूँ।

इसीलिए 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' पुस्तक भी मेरी थोड़ी सी अमूल्य पुस्तकों में से एक है। आशीर्वाद सहित।

श्री राजेन्द्र कुमार गुहा

४-१०-६८
विष्णुपुर
चौबीस परगना

विशेष शिक्षाविदों का मत

'स्वाधीनता के आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखी, आग बरसाने वाली, जीवनी है 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ'। इस पुस्तक को पढ़ते समय मुझे शहीदों के खून से रंगे रास्ते दिखाई पड़ते हैं और सुनाई पड़ते हैं वे जय गान जिन्हें फांसी के तख्ते पर खड़े हो कर उन्होंने गाया था।'

डाक्टर बुद्धदेव भट्टाचार्य

'शैलेश डे की 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई। पढ़ते-पढ़ते बहुत सी पुरानी बातें याद आ गईं।....याद आया, किस तरह से भारत के महान् नायकों ने उस दिन सुभाष से उनका हक और दावा छीना था, उनके स्वाधीनता संग्राम का रास्ता रोक कर खड़े हो गए थे, किस तरह से इस अकृत्रिम देश सेवक को कांग्रेस से निकाला था। भारत के सर्वश्रेष्ठ एकआध महान् भाग्य-निर्माता भी इस अन्याय और अपवाद से मुक्त नहीं थे। भारत के माथे पर उस दिन जिन लोगों ने कलंक का टीका लगाया था, इतिहास उन्हें भूलेगा नहीं।

''बिलायत में रहते समय सुभाष से मेरा परिचय हुआ था। उसके बाद अपने लखनऊ के निवास स्थान पर दो बार और भी घनिष्ठ रूप से उन्हें देखा और जाना था। उनकी वह तेजोद्दिप्त सौम्यमूर्ति, वह प्राण लेवा परिश्रम, अकृत्रिम देश-प्रेम और निर्भीक चिन्ता धारा—आज भी मेरे हृदय-पटल पर स्पष्ट और बेदाग अंकित है। इस पुस्तक को पढ़ने के लिए मैं सभी से कहता हूँ। सुभाष को जानना हो तो इस पुस्तक को पढ़ना ही पड़ेगा।'

अध्यापक वी० एन० दासगुप्ता

'श्री शैलेश डे की 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' पुस्तक ने मेरा हृदय छीन लिया है। लेखक मानो लिखने का जादू जानता है। टूटी-फूटी, बिखरी-फैली घटनाओं को उन्होंने इतनी कुशलतापूर्वक सजाया है कि ऐसा केवल प्रथम श्रेणी के लेखक ही कर सकते हैं।

अध्यापक पी० आचार्य

विशिष्ट साहित्यकारों का मत

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ'—पढ़ा। अच्छी लगी। इसके लिए धन्यवाद। ये न केवल सुभाष चन्द्र की जीवनी है बल्कि उनके विचारों और प्रेरणा से रचे शौर्य तथा वीरता, आत्म-त्याग का इतिहास भी है। विशेष रूप से वे लड़के-लड़कियाँ, जिन्होंने पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने के लिए, अमानुषिक अत्याचार हँस कर झेले, स्वाधीनता के लिए अपना खून बहा दिया—भुलाए नहीं जा सकते हैं।'

सुमथ नाथ घोष

इस शताब्दी में मनुष्य के इतिहास में मुट्ठी भर लोग ही पृथ्वी पर आए और हर किसी के हृदय में कौतुहल जगाने में सफल हुए हैं। उनमें से सुभाष एक हैं।.... श्रीयुक्त शैलेश डे ने शायद इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर एक कुशल कलाकार की तरह सुभाषचन्द्र की सम्पूर्ण जीवनी को एक विशाल पृष्ठभूमि पर अंकित किया है। उनके वर्णन करने की दक्षता ने सुभाष को नयी-नयी रूपसज्जा दी। सारी पुस्तक मैंने बड़े आग्रह से पढ़ी है।

प्रबोध कुमार सान्याल

प्रिय शैलेश भाई

कभी-कभी ही ऐसी किताबें हाथ लगती हैं—काम भी आती हैं। काम की किताबें बहुत मिल जाती हैं। डाक्टर की दी दवा की तरह फायदा करती हैं, परन्तु रत्ती भर का स्वाद नहीं रहता है उसमें। कुछ को पढ़ो तो बस पढ़ते वक्त तक ही उसका स्वाद मिलता है। उसके बाद उसकी एक लाइन तक याद नहीं रहती है।

आपकी पुस्तक 'मैं सुभाष बोल रहा हूँ' इन दोनों में से किसी भी श्रेणी में नहीं आती है। स्वाद और गुण का अपूर्व मेल है। आहार—औषधि दोनों। किताब हाथों में आते ही साँस रोक कर पढ़ गया। आज भी मेज पर रख दिया है, और रह-रह कर उलटा-पुलटा करता हूँ। इससें ज्यादा कुछ कहना है क्या? आपने इस पुस्तक से किला फतेह कर लिया है।

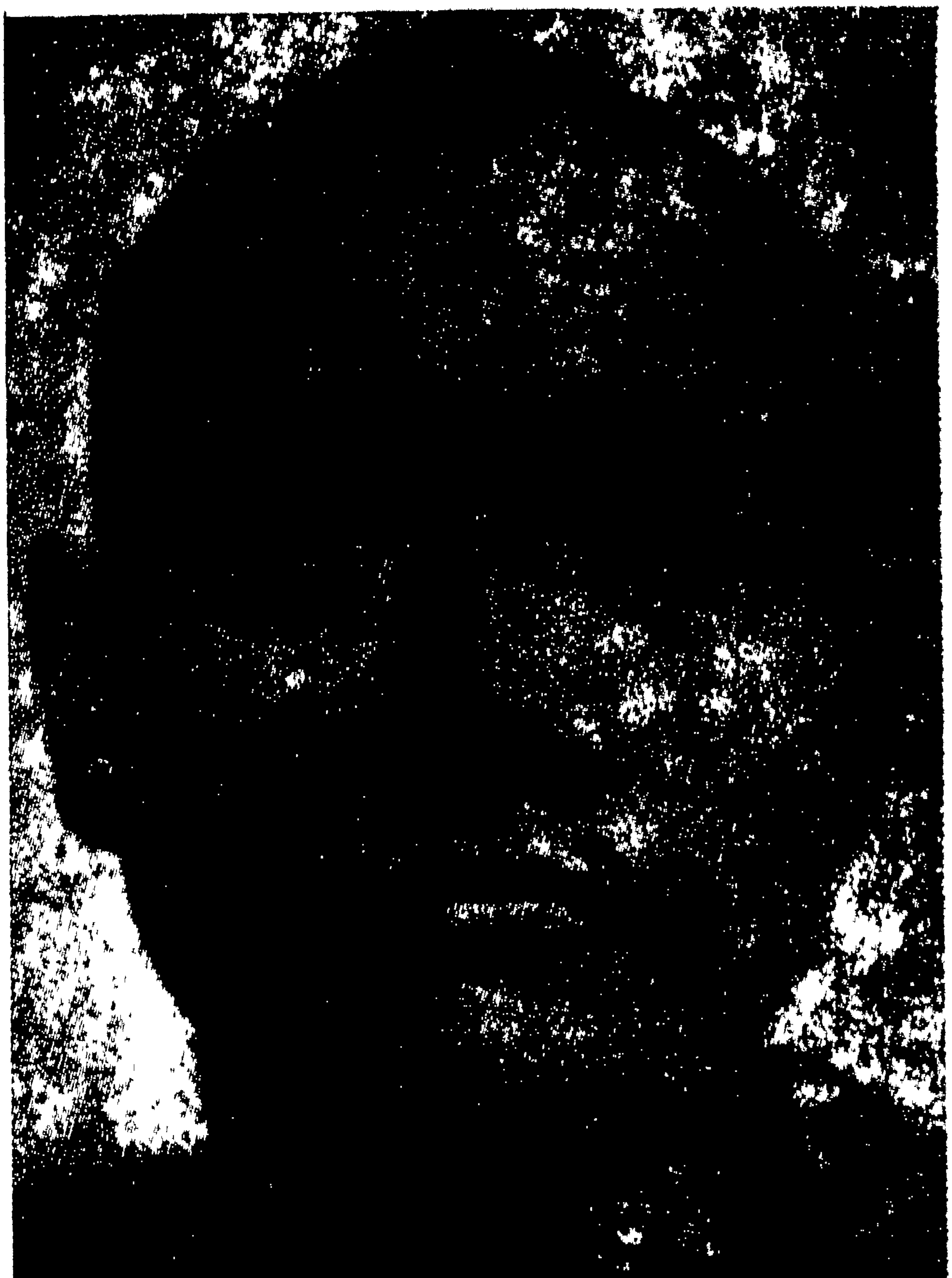
सप्रेम नमस्ते
गजेन्द्र कुमार मित्र

●●

मैं सुभाष बोल रहा हूँ



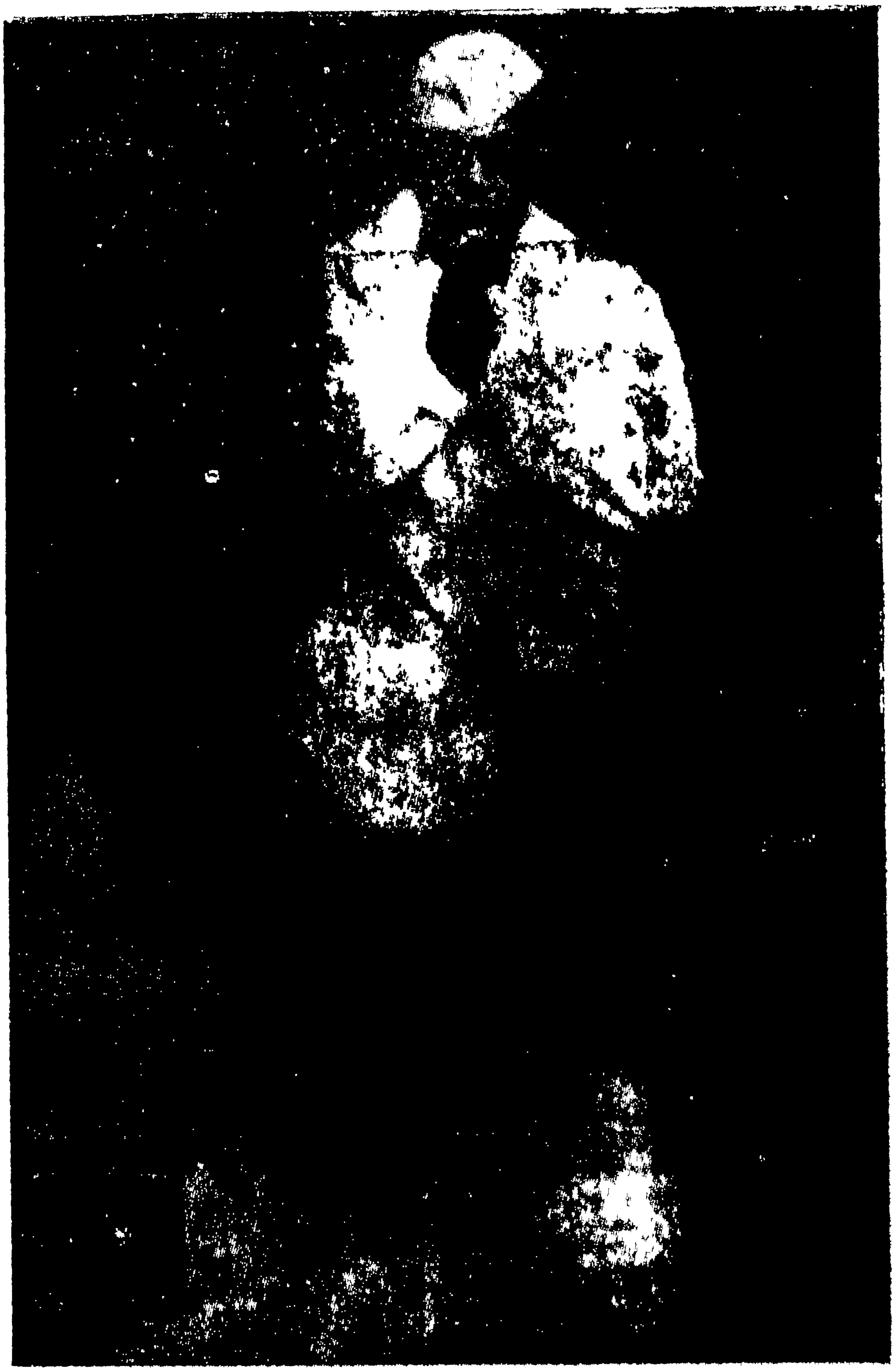
मैं सुभाष बोल रहा हूँ·······



सुभाषचन्द्र बोस १६३५ में



महात्मा गांधी के साथ (१६३८)



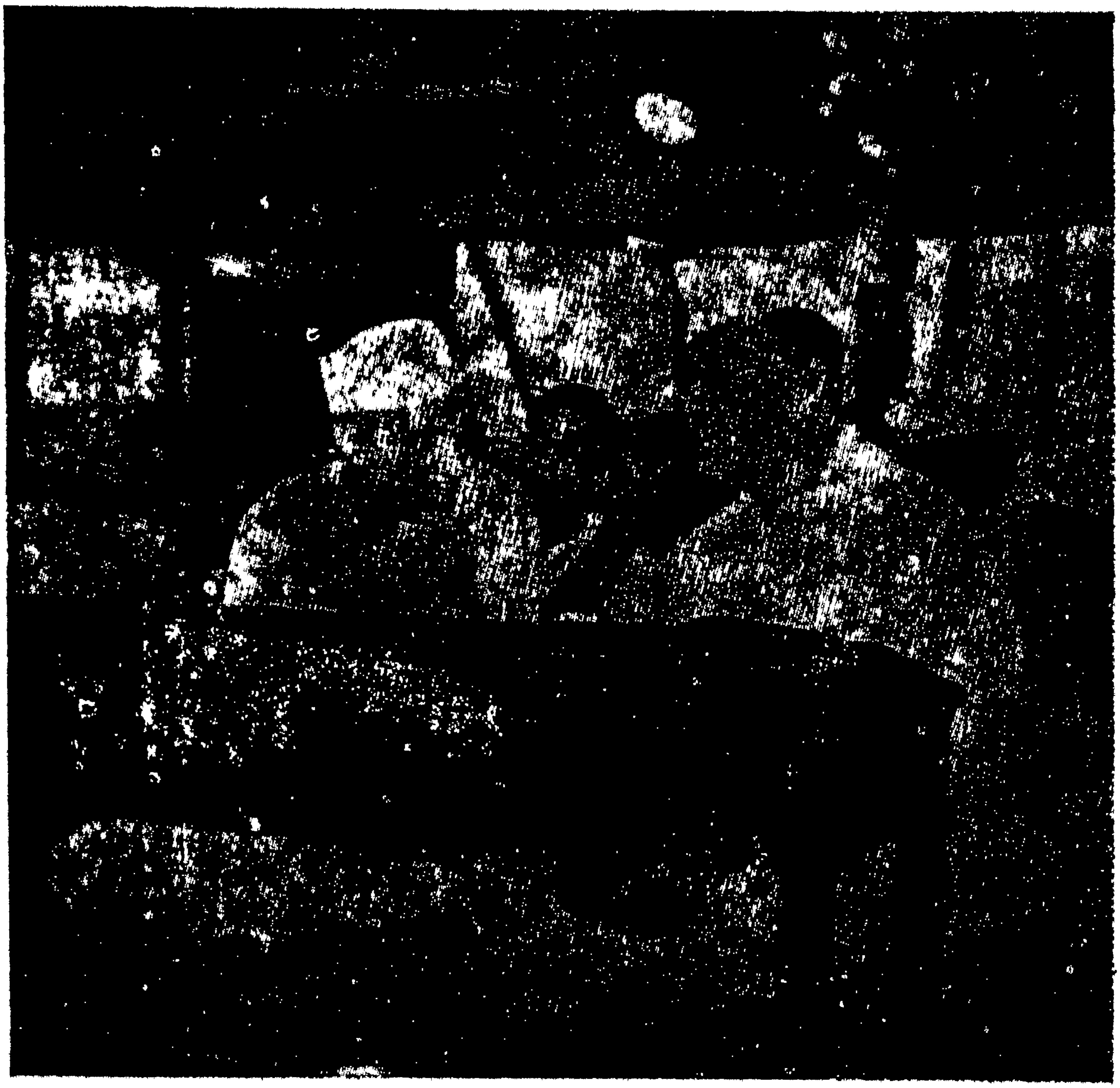
सुभाषचन्द्र बोस (१६३८)



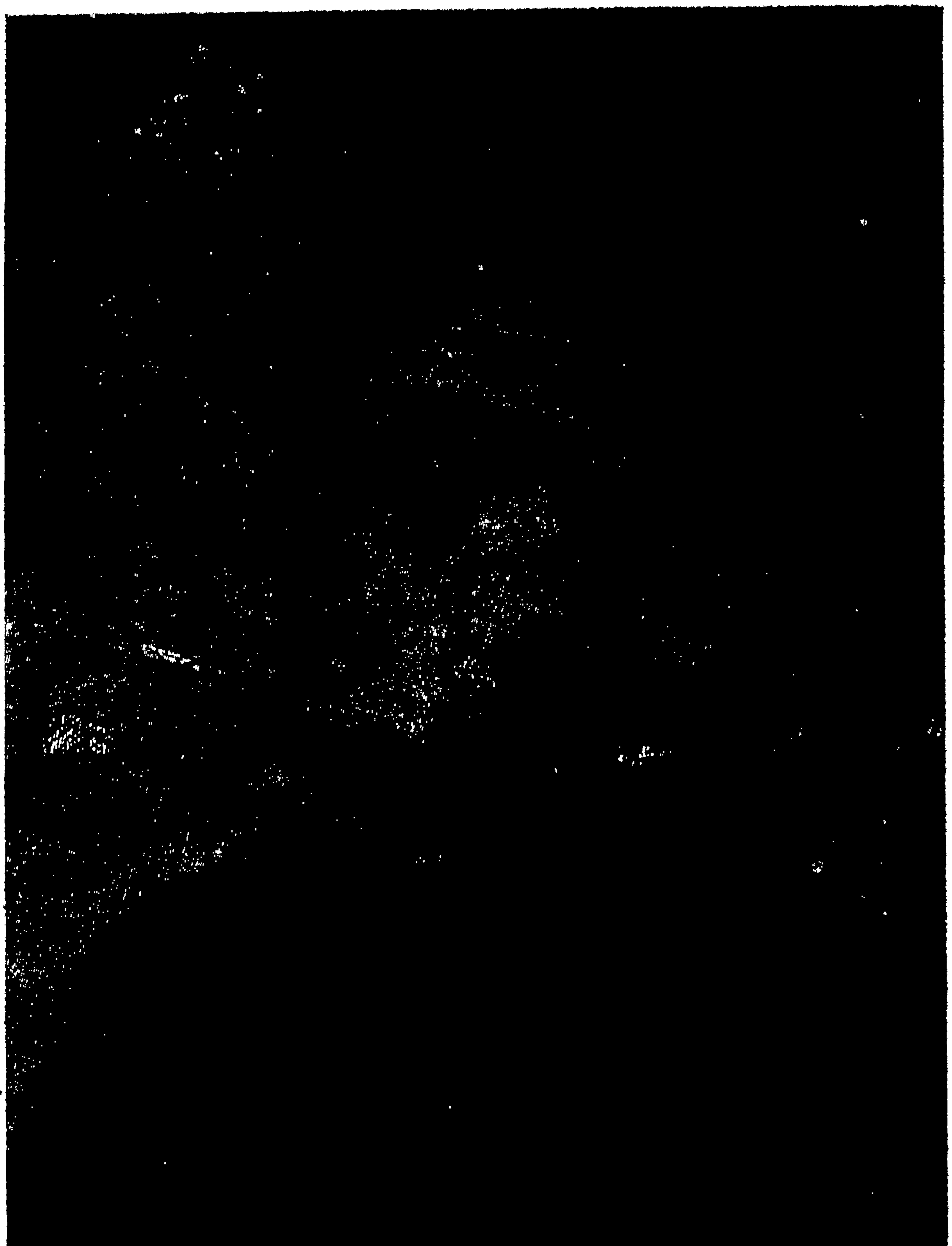
कलकत्ता कांग्रेस में अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू के
साथ सेनानामक सुभाषचन्द्र बोस



हरिपुरा कांग्रेस (१९३८) के राष्ट्रपति
श्री सुभाषचन्द्र बोस



पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ (१६३६)



सुभाषचन्द्र बोस, जर्मनी में (१९४२)

सुभाषचन्द्र,

मैं बंगाली कवि हूँ, बंगला देश की ओर से मैं तुम्हें देश-नायक के पद के लिए चुन रहा हूँ। गीता में कहा है, 'अच्छे और सत् की रक्षा और बुरे के विनाश के लिए रक्षक का बारम्बार आविर्भाव होता है।' दुर्गति के जाल में राष्ट्र जब उलझा हो, तभी पीड़ित देश की आन्तरिक वेदनामयी पुकार पर आविर्भूत होता है देश का अधिनायक— सेनापति।

बहुत समय पहले, एक दिन, और एक सभा में, मैंने बंगाली समाज के अनागत सेनापति के उद्देश्य में अपना वाणी-दूत भेजा था। उसी के बहुत साल बाद, आज, दूसरे एक मौके पर बंगला देश के नेता का प्रत्यक्ष वरण कर रहा हूँ।....

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

'आज़ाद हिन्द रेडियो, बर्लिन ! मैं सुभाष बोल रहा हूँ...'

कौन ! कौन ! सारा भारतवर्ष चौंक पड़ा ! कौन बोल रहा है ? ईथर तरंगों से यह किसकी आवाज़ सुनाई पड़ी ?

'मैं सुभाष बोल रहा हूँ...'

सुभाष ! सुभाष ! चारों तरफ खुशी की लहर दौड़ गई। हमारा सुभाष ! वही पहचाना कण्ठ-स्वर ! वह तेजस्वी भंगिमा। बोलो सुभाष, बोलो ! हम तुम्हारी बात अधीरता से सुन रहे हैं। तुम बोलो।

'इतने अरसे से मैं आप लोगों को अपना वक्तव्य सुना सकने का अवसर नहीं पा सका था। शत्रुपक्ष जो भी कहे, मैं जानता हूँ, आप उस पर विश्वास नहीं करते। मैं अपना काम करता रहूँगा, कौन क्या कहता है, नहीं कहता है, इससे मेरा कुछ बनता बिगड़ना नहीं।

'अस्त्र शक्ति के आक्रमण से अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए, अगर आज ब्रिटेन अमेरिका के आगे भिक्षापात्र बढ़ाने में लज्जित नहीं होता है तब फिर भारतवर्ष ही क्यों स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए अन्य जाति से सहायता न माँगे ? मैं इसे अन्याय भी नहीं समझता हूँ और अपराध भी नहीं मानता हूँ। आप सब अन्तर्जातीय परिस्थिति का ध्यान रखते हुए तैयार रहिए। मैं जिस तरह से ब्रिटिश सरकार को चकमा देकर भारतवर्ष छोड़ कर चला आया हूँ, ठीक वैसे ही यथासमय आपके सामने आ कर उपस्थित हो जाऊँगा। आज जो मौका हाथ आया है उसका पूरी तरह से फायदा उठाना है। इसके लिए आप स्वयं धर्म और जाति का भेदभाव त्याग कर संघ बनाइए। आज चाहिए एकता और एकाग्रता।'

सुभाष के बाद बोले विख्यात संवाददाता डा० गिरिजा मुखर्जी। सबसे अंत में मिस्टर शर्मा। एक ही वक्तव्य था—'प्रस्तुत रहो....समय आ गया है।'

एक के बाद एक, सब का भाषण समाप्त हो गया....पर उसकी गूंज बाकी रही। सभी एक ही प्रश्न पूछ रहे थे। सभी के मन में एक ही स्वर था....'ऐसा कैसे संभव हुआ ?'

सुभाष अन्तर्ध्यान हुए थे १६४१ की १७ जनवरी को। आज ७ दिसम्बर है।

संसारव्यापी महायुद्ध छिड़ा हुआ है। ऐसे समय में, साम्राज्यवादी शक्तियों का बेड़ा फाँद कर, सात समुद्र-तेरह नदियाँ पार कर वे कैसे इतनी दूर बर्लिन जा पहुँचे ? वहाँ उपस्थित होना कैसे सम्भव हो सका ? यह तो अविश्वसनीय है ! कल्पनाहीन !

सचमुच ही अविश्वसनीय है। प्रबल पराक्रान्त ब्रिटिश राज्य के इतिहास में, ऐसी असम्भव बात की कोई चिंता तक नहीं कर सकता है। खासतौर से युद्धकाल में। फिर भी यह सम्भव हुआ था। बड़े परिश्रम से, असीमित अत्याचार, उत्पीड़न और प्रचुर धैर्य से ही यह सम्भव हो सका था।

इस इतिहास का अलिखित अंश ही अधिक है। लेखे-जोखे में है ही कितना ? फिर भी देशव्यापी अनुसंधान के फलस्वरूप जितना भी तथ्य संग्रहीत करना सम्भव हो सका है....आज तुम्हें मैं सिलसिलेवार वही कहानी सुनाऊँगा, मल्लिका।

याद रखना, सिर्फ एक नहीं, इस ऐतिहासिक यात्रा के पर्दे के पीछे बिखरे-फैले पड़े हैं असंख्य प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध देशप्रेमी लोग। जिनके अवलान्त सहयोग के बिना इस भयंकर दु:साहसपूर्ण अभियान के सफल होने की कभी आशा ही नहीं थी।

तैयारी शुरू हो गई थी १९४० के बीचोबीच से ही।

सुभाष स्थिर प्रतिज्ञ थे। बाहर जाना ही होगा। हिटलर से मुंह की खा कर इस समय अंग्रेज अपना घर संभालने में व्यस्त हैं। यही वह स्वर्णिम अवसर है। इस मौके का फायदा उठाना ही होगा। भयंकर रूप से चोट पहुँचा कर इनकी साम्राज्यवादी भूख को हमेशा-हमेशा के लिए शांत करना ही होगा।

यहाँ रह कर यह संभव नहीं हो सकेगा। संभव तभी होता जब कांग्रेस का सहयोग मिलता इस मामले में।

पर ऐसी आशा करना ही व्यर्थ है। आज भी वे लोग वही पुराने आवेदन-निवेदन की बँधी-बँधाई नीति पर विश्वास करते हैं। आज भी उनकी धारणा है कि इसी आवेदन-निवेदन के बल पर स्वाधीनता नामक वस्तु, उनके हाथों की मुट्ठी में आ जाएगी।

ऐसी हालत में उन्हें कौन समझा सकता है कि साँप मारने के लिए लाठी की जरूरत होती है, मनसादेवी की पूजा करने से साँप नहीं मरते हैं। कौन समझायेगा कि सशस्त्र उत्थान के बिना ब्रिटिश नामक सिंह को भारत की ज़मीन पर से बिन्दु भर भी हटाया नहीं जा सकेगा।

हालाँकि कांग्रेस का सहयोग न मिलने पर भी अन्य सभी दल, पक्ष में हैं, इसमें कोई शक न था। 'फारवर्ड ब्लॉक', बंगाल की विप्लवी संस्था 'बंगाल वॉलिन्टीयर्स (बी० वी०)' अनुशीलन पार्टी, पूर्णदास का दल, अनिल राय और लीलाराय का 'श्रीसंघ' और उत्तरी बंगाल के विभिन्न दलों का समर्थन हर समय मिल रहा था।

साहस, शौर्य वीर्य और आत्मत्याग के मामले में उनकी तुलना नहीं हो सकती है। सच्चे सैनिक में जो कुछ होना आवश्यक है, सभी कुछ उनमें था।

फिर भी, यही तो काफी नहीं है। साम्राज्यवादी शक्ति से, सामने से लड़ने के लिए और भी कुछ चाहिए।

चाहिए आधुनिक अस्त्र-शस्त्र। चाहिए सुप्रशिक्षित सैन्यवाहिनी। चाहिए और भी बहुत कुछ।

इस क्षण, यहाँ रह कर इन चीजों का संग्रह करना संभव नहीं। इसीलिए चोट पहुँचानी है बाहर से। भारत इस समय अग्नि-गर्भ में है। बाहर से उचित ढंग से चोट की जाये तो हो सकता है भारत में महाविप्लव की भावना जागृत हो, इसीलिए सबसे पहला काम है बाहर जाना।

एक दिन सुभाष ने, फारवर्ड ब्लाक के प्रसिद्ध नेता सरदार निरंजन सिंह तालिब

को यह बात साफ-साफ समझाते हुए बताया—'मैं बाहर जाना चाहता हूँ सरदारजी ! इस विषय में आपकी मदद चाहिये । अब बताइये क्या किया जा सकता है ?'

सरदारजी मन ही मन हँसे । जब सुभाष बाबू ने निश्चय कर लिया है, तब दुनिया में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उन्हें रोक सकेगी ।

'ठीक है, सोच कर देखता हूँ, क्या किया जा सकता है ।'

सोचते-सोचते सरदारजी को एक विशेष व्यक्ति का ध्यान आया ।

बलदेव सिंह । जमशेदपुर के मशहूर व्यापारी बलदेव सिंह । बलिष्ठ व्यक्तित्व । विश्वास योग्य भी । उनसे एक बार बात करने में क्या बुराई है ? हो सकता है कुछ काम बन ही जाये ?

सुनते-सुनते बलदेव सिंह के चेहरे पर चमक आ गई । अद्भुत ! अत्यन्त सुन्दर प्रस्ताव ! ऐसी दुःसाहसिक चेष्टा केवल सुभाष बाबू जैसे आदमी के लिए ही संभव है । सचमुच अपूर्व चेष्टा है यह !

पर काम कठिन है । विपत्तिजनक भी । सुभाष बाबू के मामले में पुलिस अधिकारी हर समय ही अत्यन्त सजग रहते हैं । खासतौर से अभी युद्ध के समय तो और भी अधिक ।

हो सकता है, आड़ से हर क्षण वे लोग उन पर सजग दृष्टि रख रहे हों। और ऐसी हालत में उनकी नजर बचा कर आगे बढ़ना क्या सुभाष बाबू के लिए संभव हो सकेगा ?

इसके अलावा पैदल चल कर, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश से होते हुए, खूंखार उपजातीय इलाका पार करके अफगानिस्तान में प्रवेश करना, कोई हँसी-ठट्ठा नहीं । रास्ता जितना दुरूह है उतना ही विपत्तिजनक ।

सुभाष बाबू हमेशा ही मैदानी इलाकों में रहते आये है । उनके लिए क्या यह सम्भव होगा कि वे इन पहाड़ों की चोटियों को निर्विघ्न पार कर के उधर पहुँच जाएँ ?

हालाँकि इसी बात पर पीछे हटना ठीक नहीं । चुनौती तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी ।

इसके लिए सबसे पहले चाहिए एक अत्यन्त विश्वासी व्यक्ति जो इस मामले का पूरा उत्तरदायित्व ग्रहण करने में सक्षम हो । ऐसा आदमी मिलेगा कहाँ ?

अरे ! आश्चर्य की बात है ! बलदेव सिंह को सहसा ही एक बात याद आ गई । आदमी की क्या कमी है ? पंजाब के 'कीर्ति किसान पार्टी' के विश्वस्त कर्मचारी कामरेड अक्षर सिंह भी तो इन दिनों भाग कर अपने ही घर में छिपे हुए हैं । उन्हीं से एक बार पूछ कर देखने में क्या हर्ज है ?

सुन कर खुशी से राजी हो गये अक्षर सिंह—'यह तो बड़ी खुशी की बात है । मुझसे जो कुछ भी हो सकेगा, मैं जरूर करूँगा, इस बात का मैं वादा करता हूँ ।'

तुरन्त पंजाब की 'कीर्ति किसान पार्टी' को खबर भेज दी गई । 'सुभाष बाबू के खातिर इस काम की जिम्मेदारी लेनी ही पड़ेगी । अब बताओ, तुम लोग तैयार हो या नहीं ?'

'राज़ी हैं।' यथासमय 'कीर्ति किसान पार्टी' का उत्तर आ गया। 'इस मामले में हम सब की एक ही राय है। कामरेड रामकिशन को हर तरह की जिम्मेदारी सौंपी जा रही है। वह तुम्हारे साथ सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करेगा।'

कुछ ही दिनों बाद अक्षर सिंह और कामरेड रामकिशन—दोनों चल पड़े पेशावर के मर्दान ज़िले के 'खेल्ला डेर' नामक गाँव की तरफ़। वहाँ कामरेड भक्तराम से एक बार मिलना बड़ा ज़रूरी था।

भक्तराम, न केवल 'कीर्ति किसान पार्टी' के सदस्य थे, बल्कि फारवर्ड ब्लॉक के भी एक उत्साही कार्यकर्त्ता थे। पहाड़ी इलाके के चप्पे-चप्पे से परिचित थे।

अफ़ीदी, मोमन्द जैसी खूंखार जातियों से उनकी अच्छी मित्रता थी। अक्सर ही उन्हें इसी इलाके में चक्कर काटना पड़ता है। सिर्फ वही सुभाष बाबू को सुरक्षित रूप से सीमा पार करवा सकते हैं।

'सुभाष बाबू ?' सुनते ही भक्तराम उत्साह के मारे उछल पड़ा।

'यही तो है शेरों जैसी बात। मैं तैयार हूँ। मैं सुभाष बाबू के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। मेरी जान तक हाज़िर है।'

यह भक्तराम भयंकर उत्साही कार्यकर्त्ता है। बड़े भाई हरिकिशन ने पंजाब के गवर्नर की हत्या करने का प्रयास किया था। मुकदमा चला और उन्हें फांसी दे दी गई। फिर भी भक्तराम उतने ही लापरवाह हैं। उनकी एक ही प्रतिज्ञा है, 'इसका बदला ले कर रहूँगा। जिन्होंने मेरे बड़े भाई का खून किया है, उनके खून से हाथ रंगूँगा।'

जिम्मेदारी का गुरुत्व समझते ही भक्तराम सक्रिय हो उठे। सुभाष बाबू शेर हैं। जैसे भी हो, उन्हें सीमान्त पार पहुँचाना ही है। उनका स्वप्न सार्थक होना चाहिए। ताकि भारत स्वाधीन हो जाए।

अविश्वसनीय गति से काम आगे बढ़ने लगा। तैयारी लगभग पूरी थी। अचानक विशेष एक घटना को केन्द्रित कर मुसीबत आ धमकी।

हॉलवेल मन्यूमेंट आन्दोलन की तिथि निश्चित थी। जुलाई के महीने की तीन तारीख। उसी के पहले दिन सुभाष को गिरफ्तार कर लिया गया। लोहे के सीखचों के पीछे वे कैद हुए तो कुछ दिनों के लिए सारी बात दब गई।

सुभाष को प्रेसीडेन्सी जेल में रखा गया, जिसका नतीजा अच्छा ही निकला। अपने सह-बन्दी के रूप में उन्होंने पाया हेमचन्द्र घोष, सत्य बक्शी, मनिन्द्र किशोर राय जैसे बी० वी० के अन्यतम विप्लवी नायकों को। फलस्वरूप फिर से नए सिरे से सलाह-मशविरा शुरू हुआ।

अब क्या किया जाए ? इतना बढ़ने के बाद क्या इस तरह से सब छिन्न-भिन्न हो जाएगा ? असम्भव ! ऐसा नहीं हो सकता। जीवन में फिर कभी ऐसा मौका नहीं मिलेगा। जैसे भी हो सके, जिस किसी क़ीमत पर इस काम को सार्थकता का जामा पहनाना ही होगा।

पर यह संभव कैसे हो ? उन्हें तो बिना मुकदमा चलाए ही क़ैद में रखा गया है।

चाहने भर से तो कोई अंग्रेजों के क़ैदखाने से निकल नहीं सकता है।

हाँ, निकला जा सकता है। अगर इच्छा है तो जरूर निकला जा सकता है। पहले भले न जानते हों पर अब सुभाष के लिए यह रहस्य अनजाना नहीं रह गया था। इसीलिए अपने बड़े भाई श्रद्धेय शरत बोस को गुप्तरूप से खबर भेजी—'विलम्ब किए बगैर बी० वी० के जतीश गुहा के माध्यम से परेश राय के साथ सम्पर्क स्थापित कीजिए और सब कुछ मालूम कर लीजिए।'

जतीश गुहा बी० वी० के विशेष व्यक्ति थे। दल का हर कोई उनका अच्छा परिचित था। लेकिन परेश राय ? यह कौन है ? इसका परिचय ही क्या है ?

एटम-युग के इतिहास में परेश राय जैसा एक विचित्र चरित्र तुम्हें और कहीं ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा, मल्लिका।

नाते-रिश्तेदार, मित्र-परिचित सभी उन्हें अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे। सभी को मालूम था वे स्पाई है या गुप्तचर। उनका एकमात्र पेशा है देशद्रोह।

परेश राय चुप, बिल्कुल मौन। इसके अलावा उपाय ही क्या था ? धन के बदले जो आदमी देशद्रोही हो सकता है, मुंह उठा कर बात कर सके, इतना साहस उसमें कहां ? खासतौर से इस युग में।

परन्तु ऐसा क्या सच है ? सचमुच ही क्या वे गुप्तचर हैं ?

मल्लिका, यह बात बिल्कुल गलत है, एकदम ही गलत। पार्टी के हित और प्रयोजन का ध्यान रख कर और अपने को सन्देह की दृष्टि से बचाने के लिए, दुनिया भर की घृणा बटोरता यही परेश राय नित्य असाध्य परिश्रम करता चल रहा है। इस बात से अवगत थे सिर्फ बी० वी० के दो-एक सर्वोच्च पदाधिकारी। और किसी के लिए यह जान सकना संभव भी न था।

असंभव को संभव में बदल डाला था परेश राय ने। पुलिस विभाग में एक श्वेतांग आई० सी० एस० अफसर को उन्होंने ऐसा जाल में फँसाया कि वह बेचारा टस से मस न हो सका।

अफसर बेहद शराबी था। तनख्वाह का पूरा रुपया चला जाता था शराब की दुकान में। फलस्वरूप महीने के सात दिन बीते नहीं कि जेब खाली। और इसी वजह से घर पर अशान्ति बनी रहती।

मौका देख कर आक्रमण करते थे परेश राय।

पीओ बेटा पीओ ! पेट भर कर पीओ ! नहीं पीओगे तो जिन्दा कैसे रहोगे ? रुपया ? नहीं-नहीं, मुझ ग़रीब के रहते रुपए की चिन्ता तुम मत करो। तुम सिर्फ पीते रहो।

लेकिन भई मैं ठहरा व्यापारी, नकद कारोबार वाला—इसीलिए 'विदाई' हाथों-हाथ पाना चाहता हूँ। ज्यादा कुछ नहीं, सिर्फ कभी-कभार एक-आध फाइलें ले जाया करूँगा।

न, न, डरने की कोई बात ही नहीं है। किसी के कानों में जूँ तक न रेंगेगी।

दो-एक दिन में फिर जहाँ का माल वहाँ ठीक से सजा कर रख दिया जाएगा। कहो, तैयार हो ?

तैयार न होता तो जाता कहाँ ? एक तरफ शराब की दुकान का बिल, दूसरी तरफ गृहस्थी। कोई मामूली खर्च तो था नहीं।

नतीजा वही हुआ जो होना था। पुलिस विभाग की एक-एक खबर बी० बी० के कार्यकर्त्ताओं को रटी पड़ी थीं। यहाँ तक कि कब, किसे, कैसे गिरफ्तार किया जाएगा, यह खबर भी उन्हें पहले से मालूम हो जाती।

सुभाष को शुरू-शुरू में विश्वास नहीं हुआ। पुलिस के दफ्तर से गुप्त फाइलें पार कर ले आना—यह तो असंभव बात है। वह भी एक अंग्रेज आई० सी० एस० अफसर के हाथों से। असंभव, ऐसा हो ही नहीं सकता है।

मन ही मन, यह सुन कर उस दिन हँसे थे उनके अत्यन्त प्रिय मित्र विप्लवी वीर सत्य बक्शी। उसके बाद ही एक दिन एक फाइल उन्होंने लाकर सुभाष को दिया।

'अब ? अब तो विश्वास करोगे ?'

अरे यह क्या ? सुभाष स्तब्ध रह गए। यह तो उनके अपने बारे में पुलिस की गुप्त रिपोर्ट है। यह फाइल यहाँ कैसे आई ? कौन ले आया ?

'और कौन लाएगा ? परेश राय लाए हैं। उनके अलावा और किसमें इतना साहस है ? दुनिया में परेश जैसे लोगों की जाति ही अलग होती हैं।'

खुश होकर उस दिन सुभाष ने एक मोटी रकम का प्रबन्ध कर दिया था। इस काम को तो चालू रखना ही है। जासूस पर जासूसी करते रहना होगा—यह ज़रूरी है।

सचमुच ज़रूरी था। ज़रूरी था, इसीलिए तो ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर पर सुभाष ने सदा के उपेक्षित उसी परेश राय को याद किया। जेल से उन्होंने निर्देश भेजा—'परेश राय के साथ सम्पर्क स्थापित कीजिए।'

खबर पाते ही परेश राय जा पहुँचे अपने हुजूर के दरबार में। 'कैसी तबियत है साहब ? अरे, सूख कर तो आप आधे हो गए हैं। कहावत है, पहले शरीर फिर दूसरी बात। शरीर ही अगर नष्ट हो गया तो रहा क्या ? खैर, एक काम की बात कहूँ।'

उठा-पटकी शुरू हुई। कुछ भी कहिए, अंग्रेज था। उस पर असली आई० सी० एस० अफसर। इस मामले में किसी हालत में मुँह खोलने को तैयार नहीं। परेश राय भी छोड़ने वाले नहीं। वे मुँह खुलवा कर ही रहेंगे। नहीं खोलेगा तो जायगा कहाँ ? तन्ख्वाह के रुपए तो खत्म किए बैठा है। हाथ तो इसी परेश राय के आगे फैलाना पड़ेगा।

हाथ फैलाना ही जब है तब शर्म हया छोड़ कर अभी क्यों नहीं फैलाते हो ? अच्छी खासी भेंट चढ़ेगी, यह तो समझ ही रहा हूँ।

अन्त में परेश राय की तरफ से एक मजेदार खबर मिली। सुभाष बाबू से कहिए बीमार पड़ जाएँ। और शरत बाबू से कहिए कि दो-एक दिन बाद उन्हें छोड़ देने

के लिए अर्जी दें। बस, उसी से काम बनेगा।

कैदखाने की चहरदीवारी भेद कर खबर अन्दर पहुँच गई। 'सुभाष, तुम्हें बीमार पड़ना होगा। इसके बाद जो करना होगा हम बाहर से करेंगे। तुम इधर से निश्चिन्त रहो।'

इस बीच, सुभाष जब जेल में थे, वे कानूनी सभा में बिना किसी विरोध के चुन लिए गए। तारीख २८ अक्टूबर थी। एक महीने बाद, २९ नवम्बर को सुबह नींद से जागते ही, सारा देश स्तब्ध रह गया, एक अद्भुत समाचार सुन कर।

मुक्ति का दावा करते हुए सुभाष ने अनशन शुरू कर दिया है। आमरण अनशन।

देश में इधर-उधर, सर्वत्र प्रतिवाद उठा। सुभाष को बिना मुकद्दमा चलाए, जेल में बन्द नहीं रख सकते। उन्हें तुरन्त छोड़ा जाए।

यही दावा श्रद्धेय शरत बाबू की आवाज़ में और भी जोरदार ढंग से निकला। सुभाष को मुक्त कर दो। इस तरह से उन्हें कैद रखना गैर-कानूनी है।

मुक्ति मिली ५ दिसम्बर को।

लगभग एक ही समय में और एक व्यक्ति को मुक्त किया गया। वह थे श्रीसत्य बक्शी जिन्हें बीमारी के नाम पर छोड़ा गया था।

अब शुरू हुआ सुभाष के जीवन का नया अध्याय। किसी के साथ नहीं मिलते। यहाँ तक कि घनिष्ठ साथियों से भी नहीं। कमरा बन्द करके साधना, भक्ति-भजन और धर्म-चर्चा में मगन रहने लगे।

भीतर ही भीतर लेकिन वह आग जल रही थी। जाना है—बहुत दूर जाना है। ऐसा मौका किसी भी तरह खोना ठीक नहीं।

लेकिन पहले के वह सारे सम्पर्क तो छिन्न-भिन्न हो चुके थे। कहाँ होगा वह दु:साहसी कार्यकर्ता भक्तराम ? इस विशाल भारतवर्ष के कोटि-कोटि लोगों में उसे कहाँ से ढूँढ़ निकाला जाए ?

कोई उपाय नहीं। फिर से नए सिरे से तैयारी करनी होगी।

सम्पर्क स्थापित किया गया, उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के फारवर्ड ब्लॉक के विशिष्ट नेता, पेशावर के अकबर शाह के साथ। वही एक बात। वही एक दावा।

एक विश्वासी आदमी चाहिए। ऐसा एक दु:साहसी व्यक्ति चाहिए जो उन्हें, हर खतरे को तुच्छ करके, सीमा पार करवा दे।

बड़ी खोज करने पर ऐसा व्यक्ति मिला। देख कर अकबर शाह खुश हुए। हाँ, आदमी सच्चा था। जिसे कहते हैं बिल्कुल उपयुक्त।

जानती हो मल्लिका ? इतना ढूँढ़ने के बाद अकबर शाह ने जिस उपयुक्त व्यक्ति का निर्वाचन किया, वह भक्तराम के अलावा और कोई नहीं। कैसी अद्भुत बात है न ?

वही एक बात भक्तराम के मुँह से निकली—'हाथी के दाँत और मर्द की बात। सुभाष बाबू शेर है। मैं वचन देता हूँ, मैं खुद उन्हें काबुल तक पहुँचा कर आऊँगा। मेरी जान हाजिर है।'

फिर नए सिरे से तैयारी शुरू हुई। भक्तराम के माध्यम से फिर कीर्ति किसान पार्टी सक्रिय हुई। इस विषय में हर तरह के सहयोग के लिए वे तैयार थे।

तैयारी बंगला देश में भी शुरू हुई। विशेष रूप से सत्य बाबू का तो कहना ही क्या था! कमजोर शरीर, फिर भी उसी हालत में जी-जान से मेहनत कर रहे थे। काम, काम सिर्फ काम। समय कम है—उससे पहले सारा काम खत्म कर लेना है।

उधर से भी तत्परता में कोई कमी न थी। कीर्ति किसान पार्टी के तीन कार्य-कर्ता कलकत्ता चले आए थे। आकर ठहरे थे भद्र लेन के एक पंजाबी होटल के चार नम्बर कमरे में। उद्देश्य था—इस मामले में सामना-सामनी बैठ कर कुछ आलोचनाएँ करना।

तुरन्त सत्य बाबू ने वहाँ बी० वी० के अत्यन्त विश्वासी और नेता विनय सेनगुप्ता को भेजा—'जाओ, बातचीत कर आओ। शुरू में ही कोड-वर्ड कहना न भूल जाना। लौट कर, जो हुआ, मुझे बताना।'

ठीक समय पर विनय बाबू निश्चित जगह पर जा पहुँचे। हिसाब में कोई गलती नहीं थी। अन्दर तीन ही आदमी थे। सभी पंजाबी।

'क्या चाहिए?' उनमें से एक ने पूछा।

'ब्लाक फारवर्ड', विनय बाबू ने पहले ही कोड-वर्ड का प्रयोग किया।

'आइए जी आइए।' तीनों ने बड़े आग्रह से बुलाया—'आइए, भीतर आइए। हम आप ही का इन्तजार कर रहे थे।'

बहुत बातें हुईं बन्द दरवाजे के पीछे। अन्त में यह तय हुआ, सात दिन बाद यहाँ से एक कोई लाहौर जाएगा। और उसी के ज़रिए भविष्य की कार्यवाही के विषय में विस्तारपूर्वक सूचित कर दिया जाएगा।

निश्चित दिन, दल का एक विश्वासी कार्यकर्ता लाहौर चला गया। गया छद्मवेश, छद्मनाम से। छद्म परिचय से। उनकी वेशभूषा ही निराली थी। ऐसा लग रहा था जैसे किसी ऊँचे घराने का रईस मुसलमान हो।

जाकर ठहरे वहाँ के एक साधारण मुसलमानी होटल में। ठहरना ही पड़ा। असली मुसलमान थे। ऐसे-वैसे होटल में ठहर कर बेवजह शक पैदा करने की ज़रूरत क्या है?

मुश्किल तो आ खड़ी हुई खाने की मेज़ पर। हाय भगवान्! यह तो रोटी और निषिद्ध गोश्त परसा गया है। अब क्या किया जाए?

एक मिनट के लिए झिझके, उसके बाद ही उन्होंने गोश्त की प्लेट अपने आगे खींच ली। संस्कार स्वाधीनता से बड़ा नहीं, अतएव निषिद्ध गोश्त खाने में हर्ज क्या है? वरना शक पैदा होना कोई ताज्जुब की बात नहीं।

दो-तीन दिन में ही वे बातचीत करके लौट गए। अच्छी खबर थी। कलकत्ता से काबुल तक जाने की सारी व्यवस्था हो चुकी थी। यहाँ तक कि दिन और तारीख भी निश्चित हो गयी थी। कीर्ति किसान पार्टी के सदस्यों में से कौन, कब कहाँ सुभाष को रिसीव करेगा और काबुल की सीमा तक पहुँचा देगा—यह भी पक्का हो चुका था। अब बस इन्तजार करना है।

इस बार सत्य बाबू के सामने एक समस्या उठ खड़ी हुई। सब से बड़ी समस्या। बहुत रुपया। हर तरफ से सम्पर्क बनाए रखने के लिए, हर अड्डा सुरक्षित रखने के लिए रुपयों की बेहद जरूरत है। कहाँ से इतना रुपया आएगा ?

जतीश गुहा, विनय सेनगुप्ता, कामाख्या राय वगैरह बी० वी० के नेताओं में जो जेल के बाहर थे, सत्य बाबू ने इन लोगों को बुला कर अपनी समस्या बताई।

रुपया चाहिए। एक-एक दिन छोड़ कर, कम से कम पाँच-पाँच सौ रुपया चाहिए। जैसे भी हो यह इन्तजाम तो करना ही होगा।

भयंकर समस्या थी। नाते-रिश्तेदार, परिचित, मित्र सभी मध्यवर्गीय। सभी की थोड़ी कमाई। रुपया कैसे मिले ? यह तो दो-दस रुपये की बात भी नहीं है।

अन्त में विनय बाबू जा पहुँचे विप्लवियों की नायिका उज्ज्वला मजुमदार के पास। 'जैसे भी हो तुम्हें कुछ रुपयों का प्रबन्ध करना ही है बहन।'

स्वाधीनता सग्राम के इतिहास में नारी की देन कुछ कम नहीं। कितनी मातायें, कितनी भाभियाँ और कितनी ही स्नेहमयी दीदियों ने इसी बंगला देश के भयंकर धैर्य-हीन लड़कों को उस दिन धैर्य बँधाते हुए, सहानुभूति दिखा कर, हर तरह की विपत्ति से बचा रखा था। इतिहास के पास भी इसका शायद ही सटीक ब्यौरा हो। घर-द्वार हीन, इन लड़कों के लिए उनकी छाती फटी है, परन्तु मुंह से उन्होंने कुछ नहीं कहा है।

इस बार भी अन्तर नहीं आया। तुरन्त उज्ज्वला मजुमदार अपनी अन्य सहकर्मिणियों, सुबाला सेन, उषा सेन जैसों के साथ जुट गईं। रुपया चाहिए। बहुत सा रुपया।

मिला, काफी आभूषण प्राप्त हुए। नारी की सबसे प्रिय वस्तु-आभूषण। अत्यन्त प्रिय इन आभूषणों को उन्होंने स्वेच्छा से देकर स्वाधीनता संग्राम के इस साहसिक प्रयास की राह प्रशस्त की। हे महान् विप्लवी....तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हो। तुम्हारी साधना सफल हो। तुम विजयी हो।

उज्ज्वला मजुमदार ! नाम बड़ा परिचित सा लग रहा है न मल्लिका ? हाँ, तुम्हारा अनुमान ठीक है। यही वह उज्ज्वला मजुमदार हैं जो कभी बंगाल के गर्वनर एन्डरसन को गोली मारने के अभियोग में दण्डित हुई थीं—आजीवन कारावास का दण्ड। अब है उज्ज्वला रक्षित।

बी० वी० के विशेष नेता कमेट दासगुप्ता उन दिनों नाथ बैंक में काम करते थे। उन्हीं की मदद से बैंक में आभूषणों को जमा रख कर काफी धन प्राप्त हुआ।

फिर भी स्थायी-रूप से समस्या हल न हो सकी। इस रुपये से कितने दिन काम

चलेगा ? यह तो देखते ही देखते खत्म हो जाएगा। उसके बाद काम कैसे होगा ?

अचानक ही विनय बाबू को एक विशेष व्यक्ति याद आ गए।

पंचा बाबू ! जमशेदपुर के वरिष्ठ इंजीनियर पंचा बाबू। सुभाष बाबू के मन ही मन बड़े भक्त थे। श्रद्धा भी खूब करते थे। उनकी बातों से यह बात कई बार स्पष्ट हो चुकी थी। उन्हीं के पास एक बार जाना चाहिये। जाकर देखने में हर्ज ही क्या है ?

सोचते ही सक्रिय हो उठे। तुरन्त विनय बाबू भागे जमशेदपुर। पंचा बाबू से मिले। रुपये चाहिए। 'एक दिन बाद पाँच-पाँच सौ रुपए। क्यों, किसलिए, वगैरह नहीं बता सकूँगा। वक्त आएगा तो खुद ही मालूम हो जायेगा। बस, इतना याद रखिएगा कि इस पर बहुत कुछ निर्भर है। कहिए, तैयार है ?'

'राजी ! राजी ! राजी।' खुशी से उछल कर हाथ मिलाया पंचा बाबू ने।

'पाँच सौ रुपए तो अभी ले जाइए। बाकी रुपयों के लिए अब यहाँ आने की जरूरत नहीं है। उस रुपए का इन्तजाम घर बैठे हो जाएगा।'

पंचा बाबू ने अपने वादे का अक्षरशः पालन किया था, मल्लिका ! जब तक उन्हें मना नहीं किया गया तब तक यथानियम वे पूर्व निश्चित पते पर पाँच-पाँच सौ रुपए भेजते चले गए थे। इस मामले में उनसे जरा सी भी गलती नहीं हुई थी। आज-कल वे राउलकेल्ला स्टील प्लान्ट से जुड़े हैं। अच्छा नाम शैलेशचरण दासगुप्ता है, परन्तु पंचा बाबू के नाम से ही हर जगह जाने जाते हैं।

इधर पर्दे के अन्तराल में रह कर काम करने वाले नेताओं में हलचल मच गई थी। अब कोई चिन्ता नहीं। रुपयों का प्रबन्ध हो गया है। अब आगे बढ़ो।

पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर भी यही पुकार गूँज रही थी—अब वक्त नहीं है, आगे बढ़ो, आगे चलो।

भक्तराम का कण्ठ-स्वर भी यही कह रहा था, 'होशियार, भाइयों होशियार ! तैयार हो जाओ। टाइम आ गया है।'

लोगों की आँखों से बच कर बैठे भले ही रहें, सुभाष जेल के लौह कपाट में बन्द अपने साथियों को नहीं भूले थे। 'बड़े दिन' के उपलक्ष में एक बड़ा भारी केक बनवा कर उन लोगों के लिए भिजवा दिया।

विदा ! मित्रों विदा ! कौन जाने फिर कब भेंट हो सके। भविष्य में फिर किसी दिन भेंट हो भी सकेगी या नहीं, यही कौन बता सकता है। फिर भी मैं तुम लोगों को नहीं भूलूंगा। कभी नहीं भूल सकूँगा।

अन्त में १९४१ साल की १७ जनवरी आ ही गई। यह दिन स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का अविस्मरणीय दिन है।

सुभाष तैयार। तैयार थे कॉमरेड भक्तराम भी। तैयार थे उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के फारवर्ड ब्लॉक के नेता पेशावर के अकबर शाह। और तैयार थे कीर्ति किसान पार्टी के कार्यकर्तागण।

तैयार थे सत्य बक्शी, जतीश गुहा, विनय सेनगुप्ता जैसे बी० वी० के सभी

प्रमुख नेता लोग। समय आ गया था....अब यात्रा शुरू होने वाली थी।

रात के एक बज कर पचीस मिनट हुए थे। पूरी एलगिन रोड पर सन्नाटा छाया था। जैसे सोयी हो। बत्ती नहीं। जन जीवन का नामोनिशान नहीं। कोलाहल नहीं। सिर्फ आकाश पर तारे टिमटिमा रहे थे।

धीरे-धीरे सुभाष उठ कर खड़े हो गए। अब निकल चलना चाहिए। समय नहीं है। पर यह कौन से सुभाष हैं ? विशालकाय बलिष्ठ एक पठान युवक के रूप ने इतने दिनों के परिचित सुभाष को आत्मसात् कर लिया था। लगा, कोई अलग ही व्यक्ति हो। पहचानना कठिन था।

अब सुभाष को जाना है। इस घर का कोना-कोना उन्हें कितना प्रिय है। दिन रात की कितनी स्मृतियों से जुड़ा यह कमरा। जीवन के मुग्ध क्षण जहाँ बीते थे, उन्हें छोड़ कर आज जाना है। बहुत बड़ा कर्त्तव्य बुला रहा है, प्रेरणा प्रदान कर रहा है.... इस पुकार को सुन कर टाला नहीं जा सकता।

क्षण भर की बात। उसके बाद ही सुभाष दबे पाँव नीचे उतर गए। किसी तरफ नज़र नहीं डाली। इस समय पीछे देखने का मौका नहीं था....सामने था कठिन कठोर लड़ाई का दिन....जो उनके जीवन का एकमात्र सत्य है। एकमात्र लक्ष्य।

रात्रि की स्तब्धता भेदती अचानक एक प्राइवेट कार एलगिन रोड वाले घर से तीर की तरह निकल गई। धीरे-धीरे, छोटी होते-होते बिल्कुल ही विलीन हो गई.... कुहासे से ढँके अंधकार में। फिर उसे कोई न देख सका।

रात को एक बज कर पैंतीस मिनट हुए थे।

जन-जीवन-शून्य रास्ता। आस-पास एक जीवित प्राणी भी नहीं....सिर्फ थोड़ी दूर पर मान्यूमेंट खड़ा था रात के सजग प्रहरी-सा....चुपचाप...स्पन्दनरहित।

कार में केवल दो प्राणी थे...एक ड्राइवर और एक सुभाष। दोनों चुप। सारी बातें, सारे उत्तर मानो उसी रात के अंधेरे में खो गए थे।

हावड़ा...बेलूड़....बाली....उत्तरपाड़ा....चन्दननगर....मजबूती से स्टीयरिंग ह्वील पकड़े बैठा था ड्राइवर। सिर पर इतने बड़े कर्त्तव्य की जिम्मेदारी। सुभाष न केवल उसके 'रांगा काकू' थे, भारत के लाखों करोड़ों पीड़ित, अत्याचार से जर्जर-प्राय मनुष्यों की आशा के एकमात्र प्रतीक भी थे। पुलिस की नज़र बचा कर, जैसे भी हो सके, उन्हें निश्चित स्थान पर पहुँचाना ही होगा।

अन्दर सुभाष। अधमुंदी पलकों के नीचे उनके स्वप्नों की तरंगें उठ रही थीं। स्वप्न....स्वप्न....भविष्य के कर्म-जीवन के उज्ज्वल स्वप्न—

लेफ्ट राइट....लेफ्ट राइट...लेफ्ट !....लय के साथ कदम उठ रहे थे। आगे बढ़ते जा रहे थे भारतीय सैनिक।....भारत की निजी सेना वाहिनी। आगे बढ़ रहे थे हजारों-हजारों मुक्ति की कामना करते तरुण-दल।.......चली हैं नारियाँ....नारी वाहिनी।

उनके होठों पर थे गीत....माँ की जंजीर तोड़ने की प्रतिज्ञा। स्वाधीनता पर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है....हम स्वाधीन होना चाहते हैं।

ब....बम्....म् म् म्। ब-म्....मूम्।

विस्फोट के साथ-साथ छिन्न-भिन्न हो रहे थे साम्राज्यवादी शक्ति-सम्पन्न अड्डे। फट-फट कर गिर रहे थे उनके गर्व और स्पर्धा के प्रतीक यूनियन जैक। उसकी जगह पर, लाल क़िले की चोटी पर फहरा रहा था स्वाधीन भारत का तिरंगा झण्डा।

अनजाने में आँखों के सामने दिव्य ज्योति के घेरे में एक वीर पुरुष का चित्र आ गया। विवेकानन्द। वीरेश्वर विवेकानन्द।

'स्वामीजी, मुझे शक्ति दीजिए। इस गुरुत्वपूर्ण दायित्व को हँसते हँसते निभा सकूँ, ऐसी शक्ति दीजिए। आशीर्वाद दीजिये।'

चूँचूड़ा....बैन्डेल....शक्तिगढ़....वर्धमान....आसनसोल....बराकर ब्रिज....

अचानक कुछ देख कर कार का ड्राइवर सजग हो उठा। तुरन्त स्पीडो मीटर की सूई थर-थर काँपने लगी...स्पीड और स्पीड।

पूरब की ओर आकाश में लाली छाने लगी। अंधेरा धुँधला पड़ने लगा। धीरे-धीरे। अब देर नहीं। भोर होने से पहले निदृष्ट स्थान पर पहुँच जाना है।

कितनी भी पठान की पोशाक क्यों न पहने हों, सुभाष सुभाष ही थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। उनका रूप अतुलनीय था। ऐसा दिल छीन लेने वाला रूप क्या सिर्फ दाढ़ी मूँछों से छिपाया जा सकता है? या क्या यह संभव ही है?

अन्त में कार रुकी, धानबाद के पास एक बंगले के सामने। आज यहीं रुकना पड़ेगा। यात्रा पुनः शुरू होगी सूर्य अस्त हो जाने के बाद। सुभाष को सामने वाले कमरे में ठहराया गया। वहीं पर खाने-पीने की व्यवस्था की गई।

उपाय भी नहीं था! वे इन्श्योरेन्स कम्पनी के एक शिक्षित एजेन्ट भले ही हों, हैं तो एक अनजाने तरुण पठान ही। जान-बूझ कर उन्हें घर के अन्दर कौन रखेगा?

असली पठान! बिल्कुल असली। न बंगला भाषा बोल सकते हैं, न समझ सकते हैं। इसीलिए जितनी भी बातचीत हुई अंग्रेजी में हुई। ज्यादातर इन्श्योरेन्स सम्बन्धी बातें हुईं।

बंगला बावर्ची और बैरों से भरा था। कौन जाने किसके मन में क्या है? इसीलिए सावधानी भी जरूरी थी।

गोमो जंक्शन! एक ओर ऊँची पहाड़ियों की कतारें। नीचे से लहराती चली गई थीं दूर तक रेल की पटरियाँ।

काफी रात थी। पृथ्वी अंधकार में डूबी थी। कभी-कभार एक-आध पक्षी

बोल उठता, अन्यथा कहीं से सूई गिरने तक की आवाज नहीं आ रही थी।

काफी दूर पर, अंधेरे में, एक प्राइवेट कार खड़ी है। अन्दर कुल चार लोग हैं। उनमें एक महिला भी हैं।

हावड़ा से आने वाली दिल्ली कालका मेल के आने में अभी देर थी। लगा घंटे भर और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

सुतप्राय गोमो स्टेशन आधी रात में जाग उठा।

सिग्नल डाउन हुआ। अब रेल आने वाली है।

धीरे-धीरे वह प्राइवेट कार स्टेशन की ओर बढ़ चली। समय निकट आया। सुभाष अब विदा लेंगे। विदा करना है।

क्षण भर में सुभाष तैयार हो गये। इधर-उधर एक बार सतर्क दृष्टि डालने के बाद उतरे और दूसरे ही क्षण दृढ़ कदमों से प्लैटफार्म की तरफ बढ़ चले।

'विदा ! तुम लोग वापस चले जाओ।'

रात के अंधेरे में तीनों प्राणी निष्प्राण निश्चल बैठे देखते रह गए, धीरे-धीरे अदृश्य होते सुभाष के बलिष्ठ शरीर को।

सुभाष चले जा रहे थे। ग्रीष्म, वसन्त के कितने अनमोल दिन, हँसी-खुशी और दुःख के मोतियों से पिरोये वे दिन—सभी को पीछे छोड़ कर सुभाष आज चले जा रहे हैं। भारत को स्वाधीन करने का स्वप्न साकार करना चाहते हैं वे।

वह देखो, ट्रेन सुभाष को ले कर चली जा रही है। ट्रेन की पीछे की लाल बत्ती भी धीरे-धीरे खोती जा रही है।

'हे सर्वत्यागी संन्यासी, आँखों में आए आँसुओं से हम तुम्हारी राह में कीचड़ नहीं होने देंगे।

'तुम जाओ। तुम्हारी यात्रा शुभ हो। तुम अपना व्रत पूर्ण करके फिर लौट आना। लौटना विजयीवेश में। तब-तक समुद्र, हिमालय तुम्हारी राह देखेगा। तुम सफल होवो।'

सुभाष के रहस्यपूर्ण अन्तर्ध्यान की अब तक जो बातें मैंने तुम्हें बताई हैं, उनमें से एक भी बात मनगढ़न्त नहीं है, मल्लिका। तुममें से बहुतों ने सुभाष को देखा होगा छात्रनेता के रूप में। मेयर, राष्ट्रपति, फारवर्ड ब्लॉक के नेताओं जैसी विभिन्न भूमिकाओं में।

लेकिन क्या कभी किसी के सामने न झुकने वाले विद्रोही सुभाष को देखा है ?

जरूर न देखा होगा। सिर्फ तुम ही क्यों ? अंतरंग मित्रों के रूप में जो जाने जाते हैं, उनमें से कितनों को मौक़ा मिला होगा यह देखने का कि उनके विप्लवी जीवन की कार्यप्रणाली क्या है ?

देखा था त्रैलोक्य चक्रवर्ती (महाराज) ने, रवि सेन, भूपेन्द्र कुमार दत्त, अरुण

गुहा, पूर्ण दास, अनिल राय और लीला राय ने जो उन दिनों विभिन्न दलों में प्रथम श्रेणी के विप्लवी नेता थे। खास तौर से हेमचन्द्र घोष, सत्यरंजन बक्शी, मेजर सत्य गुप्त, मनीन्द्र किशोर राय जैसे प्रमुख बी० वी० के कार्यकर्ताओं ने।

यह बी० वी० उस दिन उनके अन्तर्ध्यान होने के मामले में घनिष्ठ रूप से जुड़ी थी। इसके लिए काफ़ी क़ीमत भी चुकानी पड़ी थी। देनी पड़ गयी थी प्राणों से भरपूर अमूल्य कई जीवन की बलि।

सुभाष के रहस्यमय अन्तर्ध्यान के सम्बन्ध में, आज तुमसे जो कुछ भी बता रहा हूँ उसकी रचना हुई है उन्हीं लोगों की ऐतिहासिक रिपोर्ट के आधार पर, जो इस विषय से जुड़े थे। मैंने कोई काल्पनिक कहानी नहीं शुरू की है। खैर, पिछले प्रसंग पर वापस चलता हूँ।

गोमो जंक्शन। तीनों जन सुभाष को विदा कर, भारी मन लिए वापस आए। लौट आये खाली घर में। रिक्त मन लिये। उनका कर्त्तव्य यहीं समाप्त हो गया। भगवान् की असीम करुणा थी कि इस मामले में उन्हें किसी बड़ी भारी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा।

ये तीनों थे कौन ? किसने उस दिन सुभाष को कार पर इतना लम्बा सफर तय कराया था ? उनका परिचय क्या है ?

शिशिर बोस। सुभाष के भतीजे डाक्टर शिशिर बोस। वे ही उस दिन सुभाष के ड्राइवर थे।

इस बारे में, बाद में शिशिर बाबू ने जो कुछ कहा था, यहाँ हू-ब-हू लिख रहा हूँ—

'अनशन शुरू करने के बाद नेताजी को मुक्त कर दिया गया। मुक्तिलाभ करते ही उनकी यात्रा की तैयारी होने लगी। १६४१ साल की १७ जनवरी को रात एक बज कर पचीस मिनट पर हम एक कार द्वारा सचमुच ही निकल पड़ने में सफल हो गये। मैं और नेताजी—ये ही थे उस कार की सवारी। नेताजी पश्चिमी मुसलमान की वेश-भूषा में सुसज्जित होने के बाद, एक अटैची, बिस्तर और सूटकेस साथ लेकर तैयार हुए।

'एलगिन रोड से यात्रा शुरू करके, कलकत्ता शहर पीछे छोड़ते हुए, ग्रैन्ड ट्रंक रोड से हमारी कार तीव्रगति से भागती चली। सारी रात चलने के बाद प्रातःकाल हम एक जगह जा कर छिप गए।

शाम पार होते ही फिर यात्रा शुरू की। आधी रात के क़रीब, हम कलकत्ते से लगभग दो सौ मील दूर, गोमो पहुँचे। यह दिन १६४१ की १८ जनवरी थी।

'रात खत्म होने से पहले नेताजी ट्रेन द्वारा उत्तरी भारत के लिए रवाना हो गए। स्टेशन पर उनसे हमने विदा ली।'

शिशिर बाबू का कथन यहीं खत्म हो गया। फिर भी एक सवाल रह ही जाता है। उन्होंने कहा था, 'प्रातः काल हम एक जगह छिप गए।'

यह जगह कहाँ है ? किसमें घर में ? गोमो जंकशन पर उनके साथ और दो

लोग थे। वे कौन थे ?

इन प्रश्नों का उत्तर है अगले वर्णन में। यह बयान दिया है श्रद्धेय शरतचन्द्र बोस के बड़े पुत्र श्री अशोक बोस ने। उन्होंने कहा है—

'On the 18th. January, 1941, at about 6 0'clock in the morning as my wife and I were preparing to sit down for breakfast (at Bararee, Dhanbad), we found my brother Dr. Sisir Bose, driving into the banglow in one of my father's cars. He told me that he brought Netaji in disguise out of Calcutta.

In the evening he (dressed as a Pathan) apparently took leave of us and left the banglow on foot ostensibly to catch a taxi at the nearest stand. The three of us, my brother, my wife and myself, then set out in the car after half an hour's interval and picked him up on the way. We drove along the Grand Trunk road towards Gomoh.

Near about Gomoh, we stopped on the lonely roadside for an hour or so, as the train was not due to arrive at Gomoh before midnight, for a quite homely chat.

As the time of arrival of the (Delhi-Kalka Mail) train was drawing near, we started for station and on arrival there quickly put him down and drove half a mile or so away from the station and waited for another half an hour after the departure of the train. Having satisfied ourselves that he had boarded the train safely, we then drove back to Dhanbad...'

तेज रफ्तार से भागती ट्रेन और व्याकुल मन के बीच होड़ लगी थी। पीछे छूटते जा रहे थे एक के बाद एक गाँव, शहर, नगर और अंधेरे में ढँकी पहाड़ियाँ, उनके नीचे हरा-भरा मैदान।

भीतर अपनी जगह पर स्तब्धप्राय बैठे थे सुभाष। उनके चेहरे पर दृढ़ संकल्प की छाप थी। संग्राम शुरू हो गया है। स्वाधीनता का संग्राम।

अब पीछे लौट कर देखने का समय नहीं। हिसाब-किताब के लिए भी समय नहीं है। मृत्यु को दाँव पर लगा कर अब जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हें लड़ना होगा।

या तो किनारा मिलेगा, या समाधि, इसके अलावा तो कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा है।

स्वाधीनता भिक्षा माँगने से नहीं मिलती है। उसके लिए उसके योग्य [illegible] चुकानी पड़ती है।

ऐसी क़ीमत कितनों ने चुकाई है ? खुदीराम, प्रफुल्ल चाकी, कानाईलाल, सत्येन बोस, चारू बोस, वीरेन दासगुप्ता, जतीन्द्रनाथ, चित्तप्रिय, भगतसिंह, नीरेन, मनोरंजन, गोपीनाथ, प्रमोद, अनन्तहरि, विनय, बादल, दिनेश, अशफाकुल्ला, प्रद्योत, रामकृष्ण, सूर्यसेन, तारकेश्वर, प्रीतिलता, अनाथ, मृगेन, निर्मल, नवजीवन, रामकृष्ण राय, बृजकिशोर, दिनेश मजुमदार, भवानी, कालीपद, मोती मल्लिक....जैसे और भी अनेकों ने।

जीवन का एकमात्र लक्ष्य है—स्वाधीनता। उसी स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए उन्हें भी अगर वैसा ही मूल्य चुकाना पड़े तो इसके लिए वे तैयार हैं। फिर भी इस बार के युद्ध ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जो बेजोड़ अवसर प्रदान किया है, उसे वे किसी क़ीमत पर खोने को तैयार नहीं।

इसी तरह बैठे-बैठे कई घंटे बीत गए। सुभाष स्थिर, शान्त। आँखों में नींद का नामोनिशान नहीं। पलकें झपकतीं, पर नींद नहीं आती। आती हैं तो सिर्फ तरह-तरह की चिन्तायें।

कौन जाने कलकत्ते की क्या खबर है। यह खबर पुलिस को भी मालूम हो गई है या नहीं, कौन बताएगा ?

अभी न सही, यह खबर देर-सबेर उन्हें मिल ही जाएगी। इससे पहले ही उन्हें सारी दीवारें फाँद कर बहुत दूर चला जाना है....उनकी पहुँच के बाहर।

एकाएक सुभाष की अलसाई दृष्टि सजग हो उठी। किसी स्टेशन पर ट्रेन रुकी थी। एक टिकट चेकर धीरे-धीरे इधर ही बढ़ता चला आ रहा था। और पास।

सुभाष तुरन्त हाथ में लिए अखबार की आड़ में हो गए। यह रास्ता और भी कठोर है। यहाँ जीवन-मृत्यु अगल-बगल बैठी है। हर मोड़ पर सर्वनाश और पतन, डेरा डाले बैठे हैं। बचने के लिए हर क्षण का मुकाबला करना पड़ेगा।

हालाँकि वे मृत्यु से नहीं डरते। मृत्यु तो एक तूफान है, आँधी है। कब किधर से आ जाए, किसी को पता नहीं, परन्तु वे डरपोक या भीरु की मौत मरना नहीं चाहते। पहले देश को मुक्त करेंगे फिर दूसरी बात।

चेकर के हटते ही सुभाष ने अपने सामने से अखबार हटाया। चलो, थोड़ी देर के लिए निश्चिन्त हुए। लेकिन हर क्षण सतर्क रहना होगा। चारों ओर फैले हैं हिंसक, भूखे भेड़िए। ऐसी हालत में हर वक्त आँख-कान खुले रहने जरूरी हैं।

फिर बाधा। इस बार डिब्बे में घुसे एक सम्भ्रान्त सिक्ख सज्जन। वे भी बड़ी दूर जाएँगे।

सुभाष शंकित हुए। वे महाशय बिल्कुल सामने की सीट पर आकर बैठे। इनकी आँखें कहीं छद्मवेश को पकड़ न लें ?

पर नहीं, आशंका निर्मूल थी। पहचान नहीं सके। किसी तरह का शक तक नहीं हुआ। शक करना संभव भी नहीं था। साधारण आदमी तो दूर की बात थी, कुशल डिटेक्टिव तक सुभाष के उस रूप पर सन्देह न करता। क्योंकि इस सुभाष और उस सुभाष बहुत फर्क था।

शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा पहन रखा था। सिर पर साफा। चेहरा घनी दाढ़ी में छिपा। देखते ही लगता, कोई पक्का मौलवी है।

'आप कहाँ तक जाएँगे साहब ?' सहज अंतरंग भाव से अचानक सरदार जी ने पूछा।

'मैं ?' विशुद्ध उर्दू ज़ुबान में सुभाष ने जवाब दिया, 'मैं जाऊँगा रावलपिण्डी।'

'आप वहीं रहते हैं ?'

'नहीं, मैं लखनऊ का रहने वाला हूँ। मेरा पेशा है इन्श्योरेंस आर्गेनाइज़र का। इसीलिए पेशे की ख़ातिर कभी-कभी इधर-उधर जाना पड़ जाता है।'

'आपका नाम ?'

'ज़ियाउद्दीन। मौलवी ज़ियाउद्दीन।'

ऐसी ही बहुत सी बातें। अनेकों प्रश्न। लगभग सारे दिन चलता रहा। पर सिर्फ बातें ही हुईं। जिसके पीछे सरल अंतरंगता के अलावा और कुछ नहीं था। साधारण सा आभास भी नहीं।

इस बीच, उधर कीर्ति किसान पार्टी में हलचल मची थी। सुभाष बाबू चल दिए हैं। सभी चौकन्ने रहो, होशियार रहो। देखना, कहीं किसी तरह की गड़बड़ी पैदा न हो।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रदेश से फारवर्ड ब्लॉक के नेता, पेशावर के अकबर शाह की व्यस्तता देखते बनती थी। सुभाष बाबू आ रहे हैं। लाइन क्लीयर रखो। दुश्मन पर नज़र रखो। हर तरह का झूठा झमेला ख़त्म कर दो।

और सीमान्त प्रदेश के सजग प्रहरी भक्तराम का तो कहना ही क्या था। उपजातीय इलाकों में हुंकार सुनाई पड़ रही थी, 'होशियार, भाइयों होशियार! शेर आ गया! तुम सब हथियार लेकर तैयार हो जाओ। जान हाज़िर कर दो।'

पेशावर का सिटी स्टेशन! ट्रेन के आने का वक्त हो गया था। सिग्नल डाउन था।

प्लेटफॉर्म के एक कोने में, जहाँ तक हो सकता था, अपने को छिपाते हुए, खड़े थे फारवर्ड ब्लॉक के नेता अकबर शाह। इसी ट्रेन से सुभाष बाबू आएँगे। बंगाल का शेर सुभाष बोस!

बाहर से शान्त दिखाई पड़ने पर भी भीतर ही भीतर अकबर शाह के मन में आँधी चल रही थी। भयंकर आँधी।

उस समय समस्त योरोपव्यापी भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ था। स्वाभाविक था कि इस समय फ्रन्टीयर अत्यन्त सुरक्षित हो। अत्यन्त सतर्क। उनकी नज़र बचा कर सुभाष बाबू को क्या, आसानी से हटाया जा सकेगा?

ख़ुदा मेहरबान है। कौन जाने उसके मन में क्या है?

देखते ही देखते स्टेशन में चहल-पहल बढ़ने लगी। ट्रेन 'इन' कर रही थी। उसके बाद शुरू हुआ मुसाफिरों का चढ़ना-उतरना।

झट सामने एक डिब्बे में अकबर शाह चढ़ गए। सुभाष बाबू यहाँ नहीं उतरेंगे। पूर्व सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अगले स्टेशन, पेशावर कैन्टूनमेंट में उतारा जाएगा।

वे कहाँ हैं, किस श्रेणी के डिब्बे में, किस नम्बर के डिब्बे में हैं, यह जानने की जरूरत नहीं थी। इसी बीच इन बातों की रिपोर्ट उन्हें मिल चुकी थी। अतएव व्यर्थ ही व्यस्त होने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

कुछ ही मिनटों में पेशावर कैन्टूनमेंट भी आ गया। लम्बा रास्ता तय करने के बाद अब यात्रा स्थगित होगी।

सबसे पहले उतरे अकबर शाह। उसके बाद ही बड़े सादे-सीधे ढंग से वे गेट की तरफ चलने लगे।

जरूरत क्या है बेकार के लिए परेशानी जाहिर करने की? सुभाष बाबू उनके पीछे-पीछे अपने आप ही चले आएँगे, यही तय भी हो चुका था।

गेट पार कर रास्ता पकड़ा अकबर शाह ने।

इधर-उधर कुछ तरुण पठान भी खड़े या चलते-फिरते नजर आ रहे थे। अकबर शाह को देखते ही उन सब ने आँखों ही आँखों में इशारा किया। होशियार! आज बंगाल के शेर सुभाष हमारे सम्मानित अतिथि हैं। उनका अगर बाल भी बाँका हुआ तो शर्म से न सिर्फ हमारा-तुम्हारा सिर झुकेगा, बल्कि समस्त पठान जाति का सिर झुक जायेगा। इसलिए सावधान! हथियार तैयार रखो!

कहीं कोई भूल-चूक नहीं हुई। सचमुच ही पठानरूपी सुभाष, सीना ताने मस्ती से चलते हुए बाहर निकल आये। उसके बाद ही किसी तरफ देखे बगैर एक ताँगे पर चढ़ बैठे।

पलक झपकने भर की बात होगी, दूसरे ही क्षण टाँगा हवा से बातें करता, यह जा—वह जा। सुभाष को लेकर मानो उड़ गया। खैर, कुछ पूछना क्या? ताँगेवाला भली प्रकार से जानता था कि उसे जाना कहाँ है।

एक दूसरे ताँगे पर सवार अकबर शाह उनका अनुसरण करते रहे। उनका मन खुशी से भरा, डगमगा रहा था। आह! भयंकर तृप्ति से मन प्राण भर उठा था।

सच, खुदा मेहरबान है। किसी मुसीबत का सामना नहीं हुआ। खुदा की मर्जी रही तो बाक़ी काम भी ऐसी ही आसानी से पूरे हो जाएँगे। फिर कैसी चिन्ता?

ताँगा ताजमहल होटल के सामने आ कर रुका। अब उतरना है। फिलहाल सुभाष के ठहरने का इन्तजाम यहीं किया गया है।

ताँगे से उतर कर, सुभाष होटल में ऐसे दाखिल हुए जैसे पहले भी आ चुके हों। कहाँ, किधर या किस कमरे में, कुछ पूछने की जरूरत कहाँ पड़ी? उन्हें सारी बातें कंठस्थ थीं।

परन्तु अकबर शाह नहीं उतरे। वे अपने ताँगे से एक विशेष ठिकाने पर आ

पहुँचे। सुभाष बाबू निर्विघ्न पहुँच गये हैं, यह खबर कर देना जरूरी है।

शायद ही एक घंटा बीता होगा। एकाएक बाहर किसी मृदु परन्तु सतर्क खट्-खट् की आवाज सुनाई पड़ी—खट्-खट्-खट्-खट्!

दरवाजा खुलते ही कमरे में प्रवेश किया एक बलवान पठान ने। दीर्घ क़द-काठी का, रूपवान युवक। तीक्ष्ण दृष्टि उसके बुद्धिमान होने की परिचायक थी।

सुभाष की आँखों और हाव-भाव में आश्चर्य मिश्रित प्रश्न जागा। कौन है यह युवक? उसका परिचय क्या है?

'मेरा नाम अब्दुल मजीद खाँ है।' युवक हँसा, 'मेरे बड़े भाई अब्दुल क़ीम खाँ को तो आप पहचानते ही हैं। वे यहाँ के मुस्लिम लीग के नेता हैं।'

मुस्लिम लीग! क्षण भर में सुभाष चौंकन्ने हो उठे। मामला क्या है? क्या कहना चाहता है? 'पर मैं अकबर शाह की पार्टी का आदमी हूँ।' युवक वैसे ही हँसा—'उन्हों ने ही मुझे आपके पास भेजा है। कहा है—सब ठीक है। कल भोर होने तक आपको यहाँ से हटा दिया जायेगा, आप तैयार रहियेगा। मैं इस वक्त जा रहा हूँ। लौट कर अकबार शाह को रिपोर्ट दूँगा। आदाब!'

जैसा कि तय था, दूसरे दिन सुबह होटल से सुभाष को हटा लिया गया। एक गुप्त डेरे में वे पहुँचा दिये गये।

लेकिन जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक उन्हें काबुल पहुँचाने की सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले ली है, वे दुस्साहसी कार्यकर्ता कामरेड भक्तराम कहाँ गये? एक बार उनसे मिलना बहुत जरूरी था।

भेंट हुई २१ जनवरी की शाम को ठीक चार बजे। किस क़दर खुश थे भक्तराम। हाय! हाय! ये आ गया शेर! सब तैयार है। बस हुक्म की इन्तजारी है। जान हाजिर है।

फिर भी देर हुई। अच्छी-भली देर हो गई।

कारण था। इस बीच कीर्ति किसान पार्टी की तरफ से, उनके पूर्व निश्चित प्रोग्राम में कुछ अदला-बदली हुई थी। तय हुआ था—अब सुभाष दूसरे एक रास्ते से जाएँगे। जो रास्ता चुना गया था उससे नहीं।

यह रास्ता जितना दुर्गम है उतना ही विपत्तियों से भरपूर। फिर भी उपाय न था। खजूरी मैदान से होते हुए अफ्रीदी इलाक़े के भीतर से 'शिनवारी' पार करके जाया जायेगा तो दूरी बहुत कम हो जायेगी। इसलिए हर बात पर विचार करने के बाद यह झंझट मोल लेना ही उचित होगा, निश्चय हुआ।

अब भक्तराम मुश्किल में पड़ गये। पहले वाले रास्ते की मामूली से मामूली बात उन्हें अँगुलियों पर याद थी, लेकिन इस रास्ते की उन्हें इतनी जानकारी नहीं। इसलिए अब चाहिये एक अच्छा गाइड भी। गाइड के बिना इस अनजाने, अनदेखे रास्ते पर एक कदम भी चलना मुश्किल था।

सुभाष का मन भी समर्थन नहीं कर रहा था। इस बीच उनके गायब होने का

पता कहीं पुलिस को न लग चुका हो ! न भी पता चला होगा तो दो-तीन दिन में चल हीं जायेगा। और तुरन्त ही वे उनके काम में गतिरोध करने पर तत्पर हो जाएँगे, इसमें क्या शक है ? इसलिए देर न करना ही ठीक होगा।

ऐसा ही एक दिन। काफी रात थी। एकाएक कुछ सुन कर भयानक रूप से चौंक पड़े सुभाष। दूर से कुछ लोगों की आवाजें सुनाई पड़ रही थीं—'पकड़ो ! पकड़ो !'

सुनते ही तुरन्त सुभाष ने दौड़ना शुरू किया, आगा-पीछा देखे बगैर। इस वक्त किसी हालत में पकड़ में नहीं आना है। बन्दी होना मतलब स्वाधीनता संग्राम के कार्य-क्रम का पिछड़ जाना। जान रहते वे ऐसा नहीं होने देंगे।

फिर भी छुटकारा नहीं। पीछे-पीछे दौड़ते चले आ रहे थे, वे भूखे भेड़िये, जो यही चिल्ला रहे थे—'पकड़ो ! पकड़ो ! यह भाग रहा है ! इसे पकड़ो !'

अचानक एक झटका खाकर नींद खुल गई। स्वप्न था। इतनी देर से नींद में सपना देख रहे थे।

परन्तु यह अगर सपना न होता ? अगर उनका पता करती हुई आज पुलिस यहाँ तक आ पहुँचती ?

नहीं, अब देर करना ठीक नहीं। जैसे भी हो, किसी भी कीमत पर, एक विश्वासी गाइड का प्रबन्ध करना ही होगा। अविलम्ब। इस तरह से खतरा मोल लेना ठीक नहीं।

गाइड २५ जनवरी की शाम को मिल पाया। तुरन्त फिर तैयारियाँ शुरू हो गईं। अब देर नहीं। यात्रा शुरू होगी आगामी कल—२६ जनवरी की रात में—अंतिम प्रहर में।...स्वाधीनता दिवस का पुनीत लग्न है वह।

सन् १६४१। २६ जनवरी का दिन।

भारत के कोने-कोने में नवजीवन की पुकार गूँज उठी थी। हर कोई शपथ ग्रहण कर रहा था। आज स्वाधीनता दिवस है। हमें स्वाधीनता चाहिये।

और कैसा आश्चर्यजनक संयोग था ? सुभाष ने इसी स्वाधीनता दिवस के पावन लग्न में पेशावर का त्याग किया। उन्होंने दुर्गम पहाड़ी रास्ते की तरफ कदम बढ़ाया।

सामने था खूंखार उपजातीय इलाका। यहाँ जीवन-मृत्यु का निवास बगल-बगल रहता है। किसी भी क्षण कोई भी दुर्घटना घटित होनी संभव है। फिर भी इस विषय में वे स्थिर हैं। उनका संकल्प दृढ़ है।

स्वाधीनता कोई बच्चों का खिलौना नहीं। हाथ बढ़ाते ही नहीं मिलती है। इसको प्राप्त करने के लिए चाहिये शक्ति। चाहिये संग्राम। चाहिये व्यापक प्रस्तुति। उसी प्रस्तुति, उसी तैयारी के लिए आज उनका बाहर जाना जरूरी है।

तब तक रात का अंधेरा बाकी था। धीरे-धीरे पूरब की ओर आकाश साफ हो रहा था।

शुरू हुई ऐतिहासिक यात्रा।

कार में केवल पाँच यात्री। सुभाष, कामरेड भक्तराम, गाइड, आबाद खाँ और एक ड्राइवर।

पेशावर के मिलिट्री कैम्प के बगल से होते हुए कार धीरे-धीरे शहर की सीमा पार कर काफी दूर निकल गई। लक्ष्य था—ग्यारह मील दूर स्थित 'खजूरी मैदान।'

चारों तरफ ऊबड़-खाबड़ मैदानी हिस्सा, बीच में से टेढ़ी तिरछी बल खाती चली जा रही है पहाड़ी सड़क।

रास्ते के दोनों ओर विभिन्न प्रकार की जंगली घास उगी हुई थी। कहीं-कहीं पर बेतरतीबी से पड़े थे बड़े-बड़े पत्थर। बहुत दूर, आकाश को छूता, एक-एक पहाड़ सिर उठाये खड़ा था। तब तक वे भी नहीं जागे थे।

पूरब के आकाश पर नये दिन का नया सूरज चमक उठा। लगा प्रकृति के सीने पर किसी ने मुट्ठी भर-भर कर रंग डाल दिया है।

कार आकर खजूरी मैदान में रुकी। यहीं विदा लेंगे ड्राइवर और आबाद खाँ। अब शुरू होगी पदयात्रा।

सामने एक दूसरे से सटे खड़े थे दो ऊँचे पहाड़ और उन्हीं के बीच से चली जा रही थी ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ सड़क।

गाइड का निर्देश पा कर सुभाष भक्तराम को साथ ले कर आगे बढ़े।

'विदा ! मित्रों विदा ! अब कार लेकर तुम लोग पेशावर लौट जाओ। अकबर शाह से मेरी बात कह देना। उन्हें मेरी तरफ से बहुत-बहुत धन्यवाद कहना।'

शुरू हुई ऊँचे-नीचे रास्ते की आँख-मिचौली। कभी रास्ता ऊपर उठता, कभी नीचे उतरता। दोनों तरफ खड़े पहाड़ की ऊँची दीवार और उसी के बीच से यह खतरनाक रास्ता।

सबसे आगे चल रहा था गाइड। बीच में सुभाष और ठीक उन्हीं के पीछे सजग प्रहरी कामरेड भक्तराम।

खूंख्वार उपजातीय घाटी। कब, किस समय छिपा कर रखी राइफल की गोली सनसनाती हुई आये और हमेशा के लिए गले की आवाज बन्द कर दे—कोई कह नहीं सकता। इसीलिए वे क्षण भर के लिए भी सुभाष को पलकों की ओट में जाने देने को तैयार नहीं।

सुभाष की आँखों में अज्ञातलोक के सपने तैर रहे थे। यह पृथ्वी का कैसा भयावह रूप है ? शहर के कोलाहल से बहुत दूर, यह तो एक अलग ही दुनिया है। बड़ी परिचित पृथ्वी के चित्र से इसका कोई मेल नहीं।

देखते-देखते पृथ्वी का रूप ही बदल गया। केवल पत्थर ही पत्थर। रूखे मटमैले पत्थर। एक-एक पत्थर पर पत्थर चढ़ता चला गया और आज आकाश को छू रहा है।

रास्ते के नाम पर भी कुछ नहीं था सामने। यहाँ-वहाँ पत्थरों की दरारों के बीच सिर उठाये खड़े थे बड़े-बड़े पेड़। उनकी शाखायें एक दूसरे के गले मिल रही थीं। डालों

पर लताओं ने जाल-सा बुन रखा था। एक-एक जगह पर लताओं का जाल इतना दुर्भेद्य था कि रास्ता बन्द हो गया था। कहीं झुक कर, कहीं घुटनों के बल चल कर जाने के सिवा दूसरा कोई रास्ता न था।

यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े भी कम खतरनाक नहीं। कभी भी पैरों का दबाव पाकर लुढ़कना शुरू कर दें, कहना कठिन था।

इसके अलावा चारो तरफ गीला, फिसलन। हर पत्थर पर काई जमी थी। भयंकर काई।

फिर भी सबके साथ सुभाष आगे बढ़ते जा रहे थे उस उतार-चढ़ाव को लाँघते।

स्वाधीनता उनके जीवन का लक्ष्य है। उसे पाने के लिए, कैसे भी हो, सीमा पार करनी ही है।

कहना आसान है, लेकिन करना आसान नहीं होता है, मल्लिका!

भक्तराम और गाइड, दोनों ही इस वातावरण से परिचित थे। पहाड़ी वातावरण में ही रह कर वे बड़े हुए थे। इसलिए रास्ता चलने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हो रही थी। नदी की धारा की तरह सहज, सरल और स्वच्छन्द गति थी उनकी।

पर सुभाष के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। समतल भूमि की सुख साया में पले थे। रास्ते की इस भयावहता के सम्बन्ध में किसी तरह की धारणा तक न थी। इस हालत में यह लम्बा रास्ता तय करना कितना तकलीफदेह था, सिर्फ भुक्तभोगी ही जानता है। और लोग इसकी कल्पना तक नहीं कर सकते।

फिर भी सुभाष चलते चले जा रहे थे। शरीर थक कर चूर-चूर हो रहा था। पाँव काँप रहे थे, असहनीय यन्त्रणा से छाती फटी जा रही थी....जाये, फट जाये, फिर भी जाना है।

यह तो जरा सा रास्ता है। अभी तो न जाने और कितना रास्ता तय करना है। यह तो सिर्फ भाग्य-देवता ही जानते हैं कि रास्ता खत्म होने पर उनके लिए फैसला क्या होगा—आशीर्वाद या अभिशाप!

दोपहर में धूप खूब तेज हो जाती। चारों तरफ पहाड़ों से घिरी पृथ्वी लगती खाली हो गई है। उजाड़।

सामने ऊँचा पहाड़ था। पहाड़ की ऊँचाई क्या होगी, अनुमान लगाना भी मुश्किल था क्योंकि उसकी चोटी सफेद बर्फ से ढँकी थी।

सभी आकर उसी पहाड़ के नीचे रुके। बदन टूट रहा है, थोड़ी देर सुस्ताना जरूरी है।

पर अब तक खजूरी मैदान से कितने मील आये हैं?

सिर्फ डेढ़ मील।

'सिर्फ डेढ़ मील?' सुभाष हताश हो गये—'डेढ़ ही मील! इसके मतलब हुए

बॉर्डर पार होने के लिए अभी बहुत रास्ता तय करना है।'

'बॉर्डर!' भक्तराम आश्चर्यचकित हुए—'बॉर्डर तो कब का पार कर चुके हैं।'

'पार कर चुके हैं?' सुनते ही सुभाष को लगा, वे तरोताजा हो गये हैं। शरीर में नई स्फूर्ति, नयी ताज़गी आ गई है। 'जय वीरेश्वर-विवेकानन्द! तुम्हारी असीम करुणा है। मुसीबत टल गई है।'

यहीं उबले आलू और अण्डे के साथ भोजन-पर्व आरम्भ हुआ। फिर कुछ देर जम कर आराम किया।

आराम करने योग्य जगह भी थी। चारों ओर असम्भव शांति, एकान्त! जैसे अजीब-सी एक स्तब्धता व्याप्त हो। यहाँ तक कि चिड़ियाँ भी चुप थीं। उस पर भयंकर अंधेरा। ऊपर आसमान तक नज़र नहीं आ रहा था। पहाड़ों से चारों ओर ढँका था।

कुछ ही देर बाद फिर चलना शुरू हुआ। काफ़ी चलने पर ही कहीं रात को ठहरने योग्य जगह मिल पायेगी। वरना इसी रास्ते के भरोसे रहना होगा।

जाड़े की दोपहर...देखते-देखते थोड़ी देर बाद ही धुएँ की परत-सा गहरा कोहरा उतर आया नीचे। तीनों बढ़ते रहे। रूखे-ऊँचे-नीचे रास्ते से। ज़रा भी लापरवाह हुए कि मुसीबत....ज़रा-सा भी इधर-उधर हुए कि भयंकर दुर्घटना घटित हो सकती है।

सूर्य ऊँचे पहाड़ों के पीछे अस्त हो गया। अंधेरे-उजाले के बीच आँख-मिचौली शुरू हुई। कभी उतार चढ़ाई के रास्ते पर, कभी वे खेलते पहाड़ों की चोटियों पर। बस, थोड़ी ही देर में दिशाहीन इस प्रान्त के सीने में शाम की धुंधली साया विस्तृत हो जाएगी।

लम्बे-लम्बे डग भरते तीनों बढ़ते जा रहे थे। और जल्दी...और ज़ोर से। शाम गहरा रही है....अभी बहुत चलना है। काफी रास्ता पड़ा है। कुइक़ मार्च।

देखते-देखते आसमान से सूर्यास्त की अन्तिम लाली भी अदृश्य हो गई। चारों ओर से गहरा अंधकार उतर आया उस जगह पर।

सहसा, कुछ देख कर भक्तराम के मन में आशंका जाग उठी। ठंडी हवा चलने लगी है। लग रहा है आँधी आने वाली है। बादल देख कर यही लग रहा था।

अनुमान गलत नहीं था।

शुरू हुआ मस्त हवा का उछलना-कूदना। पेड़ों की डालें एक बार जमीन छूतीं तो दूसरे ही क्षण फिर सीधी हो जातीं। बिजली चमक उठी। आकाश इस छोर से उस छोर तक जगमगा उठा। टूट कर गिरे पत्ते हवा में झुण्ड बना कर चक्कर काट रहे थे। पहाड़ों पर स्याह सा अंधेरा। दो हाथ दूर की चीज़ तक दिखाई नहीं दे रही थी। उस पर धूल....कूड़ा। भयंकर हवा के झोंके छोटे-छोटे पत्थरों के टुकड़ों की वर्षा कर रहे थे। पहाड़ी इलाके की आँधी भयानक होती है।

सिर्फ पहाड़ी इलाके में ही नहीं, कलकत्ते में भी उस दिन आँधी की रफ्तार कम

नहीं थी, मल्लिका !

सुभाष के नाम पर कई मुकदमें चल रहे थे। अविलम्ब कोर्ट में हाज़िर होना ज़रूरी था।

लेकिन सुभाष हैं कहाँ ? आश्चर्य की बात है ! उनका कहीं पता तक नहीं। चप्पा-चप्पा ढूंढ़ डाला गया, परन्तु उनका पता नहीं लग रहा था।

सारा हिन्दुस्तान यह सुन कर स्तब्ध रह गया। सुभाष गायब ! यह भी कभी सम्भव है ?

सादी पोशाक में बासठ जासूस कार्यकर्ता उनकी गतिविधि पर नज़र रखने के लिए तैनात किए गए थे। उनकी नज़र में धूल झोंक कर, दूसरी जगह भागना, कैसे सम्भव हो सकता है ? यह कैसी असम्भव घटना है ? अकाल्पनिक ! अविश्वसनीय !

खबर सुनते ही कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने तार किया। गाँधीजी ने भी....'कहाँ गए सुभाष ? चिन्तित हैं। तुरन्त खबर चाहिये।'

कौन जवाब देगा ? मँझले भइया शरत् बाबू ? कहने को है ही क्या ?

सुबी उनके कितने प्रिय हैं। कितना नाज़ है उन्हें। छाती दर्द और वेदना से भले ही फट जाए, हर वक्त हँसते रहना है। इसीलिए सब कुछ जान कर भी, स्वार्थवश एक दूसरी कहानी कही उन्होंने।

साधुसंग के आकर्षण की बात सुभाष के लिए नई नहीं। इस बार भी ऐसा ही कुछ होगा।

ऐसी ही बात फारवर्ड ब्लॉक के नेता पंजाब के सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर के मुँह से भी निकली—'सुभाष अवश्य ही किसी उपयुक्त गुरु की खोज में गृह त्याग कर चले गए हैं। ऐसा ही कुछ मुझे एक बार उन्होंने कहा था।'

फिर भी, आहत सिंह रह-रह कर गरजने लगा। पल-पल सतर्क रहने की चेतावनी दी जाने लगी।

'हैलो ! नॉर्थ वेस्ट फ्रन्टीयर, हैलो, पेशावर मिलिट्री कैम्प, हैलो, सूरमा वैली लाइट हौर्स राइफेल्स, हैलो, ईस्टर्न फ्रन्टीयर राइफेल्स, सरकार का नम्बर एक दुश्मन सुभाष बोस भाग गया है। हर तरफ कड़ी नज़र रखी जाए। किसी हालत में वह बॉर्डर पार न कर सके।'

'हैलो ! दिल्ली, बम्बई, करांची, मद्रास, रंगून, हाँगकाँग, मलय, सिंगापुर एयरपोर्ट, आप हर यात्री की अच्छी तरह जाँच करें। प्रत्येक पासपोर्ट को नए सिरे से चेक करें। ज़रा भी शक हो तो रोक लीजिए।

'हैलो कोचीन, वाईज़ग, मद्रास, कलकत्ता, बम्बई, करांची पोर्ट....हर विदेशी जहाज़ का चप्पा-चप्पा ढूंढ़ डालो। हर नाव पर नज़र रखो। जिस तरह से भी हो, सुभाष बोस को पकड़ना होगा।'

लेकिन सब व्यर्थ हुआ। कहाँ हैं सुभाष बोस ? कुछ ही घंटे पहले चिड़िया

पिंजड़े का द्वार खोल कर सीमा पर उड़ गई है। हजार शोर मचाओ, अब वह पकड़ में नहीं आने की।

मामूली-सा पानी बरस कर रुक गया। पहाड़ की ओट से चाँद का टुकड़ा झांकने लगा। फिर यात्रा शुरू हुई।

चाँदनी में रास्ता रहस्यात्मक लग रहा था। दोनों तरफ पानी से नहाए पेड़ों की कतार। बीच-बीच में पत्तों से झरती, टपकती पानी की बूंदें।

रात के बारह बजे रुके। गाँव का नाम था 'पिशकान मैना।' सुभाष बेहद थक चुके थे। एक तो रास्ते की थकावट उस पर भयंकर जाड़ा। सारे बदन में मानो सूई चुभ रही हो।

सामने ही एक मस्जिद थी। आगे बढ़ कर भक्तराम ने बन्द दरवाजे की बड़ी सावधानी से कुन्डी खटखटाई—ठक् ठक् ठक् ठक् !

कुछ ही देर में उनींदी आँखों से आकर दरवाज़ा खोला।

भीतर लगभग पचीस आदमी होंगे। क़रीब-क़रीब सभी सो रहे थे। जमीन पर बिस्तर बिछा था। सिर्फ दो-एक लोग ही जगे थे।

'हम राहगीर हैं।' पोश्तू भाषा में भक्तराम ने बताया। 'पेशावर से आ रहे हैं। सोचा है आज की रात यहीं रहेंगे। लेकिन बड़ी भूख लगी है। क्या कुछ खाने का इन्तजाम हो सकेगा दोस्त ?'

शहर से बड़ी दूर, विचित्र ही एक परिवेश था। अलग ही एक दुनिया थी।

इन लोगों में अधिकतर उपजातीय थे। सांसारिक सुख-दुःख की चिन्ता ये कम ही करते थे। सारे दिन की कड़ी मेहनत और उसके बाद जी भर कर सोना....इससे ज्यादा वे कुछ नहीं चाहते थे।

फिर भी भक्तराम की बात सुनने के साथ-साथ उन्होंने कुछ मक्का की बनी रोटियाँ और चाय का प्रबन्ध कर दिया, भूखे अतिथियों के लिए। स्वाधीनता-प्रेमी उपजातीय इन लोगों के लिए अतिथि से बड़ा कोई नहीं।

खाना खत्म हुआ। अब सोना। एक-एक करके सभी सो गए।

सिर्फ सुभाष की आँखों में नींद नहीं थी। आनी सम्भव भी न थी।

कमरे में सिर्फ एक ही दरवाजा, वह भी भीतर से बन्द था। खिड़की नाम की कोई चीज न थी। एक तरफ, जाड़े के कारण, आग जल रही थी। धुंए के कारण दम घुट रहा था, आँखें जल रही थीं। छाती फट रही थी।

बाहर हड्डी तक काँप जाये ऐसा जाड़ा। पानी बरस रहा हो—इस तरह से बर्फ गिर रही थी, झर झर झर झर।

भक्तराम को साथ लेकर एक समय धीरे-धीरे बाहर निकल आए सुभाष। उसी गिरती बर्फ में, एक बड़े से पत्थर पर बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। भीतर के उस दम

घुटते वातावरण से बाहर का बर्फ गिरना कहीं ज्यादा अच्छा है।

प्रहर के बाद प्रहर बीतता रहा।

पहाड़ के सीने पर स्याही-सा फैला अंधेरा। चारों तरफ न जाने यह कैसी खामोशी। हवा तक रुक गई थी। आस-पास जीवन का कोई नामोनिशान तक नहीं।

उस पर बड़े-बड़े दैत्यों के आकार के पेड़ एक दूसरे से लिपटे खड़े थे। अनजाने में शरीर सिहर उठा।

सुभाष वैसे ही चुपचाप बैठे रहे। उनकी दृष्टि सामने थी। सामने का पहाड़ लग रहा था ध्यानमग्न मौन हो।

दूर क्षितिज की सीमा-रेखा का मानो वह प्रहरी हो। मानो मानव सभ्यता के क्रमिक विकास से इसका कभी परिचय तक नहीं हुआ है।

भक्तराम के मन में खटका-सा लगा। सुभाष बाबू इस वक्त सुभाष बाबू नहीं। इस वक्त वे पूरे पठान हैं। पठान को पठान की रीति-नीति ही अपनानी होगी वरना शक पैदा हो सकता है। उनका कमरे में लौट चलना ही ठीक होगा।

सुभाष इस युक्ति को अस्वीकार न कर सके, इसीलिए वे फिर उसी भयावह वातावरण में लौट गए। अन्दर वही दम घोंटने वाला धुंआ, वही असहनीय घुटन। परन्तु उपाय ही क्या है?

असहनीय! असहनीय! इस कमरे में न जाने कैसी निर्जीव प्राणहीनता, कोने-कोने में व्याप्त है। इस वातावरण के साथ लगातार जूझना सम्भव नहीं।

इसी तरह बार-बार अन्दर-बाहर आते-जाते किसी तरह रात की काली स्याही धुंधली पड़ने लगी। आकाश के पूरब में भोर की लालिमा दिखाई दी।

सुभाष के जान में जान आई। यह किस्मत समझो कि किसी तरह का शक हुए बगैर रात बीत गई। अब जितनी जल्दी रास्ता पकड़ा जाए उतना ही अच्छा।

चाय और पराठे के साथ ब्रेकफास्ट किया। फिर यात्रा। लेकिन जाएँ कैसे? रास्ते, पेड़-पौधे बर्फ से ढँके थे। जिधर देखो उधर ही बरफ। बरफ का न आदि, न अन्त।

उस पर भयंकर जाड़ा। ऐसी हालत में बाहर निकलना भी मुश्किल था।

'तुम लोग कहाँ जाओगे दोस्त?' एक स्थानीय व्यक्ति ने प्रश्न पूछा।

'हम?' भक्तराम ने तुरन्त उत्तर दिया—'हम जा रहे हैं अगले गाँव तक। वहाँ लतीफ खाँ नया घर बना रहे हैं न।'

'तुम लोग काम क्या करते हो?'

'हम राजमिस्त्री हैं।' एकाएक भक्तराम व्यस्त होकर बोले—'अब उठना चाहिये। काफी समय हो गया है। देर हो गई तो आज की कमाई मारी जाएगी।'

फिर शुरू हुई यात्रा।

लेकिन रास्ता कहाँ? बड़े-बड़े बरफ के पहाड़-से टुकड़े एक पर एक मानो किसी ने सजा कर रखे थे। उनसे टप्-टप् पानी टपक रहा था। पतली-पतली बर्फ

की सींकें रास्ते के दोनों तरफ बर्फ की दीवाल से लटक रही थीं। सूर्य की किरणें पड़ने से शीशे की तरह चमक रही थीं। आँखें चकाचौंध कर देतीं।

सबसे पहले गाइड, बीच में सुभाष। उनके ठीक पीछे भक्तराम।

स्वाभाविक था, गति धीमी थी। चारो तरफ बरफ की दीवाल थी। इसी बरफीली दीवाल पर बड़े-बड़े बरफ के खण्ड इधर-उधर बिखरे पड़े थे। यूं लग रहा था कि ज़रा भी हिलेंगे तो सीधे उनके ऊपर आ कर गिरेंगे।

'होशियार ! होशियार !' रह रह कर गाइड चेतावनी दे रहा है।

यह रास्ता है भी बड़ा खतरनाक। प्रकृति ने मानो मनुष्यों के लिए मृत्यु का जाल बिछा रखा हो। हाथ में ली लाठी से बरफ को ठोंक कर देखने-परखने के बाद ही सावधानी से पाँव बढ़ाना पड़ रहा है। कहीं, कोई दरार या खोखलापन हो, क्या पता ? ज़रा सी गलती हो गई तो उसी दरार से पाताल लोक की सैर करने चला जा सकता है आदमी।

इसी तरह से दबे पाँव चलते-चलते जब पास के गाँव में पहुँचे, तब बारह बज चुके थे।

सुभाष की हालत बिगड़ चुकी थी। गाइड और भक्तराम की बात और है। वे लोग ऐसे रास्तों पर चलने के आदी हैं। पर मुसीबत तो सुभाष की है। एक तो असहनीय जाड़ा, उस पर ऐसा रास्ता—उनके लिए एक कदम भी और चल सकना बहुत ही कष्टप्रद हो गया। इसीलिए विचार-विमर्श के बाद एक खच्चर की व्यवस्था की गई जो अफगान सीमा तक पहुँचा देगा। किराया आठ रुपया तय हुआ।

फलस्वरूप यात्रियों की संख्या बढ़ कर चार हो गई। सुभाष, भक्तराम, गाइड और खच्चरवाला। खच्चर की पीठ पर सूखे घास का गट्ठर....उस पर सुभाष बैठे। अब वे निश्चिन्त हुये। फिर भी बचा न जा सका। बरफ से ढँका रास्ता—फिसलन बहुत थी। जगह-जगह पानी और कीचड़। किसी भी वक्त पाँव फिसल कर गिरना, अस्वाभाविक बात न थी।

बात सच साबित हो गई। शुरू में ही पाँव फिसलने से गिर गए अनुभवी भक्तराम। दूसरे ही क्षण हँसते हुए उठ कर खड़े भी हो गए। मानो कोई खेल हो।

दूसरा नम्बर खच्चरवाले का आया। इसका परिणाम भयंकर हुआ। उसके गिरने से खच्चर की डोरी में एक झटका लगा। झटका लगते ही खच्चर उछल पड़ा। सुभाष इस घटना के लिए तैयार नहीं थे....वह छिटक कर कड़ी जमीन पर दूर जा गिरे।

पागलों की तरह दौड़ कर भक्तराम आये और उन्होंने सुभाष को उठा लिया। उनके चेहरे पर चिन्ता के भाव झलक आये।

'नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ है।' सुभाष हँस कर बोले।

अभी तो सामने लम्बा मुसीबतों से भरा रास्ता पड़ा है। व्यक्तिगत सुख-सुविधा की बात तो अभी सोचना भी नहीं चाहिये।

छत्तीस घंटे। लम्बे छत्तीस घंटे, इस जोखिम भरे रास्ते के उतार-चढ़ाव को झेल कर, अन्त में दूसरे दिन रात एक बजे वे जा पहुँचे अफगान देश के एक गाँव में। वहाँ शिनवारी नामक एक पहाड़ी उपजाति रहती थी।

गाइड के परिचित एक परिवार ने आश्रय दिया।

रात को एक बजे थे। घर में सभी नींद में बेखबर सो रहे थे। फिर भी बार-बार बुलाए जाने पर वे बाहर आए और बड़े आदर भाव से सबको अन्दर ले गए। खाने-पीने की भी व्यवस्था की गई।

लम्बा रास्ता तय करने की वजह से सुभाष विशेष रूप से थक चुके थे। सारे शरीर में असहनीय पीड़ा थी। यूँ लग रहा था कि शरीर से किसी ने खून निचोड़ लिया था। सब से पहले ज़रूरत थी विश्राम करने की। जम कर सोने की।

लेकिन कैसा विश्राम, कहाँ की नींद ? सभी कुछ त्यागना पड़ गया खच्चरवाले की बात सुन कर। उसने प्रस्ताव रखा—

—अगर हुज़ूर तैयार हों तो वह पेशावर-काबुल के रास्ते की सीमा पर स्थित 'गाड्डी' गाँव तक पहुँचा दे सकता है। सिर्फ तेरह रुपए किराये के चाहिए।

लेकिन एक ही शर्त है। अभी फौरन चलना पड़ेगा। वह देर नहीं कर सकता।

भक्तराम सुनते ही तैयार हो गये। प्रस्ताव लोभनीय था। आर्थिक दृष्टि से भी सुविधाजनक था। यह ठीक है कि सुभाष बाबू को तकलीफ होगी, पर उपाय ही क्या है ? ऐसा मौका बाद में नहीं भी मिल सकता है !

पेशावर से किये गये गाइड को भक्तराम ने यहाँ छोड़ दिया। 'विदा कॉमरेड, विदा ! अब तुम पेशावर लौट जाओ। कॉमरेड आवेद खाँ को मेरी चिट्ठी देना। कहना, सब ठीक है, चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

आराम करने की बात दिमाग़ से निकाल दिया सुभाष ने। टट्टू की पीठ पर चढ़ बैठे। पहले काम, फिर दूसरी बातें। इस वक्त सुख-सुविधा का प्रश्न ही नहीं उठता।

'गाड्डी' गाँव दूसरे दिन सुबह दस बजे पहुँचे। यहीं वह भयावह रास्ता भी खत्म हो गया। कुछ आगे बढ़ने पर वह रास्ता मिल जायेगा जो पेशावर से काबुल जाता है।

अब टट्टूवाला विदा किया गया। अब बचे दो—भक्तराम और सुभाष।

लेकिन नहीं। अब भक्तराम नहीं। सुभाष भी नहीं। नया देश, नया वातावरण, इसलिये नये नाम की भी ज़रूरत थी। फलस्वरूप भक्तराम ने चोला बदला और बन गये एक पठान युवक, रहमत खाँ। और सुभाष बने उनके चाचा, ज़ियाउद्दीन।

अब से जो भी बात करनी होगी रहमत खाँ ही करेंगे। क्योंकि चाचा ज़िया-उद्दीन केवल अस्वस्थ ही नहीं गूँगे-बहरे दोनों हैं। दोनों पेशावर-काबुल वाली सड़क पकड़ कर जलालाबाद की तरफ चल दिए।

इस रास्ते से कभी-कभी सामान लदे ट्रक चलते हैं। कभी-कभार एक दो बसें भी चलती हैं। इनमें से एक भी वाहन पकड़ पाते तो निश्चिंत हो जाते।

चलते-चलते अनजाने में ही सुभाष के मुँह से निकल गया, 'अपूर्व ! सचमुच सुन्दर है यह देश।'

'अपूर्व ?' भक्तराम आश्चर्यचकित हुए। ऐसी क्या मुग्ध होने योग्य वस्तु देखी सुभाष ने ? यहाँ-वहाँ फैले हुए नंगे पहाड़ों के सिवाय है क्या ?

'तो क्या हुआ ?' सुभाष की आँखों में स्वप्नों से भरा आवेग था—'है तो स्वाधीन....स्वाधीन देश का सब कुछ सुन्दर होता है। उसका कण-कण पवित्र होता है।'

भक्तराम ने सुभाष की तरफ देखा तो पलक झपकाना भूल गए। जिनके हाड़-मांस में, शरीर के रोम-रोम में मिल गया हो अकृत्रिम, अनकहा, पवित्र स्वाधीनता का स्वप्न—पृथ्वी में किसकी हिम्मत है उनके बढ़ते कदमों को रोके ?

नहीं—कोई नहीं रोक सकता। आज हो या कल, उनका सपना साकार होकर ही रहेगा। सुभाष बाबू जिन्दाबाद !

घंटे भर चलने के बाद वे पहुँचे एक छोटे से गाँव—'हरजाना' में। काफी चल चुके थे। अब रास्ते के किनारे बैठ कर सुस्ताना चाहिये।

लेकिन कैसा सुस्ताना ? उन्हें देख कर पहाड़ की ऊँचाई से उतर आया एक विशालकाय पठान।

'तुम लोग कौन हो भाई ? कहाँ जाओगे ?'

'हम मुसाफिर हैं।' भक्तराम ने उत्तर दिया—'और ये मेरे चाचा हैं। बोल नहीं सकते हैं। इसीलिए अड्डाशरीफ जा रहे हैं। खुदा से दुआ माँगने। बहुत बीमार हैं।'

'बड़े अफसोस की बात है।' पठान ने हमदर्दी जताते हुए कहा—'लेकिन ऐसी बीमारियों की दवा मैं भी जानता हूँ। इनकी जरा जीभ तो देखूं।'

अब क्या किया जाए ? मजबूर हो कर भक्तराम ने सुभाष का चेहरा ऊपर उठाया....जबड़ा खोल दिया। तुरन्त पठान अपनी गंदी भद्दी अंगुलियों से जीभ दबा-दबा कर देखने लगा। मानो पक्का हकीम हो।

'हाँ, बीमारी तो है जबरदस्त, लेकिन फिक्र मत करो। दवा बता रहा हूँ, बिल्कुल ठीक हो जाएँगे।'

प्रेसक्रिप्शन मालूम होते ही दोनों उठ कर चल दिए। यहाँ से खिसक देना ही ठीक होगा।

घंटे भर चलने के बाद 'बसोल' गाँव पहुँचे। अब ट्रक मिला। उसमें चाय पैक होकर जा रही थी जलालाबाद।

इशारा करते ही ट्रक रुक गया। तुरन्त दोनों पैकिंग बक्सों पर चढ़ बैठे। निश्चिन्त हुए। खुली ट्रक थी....बर्फीली हवा सनसनाती हुई चल रही थी, फिर भी आराम मिल रहा था। निश्चिन्त थे।

लम्बा रास्ता चलने के कारण शरीर और मन दोनों थक चुके थे। अब इस

थकान का अन्त होने वाला था। अब उतार-चढ़ाव का झंझट नहीं....जलालाबाद आया समझो। अब देर नहीं।

फिर भी देर हो गई। स्वयं ज़िला अफसर जलालाबाद जाएँगे, लेकिन वे तैयार नहीं हैं, इसलिए ट्रक वाले को रुकना पड़ेगा। ज़िला अफसर कोई मामूली आदमी नहीं होता है....उसकी बात तो माननी ही पड़ेगी।

पूरे दो घंटे बाद हुज़ूर आ कर ट्रक ड्राइवर की बगल में बैठे। फलस्वरूप जलालाबाद पहुँचते-पहुँचते रात को दस बज गये।

दूसरे दिन सुबह ही दोनों धर्मशाले से निकल कर चल दिए अड्डाशरीफ की मस्जिद का दर्शन करने। वहाँ से 'लालमा' गाँव।

वहाँ के हाजी मोहम्मद अमीन भक्तराम के परिचित थे। इस मामले में उनसे सलाह लेना ज़रूरी था।

यद्यपि हाजी साहब को सुभाष का असली परिचय नहीं बताया जाएगा। उनसे कहा गया—एक फरार विद्रोही कार्यकर्ता हैं। उद्देश्य—रूस भाग जाने का है। इस विषय में हाजी साहब क्या राय देते हैं, जान लेना ज़रूरी है।

सुन कर हाजी साहब खुश हुए। जाना चाहता है तो जाए, परन्तु काबुल से तेरह मील पहले पड़ने वाले 'बुदखाल' चेक-पोस्ट से ज़रा बच कर। उससे बच गये तब फिर तो कुछ सोचना ही नहीं।

अड्डाशरीफ से 'लालपुरा'। भिश्ती वाले की मदद से काबुल नदी पार हुए। फिर आगे बढ़ना शुरू हुआ। पर इस बार पैदल नहीं, ताँगे में। इरादा था 'सुल्तानपुर' पहुँचने का और फिर वहाँ से काबुल जाने वाली बस या ट्रक पकड़ने का।

पर कहाँ बस? कहाँ ट्रक?

घंटे पर घंटे बीते पर बस या ट्रक का कहीं नामोनिशान नहीं था। बढ़ते-बढ़ते वे सुल्तानपुर भी पार कर गये। तब भी कोई बस या ट्रक का पता नहीं।

एक बार चाय पी गई। अब पैदल चल दिए। भूख और प्यास से छाती फट रही थी। गला सूख रहा था....पाँव उठ नहीं रहे थे, फिर भी चलने चलना था।... जाना तो है ही।

सारे दिन चल कर, शाम पाँच बजे वे 'मिमला' गाँव पहुँचे।

दोनों तब तक मृतप्राय हो चुके थे। भूख के कारण पेट में जलन हो रही थी। यूँ लग रहा था—सारी अनुभूतियाँ, समस्त चेतना एकाकार होती जा रही है।

थक कर दोनों रास्ते के एक किनारे बैठ गए। थकावट से शरीर चूर-चूर होते हुए भी मन में एक क्षीण आशा सिर उठाए बैठी थी....शायद बस या ट्रक आ जाये।

इसी तरह प्रहर पर प्रहर बीतते गए। आकुल आस आँखों में संजोये दोनों प्रतीक्षा करते बैठे रहे। इसी बीच सुभाष को नींद ने आ कर अपनी गोद में ले लिया। निश्चिन्त, सुख की निद्रा।

इस तरह सुभाष को सोता देख, भक्तराम का हृदय भर आया।

विप्लवी का रास्ता कंटक-शून्य नहीं है। सदा से यह रास्ता दुरूह और छुरी की धार-सा तेज रहा है। जिन्होंने भी इस रास्ते पर कदम रखा है, वे ही लहूलुहान हुए हैं.... घावों से जर्जर हो गए हैं।

सुभाष बाबू भी उससे नहीं बच सके। शिक्षा-दीक्षा, सम्मान, चरित्र, और ऐश्वर्य—किस चीज़ की उन्हें कमी थी ? जीवन में उन्हें क्या नहीं मिला ?

सारे हिन्दुस्तान भर में ये ही एक अकेले व्यक्ति है, जिनकी न झुकनेवाली दृढ़ता और मनोभाव के आगे न केवल अंग्रेज सरकार बलिक गांधी जी जैसे विशाल व्यक्तित्व को भी बार-बार रुकना पड़ता है। वही व्यक्ति सब कुछ पीछे छोड आया है। आज वही व्यक्ति यहाँ सड़क के किनारे धूल में कैसा असहाय-सा पड़ा सो रहा है !

भारत हमेशा पराधीन नहीं रहेगा। किसी न किसी दिन स्वाधीन होगा ही। उस दिन सुभाष बाबू की इस चेष्टा, इस दु:साहसिक अभियान को इतिहास कैसे चित्रित करेगा ?

पर अनजाना, अपरिचित भक्तराम बेईमान नहीं है। देश के करोड़ों मनुष्यों की आशा-आकांक्षा को साकार रूप देने के लिए सुभाष बाबू जो आज इतना कष्ट सहन कर रहे हैं, यह बात भक्तराम के हृदय पटल पर खून से लिखी रहेगी।

सहसा वे कल्पनालोक से वापस आए। खाना चाहिए। जैसे भी हो, कुछ खाने के लिए जुटाना होगा।

आगे कठिन युद्ध है। उसके पुरोहित का पद सुभाष बाबू को ही ग्रहण करना है। उस भयंकर युद्ध से सिंह की भाँति जूझने के लिये अच्छा स्वास्थ्य चाहिए। स्वास्थ्य ठीक रहना भी आवश्यक है। अपने लिए न सही, सुभाष बाबू के लिए खाना चाहिए।

ज्यादा दूर जाना नहीं पड़ा। दो कदम बढ़ते ही एक छोटा-सा भोजनालय था। माँगते ही दो आदमी के लिए खाना मिल गया।

खाना ! सुनते ही हड़बड़ा कर सुभाष उठ बैठे। उसके बाद ही व्यस्तभाव से भक्तराम की तरफ हाथ बढ़ा दिया। सारे दिन के भूखे थे। एक सूखी रोटी भी इस वक्त अमृत के समान थी।

हाथ का खाना हाथ में ही रह गया। सुभाष कुछ देख कर चौंक पड़े।

वह क्या है ? दूर से वह कौन-सी चीज़ धूल उड़ाती चली आ रही है ? ट्रक ? ट्रक ? बहुप्रतीक्षित काबुल जाने वाली ट्रक ?

पलक झपकते दोनों तैयार हो गये। खाना छोड़ो। इतनी इन्तजारी के बाद ट्रक मिलेगी...यह मौका चूका नहीं जा सकता है।

लगातार बड़ी देर तक चलने के बाद ट्रक जाकर 'गनडामक' रात को नौ बजे रुकी। वहाँ खाना-पीना खत्म करके फिर चली।

रात के दस बजे 'काबुलमत'। फिर थोड़ी देर विश्राम। अंत में ट्रक अपने गन्तव्य-स्थल पर, अर्थात् उसी 'बुदखाल' चेक-पोस्ट के सामने जाकर रुकी, तब सुबह होने मे देर न थी।

प्लान के मुताबिक भक्तराम अकेले ही चेक-पोस्ट आफिस की तरफ बढ़े। और इस मौके पर सुभाष ड्राइवर के पीछे हो लिए। होटल की तरफ। मानो ड्राइवर के साथी हों।

कहाँ चेक-पोस्ट ? यहाँ तो सब नींद से बेखबर पड़े थे। आस-पास एक परिन्दा तक नहीं जगा था। यहाँ तक कि एक पहरेदार तक नहीं जगा था।

हँसते-हँसते भक्तराम निश्चिन्त होटल की तरफ लौट चले। चलो, जान बची। इतनी आसानी से चेक-पोस्ट का झंझट मिट जायेगा, किसने सोचा था।

होटल में पहुँच कर दोनों कुछ देर सोये। फिर नौ बजे एक ताँगे पर चढ़ बैठे। अब काबुल शहर की तरफ चले जो वहाँ से तेरह मील दूर था।

सन्तुष्टि और प्रसन्नता दोनों के चेहरे पर व्याप्त थी। पेशावर से चले थे २६ जनवरी को—स्वाधीनता दिवस के पुनीत-क्षण में। आज ३१ जनवरी है। आज ही रास्ते की सारी कठिनाइयों का अन्त हो जायेगा....अब दूरी बची ही कितनी है ? काबुल आया ही समझो।

जाते-जाते जाने क्या हुआ, भक्तराम ने सुभाष के हाथ से घड़ी उतार कर अपने हाथ में बाँध ली।

एक तो चाचा जी बहरे उस पर बीमार। उनके हाथों में इतनी क़ीमती घड़ी जमती नहीं। बल्कि भतीजे रहमत खाँ के हाथ में बँधी रहे, यही ठीक होगा। जवान लड़का है, अच्छी लगेगी।

और थोड़ा वक्त बीता—उसके बाद ही मोड़ घूमते ही सहसा भक्तराम खुशी से चिल्ला उठे—'आ गया ! आ गया ! वह काबुल दिखाई पड़ रहा है। हम आ गये हैं।'

'शहीद हरिकृष्ण जिन्दाबाद ! भाई ! मैं तुम्हें नहीं भूल पाया हूँ। किसी दिन भी नहीं भूल सकूँगा।'

अद्भुत एक अनुभूति भक्तराम के हृदय में उज्ज्वलित हो उठी। उन पुराने दिनों की बात याद आई। पुराने जीवन की घटनाएँ।

तिथि थी, १९३० साल, २३ दिसम्बर।

लाहौर विश्वविद्यालय का समावर्तन समारोह था। पंजाब के गवर्नर—ज्योफ्रे मॉरिन्स वहाँ भाषण देने आये थे। एकाएक हरिकृष्ण के हाथ की पिस्तौल गरज उठी.... गुड़म् गुड़म् गुड़म्।

घायल मॉरिन्स वहीं गिर गये। एक पुलिस इन्स्पेक्टर, एक सब-इन्स्पेक्टर और दो महिलाएँ भी घायल हुईं। हरिकृष्ण के अचूक निशाने से उस दिन कोई भी नहीं बच सका। सभी को अपने खून से प्रायश्चित्त करना पड़ा था।

उसके बाद एक दिन मुकदमा शुरू हुआ। जैसी कि आशंका थी, वही हुआ। अंग्रेज शासकों ने आदेश दिया—प्राणदंड। और उसी आदेशानुसार यथा समय काम हुआ।

मृत्युदण्ड प्राप्त कैदी की अन्तिम इच्छा पूरी करने का नियम है। हरिकृष्ण के साथ वैसा भी नहीं किया गया। यहाँ तक कि धर्म की भी उपेक्षा की गई और सभ्यता की प्रतीक अंग्रेज सरकार ने बेहिचक उसे मुसलमानों के कब्रिस्तान में दफना दिया। इसका प्रमाण है उस समय का समाचार पत्र—

हरिकृष्ण की अन्तिम अभिलाषा 'मैं फिर भारत में पैदा होना चाहता हूँ'

'मियाँवली, १० जून। हरिकृष्ण के साथ उनके रिश्तेदारों की अन्तिम भेंट का विस्तृत विवरण मिला है। मालूम हुआ है, पिछले ८ जून की सुबह हरिकृष्ण के रिश्तेदार मियाँवली आए थे।

....करीब ११ बज कर १० मिनट पर हरिकृष्ण के रिश्तेदारों को उससे अन्तिम बार मिलने की अनुमति दी गई। उस समय जेल के दरोगा तथा दूसरे जेल के कर्मचारी भी वहाँ उपस्थित थे।

हरिकृष्ण हर समय खुश और फुर्तीला दिखाई पड़ रहा था। कुछ देर तक रिश्तेदारों के साथ पारिवारिक बातें करने के बाद ही, उससे पूछा गया कि उसकी कोई आखिरी इच्छा है या नहीं।

प्रकाशित, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए हरिकृष्ण ने कहा—'मेरी यही इच्छा है कि मैं मातृभूमि की जंजीर तोड़ने के लिए फिर से भारत में जन्म ले सकूँ। मैं अपने देश का एक अदना सेवक हूँ। अगर आप सबों को मेरी मृतदेह दी जाए तब शतद्रु नदी के किनारे उसी जगह पर मेरी अन्तेष्टि कीजिएगा, जहाँ भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की अन्तेष्टि हुई थी।'

मृतदेह का अन्तिम संस्कार

'हरिकृष्ण के मृतदेह के अन्तिम संस्कार का विस्तृत विवरण प्राप्त हुआ है। मालूम हुआ है, मियाँवली जेल के बगल में, जहाँ लावारिस मुसलमान कैदियों को कब्र दिया जाता है, उसी स्थान पर गहरी रात को पुलिस के कड़े पहरे में हरिकृष्ण की मृतदेह को गाड़ दिया गया है। (आनन्दबाजार, १५ जून : १९३१)

बड़े भाई हरिकृष्ण को गवाँ कर उस दिन भक्तराम के मुँह से एक ही प्रणवाक्य निकला था—'मैं इसका बदला लूँगा। ऐसा बदला लूँगा जिसे ये अंग्रेज दुश्मन जीवन भर नहीं भूलेंगे।'

ग्यारह साल की लम्बी अवधि बीतने के बाद, उसने वह प्रतिज्ञा पूरी की। सुभाष बाबू को उनके खूनी पंजों की पहुँच से छीन कर, उसने अपने भ्रातृहत्या का उचित बदला ले लिया।

पहला चरण समाप्त हुआ। अब किसी [illegible] से सुभाष बाबू यूरोप पहुँच जाते—बस। उससे बाद ही शुरू हो सकेगी—[illegible] सुभाष बाबू शेर हैं। कैसे जवाब

दिया जाएगा, यह वह अच्छी तरह जानते हैं।

पर सबसे पहले ज़रूरी था सुभाष बाबू के लिए कुछ गरम कपड़े खरीदे जाएँ। भयंकर जाड़ा पड़ रहा था। इन थोड़े से कपड़ों में दुःसह जाड़े से लड़ना सचमुच मुश्किल था।

बाजार से दो रजाइयाँ खरीद कर, कुछ ही देर में दोनों फिर लाहौरी गेट के पास वाले अपने निश्चित धर्मशाले में लौट आए।

नाम मात्र को धर्मशाला था। असल में दूर जाने वाले ऊँट के व्यापारियों के लिए रात काटने का डेरा भर था। जितना गन्दा उतनी ही दुर्गन्ध। देखने से ही घृणा लगती। जी मिचलाता।

और खाना? उस दिन के भयानक कष्ट की बात सुभाष के अपने शब्दों में सुना रहा हूँ, मल्लिका।

'बाहर ऐसी गलनवाली ठंडक। दरवाजा खुला नहीं छोड़ सका। कमरे में इतना धुँआ कि दम घुट रहा था। कुछ सूखी लकड़ी जुटा कर हमने आग तापने का इन्तजाम किया। जाड़े से हम बर्फ की तरह जमते जा रहे थे। शाम को भक्तराम बाजार से कुछ मोमबत्तियाँ, सूखी रोटियाँ और कबाब ले आया। मुझसे रोटी नहीं खाते बन रही है, देख कर वह एक प्याली चाय भी ले आया। मैं चाय में रोटी भिगो कर खाने लगा। [हिन्दुस्तान टाइम्स : २६ फरवरी, १९४६ सन् : उत्तमचन्द की लिखी धारावाहिक रचना।]

किसी तरह रात कटी। सुबह होते ही भक्तराम और सुभाष, रूसी दूतावास के उद्देश्य से निकल पड़े। जैसे भी हो, उनसे सम्बन्ध स्थापित करके, अब मास्को जाने का इन्तजाम करना है।

पहली बाधा, मुख्य द्वार पर, सशस्त्र पहरेदार ने पहुँचाई। यूरोप में भयंकर युद्ध छिड़ा है। इस वक्त बिना आज्ञापत्र के किसी को भी अन्दर जाने देना सम्भव नहीं।

निरुपाय होकर हर अन्दर जाने वाली कार को रास्ते पर रोक कर भक्तराम अपनी बात बताने की चेष्टा करने लगे, परन्तु इससे भी सफलता नहीं मिली। काबुल में फारसी भाषा का अधिक प्रचलन है....उनकी पुश्तो भाषा का कोई असर नहीं हुआ।

भक्तराम ने तब एक भयंकर रास्ता अपनाया। उन्होंने स्वयं एजेन्ट को ही समझाने का प्रयास किया। कार रोक ली बीच रास्ते पर, लेकिन नतीजा वही निकला। उत्तर में दुरूह भाषा में कुछ कह कर वे भी अपने रास्ते चले गए। पलट कर देखा तक नहीं।

पर भक्तराम ने हार नहीं मानी। लगातार तीन दिन तक वे एजेन्सी ऑफिस, एम्बैसी ऑफ़िस, विभिन्न रूसी आफिसरों और अन्त में रूसी एम्बेसडर से मिले।

यद्यपि आशा की एक किरण तक दिखाई नहीं दी। हालत में कोई सुधार नहीं हुआ।

सुभाष मन ही मन बहुत दु:खी हुए। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि और कोई न सही, कम से कम रूसी सरकार से उन्हें हर तरह की मदद मिल जाएगी, पर यहाँ तो बिल्कुल ही उल्टा था। स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि इस मामले में वे सब बिल्कुल उदासीन हैं।

अब क्या किया जा सकता है ?

इस समय युद्ध की आग में सारा यूरोप धधक रहा है। स्वाभाविक है कि समस्त राष्ट्रों के गुप्तचरों के लिए काबुल इस समय स्वर्गभूमि के समान है। ऐसी दशा में यहाँ ज्यादा दिन रुक कर प्रतीक्षा करना ठीक नहीं। क्या मालूम कब क्या हो जाए !

इसके अलावा अफगानिस्तान कमजोर राष्ट्र है। ऐसी कोई बात हो भी जाए तो दबाव में आकर वे उन्हें अंग्रेजों के हाथों में सौंप भी सकते हैं।

परन्तु भक्तराम इसके विपरीत बात सोच रहे थे। हजार दबाव पड़ने पर भी जो अफगान राष्ट्र बाबा ईश्वर सिंह, बाबा पृथ्वी सिंह जैसे भागे हुए प्रमुख विप्लवियों को आश्रय देने से नहीं घबड़ाया, वह सुभाष बाबू जैसे एक सर्वजनप्रिय भारतीय नेता के वक्त ऐसा कदम उठाएँगे ? ऐसा तो नहीं लगता है।

फिर भी सावधान रहने में कोई हर्ज नहीं। दूसरी बातें अगर छोड़ भी दें तो भी इस राज्य में उनका अनधिकार प्रवेश हुआ है, यह तो मानना ही पड़ेगा। उनके पास उपयुक्त कागज भी तो नहीं हैं। उस तरफ से भी मुसीबत आ सकती है।

आशंका झूठी न थी। पाँचवें दिन ही उनके पीछे एक अफगान गुप्तचर लग गया। ये दोनों हैं कौन ? आज कई दिनों से वे इस धर्मशाला में क्यों ठहरे हुए हैं ? इनका इरादा क्या है ?—'ठीक है, थाने चलिए।'

'क्या कह रहे हैं सिपाही जी ?' भक्तराम ने समझाने की कोशिश की—'हम क्या चोर-डाकू हैं जो थाने में जाएँगे ? देख ही तो रहे हो, निहायत ही देहाती आदमी हैं हम लोग। अपने बीमार गूँगे-बहरे चाचा को यहाँ अस्पताल में भर्ती कराने ले आया हूँ।'

लेकिन कौन बात सुनता है ? वही एक बात बार-बार दोहराने लगा—'चलिए थाने। हालाँकि अगर कुछ....'

भक्तराम को दो रुपए निकालने पड़ गए—'लो भाई और विदा हो। अब आगे परेशान मत करना।'

पुलिस ! वह भी एक बार जो पैसे का मजा चख चुका हो ? वह कहीं मौका चूक सकता है ? फिर दूसरे दिन आ पहुँचा—'चलिए थाने। दरोगा साहब का हुक्म है।'

'तेरे दरोगा की ऐसी की तैसी।' किसी तरह से छुटकारा न मिला तो भक्तराम भी भूखे शेर की तरह गरज उठा—'ठीक है चलो। लेकिन मैं अकेला ही चलूँगा। अपने बीमार चाचा को मैं किसी हालत में नहीं ले जाऊँगा।'

'अरे देखो।' क्षण भर में पुलिस का चेहरा बदल गया—'अरे अरे, खामख्वाह

गुस्सा क्यों हो रहे हो दोस्त ? मैं क्या कुछ कह रहा हूँ ? तुम लोग गाँव के रहने वाले हो, इसीलिए कभी-कभी हालचाल लेने, सुख-दुःख की बातें करने चला आता हूँ।'

'नहीं, तुम्हें दया करके अब आने की जरूरत नहीं है।' नाराजगी के साथ भक्तराम ने एक दस रुपए का नोट बढ़ा दिया—'यह लो और भाग जाओ। फिर अगर इधर दिखाई दिए तो टाँगें तोड़ डालूँगा....इस बात को याद रखना।'

'छिः! छिः!' शर्म से अफगान पुलिस ने जीभ काटी—'कुछ भी हो, तुम लोग दोस्त हो। तुमसे क्या ये ले सकता हूँ ? लेकिन अगर देना ही चाहते हो तो, ऐसी कोई चीज यादगार के तौर पर दो कि जिसे देख कर मैं तुम लोगों को हमेशा याद कर सकूँ।'

भक्तराम ने भौंहें सिकोड़ी। इस पुलिस की हँसी और कटाक्ष कहीं सर्वनाश की ओर घसीट कर तो नहीं लिए जा रही है ?

'क्या चाहिए ?'

'चाहिए तुम्हारे हाथ की यह घड़ी।'

घड़ी! भक्तराम सन्नाटे में आ गए, निष्पन्द! कहता क्या है यह ? पिता की स्मृति से सराबोर यह सोने की घड़ी तो असल में सुभाष बाबू की है। और आज ही इस अर्थ पिपासु लोभी जानवर की इस पर नज़र पड़ गई है ? अब क्या किया जाए ?

सुभाष भी खामोश! क्या कहते ? कहने को है ही क्या ? वह तो गूँगे-बहरे दोनों हैं। कुछ कहना चाहें तो भी नहीं कह सकते।

इशारा समझ कर अनिच्छापूर्वक भक्तराम ने हाथ से घड़ी खोल कर दे दी। उनके चेहरे पर अपराधभाव व्याप्त था। कसूर उन्हीं का है। सावधानी बरतने का ख्याल करके अगर इस क़ीमती घड़ी को कमर में बाँध कर रखते तो आज सुभाष बाबू को इससे हाथ धोना नहीं पड़ता। यह दुःख तो आजीवन काल सालता रहेगा।

रूस की आशा त्याग कर दूसरे दिन सुभाष ने जर्मन दूतावास की ओर कदम बढ़ाए।

साथ में भक्तराम। जैसे भी बने, कुछ इन्तजाम तो करना ही है। इतना आगे आकर पीछे हटने से काम कैसे चलेगा ?

भक्तराम को सड़क पर इन्तजारी करने की हिदायत दे कर इस बार सुभाष स्वयं अन्दर चले गए। किसी तरफ से कोई बाधा नहीं....किसी ने बाधा डालने की कोशिश भी नहीं की।

उनकी भेंट हुई जर्मन के राजदूत के साथ। बातचीत हुई। काफ़ी भरोसा दिलाया उन्होंने। परन्तु अभी तुरन्त कुछ करना सम्भव नहीं था। सबसे पहले बर्लिन के कार्यकर्ताओं का समर्थन प्राप्त करना जरूरी है। इसके बारे में सिमेन्स कम्पनी के काबुल-रिप्रेजेन्टेटिव हेर थामस के पास कभी-कभी जा कर पूछताछ करने पर, सब मालूम हो जाएगा।

बाहर खड़े थे सजग प्रहरी से भक्तराम। एकाएक कुछ देख कर वे सावधान हो गए। उन्हें कुछ संदेह-सा होने लगा।

कुछ दूर पर खड़ा कोई उन्हीं को देख रहा है। उसकी दृष्टि भूखे शेर की तरह ....मामला क्या है?

क्षण भर! उसके बाद ही कुछ सोचा और भक्तराम ने बाजार की तरफ चलना शुरू कर दिया।

अन्दर सुभाष बाबू हैं। अभी निकल कर कहीं इसका सामना न हो जाए.... इससे पहले कि वह निकलें, किसी तरह से इसे यहाँ से हटा देना चाहिए।

उनका सोचना गलत नहीं था। भक्तराम का पीछा करते हुए वह आदमी भी बढ़ने लगा।

लेकिन व्यर्थ हुआ! कहाँ गए भक्तराम? बीच रास्ते से गायब!

इधर जर्मन दूतावास से बाहर निकल कर सुभाष आश्चर्य में पड़ गए। यह क्या? भक्तराम कहाँ गए?

जरूर कोई बात हुई होगी, वरना उनको यहाँ इन्तजार करना था। सराय में तो वापस नहीं चले गए?

घबड़ाए हुए सुभाष सराय वापस आए पर भक्तराम का वहाँ भी पता नहीं था।

न, वह यहाँ भी नहीं थे। कमरे में बाहर से ताला लगा था। चाभी भक्तराम के पास ही है। इसलिए भीतर भी नहीं जा सकते थे।

और थोड़ी देर बाद भक्तराम वापस आए। इस गली, उस गली का चक्कर लगा कर वापस जरूर आए, लेकिन बच न सके। एक से छुटकारा पाते न पाते, दूसरा आ पहुँचा। वही अफगान सिपाही।

'तुम फिर क्यों आए हो?' उसे देखते ही भक्तराम गरजे—'घड़ी पाकर भी तुम्हारी भूख नहीं मिटी?'

'उसे तो दरोगा साहब ने ले लिया है।' क्षोभ और दुःख से सिपाही की आँखें भर आईं—'सभी नसीब की बात है, वरना मैं तो इतनी तकलीफ उठा कर ले गया और उसने मेरे हाथ से छीन लिया। खैर दोस्त, पाँच रुपए उधार ही दे दो...मैं कल आकर लौटा जाऊँगा।'

उस आदमी को विदा करके भक्तराम कुछ देर तक बैठे सोचते रहे। चिन्ता पर चिन्ता....नाना प्रकार की परेशान करने वाली चिन्ताएँ। इस आदमी को अब बढ़ावा देना ठीक नहीं। कुछ भी हो, पुलिस का आदमी है। पैसे की लालच में वह फिर आएगा ....बार-बार आएगा।

इधर रेडियो और समाचार पत्रों के जरिए, सुभाष बाबू के गायब हो जाने की खबर यहाँ भी सब को पता हो गई थी।

इस हालत में इस तरह के आदमियों को पास फटकने भी नहीं देना चाहिए। एक बार अगर शक हो गया तो मुसीबत हो जाएगी। न! इस तरह से रिस्क लेना

ठीक नहीं होगा। जैसे भी हो, यह जगह बदल कर किसी सुरक्षित जगह चले जाना चाहिए।

लेकिन कहाँ जाया जाए ? किसके पास ?

यही चिन्ता सुभाष के दिमाग़ में भी चक्कर काट रही थी। यह जगह अब ज़रा भी सुरक्षित नहीं।....अब जाना कहाँ चाहिए ? किसके पास ?

सोचते-सोचते भक्तराम को अचानक एक परिचित व्यक्ति याद आया।

उत्तमचन्द....पेशावर के उत्तमचन्द। कभी वे 'नौजवान सभा' के प्रमुख कार्य-कर्ताओं में से थे। कुछ दिनों के लिए जेल भी जा चुके हैं। अब स्थायी रूप से काबुल में ही रहने लगे हैं। उनके पास एक बार जाना चाहिए।

हालाँकि काम ज़रा टेढ़ा है....बहुत दिनों से भेंट-मुलाकात नहीं हुई है। काबुल शहर में कहाँ, किस जगह रहते होंगे ? फिर भी कोशिश करने में हर्ज ही क्या है ? देखा जाए क्या होता है।

१३ फरवरी। सारा काबुल उस दिन भयानक आबोहवा के चपेट में था। चारों तरफ सिर्फ बर्फ ही बर्फ ! सुबह से भिर-भिर-भिर-भिर बर्फ गिर रही थी....पल भर के लिए भी रुकने का नाम नहीं।

इस भयानक ठंड की परवाह किए बगैर भक्तराम आगे बढ़ते चले जा रहे थे। उनकी नज़र दोनों तरफ की दुकानों पर थी।

उत्तमचन्द को ढूंढ़ निकालना ही होगा। पता चला है शहर में कहीं उनकी रेडियो की दुकान है। लगातार दो दिनों तक ढूंढ़ने पर भी पता नहीं चला था। कैसे भी हो, आज उनका पता करना ही है। सुभाष बाबू की सुरक्षा के लिए उनकी सहायता की बड़ी ज़रूरत है।

करीब दस बजे होंगे। सहसा कुछ देखकर भक्तराम ठिठके। सामने ही तो एक रेडियो की दुकान है। कहीं उत्तमचन्द की ही न हो !

हाँ....अरे....अन्दर वह दिखाई दे रहे हैं। कितने दिनों बाद देखा है, फिर भी पहली नज़र में ही पहचान में आ गए।

परन्तु अगर उत्तमचन्द न पहचान पाएँ ? अगर उसकी बातों पर विश्वास नहीं किया तो ? अगर सारी बातें सुन कर उसे वापस कर दें ?

पर....यह सोच कर पीछे हटना कोई अक्लमन्दी नहीं।....कोशिश करने में क्या हर्ज है ?

'नमस्ते, भाई साहब !' भक्तराम दुकान में घुसे।

'नमस्ते !' उत्तमचन्द ने आँख उठाई। उनकी आँखों में जिज्ञासा जाग उठी। यह आगन्तुक कौन है ?

'मेरा नाम भक्तराम है।'

'भक्तराम ?' उत्तमचन्द को संदेह होने लगा। पहचाना चेहरा...बहुत पहचाना, लेकिन ठीक से याद नहीं आ रहा है।

'आप को क्या शहीद हरिकृष्ण की याद है ?'

'हरिकृष्ण।' झटके से उठ खड़े हुए उत्तमचन्द—'जिन्होंने पंजाब के गवर्नर मोरेन्स को गोली मारी थी और इसके लिए उन्हें फाँसी की सजा मिली थी।'

'हाँ, मैं उन्हीं की बात कर रहा हूँ। मैं उन्हीं का छोटा भाई हूँ—भक्तराम।'

'भक्तराम।' खुश हो कर उत्तमचन्द ने उसकी अगवानी की...'हाँ हाँ, अब याद आ रहा है! कितने आश्चर्य की बात है। पहले बताना चाहिए था....कहिए, क्या खबर है ?'

भक्तराम हिचके। द्विविधा और कुण्ठा ने आ घेरा। सामने ही एक अपरिचित आदमी खड़ा था और उसके सामने यह बात कह भी नहीं सकते थे।

'अमरनाथ, दो कप चाय तो ले आओ।' झट परिस्थिति समझ ली उत्तमचन्द ने और दुकान के नौकर को वहाँ से हटा दिया—'लीजिए, अब बताइए।'

'आपने सुभाष बाबू के अन्तर्ध्यान होने की बात सुनी होगी ?'

'क्यों नहीं सुनूंगा ? काबुल में ढूंढ़ने पर भी ऐसा कोई भारतीय नहीं मिलेगा, जिसने यह खबर न सुनी होगी। लेकिन अचानक यह प्रश्न क्यों ? मामला क्या है ?'

भक्तराम ने धीरे-धीरे सारी बातें बता दीं। सुभाष बाबू यहीं हैं....वे आपसे मदद चाहते हैं। जैसे भी हो, उनके लिए एक सुरक्षित रहने की जगह ढूंढ़नी ही है।

उत्तमचन्द सुन कर स्तब्ध रह गए। भक्तराम उनका मुंह देख रहे थे। उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन वे क्या जवाब दें ? इससे पहले उन्हें जरा एकान्त चाहिए ....वे चाहते हैं अपने आप से सवाल-जवाब करना।....इतना समय तो चाहिए ही।

पल-पल बीतने लगा प्रतीक्षा में।....शब्दहीन मन्थर गति....दोनों चुप...निःशब्द ....सिर्फ दुकान में टँगी दिवाल घड़ी चल रही थी....टिक् टिक्....टिक् टिक्।

'आपने क्या तय किया उत्तमचन्द जी ?' एकाएक भक्तराम ने प्रश्न पूछा।

'मुझे कुछ वक्त देना पड़ेगा भाई साहब।' मानों नींद से जागे उत्तमचन्द—'आप शाम को ठीक चार बजे एक बार आइएगा। मैं तब तक सोच कर देखता हूँ कि क्या किया जा सकता है।'

भक्तराम के विदा होने के बाद भी, बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे उत्तमचन्द.... चिन्ता पर चिन्ता....अब क्या किया जाय ? सोचते-सोचते उत्तमचन्द के मन में हजारों सवाल इकट्ठा होने लगे।

जिसको ढूंढ़ने में पूरे ब्रिटिश साम्राज्य ने चप्पा-चप्पा छान मारा, उसी को आश्रय देने के अर्थ हुए मुसीबत मोल लेना। लेकिन नौजवान सभा के सदस्य होने के नाते इस काम को न करना भी ठीक नहीं। जीविकोपार्जन के लिए भारत से बाहर जरूर रह रहे हैं, लेकिन भारतवासी होने के नाते स्वाधीनता प्राप्त करने के मामले में मदद

करना भी उनका कर्त्तव्य है।

लेकिन फिलहाल जिस मोहल्ले में रह रहे हैं वहाँ का हिन्दू गूजरों का परिवेश अच्छा नहीं है। जैसा तो घना बसा है, वैसा ही गन्दा है। सुभाष बाबू जैसे आदमी को वहाँ ला कर रखना असम्भव है।

अच्छा, दोस्त हाजी साहब से एक बार कहूँ क्या? यूँ तो वे हमेशा से अंग्रेज विरोधी रहे हैं। इसके अलावा उनका मकान भी बड़ा और साफ-सुथरा है। वहाँ उन्हें आराम से रखा जा सकता है।

लेकिन हाजी साहब इसके लिये तैयार नहीं हुये। बनियान और मोजे के व्यापारी की हैसियत से काबुल भर में उनका नाम था। कारखाना भी अपने ही घर में था.... बहुत लोग आया-जाया करते हैं।

ऐसी हालत में सुभाष बाबू जैसे आदमी को अपने पास रखना कम खतरे की बात नहीं....कब क्या हो जाये, कौन कह सकता है?

फिर भी और किसी भी मामले में सुभाष बाबू को मदद चाहिये तो वे मदद करेंगे। आखिरकार वह भी तो भारतवासी हैं।

उत्तमचन्द फिर चिन्ता में पड़ गये। अब क्या किया जाये?

कहाँ रखा जाये सुभाष बाबू को? किसके पास?

जाड़े की दोपहर। बाहर भयंकर बर्फीला तूफान, यहाँ तक कि नदी का पानी तक बर्फ बन गया था।

रास्ते पर आदमी न आदमजात। बहुत जरूरत न हुई तो ऐसे मौसम में कौन मौज करने निकलेगा? किस कदर बाहर बर्फ गिर रही थी....सारे बदन में सूई-सी चुभ रही थी।

'नमस्ते उत्तमचन्द जी।' ठीक चार बजे थे जब भक्तराम ने दुकान में कदम रखा।

'आप क्या अकेले ही आये हैं?' उत्तमचन्द ने ऊपर देख कर पूछा।

'नहीं, सुभाष बाबू भी आए हैं। वहाँ वह नदी के किनारे खड़े इन्तजार कर रहे हैं।'

पास जाते ही उत्तमचन्द अवाक् रह गये। यह क्या?' ये कौन से सुभाष बाबू हैं? दाढ़ी से भरा चेहरा। शरीर पर गन्दी शर्ट और सलवार। गले में उससे भी ज्यादा गन्दी चादर। मानों विश्वास ही नहीं होता है।

हालांकि भक्तराम से सब कुछ सुन चुके थे फिर भी देश को स्वाधीन करने के लिए सुभाष बाबू इतना कष्ट सहन करेंगे, यह वह स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे।

'मेरे पीछे-पीछे आइये।' क्षण भर में उत्तमचन्द ने तय कर लिया—'लेकिन एक

साथ नहीं। एक-एक करके आइए वरना शक हो सकता है।'

किसी तरह से अपनी बात खत्म करके उत्तमचन्द ने सामने की तरफ चलना शुरू कर दिया।

आवश्यक दूरी बनाये रखते हुये अब भक्तराम ने उनका अनुसरण किया। और अन्त में सुभाष चले।

लगातार देर तक बर्फ पर खड़े रहने की वजह से उनके पाँव सुन्न हो गये थे, सुभाष को पता तक नहीं था। पता तब चला जब आगे पाँव बढ़ाया। उसी वक्त शरीर का वजन सँभाल न सकने के कारण बरफ की सिल पर धड़ाम से गिरे। फिर उठने की कोशिश की, फिर गिर गये। इस तरह से कई बार गिरे।

हाथ-पाँव छिल गए। चोट लगी जगह से खून की धार बह निकली। फिर भी कोशिश करते रहे। साथी लोग आगे बढ़ गये थे। उनसे पिछड़ जाने से काम कैसे चलेगा ?

इसी तरह से उत्तमचन्द के घर पहुँचे।

सुभाष बुरी तरह से डगमगा रहे थे। आँखों के आगे अंधेरा छाया जा रहा था। यूँ लग रहा था परिचित दुनिया धीरे-धीरे खिसकती जा रही है....सब कुछ मिल-मिला कर एकाकार हुआ जा रहा है।

पलट कर देखने पर सुभाष की शोचनीय दशा देखी तो दोनों ने आकर उन्हें सहारा दिया और पकड़ कर दुमंजिले पर ले गये। ठंड से सारा शरीर जम सा गया था। शरीर से गीले कपड़े उतार कर फौरन सेंकना जरूरी था। उपयुक्त सेवा के फल-स्वरूप घंटे भर में सुभाष स्वस्थ हुये। उन्हें पूरा आराम चाहिये था।

लेकिन आराम कहाँ ?

अचानक छोटी सी एक घटना को केन्द्रित कर परिस्थिति जटिल हो गई।

रात के लगभग दस बजे होंगे।

सिरहाने रेडियो बज रहा था। बंगला गाना। कलकत्ते के रेडियो स्टेशन से कोई मधुर कण्ठ से बंगला गीत गा रहा था।

मन में अद्भुत एक आवेग छा रहा था सुभाष के। संसार में बंगला भाषा, बंगला गाने की तुलना नहीं हो सकती।

तभी घटी यह घटना।

अचानक ही, पता नहीं क्यों, नीचे के किरायेदार रोशनलाल ने बिना किसी पूर्व-सूचना के कमरे में प्रवेश किया। इधर-उधर देखते ही, अचानक उसका सारा शरीर थर-थर, थर-थर काँपने लगा।

कौन ! कौन ! यहाँ इस तरह से कौन बैठा है ? यह चेहरा तो कोई भूल नहीं सकता ?

अजीब परिस्थिति....कमरे में उपस्थित हर प्राणी वाक्य रहित, खामोश। हर किसी के चेहरे पर शक की छाया पड़ी।

अभी इसका इन्तजाम करना चाहिये। रौशनलाल को कुछ कहना जरूरी है। समझाना चाहिये।

सब व्यर्थ। उससे पहले ही, किसी को तैयार होने का मौका दिये बगैर, रौशनलाल झटके से निकला और सीढ़ियों से नीचे उतर गया। दुबारा लौट कर देखा तक नहीं।

दुश्चिन्ता से उत्तमचन्द का चेहरा उतर गया। काफी रात थी, इसलिये डर की कोई बात नहीं थी, लेकिन अब सुबह जागते ही सबसे पहले रौशनलाल को पकड़ना होगा। कैसे भी हो, उसका मुंह तो बन्द करना ही है।

पर रौशनलाल कहां ?

दूसरे दिन नींद से उठे तो उत्तमचन्द चकित रह गये। रौशनलाल नहीं था। किसी से कुछ कहे बगैर पत्नी-पुत्र को लेकर कहीं भाग गया था।

उत्तमचन्द को लगा मुसीबत सामने आ गई है। नहीं, अब देर करना ठीक नहीं। जितनी जल्दी हो सके बोस बाबू को कहीं और हटा देना चाहिये। रौशनलाल के कारण दुर्घटना घटित होने में समय ही कितना लगेगा ?

दूसरे ही दिन फिर सुभाष सड़क पर आकर खड़े हुये। उनके साथ दुर्दिन का साथी भक्तराम। पर इस बार लाहौरी गेट की सराय में नहीं, उत्तमचन्द की परिचित सराय में ठहरे।

कलकत्ते से पेशावर....उसके बाद पहाड़-पर्वत लांघते, पार करते काबुल ! इतना लम्बा रास्ता तय करने में सुभाष को कम झंझट-झमेलों और कष्टों का सामना नहीं करना पड़ा था। इसकी क़ीमत भी चुकानी पड़ी थी। फिर भी सुभाष, सुभाष ही ठहरे। हर मुसीबत की उपेक्षा कर, दिन पर दिन, दृढ़ कदमों से आगे ही बढ़ते रहे।

परन्तु अब ऐसा करना संभव नहीं हुआ। कुछ भी हो, मानव शरीर है....कितना सहन करे ?

चार दिन भी नहीं बीत पाये थे कि भक्तराम घबड़ाये हुये से, भागे-भागे उत्तमचन्द के पास आये। बोस बाबू बहुत बीमार हैं। बुखार और पेचिश....एक साथ दोनों। अब क्या किया जाये ?

उत्तमचन्द बड़े सोच-विचार के बाद सुभाष को फिर अपने यहां ले आये। अब रौशनलाल से भी उतना खतरा नहीं था। अगर रहता तो अब तक शहर में हल्ला मच गया होता। जब ऐसा कुछ नहीं हुआ तब समझना चाहिये कि डर के मारे ही रौशनलाल ने इस बारे में किसी से कुछ कहा न होगा।

फिर भी स्थाई व्यवस्था न हो सकी। इस दफा बाधा दी स्वयं उत्तमचन्द की पत्नी ने।

'ये दो आदमी कौन हैं ?'

'ये लोग यहां क्यों हैं ?'

'इनका इरादा क्या है ?'

'ये लोग ऐसे-वैसे आदमी नहीं है।' उत्तमचन्द ने समझाने की कोशिश की—'बिल्कुल देहाती आदमी हैं। खरीद-फरोश के लिये शहर आये है। दो दिन बाद लौट जाएँगे।'

'तुमने मुझे समझा क्या है ?' सुनते ही उत्तमचन्द की पत्नी बिगड़ गईं—'अगर ऐसी ही बात है तो रात-दिन कानाफूसी क्यों करते रहते हो ? इसके अलावा हर वक्त उनके कमरे की जंजीर बाहर से क्यों चढ़ी रहती है ? ज़रूर ये लोग कोई भागे हुये क़ैदी हैं।'

'चुप ! चुप ! किसके लिये क्या कह रही हो ?' मामला बिगड़ते देख उत्तमचन्द को सब कुछ बताना पड़ा—'जानती हो वह कौन है ? तुमने सुभाष बोस का नाम सुना है न ? यही वह सुभाष बोस है।'

सुभाष बोस ? सुन कर तो उत्तमचन्द की पत्नी सन्नाटे में आ गईं।

राष्ट्रपति सुभाष बोस ? आजीवन विप्लवी रहे....वही सुभाष बोस। भारत के लाखों लोगों की आशा, आकांक्षा के प्रतीक, सिंहपुरुष सुभाष बोस ने आकर उनके गरीब-खाने में आश्रय लिया है ? इतनी खुशी, यह गौरव....हाय वह क्या करे ?

न ! अब सुभाष बाबू को वह कहीं नहीं जाने देंगी। जब-तक वह काबुल में रहेंगे तब-तक कितना भी कष्ट क्यों न हो, उन्हें यहीं रहना पड़ेगा। अब दूसरी जगह नहीं जा सकते।

उचित चिकित्सा और सेवा पाकर देखते ही देखते सुभाष पहले की तरह फिर स्वस्थ हो गये।

इस मामले में लड़की माँ से दो कदम आगे थी। रह-रह कर वह अनुशासन करती—'तुमको यह सब खाना है। कुछ भी नहीं फेंकोगे।'

'लेकिन मुझसे अब खाते नहीं बन रहा है बेटी।' सुभाष कातर स्वरों में कहते।

'अरे ! क्या कह रहे हो ? तुमसे तो मैं परेशान आ गई हूँ। लो, जल्दी से खा लो। नहीं तो मैं बहुत गुस्सा हो जाऊँगी।'

मजबूर होकर सुभाष को स्नेह-भरा यह उलहना बरदाश्त करना पड़ता। उपाय भी क्या था ? संसार भर में शायद माँ का यही एक रूप है। इन्हें क्या इतनी आसानी से टाला जा सकता है ?

जाड़ा ख़त्म हो रहा था। ज़रा-ज़रा सा करके काबुल के पहाड़ी भागों में बर्फ गलना शुरू हो गई थी।

सुभाष चिन्तित थे। फरवरी खत्म होकर मार्च का महीना आ गया, लेकिन कहीं कुछ नहीं। किसी तरफ से आशा की एक किरण तक नहीं दिखाई दे रही थी।

इस बीच, जर्मन राजदूत के निर्देशानुसार उनके बताये व्यक्ति सिमेन्स कम्पनी के

हेर थॉमस से बार-बार पता करने पर भी वही एक ही उत्तर मिला है। 'बर्लिन कार्य-कर्ताओं से अभी कोई सूचना नहीं आई है। इन्तजार कीजिये।'

लेकिन इस तरह कितने दिन इन्तजारी की जा सकती है?

कब सूचना आए, क्या पता? और आयेगी भी या नहीं, इसे कौन जानता है।

नहीं! अब इन्तजारी करना बेकार है। जो कुछ करना होगा, खुद ही करना होगा। लेकिन क्या किया जाये?

सोचते-सोचते अन्त में एक निश्चित सिद्धान्त पर आ पहुँचे सुभाष।

थोड़ी दूर पर है रूस की सीमा। जैसे भी हो सके, उसी सीमा को पार कर, रूस में प्रवेश करना होगा। इसके लिये एक ऐसे आदमी की जरूरत है जो इन्हें इस मामले में पूरी सहायता पहुँचा सके।

उत्तमचन्द ने ऐसे आदमी का पता बताया। पेशावर का याकूब खाँ एक भागा हुआ खूनी कैदी है। बहुत दिनों से काबुल में छिपा हुआ है। इस मामले में उससे भी ज्यादा गुणी है, उसका साला, जो न सिर्फ खूनी है बल्कि डकैत भी है। वह रहता भी है रूसी सीमाप्रान्त पर। अगर बोस बाबू की राय हो तो वह इन दोनों से बात कर सकता है।

सुभाष ने हाँ कह दिया। स्वाधीनता की लड़ाई में अमीर-गरीब, छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा, किसी की भी देन कम नहीं।

शहर के नामी सेंध काटने वाले चोर गगन की मामूली सी मदद ने मास्टरदा को कहाँ पहुँचाया गया था? मास्टरदा—चट्टगाँव के युवा विद्रोहियों के नायक मास्टरदा। इसलिये एक बड़े स्वार्थ के लिये इसी हालत में सम्मति न देने का कोई उचित कारण भी तो नहीं है।

याकूब खाँ तुरन्त तैयार हो गया। वही सुभाष और भक्तराम को रूसी सीमा प्रान्त तक ले जायेगा। उसके आगे पहुँचाने की जिम्मेदारी उसके गुणवान साले की होगी।

मेहनताना तय हुआ सिर्फ सात सौ अफगान मुद्रा, जिसमें से चार सौ अग्रिम चाहिये। इसी के साथ चाहिये साले साहब के लिए लुंगी, बनियान जैसे एक आध उपहार।

तारीख तय हुई....२४ फरवरी।

इस बार यात्री हुए तीन। सुभाष, याकूब खाँ और भक्तराम। जानाबाद तक बस पर जाना होगा, उसके बाद पदयात्रा।

एक दिन पहले से भक्तराम की दौड़-धूप शुरू हुई। इकरारनामे के मुताबिक आज ही याकूब खाँ को चार सौ रुपये देने होंगे। पहले से ही बस का टिकट खरीदना होगा।

अंत में अपने लोगों के लिए भी छोटी-मोटी जरूरत की चीजें खरीद लेनी हैं। इसी के साथ याकूब खाँ के गुणवान साले के लिए लुंगी और बनियान जैसा उपहार भी खरीदना है।

सब काम से निपट कर भक्तराम डेरे की तरफ लौट रहे थे कि अचानक कुछ सोच कर हेर थॉमस की दुकान में घुस गये। देख लिया जाये, अगर किसी तरह की कोई खबर आई हो। हालांकि जाना बेकार है, रोज ही तो वही एक जवाब मिलता है— 'बर्लिन से कोई खबर नहीं आई है'....फिर भी देख लिया जाये।

बात खत्म करके दौड़ते हुए डेरे पर वापस आये भक्तराम।

—'खबर आ गई है बोस बाबू, खबर आ गई है। आपको अभी एक बार इटैलियन एम्बैसी जाना पड़ेगा। उनके राजदूत एल्बर्ट कोरानी के साथ आपको तुरन्त मिलना है। वे आपसे मिलने के लिए रात को सात से आठ के बीच इंतजार करेंगे।'

भक्तराम के साथ इटैलियन एम्बैसी में पहुँचते ही राजदूत एल्बर्ट कोरानी ने उनका हार्दिक स्वागत किया। बर्लिन से खबर आई है। सिनोर बोस की यथासम्भव मदद करने को तैयार हैं।

झंझट शुरू हुआ रूसी सरकार के सिद्धांत पर। वे सिनोर बोस को वीसा देने के लिए राज़ी नहीं हैं। क्योंकि इसी बात पर ब्रिटिश सरकार के साथ गलतफहमी पैदा हो जाये, इसके लिए वे तैयार नहीं।

हालांकि रूस पर बहुत दबाव पड़ रहा है....लगता है जल्दी ही कोई फैसला होगा। इसीलिए सिनोर बोस कुछ दिन और तकलीफ उठा कर इंतजार कर लें। और हाँ, इस मामले की आज से सारी जिम्मेदारी इटैलियन एम्बैसी की होगी....जर्मन एम्बैसी या किसी और की नहीं।

कूटनीतिक वार्तालाप के लिए उस रात सुभाष को वहीं रहना पड़ा। भक्तराम अकेले लौट आये। इधर उत्तमचन्द इंतजारी कर रहे थे। लौट कर उन्हें भी सब बताना जरूरी था।

दूसरे दिन सुबह होते ही भक्तराम जल्दी से निकल पड़े।

काम बहुत करना था। पहले जाना होगा याकूब खाँ के पास। भरोसा जब मिला है तब अब रूसी सीमा पार करने का कोई सवाल नहीं उठता है। रुपये चले गये, जाने दो, याकूब खाँ को बता तो देना चाहिये। वहाँ से जाना होगा, शहर से काफी दूर— 'दारूल अमन' नामक एक जगह।

इटैलियन एम्बैसी के सेकेंड सेक्रेटरी के साथ बोस बाबू वहाँ इंतजार करेंगे, यही तय हुआ है। उन्हें वहाँ से लाना होगा।

जब दोनों दारूल अमन से पैदल वापस आये तब सारा शहर बर्फ से ढँक चुका था। उस पर कृष्णपक्ष की रात। दो हाथ दूर की चीज भी नहीं दिखाई पड़ती। फिर भी दोनों का हृदय आशा और आनन्द से भरपूर था। इतने दिनों बाद कहीं जा कर आशा की किरण फूटी है। देखा जाये, अब क्या होता है।

फिर इंतजार शुरू हुई....वही थकाने वाली घड़ियाँ। और कितने दिन? कब इटैलियन एम्बैसी से खबर आयेगी? कब?

खबर मिली १२ मार्च को....दोपहर में।

अचानक उस दिन इटैलियन राजदूत की पत्नी मिसेज़ कोरानी उत्तमचन्द की दुकान पर आईं। अच्छी खबर है....रूसी सरकार की अनुमति मिल गई है। सिनोर बोस को दो-चार दिन के अंदर ही अंदर पासपोर्ट, तस्वीर और कपड़े-लत्ते तैयार कर लेना है।

कठिन समस्या थी। कपड़े-लत्ते के नाम पर एक आध जो भी हैं वह तो चाचा ज़ियाउद्दीन के नाप के हैं। इतने कम समय में कपड़े सिलवाना कैसे सम्भव हो पायेगा ?

'बिल्कुल संभव है।' जिम्मेदारी ली उन्हीं बनियान और मोजे के व्यापारी हाजी साहब और उनकी जर्मन पत्नी ने—'कम समय है तो क्या हुआ ? बोस बाबू के लिए असंभव को भी संभव किया जायगा।'

फोटो खिचवाने का वक्त आया लेकिन ऐसे चेहरे से तो काम नहीं चलेगा। ये तो चाचा ज़ियाउद्दीन हैं, सुभाष बोस कहाँ हैं ? फलस्वरूप लम्बे अरसे के बाद, मजबूर होकर सुभाष को बाहर आना पड़ा, ज़ियाउद्दीन के केंचुल में से।

भक्तराम जितना देखते उतनी ही भूख बढ़ती। उनकी आस नहीं मिट रही थी। हाँ, यही तो हैं असली सुभाष बोस हैं। बंगाल के शेर सुभाष बोस।

तैयारी शुरू हुई। सब व्यस्त। सभी चंचल, अब देर नहीं, वक्त आ गया है।

इस व्यस्तता के बीच, सुभाष चुपचाप बैठे नहीं थे। इस बीच उन्होंने अंग्रेजी में दो बहुमूल्य निबन्ध लिख डाले। एक चिट्ठी भी लिखी....फारवर्ड ब्लाक के एक्टिंग प्रेसीडेन्ट पंजाब के सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर को सम्बोधित कर के।

निबन्धों के नाम थे 'Gandhism in the light of Hegelian Dialectic' और 'A Message to my countrymen'

पहला पेंसिल से और दूसरा स्याही से लिखा था।

एक बंगला भाषा में चिट्ठी लिखी—मँझले दादा शरतबाबू के लिए।—'चिन्ता मत करना। मैं अच्छी तरह से हूँ।'

१५ मार्च। सुभाष और भक्तराम की उस दिन हाजी साहब के यहाँ दावत थी।

हाजी साहब और उनकी जर्मन पत्नी की इच्छा थी कि एक बार उनके ग़रीबखाने में बोस बाबू अवश्य ही आएँ। इसके अलावा वहाँ कुछ भागे हुए विप्लवी बोस बाबू से परिचित होने के लिए, प्रतीक्षा कर रहे थे।

खाने-पीने के बाद आलोचना आरम्भ हुई।

सुनते-सुनते सभी चंचल हो उठे। सभी उत्तेजित। हमलोग हैं। बोस बाबू के इस महान् प्रयास के पीछे हम सब हैं। आने वाले महासंग्राम का सामना करने से कोई पीछे नहीं हटेगा।'

अचानक तेज हवा के झोंके की तरह उत्तमचन्द आ पहुँचे—'आ गया। आ गया। फाइनल खबर आ गई है। कल बोस बाबू का सूटकेस दुकान पर ले जाकर रखना पड़ेगा। ठीक दोपहर के दो बजे एम्बैसी से आदमी आ कर ले जायेगा।'

परसों शाम को बोस बाबू को जाना पड़ेगा इटैलियन मित्र क्रेसिनी के घर। वहीं

से उन्हें रात बीतते चल देना पड़ेगा यूरोप के लिए।

कमरे में मौजूद, सभी, उत्तेजना से कांप उठे। सभी के दिल में एक ही बात गूंज उठी—'सुभाष बाबू की दु:साहसिक चेष्टा सार्थक हो। बोस बाबू जिन्दाबाद।'

१७ मार्च। समय आ गया। अब सुभाष को उत्तमचन्द के घर से विदा लेना है।

अकथनीय पीड़ा से हर कोई मौन था। बोस बाबू चले जा रहे थे। मन नहीं मान रहा था, फिर भी उन्हें जाने देना है। जिन्हें माँ का स्नेहांचल न रोक सका, उसे कोई और रोक सके, किसकी हिम्मत है?

'फिर कब लौटोगे, बताओ?' आँखें छलछला आई उत्तमचन्द की छोटी लड़की की।

जैसे ही काम खत्म हो जायेगा, मैं लौट आऊँगा बेटी।' प्यार से सुभाष ने उसे अपने पास खींच लिया।

उत्तमचन्द के घर से हाजी साहब के घर। काबुल-निवासी इन भारतीयों का ऋण वे कभी नहीं भूल सकेंगे। आज कृतज्ञतापूर्वक सभी से विदा लेना आवश्यक है।

शाम को इटैलियन मित्र क्रेसिनी के घर पहुँचे। साथ में भक्तराम। निमन्त्रित अतिथि के रूप में थोड़ी ही देर में उत्तमचन्द आये, लेकिन ज्यादा देर तक रुके नहीं। खाना खा कर फौरन अपने घर वापस चले गये।

सिर्फ भक्तराम रह गये। भविष्य की कार्य-प्रणाली पर अभी आलोचना शुरू होगी। इस वक्त उनका यहाँ रहना जरूरी है।

आलोचना शुरू हुई। एक-एक करके इटैलियन मित्र ने बहुत कुछ जानना चाहा।

'सिनोर बोस के चले जाने के बाद इटैलियन एम्बैसी के माध्यम से, भारत की तरफ से, उनके साथ कौन सम्पर्क बनाये रखेगा?'

'यहाँ उनके प्रतिनिधि के रूप में कौन रहेगा?'

'इटैलियन एम्बैसी इस बारे में किससे बातचीत करेगी?' बहुत सारे प्रश्न। लेकिन सब का एक ही उत्तर।

भक्तराम! भक्तराम! भक्तराम!

इसके अलावा आगामी संग्राम के लिए खूखार उपजाताय सरदारों के साथ सम्पर्क बनाए रखने का काम भी भक्तराम ही करेंगे। भक्तराम ही अकेले सौ के बराबर हैं।

उस रात क्रेसिनी के गेस्ट हाउस में दोनों के सोने का इन्तजाम हुआ।

देखते ही देखते सुभाष गहरी नींद में सो गये। पर नींद नहीं थी, भक्तराम की आँखों में। रात का अंधकार चीर कर कहीं से करुण स्वर बहता आ रहा था।

कितनी ही बातें याद आ रही थीं। २६ जनवरी की सुबह, मुँह अंधेरे, पेशावर से यात्रा शुरू हुई थी। उसके बाद से एक साथ कितने दिन, कितने क्षण, दु:ख-सुख-दर्द और न जाने कितनी सीमाहीन रातें उनकी दूसरों के ठिकानों पर बीती थीं।

आज सब कुछ ख़त्म होने जा रहा है। फिर कभी वे लोग इस तरह से मिल सकेंगे या नहीं, कौन जाने। इसका जवाब दे सकता है एकमात्र—आने वाला भविष्य।

उस वक्त सूरज ठीक से निकला तक नहीं था। रास्ते अंधेरे! पेड़-पौधे, नदी-पहाड़ सभी रहस्यमय हो रहे थे।

ठीक उसी समय, इटेलियन एम्बेसी से एक कार आकर क्रेसिनी के घर के सामने रुकी।

कार पर सिर्फ चार लोग थे। डाक्टर वेलेंगार, एक जर्मन, एक इटेलियन डाकिया और एक यूरोपियन ड्राइवर। बाकी एक और आदमी। सुभाष नहीं। ज़िया-उद्दीन भी नहीं। सिनोर ऑरलेन्डो मैजोट्रा। सुभाष का नया इटेलियन नाम। पासपोर्ट में भी यही नाम है।

सभी से विदा लेकर सिनोर ऑरलेण्डो मैजोट्रा रूपी सुभाष अब लम्बे-लम्बे डग भरते हुए कार की तरफ बढ़ गए। विदा दोस्त, विदा! फिर भेंट होगी। भेंट होगी स्वाधीन भारत में।

अन्त तक भक्तराम जाती हुई गाड़ी की तरफ देखता रहा। छाती फटी जा रही थी, उसकी ही प्रतिछाया चेहरे पर झलक आई थी।

बोस बाबू चले जा रहे हैं। वह यहीं अकेलेपन का बोझ लिये पड़ा रह गया। उसे सान्त्वना देने वाला कोई नहीं। कोई नहीं।

यह सब क्षण भर के लिए हुआ होगा। दूसरे ही क्षण भक्तराम ने अपने को संभाल लिया।

नहीं, नहीं, कोई दुःख नहीं। किस बात का दुःख? यही तो वह चाहता था। यही तो होना उचित था। तुम तो साधारण मनुष्य नहीं हो। स्वाधीनता प्राप्त किये बगैर हृदय की दुर्बलता प्रकट करना तुम्हें शोभा भी तो नहीं देता।

भगवान् तुम्हारा सपना सार्थक करे। भारत स्वाधीन हो। हे स्वाधीनता के अग्रदूत, तुम्हें शत-शत प्रणाम।

१९४१ का साल। १८ मार्च।

तभी प्रातःकाल की पहली छटा ने आँखें खोली थीं। रास्ते पर एक्का-दुक्का लोगों ने चलना शुरू किया था।

भक्तराम धीरे-धीरे चले जा रहे थे। सब, जो कुछ जहाँ था वैसा ही है। कहीं कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सब कुछ ठीक भी रहेगा। अपने नियमानुसार चलता रहेगा। अगर नहीं हैं, तो यहाँ सुभाष नहीं हैं।

लगभग डेढ़ महीने काबुल में बिता कर, अभी, कुछ ही देर पहले, वे युद्धरत यूरोप के लिए रवाना हुये हैं। फिर किसी दिन मुलाकात होगी या नहीं, कौन जाने।

उत्तमचन्द से विदा लेकर दूसरे ही दिन भक्तराम हिन्दुस्तान के लिए चल दिये।

सुभाष चले गये है। फिलहाल उसकी छुट्टी। इस बीच उनके कहे मुताबिक दूसरे काम खत्म करने हैं।

पहले लाहौर गये। फारवर्ड ब्लॉक के एक्टिंग प्रेसीडेन्ट सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर इन दिनों वहीं थे। सुभाष बाबू की लिखी जरूरी चिट्ठियाँ उन तक पहुँचा देना जरूरी है।

२८ मार्च। लाहौर से कलकत्ते। उद्देश्य था—मँझले भाई साहब शरत बाबू से मिलना। सुभाष बाबू की चिट्ठी और दोनों निबन्ध उन्हें देना था।

पर इस बार अकेले नहीं। उनके साथ थे दोस्त हरमहिन्दर सिंह। इनका 'सुभाष-अन्तर्ध्यान-पर्व' के साथ भले ही कोई सम्बन्ध नहीं था, पर कीर्ति किसान पार्टी के वे एक सक्रिय व विश्वस्त कार्यकर्त्ता थे।

भक्तराम के मुँह से एक-एक बात सुनते-सुनते खुशी के आवेग और गर्व से बार-बार शरत बाबू की आँखें भर आतीं।

अनजाने में ही मन में एक नन्हा, प्यारा सा नाम, मधुर संगीत की ध्वनि-सा झंकृत होता रहा! सुवी! सुवी! सुवी!

उनके बड़े लाड़-प्यार और स्नेह का पात्र सुवी। आधी पृथ्वी के अधीश्वर ब्रिटिश साम्राज्य की सारी शक्ति को तुच्छ करके वे अपने लक्ष्य की तरफ बढ़ गये हैं। अब उनकी असली लड़ाई शुरू होगी।

'एक बात।' बहुत ही कुण्ठा के साथ शरत बाबू ने पूछा, 'भाई, तुम्हें क्या रुपये-पैसे की जरूरत है?'

'मिलता तो अच्छा ही होता।' हँस कर भक्तराम बोले—'दो दिन बाद, बोस बाबू के निर्देशानुसार मुझे फिर पहाड़-पर्वत लाँघ कर भागना पड़ेगा। मेरे पास वक्त ही कहाँ है?'

'ठीक है। मैं इन्तजाम करता हूँ।' हँसते-हँसते शरत बाबू बोले—'आश्चर्य की बात है, इस बात का मुझे ध्यान ही नहीं था। उसकी भाभी ने ही मुझे याद दिला दिया। सुवी की बात मुझसे ज्यादा उसकी भाभी ठीक से समझती हैं।'

'मैं जानता हूँ।' भक्तराम ने मुग्धभाव से विह्वल हो कर बताया—'बातों ही बातों में स्वयं ही उन्होंने एक दिन बताया था कि मैं जो भी जिद्द करता, माँगता सब अपनी भाभी से। वह भी दूसरी माँ हैं।'

शरत बाबू के कहने पर दोस्त हरमहिन्दर सिंह के साथ भक्तराम अब मिलने गए बी० वी० के उत्तरदायित्वशील सम्मानीय नेता सत्य बख्शी से। ये सुभाष के अन्तर्ध्यान पर्व के मुख्य सहायकों में से एक थे।

वहाँ भी वही एक दृश्य। एक सी ही व्याकुलता।

'सुभाष अच्छी तरह से हैं न? रास्ते में उन्हें कोई तकलीफ तो नहीं हुई?'

'तकलीफ ?' बहुत ही दुःखभरी हँसी हँसे भक्तराम, 'पेशावर से काबुल तक का रास्ता कितना दुर्गम और विपदा-सम्पन्न है, यह मैं आपको कह कर नहीं समझा सकूंगा बख्शी बाबू। मैं तो यही सोच कर आश्चर्य करता हूँ कि बोस बाबू के लिये यह सम्भव कैसे हुआ! सिर्फ भगवान् का आशीर्वाद साथ था। वरना अभ्यास-रहित व्यक्ति इन रास्तों पर चलने की कल्पना तक नहीं करता। ईश्वर की कृपा से, तकलीफ होने पर भी सुभाष बाबू निर्विघ्न इस रास्ते को पार करने में सफल हुये थे।'

'अगला प्रोग्राम क्या है ?' सत्य बाबू ने जानना चाहा।

'काबुल वापस जाना। बर्लिन से सुभाष बाबू का जो कुछ भी संदेश आयेगा उसे रिसीव करूँगा। आपको विश्वासी आदमी साथ भेजना पड़ेगा। उसका काम होगा, काबुल पहुँच कर आने वाली लड़ाई की तैयारी के लिये उपयुक्त ट्रेनिंग प्राप्त करना। इटेलियन लीगेशन इस ध्वंसात्मक कार्यकलाप की ट्रेनिंग देगा। यही बोस बाबू का निर्देश भी है।'

'वहाँ कब तक लौट जाना चाहते हो ?'

'बहुत जल्द।'

'ठीक है। तुम लौट जाओ। मैं बहुत जल्दी आदमी भेजने का इन्तजाम करता हूँ। वह पेशावर में तुमसे मिलेगा।'

उन दिनों बी० वी० के गुप्त कार्यकलापों का संचालन कर रहे थे श्रद्धेय जतीश गुहा। सत्य बाबू ने तुरन्त उनसे सम्पर्क स्थापित किया और सुभाष की योजना समझा दी। काबुल जाने के लिये एक विश्वासी लड़का चाहिये। किसे भेजा जाये ?

सहकर्मी कामाक्षा राय, विनय सेनगुप्ता, चन्द्रशेखर सेन, कमेट दासगुप्ता जैसे प्रमुख व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श शुरू हुआ।

इस काम की जिम्मेदारी दे कर किसे भेजा जाये ? लड़का मजबूत होना चाहिये।

'शान्तिमय गांगुली कैसा रहेगा ?'

'शान्तिमय गांगुली ? हमारा चंचल ? गुड सेलेक्शन। जैसा मेहनती है वैसा ही कर्मठ। हाँ, इस काम के लिये अनायास ही उसका भरोसा किया जा सकता है। तो फिर उसे ही भेजा जाये।'

४ अप्रेल को भक्तराम अपने दोस्त हरमहिन्दर सिंह के साथ लाहौर लौट गये। वहाँ से अकेले पेशावर चले गये। पहले से पहुँच कर एक सुरक्षित जगह ढूंढ़ कर रखना होगा, वरना साथी लोग पहुँच कर कहाँ ठहरेंगे ?

आश्रय मिला। इन्तजाम किया, सीमा प्रदेश के फारवर्ड ब्लाक के उन्हीं नेता अकबर शाह ने...जो सुभाष के अन्तर्ध्यान-पर्व के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। वहीं भक्तराम भी ठहर गये। अब साथियों के पहुँचने भर की देर थी।

बहुत इन्तजार नहीं करना पड़ा। १७ अप्रैल को लाहौर से दोस्त हरमहिन्दर सिंह आ गये। और उसी के दूसरे दिन आ पहुँचे शान्तिमय गांगुली। पेशावर के उसी गुप्त निवास-स्थान पर।

यात्रा शुरू हुई। प्रातःकाल। २१ अप्रैल को।

पर इस बार पहले वाले रास्ते से नहीं। जाना पड़ेगा 'मलाकन्द दर्रे' से हो कर....काफी चलना पड़ेगा। सुभाष की योजना को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिये उपजातीय सरदारों से सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी था।

बार्डर तक ताँगे पर गये।

इस मामले में सबसे अधिक मदद मिली, सीमा प्रान्त के गांधी अब्दुल गफ्फार खाँ साहब के दोस्त समुन्दर खाँ और उनके भतीजे जियारतगुल से। जियारतगुल साहब ने ही ताँगे वाले का वेश धारण करके उन्हें बार्डर तक पहुँचा दिया।

यात्री कुल चार थे। समुन्दर खाँ का दिया विश्वासी गाइड, शान्तिमय गांगुली, हरमहिन्दर सिंह और स्वयं भक्तराम।

पहनावे और कपड़ों से बिल्कुल पठान लग रहे थे। देख कर कोई कह नहीं सकता था कि इन कपड़ों के नीचे छिपा है एक आदि और अकृत्रिम बंगाली।

क़रीब १ बजे मिली 'डिर-चित्रल' नदी। रस्सी के पुल से हो कर नदी पार हुये और अब शुरू हुआ दुर्गम पहाड़ियों को लाँघते हुये आगे बढ़ने का अभियान। सिर्फ रास्ता और रास्ता। चढ़ाई और उतराई।

रात एक पहाड़ी गाँव में बिता कर दूसरे दिन तड़के फिर चल दिये। सारे दिन चलने के बाद 'वारंग' नामक एक पहाड़ी गाँव मिला। इस गाँव के अफेन्दी साहब हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं—और भक्तराम के पूर्व-परिचित मित्र। इसलिये आश्रय मिला।

दूसरे दिन 'चिनगाई'। इस बार साथ हो लिये कल रात के आश्रयदाता अफेन्दी साहब। एक भारतीय के नाते, भारतीय स्वाधीनता संग्राम में वे कैसे पीछे रह सकते थे? 'चलो, कुछ दूर साथ चल कर छोड़ आऊँगा।'

यहीं पर पेशावर से साथ लिया गाइड छोड़ दिया गया—'अब भाई, तुम लौट जाओ। समुन्दर खाँ को हमारा सलाम कहना। उन्हें बहुत-बहुत शुक्रिया भी।'

जाकर रुके सोनावर हुसैन के घर 'सोयान किल्ला' पर। वे इस इलाके के मुकुट-विहीन सम्राट् कहलाते हैं। पलक झपकने भर में, वे चाहें तो हजारों की तादाद में खूंख्वार नौजवान पठानों को तैयार कर सकते हैं।

सुभाष की योजना को सजीव बनाने के लिये सोनावर साहब जैसे उपजातीय सरदारों की मदद जरूरी है।

सुनते ही सोनावर साहब उछल पड़े।

'अरे वाह! यह हुई मर्द के बच्चे जैसी बात! हाँ, मैं तैयार हूँ। मैं वादा करता हूँ कि हुक्म पाते ही मैं तुरन्त अंग्रेज दुश्मनों के खून से पहाड़ी मिट्टी लाल कर

दूँगा । मेरी जान हाज़िर है ।'

लम्बा रास्ता तय करके अन्त में, २६ तारीख को सब पहुँचे 'सफ़ी ट्राइबल' इलाके में । ठहरे सोनावर साहब के दोस्त मोहम्मद क़लीम साहब के यहाँ ।

२७ को पहुँचे 'लोहार गाँव' । यहाँ के निवासी बेहद खूंख्वार लेकिन स्वाधीनता-प्रेमी । बल्कि कहा जा सकता है कि राइफल बनाने के मामले मे इनका कोई मुक़ाबिला नहीं कर सकता । निशाना भी इनका उतना ही अचूक । छोटे-बड़े सब इस मामले में बराबर की क़ाबिलियत रखते ।

'हाँ, हम भी आपके साथ है ।' आगे बढ़ आये वहाँ के सम्मानित युवक अब्दुल रज़ाक साहब ।

'हममें से कोई पीछे नहीं रहेगा । चलो, मैं भी तुम लोगों के साथ कुछ दूर तक चलता हूँ ।'

दूसरे दिन 'कुदाखिला ।' यहाँ के मिर्जा साहब अत्यन्त प्रतापी उपजातीय सरदार माने जाते हैं । वंशानुक्रम से वे अंग्रेज विरोधी । पहाड़ी इलाके में कुछ भी करने के लिये ऐसे आदमी की मदद ज़रूर लेनी चाहिए ।

एक ही बात मिर्जा साहब ने भी दोहराई—'हाँ, मैं तैयार हूँ । सिर्फ हुक्म की इन्तजारी है । हुक्म मिलते ही फौरन....बस ।'

यहीं से लौट गये भक्तराम के दोस्त अफेन्दी साहब और लोहार गाँव के तरुण सरदार अब्दुल रज़ाक साहब ।

फिर चार बच गये । भक्तराम, हरमहिन्दर सिंह, शान्तिमय गांगुली और अफेन्दी साहब का दिया एक नया गाइड ।

रास्ते भर, हर जगह से सम्पर्क बनाते हुये, अन्त में, एक दिन हाजिर हुये अफगान सीमा के किनारे एक गाँव में ।

इस बार मुश्किल आई शान्तिमय की ओर से । तारुण्य की शक्ति ने अब तक किसी बात की परवाह नहीं की थी, लेकिन अब वे लाचार हो गये ।

लम्बा रास्ता तय करने के कारण इस बीच, उनके दोनों पाँव विषैले घावों की वजह से बेकार हो गये थे । इस हालत में रास्ता चलना तो दूर, खड़ा होना भी तक-लीफदेय था । लाचार हो कर एक टट्टू किराये पर लिया गया जो शान्तिमय को ले चलेगा । इसके अलावा दूसरा रास्ता भी क्या था ? काम अधूरा छोड़ा नहीं जा सकता था । जैसे भी हो, जाना तो होगा ही ।

क़रीब तीन बजे मिली काबुल सड़क । नया गाइड यहाँ से विदा किया गया । ठहरे कलवर्ट के नीचे, ज़मीन पर लेटे । पर इसका दुःख नहीं । इतना वक्त ही कहाँ है कि अच्छा-बुरा देखा-समझा जाये ? कहीं भी हो, ठिकाना मिलना चाहिये ।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे जलालाबाद पहुँचे । अब कोई डर नहीं । भयानक पहाड़ी रास्ता यहीं खत्म हो जाता है । अब काबुल जाने वाली कोई बस पकड़ने भर की देर है ।

'यही वह जलालाबाद है।' भक्तराम बोले—'यहाँ सुभाष बाबू ने रात बिताई थी। इस घर में।'

'इस घर में ?' मुग्ध हो कर अपलक देखते रहे शान्ति बाबू। महान् विप्लवी के पद-स्पर्श से धन्य यह घर, उनके लिये तीर्थ-स्थल है। इस घर की धूल भी उनके लिये पवित्र है।

जलालाबाद से ताँगे पर सुल्तानपुर पहुँचे। वहाँ से ट्रक पकड़ कर पहली मई को सीधे काबुल।

'सराय जाजिमान' में बीमार शान्ति बाबू को हरमहिन्दर के जिम्मे छोड़ कर भक्तराम उत्तमचन्द के घर की तरफ चल दिये।

बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई है। सब से पहले, उनसे मिल कर यहाँ की वर्तमान परिस्थिति की जानकारी प्राप्त कर लेनी है।

'आइये। आइये।' भक्तराम को देखते ही उत्तमचन्द ने सादर आह्वान किया—'हिन्दुस्तान से कब वापस आये ?'

'आज ही। कुछ देर पहले।' भक्तराम बैठते हुये बोले—'और बताइये, यहाँ का क्या हालचाल है ?'

'खबर अच्छी ही है। २८ मार्च को बोस बाबू सकुशल बर्लिन पहुँच गये हैं। वहाँ से जो सब मैगजीनें आई हैं उन्हीं में यह खबर छपी है। तस्वीर भी निकली है। इसके अलावा हाजी साहब के घर के पते पर उनकी चिट्ठी भी आई है। इसलिये उधर से तो निश्चित समझिये। चिन्ता का कारण दूसरा है।'

'कैसी चिन्ता ?' तुरन्त अलसाई नज़र तीक्ष्ण हुई भक्तराम की।

'कुछ दिन हुये एक अफ़गान उच्चपदाधिकारी जो कि गुप्तचर भी है, मेरे पास पता करने आया था। उसकी धारणा थी कि हमारे इस मोहल्ले में, कुछ दिनों पहले एक हिन्दुस्तानी मशहूर विद्रोही नेता और उसका एक साथी छुपे थे। कहाँ, किस घर में, किसके पास... इस तरह की बातें पूछ रहे थे।'

'आपने क्या कहा ?' भक्तराम ने पूछा।

'साफ मना कर गया। लेकिन कौन किसकी बात सुनता है ? बार-बार वही एक बात, एक ही सवाल। बाद में भी कई बार पता करने आया था। फिर भी शक होने पर भी अभी तक ठीक मालूम नहीं कर सका है।'

'भागे हुये विद्रोही का कोई नाम-पता बताया है।'

'नहीं, यह नहीं बताया है। लगता है जान-बूझ कर उस नाम को गुप्त रखा है। पर साथी का नाम बताया है।'

'क्या नाम बताया है ?'

'भक्तराम।'

'तो फिर पता चल गया है।' हँसने लगे भक्तराम—'कोई बात नहीं। जाने दीजिये।'

'हँसने की बात नहीं है भाई साहब।' डर कर उत्तमचन्द ने कहा, 'मालूम जब हो गया है तब संभल कर रहियेगा।'

'ठीक है, रहूँगा।' हँसते हुए भक्तराम ने उत्तर दिया, 'लेकिन निश्चिन्त रहिये। भक्तराम को गिरफ्तार कर सके ऐसा गुप्तचर सारी दुनिया में अभी पैदा नहीं हुआ है। इसका प्रमाण भी मिलेगा। खैर, अब चलता हूँ। नमस्ते।'

अब भक्तराम ने जाकर भेंट की इटेलियन मित्र, मिस्टर क्रेसिनी के साथ।

'बोस बाबू के कहने के मुताबिक कलकत्ते से आदमी आ गया है। अगला प्रोग्राम क्या है, बताइये।'

इटेलियन एम्बैसी के ज़रिये यह खबर तुरन्त बर्लिन में, सुभाष के पास पहुँच गई।

'हैलो, सिनोर बोस...मैं काबुल के इटेलियन एम्बैसी से बोल रहा हूँ।.... कलकत्ते से आदमी आ गया है। अगला कार्यक्रम बताइये।'

निश्चित समय पर बर्लिन से, ईथर तरंगों द्वारा बुलन्द आवाज़ सुनाई पड़ी—'मैं सुभाष बोल रहा हूँ।'

सिनोर बोस! सिनोर बोस! शोर मच गया पूरे इटेलियन दूतावास में। सिनोर बोस बात कर रहे हैं। उतनी दूर बर्लिन से बोल रहे हैं।

'कलकत्ते से जो आये हैं उनका नाम क्या है? सत्य बख्शी जेल के बाहर हैं? सत्य बाबू के मित्रों में से कोई जेल में तो नहीं है? अगर है तो उनका नाम क्या है?'

शान्ति बाबू के पैरों की हालत इतनी भयानक थी कि इन सवालों का जवाब वे इटेलियन एम्बैसी में जा कर नहीं दे सके। उत्तर दिया राजदूत एलवर्ट कोरानी ने खुद—शान्तिमय के लिखे वक्तव्य को पढ़ कर।

'सत्य बख्शी अभी नहीं पकड़े गये हैं। उनके दोस्त भी कोई कैद नहीं हैं। अस्त्र-शस्त्र....दूसरे साजो-सामान....और कार्य-निर्देश चाहिये। पर्वतीय इलाकों के सरदारों और कार्यकर्ताओं से सम्पर्क बना लिया गया है। सभी आदेश की इन्तजारी कर रहे हैं।'

जवाब में फिर सुभाष की तेजस्वी आवाज़ गूँज उठी—

'आग्नेयास्त्र के सम्बन्ध में अभी मेरे साथ राजनैतिक समझौता नहीं हुआ है। हालांकि बिना किसी समझौते के ही वे लोग मुझे हर तरह की मदद करने को तैयार हैं, पर मैं इसको मान लेने को तैयार नहीं हूँ। जब तक वे मुझे स्वाधीन भारत के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक उनसे किसी तरह की मदद लेना मेरे लिये सम्भव नहीं। इसलिये थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पर हाँ, जल्दी ही मैं बर्लिन रेडियो से अपने देशवासियों को अपना संदेश दे सकता हूँ।'

इस महान्, महत्त्वपूर्ण, ऐतिहासिक सिद्धान्त का उत्तर दिया राजदूत एलवर्ट कोरानी ने। उन्हें शान्तिमय ने कहने के लिये कहा—'हम प्रतीक्षा करेंगे। अफगान

पर्वतीय इलाकों में विद्रोह की आग धधक रही है । आपके सफल अन्तर्ध्यान से, भारत की जनता, आशा और उत्कण्ठा के साथ विप्लवियों की अनुरागी हो गई है ।'

ज्यों ही शान्ति बाबू स्वस्थ हुये, इटैलियन लीगेशन की तरफ से एक गुप्त बैठक बुलाई गई । यह बैठक बुलाई गई काबुल से पचीस मील दूर स्थित 'पाघमन' के एक पर्वतीय हेल्थ सेन्टर पर । राजदूत एलवर्ट कोरानी, मिसेज कोरानी, ऑन-जोलाटी, शान्तिमय, भक्तराम वगैरह धीरे-धीरे वहाँ जा पहुँचे । कोई छूटा नहीं ।

भक्तराम ने परिचय करवाया—'ये हैं शान्तिमय गांगुली । बोस बाबू का निर्देश पाकर ये ही कलकत्ते से काबुल आये हैं ।'

सभी शान्तिमय से बातचीत करके खुश हुये । स्वस्थ, बुद्धिमान, उज्ज्वल आँखों का जीवन्त युवक । यूँ लगा ट्रेनिंग का काम खूब कम समय में ये सीख सकेंगे ।

इसी तरह और भी कई बार बैठकें हुईं लेकिन कहाँ ट्रेनिंग ? कहाँ कुछ ? सब चुपचाप । सभी के चेहरे पर एक सहमा-सा हाव-भाव ।

स्पष्ट था, कहीं कुछ गम्भीर घटना घट गई है । बाहर से मालूम न होने पर भी भीतर की गरमाहट का अनुमान लग ही जाता है ।

एक महीना बीत गया । लेकिन हालात नहीं बदले । बल्कि युद्ध की परिस्थिति का ऐसा दबाव पड़ने लगा कि काबुल के इटैलियन और जर्मन एम्बैसी यूरोप से कटने लगे । हर तरफ खामोशी, सन्नाटा । यहाँ तक कि सुभाष की ओर से नई कोई खबर नहीं मिली । अगले कदम के लिये कोई आदेश नहीं आया ।

किसी तरफ से कोई खबर न पाकर फिर तीनों हिन्दुस्तान के लिये चल दिये ।

तय हुआ कि फिलहाल इटैलियन एम्बैसी के साथ उत्तमचन्द ही सम्पर्क बनाये रहेंगे । उनसे ज्यों ही कोई खबर मिलेगी, वे तुरन्त काबुल वापस आ जाएँगे । वरना तीन विदेशी युवकों का काबुल में इस तरह से रहना, खतरे से खाली नहीं ।

युद्ध की परिस्थितियाँ अत्यन्त जटिल थीं, उस पर काबुल रह सकें ऐसा न इनके पास वीसा था न पासपोर्ट । ऐसी हालत में मुसीबत आने में देर कितनी लगती है ?

और कुछ महीने बीते । इस बीच दो-तीन बार लाहौर जा-जा कर शान्ति बाबू ने भक्तराम से भेंट की । पर कोई खबर नहीं आई थी काबुल से ।

सन्देह होने लगा सत्य बख्शी और अन्य बी० वी० के कार्यकर्ताओं को ।

मामला क्या है ? यूँ लग रहा है कि किसी अंकगणित के जटिल प्रश्न में गड़बड़ी हो गई है । वरना यूँ तो होना नहीं चाहिये ।

अन्त में, बयालिस साल के जनवरी माह में शान्ति बाबू को खबर लाने के इरादे से भेजा गया । जरूर कोई दुर्घटना घटी है, वरना ऐसी खामोशी क्यों ? पंजाब की कीर्ति किसान पार्टी ही खामोश क्यों है ?

लाहौर पहुँचते ही रहस्य भेद हुआ । कीर्ति किसान पार्टी के नेताओं ने इस बार खुल कर अपने मन की बात बताई ।

जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया है, इसलिए भारतीय कम्यूनिस्टों के मतानुसार यह युद्ध अब 'जनयुद्ध' हो गया है। कीर्ति किसान पार्टी इस नीति की समर्थक है। इस हालत में वे अंग्रेज विरोधी नहीं हैं, बल्कि उनके साथ मिल कर ये लोग इस बात का प्रयास करेंगे कि कैसे फ़ासिस्टवाद का उन्मूलन किया जा सकता है। इसलिए सुभाष बोस या उनके कार्यकलापों के साथ वे किसी तरह का सम्बन्ध नहीं बनाए रख सकते।

आश्चर्य और विस्मय के आघात से स्तब्ध रह गए शान्ति बाबू।

जो कीर्ति किसान पार्टी शुरू से ही सुभाष के अन्तर्ध्यान होने के मामले से जुड़ी थी....आज उन्हीं का यह मनोभाव ?

मानता हूँ, जर्मनी ने रूस पर हमला किया है, लेकिन पिछले कल तक जो साम्राज्यवादी अंग्रेज हमारे शत्रु थे, वे आज, रातोंरात हमारे मित्र किस आधार पर बन सकते हैं ? अंग्रेजों के साथ हाथ मिलाने के अर्थ हुए साम्राज्यवाद का समर्थन करना।

'आपकी क्या राय है भाई साहब ?' भक्तराम की तरफ देख कर शान्ति बाबू ने प्रश्न पूछा।

'भाई साहब, मुझे माफ कीजिएगा।' स्पष्टरूप से मर्माहत भक्तराम के स्वर में वेदना गूंज उठी—'मुझे पार्टी का आदेश मानना ही होगा। फिर भी व्यक्तिगत रूप से मैं इस मामले में अपने को फँसाना नहीं चाहता हूँ। जिन्होंने मेरे भाई को फांसी पर चढ़ाया है, उनके साथ मैं हाथ नहीं मिला सकूंगा। किसी हालत में भी नहीं। मैं उनका दुश्मन हूँ। हमेशा दुश्मन ही रहूँगा।'

तुरन्त शान्ति बाबू लाहौर छोड़ कर कलकत्ता रवाना हो गए। अब देर नहीं करनी चाहिए। जितनी जल्दी हो सके कलकत्ता पहुँच कर पार्टी को खबर कर देना चाहिए।

फिर भी कुछ न हो सका। कीर्ति किसान पार्टी के असहयोग के कारण हुआ हो या किसी और कारण से, अनिवार्य विपत्ति से बच न सके।

फलस्वरूप, लाख कोशिश करने पर भी पुलिस जिन रहस्यों का पता नहीं कर सकी थी, अब उनके लिए कुछ भी गुप्त नहीं रह सका।

उनकी आँखों के सामने, साफ-साफ झिलमिलाने लगे बी० वी० के अग्निमंत्र में दीक्षाप्राप्त तरुणों के उज्ज्वल, उन्नत, लापरवाह चेहरे।

सत्य बख्शी, यतीश गुहा, कामाक्षा राय, सत्यव्रत मजुमदार, विनय सेनगुप्ता, शान्तिमय गांगुली, धीरेन साहाराय, सुबोध चक्रवर्ती, रातुल रायचौधरी, जगदीन्द्र सेन, जीतेन सरकार, नीरेन राय, सुधीर बख्शी वगैरह—कोई भी उनकी सूची से बचा नहीं।

काबुल के उत्तमचन्द, भक्तराम, बी० वी० के शुभाकांक्षी मित्र, फारवर्ड ब्लाक के प्रवीण नेता चट्टगाँव के मुनीरुज्जुमान इस्लामावादी साहब जैसे जाने-पहचाने नाम भी नहीं छूटे।

सिर्फ इतना ही नहीं, अब दिन की रोशनी की तरह उनकी आँखों के सामने,

उपजातीय इलाकों की तैयारी की बात भी आई। फलस्वरूप इतने दिनों की कोशिश, परिश्रम सब मिट्टी में मिल गया।

सबसे पहले रोका गया बी० वी० के दायित्वशील नेता सत्य बख्शी और यतीश गुहा को।

उधर उत्तमचन्द पकड़े गए। उन्हें तुरन्त काबुल से बहिष्कृत कर दिया गया।

रेडियो का व्यापार वहीं खत्म। लगभग लाखों का सामान, नीलाम कर दिया गया, पानी के भाव। सब कुछ गँवा कर अन्त में बन्दी हुए। एक आध रोज़ नहीं, बल्कि बहुत दिनों तक वे लौह कपाट के पीछे बन्द रहे।

केवल बच गए भक्तराम। आश्चर्य ! न जाने वे कहाँ खो गए। लाख कोशिश करने पर भी उनका पता न लग पाया। मानो हवा में गायब हो गए हों।

आगे आई मिलिट्री। इनका दावा मामूली था। मनुष्य को दुरुस्त करके उनके पेट से बात निकालना, पुलिस से ज्यादा, अच्छा वे जानते हैं। इसलिए कैदियों को हमें सौंप दिया जाय।

ठीक है। तुरन्त सत्य बख्शी और यतीश गुहा को, दिल्ले के लाल किले में भेज दिया गया। हिंसक दानव के पंजों के सामने। उसके बाद जो कुछ हुआ उसका अनुमान लगाना जरा भी मुश्किल नहीं।

उनका यह अंहकार झूठा नहीं था। उनके क़ायदे कानून वास्तव में अनूठे हैं। ऐसा निर्मम, अमानुषिक अत्याचार, यातना सिर्फ उन्हीं के द्वारा सम्भव था। कोई स्वस्थ व्यक्ति इसकी कल्पना तक नहीं कर सकता है।

'चुप क्यों हो ? अगर भला चाहते हो तो अभी बताओ। बताओ, सुभाष बोस को तुमने कहाँ भेजा है ? नहीं बताओगे ? सिपाही, शुरू हो जाओ।'

यातना देने के जितने तरीके थे, कोई भी नहीं बचा।

डंडा पिटाई, कम्बल धुलाई, अंगुली में पिन चुभोना, मलद्वार में रूलर घुसाना.... एक-एक करके सभी का प्रयोग हुआ।

इससे भी बचत नहीं। चलाए जाओ। जितना हो सके मारे जाओ। नए सिरे से शुरू करो। हाथों में दर्द हो तो दूसरे से कहो....फिर भी रुको नहीं।

बेहोश होने पर भी छुटकारा नहीं। कितनी देर तक इस तरह से रहेंगे ? कभी न कभी तो होश आएगा ही। फ़िर शुरू करो। जोर से चलाओ। और जोर से।

दाँतों पर दाँत दाबे, सत्य बाबू पड़े रहे। सुभाष न केवल उनके विप्लवी मित्र थे, सुभाष उनके अभिन्न-मित्र भी थे। सुभाष पर उन्हें गर्व था। इसलिए ऐसी एक भी बात वे नहीं कह सकते हैं जिससे स्वाधीनता अर्जन करने का, सुभाष का दु:साहसिक प्रयास विफल हो जाए। प्राण जाते हैं जाएँ, फिर भी ज़ुबान नहीं खुलेगी।

यह सोचने में भी आश्चर्य लगता है कि अस्वस्थ सत्य बाबू ने इतनी तकलीफ कैसे बरदाश्त की ? वह भी एक आध दिन नहीं, रोज-रोज। महीना-दर-महीना।

सहन न कर सके यतीश बाबू। दिन-पर-दिन ऐसी पैशाचिक यातना झेलते-

झेलते वे अचानक एक दिन बुरी तरह से अस्वस्थ हो गए ।

तुरन्त पर-राज्यग्रासी शासकों का माथा ठनका । अरे ! बात कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है । अब क्या किया जाए ? अच्छा-बुरा कुछ हो गया तो बेहद बदनामी होगी.... अच्छाई इसी में है कि छोड़ दो ।

छोड़ने से क्या होगा ? कहाँ गए वह प्राण चंचल हँसमुख यतीश बाबू ? कुछ दिनों बाद ही बी० वी० के सार्थक नायक मृत्यु की गोद में लुढ़क गए । उन्होंने स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में एक गौरवशाली भूमिका निभाई ।

बाकी बचे कामाक्षा राय, सत्यव्रत मजुमदार, धीरेन साहाराय, शान्तिमय गांगुली, विनय सेनगुप्ता जैसे प्रमुख बी० वी० कार्यकर्ता ।

इन लोगों ने फौरन छिप जाने में भलाई समझी । इनकी वाणी में दृढ़ता का स्वर गूंज उठा—'हम अभी नहीं मरे हैं । आज तक स्वाधीनता संग्राम के लिए बी० वी० ने कम मूल्य नहीं चुकाया है । हमने दिया है स्वास्थ्य और ताजे, जीते जागते प्राण ।

'ज़रूरत पड़ेगी तो हम भी देंगे । फिर भी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए, इस प्राणप्रण संग्राम को व्यर्थ नहीं जाने देंगे । जब तक शरीर में एक बूंद भी खून है, तब तक लड़ेंगे । विप्लवी नायक सुभाषचन्द्र बोस की जय ! विप्लवी संस्था बी० वी० ज़िन्दाबाद ! यह विप्लव दीर्घजीवी हो !'

कौन है यह बी० वी० ? बी० वी० की संज्ञा क्या है ?

सुदूर बर्लिन में रह कर भी सुभाष क्यों इस बी० वी० के समाचारों के लिए उत्कंठित और व्याकुल रहते हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए, मल्लिका, हमें बहुत पीछे जाना पड़ेगा । कलकत्ते के पार्क सरकस मैदान में अनुष्ठित इतिहास के एक अतीत अध्याय में ।*

---

* [भक्तराम और शान्तिमय गांगुली की दी रिपोर्ट पर अवलम्बित । भूपेन्द्र किशोर, रक्षित राय के सौजन्य से उनके ग्रन्थ 'सब की दृष्टि से बच कर'—सबार अलक्खे से तथ्य संग्रहीत]

फॉल इन वॉलेन्टियर्स ! लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट...

हज़ारों युवक ताल पर ताल मिलाए बढ़ते जा रहे थे। आगे बढ़ रही थी सुसज्जित नारी वाहिनी। आगे बढ़ती जा रही थी, स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सुभाष की एक अविस्मरणीय सृष्टि....बेंगाल वॉलेन्टियर्स।

साल १६२८। कलकत्ता कांग्रेस। सभापति थे पंडित मोतीलाल नेहरू। और स्वेच्छासेवक वाहिनी के सर्वाधिनायक (G. O. C.) थे सुभाष। इसी की तैयारी चल रही थी, कलकत्ता के पार्क सरकस मैदान में। कई दिनों से।

सचमुच ऐतिहासिक अधिवेशन था। क्योंकि सिर्फ कांग्रेस ही नहीं, बंगाल विप्लवियों के लिये भी, १६२८ साल के इस कांग्रेस अधिवेशन का बड़ा महत्त्व था।

कांग्रेस अहिंसा की नीति की समर्थक है। अहिंसा ही उसका मूलमंत्र है। उसके स्वाधीनता संग्राम का एकमात्र अस्त्र है अहिंसा।

ठीक इसी के विपरीत, अग्निमंत्र से दीक्षित थे ये युवा-विप्लवी दल। ये आवेदन-निवेदन, भाव-ताव जैसे मामलों पर विश्वास नहीं करते थे। इनकी एक ही बात थी—स्वाधीनता चाहिए ही चाहिए। अपनी शक्ति के बल पर प्राप्त करके रहेगे। इसके लिए एक बार मारोगे तो दस बार मार खाओगे।

दो विपरीतमुखी स्रोतों के बीच सेतु बना कर तैयार कर रहे थे देशबन्धु चित्तरंजन दास। इस बार सुभाष आगे आए गुरु के आदेश का अनुसरण कर, इस बार G. O. C. के रूप में सबसे पहले हाथ बढ़ाया बंगाल की इन विप्लवी संस्थाओं की ओर।

'तुम भी आओ भाई। सभी रास्ते स्वाधीनता के रास्ते हैं। इसलिए तुम भी इस अधिवेशन में भाग लो। हाथ मिला लो।'

सभी ने सुभाष से हाथ मिलाया। 'अनुशीलन', 'युगान्तर', पूर्णदास का दल, हेमचन्द्र घोष का 'मुक्तिसंघ' मास्टरदा-सूर्य सेन का दल, उत्तरी बंगाल की विभिन्न शाखाएँ...कोई नहीं बचा।

'हाँ, हम आपके साथ हैं। सब की सम्मिलित चेष्टा से, कलकत्ता का यह अधिवेशन, स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को एक नये रास्ते का पता बताएगा।'

तुम्हें ताज्जुब हो रहा होगा, मल्लिका। सोच रही होगी—ऐसा कैसे सम्भव हुआ? नीति-सम्बन्धी विरोध रहते हुए भी, उस दिन इन विप्लवी संस्थाओं ने कांग्रेस का साथ क्यों दिया? कांग्रेस ने उन्हें मान्यता क्यों दी? इसका कारण क्या था?

कारण कुछ भी नहीं था। असल में यह दोनों तरफ की कूटनीतिक चाल थी।

गांधीजी अच्छी तरह से जानते थे कि बंगालियों के 'इमोशन' के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता और यह भी जानते थे कि बंगाल, तथा भारत के विप्लवियों का अगर उन्हें समर्थन नहीं मिला तो श्रेष्ठ युवाशक्ति से वे वंचित रह जायेंगे। इसके अलावा बंगाल के विप्लवियों को छोड़ देने पर वे कभी भी बंगाल का मन नहीं

जीत सकते। इसलिए जैसे भी हो, बंगाल की इस साहसिक युवाशक्ति का मन जीतना ही होगा।

दूसरी ओर विप्लवियों का लक्ष्य था—इस मौके पर कांग्रेस में घुस कर अपनी विचारधारा से युवा-समाज को पूरी तरह से परिचित कराना। उनके मन में विश्वास पैदा कराना।

कांग्रेस सर्व भारतीय संस्था है। उस पर अहिंसात्मक नीति पर विश्वास करती है। इस हालत में कांग्रेस के प्लेटफार्म पर खड़े हो कर, लाखों जनमानव को विप्लव के उपयुक्त तैयार करना आसान है। ऐसा किसी गुप्त संस्था के लिए संभव नहीं। इसीलिए कांग्रेस में सभी घुस चलो। उसके बाद अपने लक्ष्य की तरफ धीरे-धीरे बढ़ते जाओ।

कहना व्यर्थ होगा, विप्लवियों की यह कूटनीतिक चाल खाली नहीं गई। इसी लिए उस बार के अधिवेशन में भारी संख्या में उन्हें पाया गया....जो कि कांग्रेस की अहिंसात्मक नीति के कभी भी समर्थक नहीं थे। चन्द शब्दों में कहा जाए तो यह कि इस समय कांग्रेस उन्हीं की मुट्ठी में थी। कांग्रेस भी इससे क्षतिग्रस्त नहीं हुई। संगठन के काम में विप्लवियों का पूर्ण सहयोग पाकर, कांग्रेस उस समय हर तरह से शक्तिशाली हो गई थी....इतिहास इसका सबसे बड़ा साक्षी है।

इसी प्रसंग में, विख्यात विप्लवी नेता श्रद्धेय प्रभासचंद्र लाहिड़ी के निबन्ध 'भारत-पाक रूपरेखा' में से कुछ लाइनें लिख रहा हूँ—

'विप्लवी युग के कार्यकर्ताओं ने कम से कम बंगाल में, कांग्रेस को शक्तिशाली बनाने में काफ़ी मदद की। चट्टगाँव में श्रीसूर्य सेन, श्री अम्बिका चक्रवर्ती, मैमनसिंह में श्री सुरेन्द्र मोहन घोष और उनका दलबल, श्रीज्ञान मजुमदार और उनकी पार्टी, ढाका के श्री मदनमोहन भौमिक और उनके बहुत से सहकर्मी, कलकत्ते के विपिनबिहारी गांगुली, श्री अरुण गुहा, श्री भूपेन दत्त और अनेकों, बरीशाल के श्रीसतीन सेन, श्री मनोरंजन गुप्त और उनके दल के और भी बहुत सारे लोग, राजसाही के श्री प्रभासचंद्र लाहिड़ी और उनके पुराने विप्लवी मित्रों ने कांग्रेस में जान फूंक दी। बंगला देश के किसी भी ज़िले में पूछ लो, यही एक ही इतिहास मिलेगा।'

खैर, जो पहले कह रहा था, उसी पर लौट चला जाये।

बुलावा सुन कर सभी सुभाष के चारों तरफ आ कर खड़े हो गये।

अब शुरू हुआ संगठन कार्य। एक सुप्रशिक्षित स्वेच्छा-सेवक वाहिनी चाहिए। किसी के घुटने तक धोती, किसी के शरीर पर आधी बाँह की कमीज़ या कुर्ता, या फिर किसी के शरीर पर एक गन्दी चादर....यह पुराने ढंग अब नहीं चलेंगे। स्वेच्छा-सेवकों को सामरिक प्रशिक्षण लेना होगा। उपयुक्त यूनिफार्म होगी। और अनुशासन बनाए रखना होगा। इसके बिना काम नहीं चलेगा। यह होना ही है।

समस्या कठिन थी। सामरिक रीति नीति के बारे में लोग ज़रा भी कुछ नहीं जानते हैं, वे इतने थोड़े समय में उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कैसे करेंगे? बंगला देश में ऐसा शक्तिशाली पुरुष मिलेगा कहाँ, जो ऐसी कल्पना को सार्थक बना सके?

'मैं हूँ ।' वीरदर्प से आगे आये वॉलेन्टियर मूवमेन्ट के मुकुटहीन सेनापति विप्लवी नायक मेजर सत्य गुप्ता ।—'फॉल इन वालेन्टियर्स ! लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट, लेफ्ट...'

सचमुच, कमाल कर दिया सत्य गुप्ता ने । सिर्फ मुँह ही से नहीं, चलने-बोलने, सोचने-विचारने में भी वे पक्के मेजर थे । क्या बूढ़ा, क्या जवान—कोई भी उनके चंगुल से नहीं बच पाया । सुबह से शाम तक लगातार उनकी भयानक हुंकार गूँजने लगी—लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट, लेफ्ट....

लड़कियाँ भी पीछे नहीं रहीं । कर्नल लतिका वसु के नेतृत्व में एक-एक करके सभी आ कर इकट्ठा हुईं । वहाँ भी वही हुंकार....लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट, लेफ्ट....

मल्लिका ! आज ज़माना बदल गया है । बदल गयी है कर्मव्यस्त जीवनधारा, उसका रूप । लेकिन तब ?

तब लड़कियों के लिए प्रचलित मान्यताओं की जंजीर तोड़ कर बाहर निकलना इतना आसान नहीं था । फिर भी 'सुभाष की पुकार' की अवहेलना नहीं कर सकी थीं । किसी को सामरिक कूचकवाज और मेजर गुप्ता की हुंकारों से छुटकारा नहीं मिला ।

लेकिन केवल पैदल सेना से काम नहीं चलेगा । इसके साथ चाहिये अश्वारोही । इतने घोड़े कहाँ मिलेंगे ? मजबूर होकर समाचार-पत्रों के माध्यम से सुभाष ने जनसाधारण से आवेदन किया—

'कांग्रेस की स्वेच्छा-सेवक वाहिनी के लिए जो स्वेच्छा से अश्वारोही-सेना में भर्ती होने के इच्छुक हैं, उन्हें इसके माध्यम से सूचित किया जाता है कि १४ तारीख के बाद, किसी को भी स्वेच्छा-सेवक दल में भर्ती नहीं किया जायेगा ।

बहुसंख्या में स्वेच्छा-सेवक अश्वारोही सेना में भर्ती हुए हैं और इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं । परन्तु बड़े दुःख की बात है कि इनके पास घोड़े नहीं हैं । जिनके पास घोड़े हैं, उनसे मैं अनुरोध कर रहा हूँ कि वे हमें अश्वारोही-दल के लिये ५० घोड़े उधार स्वरूप दें । ११ तारीख से अश्वारोही-दल का पूरा प्रशिक्षण शुरू हो जायेगा । जिस दिन प्रेसीडेन्ट पहुँचेंगे, उस दिन शोभायात्रा निकलेगी और अश्वारोही दल उसमें भाग लेगा । इसके अलावा २० तारीख से पहरा तथा यानवाहन, पदातियों के नियन्त्रण के कामों के लिए भी वे नियुक्त किये जायेंगे ।

अश्वों को प्रतिदिन पार्क सरकस भेजना होगा । दैनिक कार्यों के बाद उन्हें अस्तबल भेजा जा सकता है, अथवा तीन हफ्ते के लिए कांग्रेस मैदान के अस्तबल में उन्हें रखा जा सकता है । अश्वों का विशेषरूप से ध्यान रखा जायेगा । मैं आशा करता हूँ, जिनके पास अश्व हैं, वे हमें इस काम में मदद करेंगे ।'

—श्री सुभाषचन्द्र बोस
जनरल ऑफिसर कमान्डिंग,

[आनन्दबाजार, १२ दिसम्बर १९२८]

सामरिक प्रशिक्षण प्राप्त सुभाष के इस ऐतिहासिक 'बंगाल वॉलेन्टियर्स' वाहिनी ने उस समय देश में तहलका मचा दिया था। इसका विवरण अखबारों में निकला करता था। उसी में से कुछ विवरण मैं यहाँ दे रहा हूँ, मल्लिका।

कांग्रेस स्वेच्छा-सेवक वाहिनी—शहर के भीतर से रूट मार्च अभूतपूर्व दृश्य

'सुप्रशिक्षित स्वेच्छा-सेवक वाहिनी, इस वर्ष के कांग्रेस की अभ्यर्थना समिति की प्रधान कीर्ति है।

कांग्रेस स्वेच्छा-सेवक वाहिनी के नेता श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र के आह्वान पर लगभग दो हजार युवक, अभी तक सदस्य बन चुके हैं। सेना विभाग के भूतपूर्व सैनिकों के तत्वावधान में पार्क सरकस मैदान में सुबह शाम इन्हें शिक्षा दी जा रही है।

कल बुधवार दोपहर को, स्वेच्छा-सेवक वाहिनी के दो दल—एक श्रद्धानन्द पार्क से और दूसरा हजारा पार्क से, बैण्ड बजाते हुए शहर के राजपथ पर मार्च करते हुए निकले। दोनों दल कालेज स्क्वायर में मिले और वहाँ से कतारों में बँट कर मार्च करते हुए विडन स्क्वायर गए। विडन स्क्वायर घूम कर वे फिर श्रद्धानन्द पार्क वापस चले गये।

राजपथ के दोनों ओर कतार के कतार लोगों ने खड़े हो कर यह अपूर्व दृश्य देखा।'

[आनन्दबाजार, १३ दिसम्बर १९२८]

तभी पार्क सरकस का नाम हुआ था देशबंधु नगर। उस समय, इतने दिनों का परिचित पार्क सरकस का मैदान, पहचान में नहीं आता था। एक समाचारपत्र के शब्दों में—

देशबन्धु नगर की सज्जा : शिविरों का सामरिक दृश्य

'मानो अलाउद्दीन के जादुई चिराग की शक्ति से, पलक झपकते देशबन्धु नगर जैसे एक सुन्दर स्थान का आविर्भाव हुआ है। वास्तव में, देशबन्धु नगर की विशाल, मनमुग्ध करने वाली व्यवस्था को देख कर एक ही बात लगती है कि नगर की कल्पना करने वालों ने इतने कम समय में, ऐसे सुन्दर स्थान की रचना कैसे कर डाली?

नगर का निर्माण कार्य प्रायः समाप्त हो रहा है और प्रतिपल वहाँ का दृश्य परिवर्तित हो रहा है। कांग्रेस का मण्डप भी लगभग बन चुका है। अभ्यर्थना कमेटी के लगभग चार हजार सदस्य और विशेष दर्शकों के लिये, विशाल मंच बन कर तैयार हो चुका है, और अब खद्दर से ढँकने का काम शुरू हुआ है। भारतीय शिल्पकला के अनुसार शीघ्र ही नगर सज्जा का काम आरम्भ होगा।

अब, नगर ने सामरिक शिविर का आकार धारण कर लिया है, और उसके हर

प्रवेश-द्वार पर स्वेच्छा-सेवकों का बहुत ही कड़ा सामरिक क़ायदे से पहरा लगा हुआ है।

हर आगन्तुक, वे कितने भी प्रख्यात क्यों न हों, प्रवेश-द्वार पर परिचय-पत्र दिखाये बगैर और अनुमति प्राप्त किये बगैर अन्दर नहीं जा सकते हैं। यहाँ तक कि अभ्यर्थना कमेटी के चेयरमैन मि० जे० एन० सेनगुप्ता और जनरल सेक्रेटरी डा० बी० सी० राय तक को चैलेन्ज किया गया था।

स्वेच्छा-सेवकों के नियम, कायदे प्रशंसनीय हैं। श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस वहाँ हर समय उपस्थित रह कर, उन्हें जनता की सेवा के लिये तैयार कर रहे हैं। इसके लिये श्रीयुक्त बोस धन्यवाद के अधिकारी हैं।

शाम होते ही मार्च-पास्ट के साथ-साथ बैण्ड और बिगुल की आवाज़ गूंज उठती है, जिसे सुन कर लोगों के मन में युद्ध का उत्साहजनक भाव जागने लगा है।

[आनन्दबाजार, १८ दिसम्बर १९२८]

....'हर रोज हजारों स्वेच्छा-सेवक मार्च करते हैं और अश्वारोहियों को प्रशिक्षित किया जा रहा है। महिला स्वेच्छा-सेविकाएँ भी बैण्ड और बिगुल के साथ परेड कर रही हैं। देशबन्धु नगर की ओर जनता उमड़ी पड़ रही है। वहाँ मानो मेला लगा हो।'

गाँवों से ५ सौ स्वेच्छा-सेवक

'पिछले कल, कलकत्ते के विभिन्न इलाकों और गाँवों से प्राय: पाँच सौ स्वेच्छा सेवक, अपनी पोशाक और कपड़ों के साथ देशबन्धु नगर पहुँचे हैं। उनके सामरिक ढंग से चलने-फिरने तथा नियम पालन करने से ऐसा लग रहा है कि उन्हें अच्छा प्रशिक्षण प्रदान किया गया है।'

बालिका स्वेच्छा-सेविका वाहिनी

'पिछले कल शाम को लगभग एक सौ बालिकाओं ने कांग्रेस मैदान में ड्रिल किया। ये बालिकाएँ जब अपनी नेत्री के निर्देश में मार्च कर रही थीं तब उन्हें देख कर वैदिककाल की शक्ति का ही ध्यान आ रहा था। न केवल भारत के नर सन्तान ही, कन्याएँ भी लड़ाई में भाग लेंगी, वह दिन अब दूर नहीं।'

[आनन्दबाजार, १९ दिसम्बर १९२८]

अब सभापति की अगवानी! हावड़ा स्टेशन से मैदान तक की शोभायात्रा वर्णनातीत है। हर जगह—बंगाल वॉलेन्टियर। रह-रह कर गूंज उठ रही थी वही हुंकार—लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट....लेफ्ट....

यह देख कर समस्त महानगरी मौन रह गई है। यह कैसा अभूतपूर्व दृश्य है! पैदल सैनिक, नारी वाहिनी, अश्वारोही सेना, मोटर साइकिल सैनिक और मेडिकल-कोर-

वाहिनी—और उस पर जनरल ऑफिसर कमान्डिग के रूप में सुभाष की वह तेजस्वी मूर्ति....यह सब बार-बार देख कर भी जी नहीं भरता है।

इसके अलावा कैसा विशाल आयोजन है....क्या व्यापक तैयारी है....कैसी नियम-बद्धता है।

कोई मेजर, कोई कर्नल और कोई स्टाफ ऑफिसर,...मानो कोई सुशिक्षित सामरिक-वाहिनी नगर के बीच मे मार्च करती चली जा रही है।

अब तक कहाँ छिपा था बंगाल के युवक-युवतियों का यह वास्तविक रूप?

किसकी प्रेरणा से आज इस तरह से उन्हें अपनी खोई हुई सत्ता वापस मिल गई है? किस सोने की छड़ी ने उन्हें छू दिया है?

उस दिन की इस ऐतिहासिक शोभायात्रा का जो विवरण अखबार में छपा था, उसका कुछ अंश यहाँ लिख रहा हूँ—

कांग्रेस के निर्वाचित प्रेसीडेन्ट का कलकत्ता में अभूतपूर्व स्वागत

३४ अश्वों द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी पर पंडित मोतीलाल नेहरू : सामरिक ढंग से स्वेच्छा-सेवकों का जुलूस : शहर के नर-नारियों में अभूतपूर्व उत्साह : महिलाओं द्वारा शंखध्वनि तथा पुष्पवर्षा :

राष्ट्रनेता के स्वागत के लिए उल्लासपूर्ण सज्जा

४३ वें भारतीय जातीय महासभा के निर्वाचित सभापति पं० मोतीलाल नेहरू का, पिछले दिन प्रातःकाल, कलकत्तावासियों ने राजकीय समारोह के साथ स्वागत किया था। जनता के श्रद्धेय नेता ने जनता के हृदय पर कितना अधिकार कर रखा है, यह कल महानगरी के उत्सव-समारोहों से, सहज ही जाना जाता था। ऐसा समारोह, लोगों का इस तरह से एकत्र होना, सचमुच दर्शनीय है।

कांग्रेस के इतिहास में, इससे पहले किसी भी सभापति का ऐसा भव्य स्वागत हुआ हो, ज्ञात नहीं। यूँ लग रहा था जैसे देश का कोई वीर सेनापति दिग्विजय करके राजधानी लौटा हो....देशवासियों ने उनका वरण किया, लोगों ने पुष्पमालाएँ चढ़ाईं, और नागरिकों ने आनन्द और उत्तेजना के साथ उनकी अगवानी की।

हजारों नर-नारियों के आनन्दोज्ज्वल ललाट पर प्रभात की सूर्य किरणें मानो भविष्य का चित्र खींच रही थीं। अश्वारोही स्वेच्छा-सेवकों की आगे बढ़ती पदध्वनि, पैदल सैनिकों का शृंखलाबद्ध और वीरोचित पदसंचालन, महिला स्वेच्छा-सेविकाओं की गर्वमयी गति, पंडित मोतीलाल नेहरू का सुसज्जित अश्वरथ और रणभेरी....हजारों-हजारों लोगों के मन में उत्साह, उत्तेजना और आनन्द जगा रहा था। लोगों को स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा दे रहा था।

लगभग ८ बजे पंडित मोतीलाल के हावड़ा स्टेशन पहुँचने की बात थी। लेकिन राजपथ की दीपावली ठीक से बुझ भी नहीं पाई थी कि सैकड़ों की तादाद में लोग,

हावड़ा स्टेशन की तरफ भाग रहे थे। वे जानते थे कि उन्हें स्टेशन में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। फिर भी वे अपने श्रद्धेय नेता का अभिनन्दन करने के लिए स्टेशन के सामने इकट्ठा हो रहे थे।

भयंकर जनवरी-फरवरी की ठंड, दूर से सवारी न मिल पाने की तकलीफ, पर लोगों को इसकी परवाह कहाँ ? वयस्का, वृद्धा तक इन भयानक असुविधाओं की परवाह किए बगैर अभिनन्दन करने को उपस्थित थीं।

थोड़ी-थोड़ी दूर पर रास्तों के स्वागतद्वारों पर लिखा था—'हे युवक ! देश की वेदना की उपलब्धि क्या तुम सचमुच करते हो ? इस वेदना के कारण क्या तुम्हारी भूख-प्यास मिट गई है ? तुम्हारी नींद उड़ गई है ? तुम्हारे स्वप्न बिखर गए हैं ?'

'स्वाधीनता चाहिए। स्वाधीनता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।'

इस तरह की शोभायात्रा और कलकत्तावासियों के अभिनन्दन में, जातीयता की भावना भरी थी। सबसे बड़ी बात थी शोभायात्रा की सामरिक आबोहवा से स्वदेश प्रेम, सौन्दर्यज्ञान और नियमबद्धता की भावना प्रकट हुई जिसने वास्तव में बंगालियों के भविष्य को आशा और आनन्द से भर दिया है।

सभापति की उपस्थिति

यथासमय स्पेशल ट्रेन वन्देमातरम् की ध्वनि के साथ स्टेशन पर आ पहुँची। यद्यपि अभ्यर्थना समिति की ओर से प्रबन्ध में कोई त्रुटि नहीं थी फिर भी स्पेशल के आ पहुँचते ही जनता, प्रेसीडेन्ट के दर्शन पाने के लिए भीड़ बना कर आगे बढ़ी। उस समय उन्हें रोकना कठिन हो गया। सभापति की ट्रेन आते ही बहुत सी तोपों ने सलामी दी और स्टेशन पर उपस्थित महिलाओं ने शंख-ध्वनि की।....

जुलूस का गठन

सभापति का यह जुलूस वास्तव में अभूतपूर्व हुआ था। दो हज़ार सुप्रशिक्षित स्वेच्छा-सेवक, पाँच सौ महिला स्वेच्छा-सेविकाएँ, अश्वारोहियों का दल, पैदल सैनिकों से मिल कर यह जुलूस संगठित हुआ था। स्वेच्छा-सेवक वाहिनी के जनरल आफिसर कमान्डिंग श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस भी फौजी वेशभूषा में सुसज्जित थे। उन्होंने सभापति की गाड़ी के आते ही उनका मिलिट्री ढंग से अभिवादन किया।

उसके बाद जुलूस चला। पहले खाकी पोशाकधारी मोटर साइकिल सवार स्वेच्छा-सेवकों का दल, उनके पीछे साइकिल सवारों का दल, फिर झण्डा वहन करने वाले पथ-प्रदर्शक सवारों का दल और बिगुलवादक चले।

उनके पीछे एक खुली मोटर गाड़ी पर जनरल आफिसर कमान्डिंग की पोशाक में सुसज्जित श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस खड़े थे। उनके हाथों में चमड़े का रूलर था। वे बड़ी सतर्कतापूर्वक जुलूस की गति पर नज़र रख रहे थे।

उनके पीछे झण्डे लिए हुए स्वेच्छा-सेवक, उसके बाद बैण्डवादक, फिर पैदल

वाहिनी और अश्वारोहियों का दल ।

अश्वारोहियों के पीछे सभापति की गाड़ी चल रही थी । सभापति के अश्वचलित रथ के पीछे, दूसरी गाड़ी पर मिसेज़ नेहरू और श्रीयुक्त यतीन्द्रमोहन सेनगुप्ता की पत्नी थीं ।

इनके बाद फिर अश्वारोहियों का दल, पैदल वाहिनी सुनियन्त्रित ढंग से चल रही थी । उसके पीछे थे अभ्यर्थना समिति के सदस्यगण, उसके बाद पताकाधारी और बिल्कुल पीछे साधारण मोटरें चल रही थीं ।

शोभायात्रा शुरू होते ही हर तरह के यानवाहनों का चलना बंद कर दिया गया था । धीरे-धीरे शोभायात्रा हावड़ा पुल की तरफ बढ़ी, जहाँ दोनों तरफ असंख्य लोग कतारों में खड़े थे । अनेक गोरे साहब और मेमसाहब अपने-अपने बंगले की छतों पर खड़े होकर यह अपूर्व दृश्य देख रहे थे ।

हैरिसन रोड और स्ट्रैंड रोड के मोड़ पर विशाल जनसमूह उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था । आसपास के घरों की छत पर, बारामदे पर, पेड़ों, खम्भों और दीवालों पर...जिधर देखो उधर ही केवल नरमुण्ड ही दिखाई पड़ रहे थे ।

इस जगह पर एक बड़ा ही सुन्दर विजयद्वार निर्मित किया गया था । तोरण के खम्भों पर विभिन्न प्रसिद्ध नेताओं की तेजस्वी वाणियाँ लिखी गई थीं....हैरिसन रोड के दोनों तरफ की दुकानें, घर और अट्टालिकाएँ—पत्तों, फूलों और मालाओं, झण्डियों से सजाई गई थीं ।

दोनों तरफ के घरों की छतों पर बारामदों पर इकट्ठा स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएँ इस विशाल शोभायात्रा के लोगों पर फूल और गुलाब-जल डाल रहे थे । वे रह-रह कर वन्देमातरम् के नारों से गगन पवन मुखरित कर रहे थे ।

अब देशबंधु नगर । पहला भाषण दिया अभिवादन समिति के सभापति श्रीयुक्त यतीन्द्र मोहन सेनगुप्ता ने, जिसका उत्तर दिया नव निर्वाचित सभापति पंडित मोतीलाल नेहरू ने । उन्होंने कहा—

'आज की जिस अपूर्व शोभायात्रा की बात आपने श्रीयुक्त सेनगुप्ता से सुनी, उससे बंगाल के उग्र-जातिवादियों की विशेषता और बंगाल के नर-नारियों के देशप्रेम की अभि-व्यक्ति होती है ।

हमारे परलोकवासी नेता देशबंधु दास, इसी शहर में रहते थे । हावड़ा-ब्रिज से लेकर यहाँ तक, मुझे हर जगह, उनके गहरे देशप्रेम का परिचय ही आज मिला है ।

स्वेच्छा-सेवक दल का अपूर्व नियम-कानून, अश्वारोहियों और पैदलों की शृङ्खला बद्ध संगठन निपुणता, उससे भी ज्यादा यहाँ के निवासियों के स्वदेश-प्रेम का पता मुझे आज चला है । यह सब देख कर मेरे मन में स्वराज्य का स्वप्न जागा है ।

मैंने देखा, यहाँ के हर व्यक्ति ने इस अनुष्ठान को सफल बनाने में सहायता की

है। आज यूँ लग रहा है जैसे हम वास्तव में स्वाधीन हैं, भारतभूमि भी सचमुच ही सुख और ऐश्वर्य से भरपूर है। आप लोगों ने आज साबित कर दिया है कि सचमुच ही आप देशबंधु दास की सम्पत्ति के योग्य उत्तराधिकारी हैं। इसी उत्तराधिकार के बल से हम अवश्य ही स्वराज्य प्राप्त करेंगे।' [आनन्द बाजार, २२ दिसम्बर १६२८]

हर तरफ सुभाष के नाम की जय-जयकार होने लगी। पत्र-पत्रिकाएँ भी पीछे नहीं रहीं। 'फारवर्ड' ने लिखा—'उन्होंने विगुल और बैण्ड की ध्वनि के साथ जातीय अंधकार दूर किया है।'

'आनन्दबाजार' का कहना था—'शोभायात्रा की फौजी आबोहवा के बीच से स्वदेश-प्रेम, सौन्दर्यज्ञान और अनुशासन-शक्ति प्रकट हुई है। यह देख कर हर बंगाली आशान्वित हो उठा है अपने भविष्य के बारे में। स्वयं कांग्रेस सभापति मोतीलाल ने भी अनुभव किया—'मानो भारत सचमुच स्वाधीन है।'

विभिन्न राज्यों के कांग्रेसी नेतागण भी प्रशंसा करने से थके नहीं। हाँ, यही तो चाहिए। यही तो होना चाहिए। ऐसे नियम, यह अनुशासन ही तो आज आवश्यक हैं। सुभाष ने कर दिखाया है।

केवल एक ही आदमी खुश न हो सका। वे थे अहिंसा-मंत्र के उपासक स्वयं गांधी। न जाने क्यों, बंगाल वॉलेन्टियर्स और सर्वप्रिय नायक के रूप में सुभाष के तेजस्वी चेहरे को प्रसन्न भाव से न देख सके। इसीलिए प्रकट रूप से भाषण देते हुए खुल्लम-खुल्ला उन्होंने व्यंग किया—'यह था पार्क-सरकस का सरकस।'

बस फिर क्या था? तुरन्त ही विभिन्न पत्रिकाओं और समाचारपत्रों ने लिखना शुरू कर दिया—सर्कस! सरकस! पार्क सर्कस का सर्कस। फिलिप्स सर्कस!

कोई-कोई और भी आगे बढ़ गया। सुभाष के जनरल ऑफिसर कमान्डिग पदवी (G.O.C.) के लिए व्यंग किया—'गॉक सुभाष।' किसी ने लिखा—'खोका भगवान।'

विप्लवी नेता अवाक् रह गए। सुभाष के प्रति अहिंसा के पुजारी गांधीजी का यह निरर्थक क्रोध क्यों?

तो क्या स्वेच्छा-सैनिक के जीवन में कठोर नियम, अनुशासन की कोई जरूरत नहीं है?

सुभाष बिल्कुल चुप थे। इसी समय उनके मन की गहराइयों में एक विचित्र अनुभूति ने जन्म लिया। एक नई चेतना। आँखों में आने वाले भविष्य की उज्ज्वल तस्वीर आने लगी।

लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट...

कदम-कदम बढ़ते जा रहे थे भारतीय वाहिनी के लाखों-लाखों सैनिक। चल रही थी—नारी वाहिनी। सभी के कण्ठ में एक स्वर, एक ही संगीत....'जय हिन्द, दिल्ली चलो, दिल्ली चलो, दिल्ली चलो...'

कब आएगा वह शुभ लग्न! कब?

बहुत देर हुई थी क्या, मल्लिका ?

१६२८ से १६४१। बीच में कितने साल बीते होंगे। उस दिन के 'बच्चे भगवान' के रणहुंकार से सारी पृथ्वी जब थरथरा उठी थी तब इन्हीं आलोचकों का चेहरा कितना लटक गया था—यह मैं नहीं जानता हूँ।

वास्तव में पार्क सर्कस मैदान में अपने हाथों बनायी यह 'बंगाल वॉलेन्टियर्स', सुभाष के सपनों की पहली सीढ़ी थी....यही आगे चल कर बदल कर बनी थी 'आजाद हिन्द फ़ौज।'

वयोवृद्ध विप्लवी नेता श्रद्धेय भूपेन्द्र किशोर रक्षित राय की भाषा में—

'कलकत्ते का कांग्रेस अधिवेशन विप्लवी भारत के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। कांग्रेस की यही स्वेच्छा सेवक वाहिनी ही १६२६ से लेकर, जब तक आजाद हिन्द फौज की रचना नहीं हुई, तब तक, विद्रोहों की जड़ थी। सुभाषचन्द्र के पार्क सर्कस मैदान में, कर्नल लतिका बसु द्वारा परिचालित 'नारी वाहिनी' ही अंकुर थी, कर्नल लक्ष्मी द्वारा संचालित 'झाँसी की रानी फौज' की।'

ऐतिहासिक कलकत्ता कांग्रेस। सचमुच ही ऐतिहासिक, क्योंकि इसी कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी और सुभाष के बीच नीति सम्बन्धी विरोध का जन्म हुआ।

अधिवेशन समाप्त हुआ परन्तु सुभाष ने वालेन्टियर-वाहिनी तोड़ी नहीं। गांधी जी की व्यंगोक्ति के बाद भी नहीं, बल्कि अब तक जो कलकत्ते की सीमा में बँधा था, उसे फैला दिया आस-पास, सर्वत्र।

फलस्वरूप गाँवों में भी वही दृश्य दिखाई पड़ने लगा। वही लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट....

यहाँ भी आगे आकर खड़े हुए मेजर सत्य गुप्ता। अशान्त बवन्डर की तरह वे इस गाँव से उस गाँव भागते फिरते। बंगाल के हर कोने में गूंजने लगी उनकी गुरु गंभीर आवाज़, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट....

सत्य गुप्ता के अलावा यतिन दास, पंचानन चक्रवर्ती, प्रतुल भट्टाचार्य, जगदीश चटर्जी, विनोद चक्रवर्ती, ज्योति जोरदार, विनय बसु, दिनेश गुप्ता, नोनी चौधरी, सौरभ घोष, अनन्त सिंह, गनेश घोष, लोकनाथ बल, जैसे प्रमुख विप्लवियों के नाम इस सिलसिले में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वॉलेन्टियर वाहिनी संगठित करने के मामले में इनकी देन किसी से कम नहीं।

कूटनीतिक दृष्टि से कांग्रेस में शामिल हो जाने पर भी विप्लवी चुप नहीं बैठे रहे। भीतर ही भीतर तैयारी का काम चल रहा था।

जबरदस्त चोट करनी पड़ेगी। मार-मार कर गौरांग महाप्रभुओं की भूख हमेशा के लिए मिटा देनी है।

प्रवीण विप्लवी हेमचन्द्र घोष के मुक्तिसंघ में तत्परता की कमी नहीं थी।

विभिन्न विप्लवी दलों ने 'बंगाल वॉलेन्टियर्स' मूवमेन्ट को विप्लव के अस्त्र स्वरूप ग्रहण किया था। मुक्तिसंघ ने इसे न सिर्फ अस्त्र रूप में स्वीकार किया, बल्कि

विप्लव का इसे प्राण भी माना ।

बाद में यही मुक्तिसंघ कैसे 'बंगाल वॉलेन्टियर्स' के संक्षिप्त नाम बी० वी० में बदल गया, यह समझाने के लिए भूपेन बाबू की लिखी कुछ लाइनें हूबहू उतार रहा हूँ ।

'सुभाष बाबू द्वारा परिचालित 'बंगाल वॉलेन्टियर्स' नामक स्वेच्छा-सेवक वाहिनी, १६२८ साल में, कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन की एक महत्त्वपूर्ण देन थी। इस वाहिनी ने बंगाल के विप्लवियों की कल्पना को एक साकार रूप प्रदान किया। हेमबाबू और उनके मित्रों ने इस मूवमेन्ट को यहीं तक सीमित नहीं रखा। इन्होंने बड़ी गम्भीर निष्ठा के साथ इसे विप्लवी संस्था में बदल दिया। ऐसा संभव हुआ था सत्य गुप्ता के दक्षता-पूर्ण नेतृत्व में। उनके खून में निडर भाव था। था सैनिक आसित्व। वे तन-मन-धन से सैनिक थे।

हेमचन्द्र का मुक्तिसंघ और 'बंगाल वॉलेन्टियर्स' मूवमेंट संस्थायें कार्यरूप से भीतर ही भीतर मिल कर एक हो गईं। इसमें सदस्यों की इच्छा को महत्त्व दिया गया। पुलिस ने हेमबाबू की विप्लवी संस्था को नाम दिया—'बंगाल वॉलेन्टियर्स'—संक्षेप में 'बी० वी०'।

अब ज़रूर समझ गई होगी कि बी० वी० का असली रहस्य क्या है। वास्तव में बी० वी० और हेमबाबू का मुक्तिसंघ एक ही है। मैं भी अब इसी नाम से पुकारूँगा।

उन दिनों बंगाल के प्रादेशिक कांग्रेस कमिटी के सम्पादक के नाते हेमबाबू सर्वत्र सुपरिचित थे।

पर असली आदमी को कितने लोगों ने पहचाना था ? बाहर से कांग्रेस कार्यकर्ता होते हुए भी, वे थे मुक्तिसंघ या बंगाल की विप्लवी संस्था बी० वी० के महान् नेता और विप्लवी हेमचन्द्र घोष। एक आध अत्यन्त घनिष्ठ मित्रों के अलावा यह बात और किसी को नहीं मालूम थी।

सभी के अनजाने एक आदमी चुपचाप आगे बढ़ रहा था। यह बात किसी को मालूम तक नहीं थी, मल्लिका। वे थे चट्टगाँव के मास्टरदा—सूर्य सेन।

गणित पढ़ाते थे....इसीलिए उनके हिसाब में कोई गलती नहीं हुई। और इसी-लिए ककत्ता कांग्रेस के अधिवेशन से वापस जाते ही वे काम में जुट गये। अपने साथ उन्होंने लिया गनेश घोष, अनन्त सिंह, अम्बिका चक्रवर्ती, निर्मल सेन, लोकनाथ बल जैसे प्रमुख सहयोगियों को।

सुप्रशिक्षित वॉलेन्टियर्स वाहिनी चाहिये। लोहे की मजबूत चादर से तैयार, मृत्युभयहीन ऐसे युवकों की जरूरत है जो तूफान का सामना करते समय टूट कर लचकेंगे नहीं। अब देर नहीं करना चाहिये। बढ़ना चाहिये।

सुभाष का सहारा पाकर उत्साह और बढ़ गया।

१६२६ साल। ११ मई। चट्टुल के युवक उस दिन चंचल थे, अधीर हो रहे थे। उस दिन सुभाष आये थे....उपलक्ष था जिला कांग्रेस और युवा सम्मेलन।

अधिवेशन समाप्त हुआ। लेकिन उसके थोड़ी देर बाद ही एक गुप्त बैठक शुरू

हुई ।

एक तरफ चट्टगाँव वॉलेन्टियर्स वाहिनी के नेता गनेश घोष, अनन्त सिंह, त्रिपुरा सेन जैसे प्रमुख वीर विप्लवियों की टोली, दूसरी तरफ सुभाष । उनकी दोनों आँखों में आशा झलक रही थी । इस आग्नेयअस्त्र के युग में क्या चट्टगाँव बंगाल को रास्ता नहीं दिखायेगा ? घृणित साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध आक्रोश प्रकट नहीं करेगा ? उन्हें तो चट्टगाँव से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं ।

विप्लवी अनन्त सिंह द्वारा लिखा गया उस दिन का साक्षात्कार का विवरण नीचे लिख रहा हूँ—

'दोपहर को महालक्ष्मी बैंक के गुप्त कक्ष में उन्होंने गनेश, त्रिपुरा सेन और मुझसे मिल कर वॉलेन्टियर संगठित करने के मामले में विस्तार से बातचीत की । जहाँ तक सम्भव हुआ हमने खुल कर बातें कीं । उन्हें हमने अच्छी तरह से समझा दिया कि मिलिट्री की पोशाक में सज कर, कांग्रेस के निशस्त्र और शांतिपूर्ण वॉलेन्टियर बनने से कुछ नहीं होगा । सुभाष बाबू को हमने अपनी बात बताई कि हमने कभी कांग्रेस की नानवायलेंस वाली नीति का समर्थन नहीं किया है । सिर्फ बचत के तौर पर हम कुछ समय के लिए नानवायलेंस की नीति को मान कर चल रहे हैं । इसी नीति के पीठ पीछे हम चाहते हैं सशस्त्र युवा विद्रोहियों का गठन करें । कहना व्यर्थ होगा, हमारे दृढ़ मनोभाव को समझ कर, सुभाष बाबू ने युवा विद्रोह की योजना का नैतिक समर्थन किया ।'
[अग्नियुग का एक अध्याय : साप्ताहिक बसुमति, १४ जुलाई, १९६६]

'ठीक इन्हीं दिनों, बंगाल के राजनैतिक आकाश में घने काले बादल छाने लगे । सुभाष और देशप्रिय यतीन्द्र मोहन सेनगुप्ता की प्रतिद्वन्द्विता के कारण ।

कौन बनेगा बंगाल कांग्रेस का नेता ?

कौन बंगालियों का पथ-प्रदर्शन करेगा ?

किसके इशारे पर मृत्युंजयी युवक-युवतियाँ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगी ?

सुभाष या सेनगुप्ता ?

तरुण समाज के लिए सुभाष हीरो थे । सुभाष के अलावा और किसी का नेतृत्व वे मानने को तैयार नहीं थे । लेकिन कांग्रेस के बुजुर्गों का ख्याल कुछ और था....वे सेन गुप्ता को चाहते थे ।

प्रतिद्वन्द्विता से शुरू हुआ विरोध और विरोध से संघर्ष । विप्लवी कोई भी संस्था इससे अछूती न रही ।

उनमें भी वही विरोध शुरू हुआ । वही दलबन्दी । कोई सुभाष का समर्थक । कोई चाहता था सेनगुप्ता को ।

चट्टगाँव में इस विरोध ने और भी भयंकर रूप धारण कर लिया । वही हाल था वहाँ भी । मास्टरदा और उनके समर्थक सुभाष को चाहते थे । दूसरी तरफ अनुशीलन पार्टी वाले सेनगुप्ता को चाहते थे ।

यद्यपि अन्त में सुभाष की ही जीत हुई, फिर भी अवांछित संकट से कोई बच न

पाया। फलस्वरूप चरम मूल्य चुकाना पड़ा मास्टरदा के ही दल के एक तरुण सदस्य को। चट्टगाँव कॉलेजिएट स्कूल के दसवें दर्जे के छात्र श्रीसुखेन्दु दत्त को।

सिर्फ यही नहीं। उस दिन के खून-खराबे से न बच सके विप्लवी नेता निर्मल सेन और स्वयं मास्टरदा भी।

इस पर गरज उठे चट्टगाँव के तरुण। बदला चाहिये। खून के बदले खून। इसका उत्तर हम देंगे ही देंगे।

मास्टरदा ने मना किया। बोले—'हाँ, इसका जवाब हम देंगे, लेकिन अभी नहीं। जवाब उचित जगह पर देंगे। झगड़े में पड़ कर शक्ति नष्ट मत करो, बल्कि उसकी तैयारी करो।'

इधर गनेश घोष, अम्बिका चक्रवर्ती, अनन्त सिंह और निर्मल सेन जैसे प्रमुख विप्लवियों ने घायल सुखेन्दु को कलकत्ते के कारमाइकॅल कॉलेज हास्पिटल में भर्ती किया। आशा कम है पर कोशिश तो करनी ही है। सुखेन्दु जैसे सदस्य को खोने से भयंकर क्षति होगी।

खबर पाते ही सुभाष सुखेन्दु की मृत्युशय्या के पास भागे-भागे जा पहुँचे। एक दिन नहीं, कई दिनों तक जाते रहे। उन्हें विजयी बनाने को सुखेन्दु असमय में प्राण देने चला है....इस दु:ख का ओर-छोर नहीं।

परन्तु कुछ नहीं किया जा सका। लाख कोशिशों के बावजूद अन्त तक सुखेन्दु को बचा न सके। देखते-देखते उसकी आँखें बन्द हो गईं....ऐसी नींद सोया जो कभी नहीं टूटी।

शव-यात्रा आरम्भ हुई। सब से आगे नंगे पाँव चल रहे थे सुभाष। उनके हृदय में असह्य पीड़ा थी....चेहरे पर उसकी छाया पड़ रही थी। सुखेन्दु खो गया....यह क्षति कभी भरी न जा सकेगी।

इधर बी० वी० चुप नहीं बैठा था। अविश्वसनीय गति से भीतर ही भीतर उनकी तैयारी बढ़ती जा रही थी।

हेमबाबू दूरदर्शी आदमी थे। स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, बहन निवेदिता, महान् नायक रासबिहारी बोस, बाघा यतिन वगैरह के साथ रह चुके थे। उनकी विद्रोही कोशिशों और उनकी कमजोरियों के सम्बन्ध में अनुभव किया था। इसी अनुभव के आधार पर उन्होंने जाना था कि लड़ाई चलाने के लिए चाहिये पूरी तैयारी।

पहले की हर कोशिश नाकाम हुई है, सिर्फ उपयुक्त प्रस्तुति के अभाव से। बी० वी० अब उसकी पुनरावृत्ति करने को तैयार नहीं।

सबसे पहले व्यवस्था की गई कुछ शेल्टरों की अर्थात् गुप्त अड्डों की। पुलिस शायद ही किसी को छोड़ेगी इसीलिए कुछ शेल्टर जरूर होने चाहिये।

निजी चिकित्सा विभाग भी बनाया गया। चोट करोगे तो चोट भी पलट कर लगेगी। कुछ लोगों का घायल होना स्वाभाविक है। उस हालत में अस्पतालों या बाहर कहीं इलाज के लिए जाना खतरे से खाली नहीं होगा। इसलिए निजी कुछ चिकित्सक

चाहिये जिन पर पूर्णतया निर्भर रहा जा सके ।

उधर से निश्चिन्त हो गये हैं । सतेन्द्र कुमार दत्त, दुर्गादास बनर्जी, सुरेन वर्धन, प्रभाष घोष, प्रकाश दत्त, अरुण नन्दी, अनिमेष राय, जितेन सेन जैसे अनुभवी चिकित्सक-गण शुभाकांक्षी मित्रों की भाँति आगे बढ़ आये हैं । इनमें से कुछ दल के सदस्य भी थे ।

कुछ कुशल वकील भी चाहिये थे । मुकद्दमा चला सकें, विप्लवियों में इतना सामर्थ्य कहाँ ? कहाँ से इतना रुपया लाएँगे ? इसलिए ऐसे कुछ वकीलों की सहायता चाहिये जिनके लिए आर्थिक प्रश्न महत्त्व न रखता हो ।

उस तरफ से भी असुविधा नहीं हुई । मित्रों की भाँति हाथ बढ़ाया, खगेन कॅर, चिन्ताहरण राय, विनय सेन, परेश साहा जैसे प्रमुख और धुरंधर वकीलों ने । 'देश के लिए तुम प्राण दे सकते हो और हम सिर्फ दर्शक बने देखा करेंगे ? नहीं, कभी नहीं ।'

दिन, महीना, साल बीता....आया १९३० साल । बंगाल का कोना-कोना गूंज रहा था....नवजीवन की पुकार सुन कर, नए दिन का संकेत पाकर । चारों तरफ यही एक ही पुकार थी—आगे बढ़ो ! आगे बढ़ो ! आज तक हमने एकतरफा मार खाई है, अब पलट कर मारने के दिन आ गए हैं ।

बी० वी० के सदस्यों में भी यही चंचलता....अब समय नहीं है । साम्राज्यवादी शक्ति को आगे मौके नहीं देना है...अब चोट पहुँचाना है । चारों तरफ से मार-मार कर चक्की में पीस डालना है ।

पीछे मुड़ कर देखने का समय नहीं । हिसाब-किताब का वक्त नहीं....यह लड़ाई जीने की है...इस लड़ाई में सबको आगे बढ़ना है ।

जानते हैं, इसकी क़ीमत चुकानी होगी । देना पड़ेगा ताजा खून....लेकिन इसका दुःख नहीं । जरूरत होगी तो हम भी देंगे । पराधीनता के बन्धन से जब तक मुक्त न होंगे, यह बलिदान हमें देना ही होगा ।

अस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत । एक्शन स्क्वायड तैयार । तैयार थे बी० वी० के मृत्यु-प्रेमी तरुण । संकेत पाते ही तुरन्त वे आँधी की तरह कूद पड़ेंगे । अभी केवल प्रतीक्षा करनी है ।

विस्फोट उससे पहले ही हुआ । भयंकर सूचना आई एक किनारे बसे चट्टुल गाँव से ।

सर्वप्रिय नेता मास्टरदा के नेतृत्व में चट्टगाँव के बहादुर विप्लवियों ने इस अकाल्पनिक इतिहास की रचना की थी ।

चट्टगाँव स्वाधीन—मुक्त हो गया था । यूनियन जैक की जगह वहाँ भारत का तिरंगा झंडा लहरा रहा था ।

खबर सुन कर सारा देश भौंचक्का रह गया । लेकिन विस्मय कम होते ही, हजारों, लाखों लोगों की जयध्वनि गूंज उठी ।

चट्टगाँव धन्य है ! धन्य हैं वहाँ के सन्तान मास्टरदा सूर्य सेन । धन्य गनेश घोष, अनन्त सिंह, लोकनाथ बल, अम्बिका चक्रवर्ती, निर्मल सेन जैसे उनके प्रमुख सहयोगी ।

धन्य हैं उनके सुप्रशिक्षित मुक्ति-प्रेमी सैनिक । पराधीन इतिहास के आगे तुमने जो उदाहरण रखा है उसकी तुधना नहीं की जा सकती । तुम्हें नमस्कार ।

'उदय - पथ पर किसकी ये वाणी,
भय नहीं, अरे ओ भय नहीं;
जो निःशब्द प्राण, करेगा दान,
क्षय नहीं, उसका क्षय नहीं।'

चट्टगांव—सशस्त्र विद्रोह !

कब की बात है, पर आज भी धुंधली सी याद बाकी है। मन की कॉपी के पन्ने उलटने लगता हूँ तो अतीत की मटमैली वह पाण्डुलिपि बाहर निकल जाती है।

विशाल पृष्ठभूमि।....विशाल तैयारी। इतनी विशाल कि दो-चार शब्दों में उसका महत्व समझाना सम्भव नहीं। इसलिए मैं इसकी मुख्य-मुख्य घटनाओं का ही उल्लेख करूँगा, मल्लिका।

अगर तुम विप्लवी सुभाष को जानना चाहती हो तो उनकी उस समय की कर्म-पंथा को समझना जरूरी है। इस भाग में आना उसी लिए जरूरी है।

मैंने शुरू में ही कहा है कि शुरू का इतिहास मैं नहीं जानता हूँ। मैं क्या, कोई नहीं जानता है। क्योंकि उस इतिहास के नायकों का मन्त्र था....'गुप्त मन्त्र'। अर्थात् एक भी बात, एक भी प्रश्न नहीं पूछना है, सिर्फ चुपचाप सैनिकों की तरह बढ़े चलो। सावधान, मनुष्य तो दूर, पशु-पक्षियों को भी पता नहीं चलना चाहिए।

बी० वी० के सर्वाधिनायक श्रद्धेय हेमचन्द्र घोष के शब्दों में—

'जिन्होंने, ब्रिटिश शक्ति के विरुद्ध सशस्त्र संग्राम में लिप्त रहने का प्रण किया था, उनके अमर क्रियाकलाप अधिकतर अज्ञात रहते थे। सभा-समिति बुला कर, उत्तेजक भाषण देकर, प्रस्ताव पेश करना....उस समय की रीति न थी। वे अपनी कीर्ति की कहानी न तो पत्थरों के खम्भों पर, न ताँबे-चाँदी के पात्रों पर खुदवा गए थे। या कोई साक्षी बुला कर, किसी गुप्त-समिति के लोगों को अपने क्रिया-कलापों का ब्यौरा नहीं दे गए।'

वास्तव में दुर्लभ था। दुर्लभ था तभी लोगों की नजर बचा कर, किसका कितना खून बह चुका था, उसका ठीक-ठीक पता लगाना सम्भव नहीं। जानना भी चाहें तो कुछ अनुमानों के आधार पर, कुछ व्यक्तिगत अनुभव, कुछ देखा-सुना के पंखों पर भरोसा कर बढ़ने के सिवा, और कोई उपाय नहीं था।

इसलिए इस कहानी को तुम इतिहास न मान कर इतिहास का भग्नांश मान सकती हो।

१९३० साल। १८ अप्रेल। रात के १० बजे होंगे।

योजना के अनुसार सबसे पहले जनरल अनन्त सिंह और उनके पीछे गनेश घोष बढ़ गए। उनके पीछे चार और। विधु भट्टाचार्य, हरिपद महाजन, हिमांशु सेन और सरोज गुहा।

सभी के शरीर पर फौजी पोशाक। सभी सशस्त्र और सबके मन में एक ही संकल्प।

सामने पुलिस लाइन। जिस तरह से भी हो जिले भर की शक्ति का केन्द्र, पुलिस लाइन के अस्त्रागार पर कब्जा करना ही होगा। उसके बाद एक के बाद एक, अधिकार

में लाना होगा—जेल, इम्पीरियल बैंक, थाना, कोर्ट-कचहरी....

कब्जा करना होगा पूरे शहर पर।

हालांकि शहर पर कब्जा करने का यह मतलब नहीं कि पूरे भारत को मुक्त कर लिया। विशाल भारत में चट्टगाँव है ही कितना ?

पर इतना करना भी जरूरी है। मार खाते-खाते तो कमर टूट गई है। आज उलट कर मारना होगा और शताब्दियों की नींद से उन्हें जगाना होगा। समझा देना पड़ेगा कि अंग्रेज़ अजेय नहीं हैं। सामूहिक हमला किया जा सके तो उनकी ताक़त धूल में मिलाई जा सकती है।

चट्टगाँव इसका सबूत है। जो कुछ चट्टगाँव कर सका है वह दूसरे क्यों नहीं कर सकते हैं? जरूर कर सकते हैं? अतएव तैयार हो जाओ। सब मिल कर खड़े हो जाओ।

उधर टीले पर खड़ा प्रहरी अवाक् हो गया।

कौन हैं वे ?

वे लोग धीरे-धीरे इधर क्यों बढ़ रहे हैं ?

इनका इरादा क्या है ? मिलिट्री विभाग के लोग तो नहीं हैं ?

सशस्त्र प्रहरी प्रश्न पूछने का मौका न पा सका। उससे पहले ही दोनों जनरलों के हाथों की रिवाल्वर गरज उठी।—धाँय धाँय !

उसके बाद ही एक साथ जयध्वनि गूंज उठी—'इनक्लाब जिन्दाबाद ! विप्लव दीर्घजीवी हो !'

ताज्जुब है ! इसके साथ ही चारो ओर से कण्ठध्वनि गूंज उठी—'बन्दे मातरम् ! इनक्लाब जिन्दाबाद ! साम्राज्यवाद का अन्त हो !'

अचूक योजना ! चारो तरफ से सैकड़ों की तादाद में आक्रमणकारी बढ़ते आ रहे हैं शायद। लेकिन असल में तीस-पैंतीस से ज्यादा नहीं थे। काम इससे ही बन गया। अचानक रिवाल्वर गरज उठे। इसी के साथ जयध्वनि....जिसे सुन कर सैकड़ों पुलिस प्रहरी मिनटों में भाग खड़े हुए। कहाँ भागे, इसका पता ही नहीं चला।

मास्टरदा और छोटे-छोटे दल, एक-एक करके आ गए।

तुरन्त पुलिस लाइन के चारो तरफ एक दल पहरे पर नियुक्त हो गया। दूसरा दल भागा मैगजिन कक्ष की ओर। अस्त्र-शस्त्र चाहिए। बहुत सारे अस्त्र।

बड़े-बड़े हथौड़ों की चोट पड़ने लगी और देखते ही देखते झनझना कर मैगजिन कक्ष के मजबूत ताले टूट कर गिर गये। उसके बाद ही सब खुशी से चिल्ला पड़े।

राइफल ! राइफल ! राइफल ! एक आध नहीं, सैकड़ों पुलिस मस्केट्री राइफलें ....उन्हीं के साथ अनगिनत रिवाल्वर और कारतूसें।

सहसा जनरल गनेश घोष ने जोर से आवाज़ लगाई—कम्पनी फॉल इन।

इसी के साथ सभी एटेन्शन में खड़े हो गये। कैसे मस्केट्री राइफेल का इस्तेमाल किया जाता है, यह उन्हें ठीक से समझाने के बाद जनरल घोष ने हाँक लगाई—लोड (Load) !

सभी ने मस्केट्री राइफलें भर लीं।

दूसरा आदेश मिला—ऐम (Aim) !

सभी ने आसमान को लक्ष्य बनाया !

अन्तिम आदेश मिला—फायर (Fire) !

भयंकर आवाज़ से सारा शहर थरथरा उठा। इसी तरह से तीन बार।

एक ही दिन, एक ही समय में, जनरल लोकनाथ बल और युवा विद्रोहियों के नेता मिर्मल सेन के नेतृत्व में दूसरी तरफ एक और खेल शुरू हो गया था—आक्जीलियरी फोर्स आर्मरी में। वहाँ भी यही हाल हुआ। राइफलधारी प्रहरी ने पहले तो जनरल बल को कोई उच्चाधिकारी समझ कर जबरदस्त ढंग से सेल्यूट किया।

उसी वक्त गोली चली—धाँय, धाँय, धाँय। और उसी के साथ, एक साथ सब चिल्लाए—'इनक्लाब जिन्दाबाद ! साम्राज्यवाद का पतन हो !'

अब क्या था ? निरस्त्र पठान पहरेदार वहाँ से भाग खड़े हुए। कौन जान-बूझ कर अपनी जान देगा ? पहले जान बचे तब न दूसरी बात ?

फिर भी पुलिस लाइन की तरह उतनी आसानी नहीं हुई, मल्लिका ? घायलों की संख्या अधिक थी। निहत हुये थे कुल छह, वह भी विपक्षियों के।

सुनते ही भारप्राप्त ऑफिसर सार्जन्ट मेजर फेरल भागे-भागे आये। हाथों में रिवाल्वर—'कौन है ? क्या माँगता ?'

उत्तर में अग्निवर्षा हुई—'धाँय ! धाँय ! धाँय !'

उसी के साथ मेजर धूल में लोट गये। पत्नी से बोले—'डार्लिंग, रिंग-अॅप दि पुलिस स्टेशन।'

कहाँ फोन ? योजना के अनुसार, पाँच मिनट पहले ही, शहर के सारे टेलीफोन और टेलीग्राम व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी। नेतृत्व किया था अम्बिका चक्रवर्ती ने। टेलीफोन भवन का नामोनिशान तक नहीं था। वह तो जल कर राख हो चुका था।

सम्बन्ध स्थापित करने का कोई साधन नहीं था। दो दिन पहले लालमोहन सेन, सुकुमार भौमिक, हारान चौधरी, सुबोध मित्र, उपेन भट्टाचार्य, शंकर, सुशील दे, विजय आइच जैसे मुक्ति-सैनिकों ने शहर से चालीस मील दूर तक की समस्त तार और फोन व्यवस्था नष्ट कर दी थी।

एक जगह मालगाड़ी को पटरी से उतार कर और दूसरी जगह टेलीग्राफ का तार काट कर उन्होंने अपने कर्त्तव्य का सही-सही पालन किया था।

मेजर फेलर खत्म हो गए। अब आर्मरी का दरवाजा तोड़ा जाने लगा। दो मजबूत लोहे के फाटक। भीतर है ·३०३ बोर का दस सेट्वाला आर्मी मैगजीन राइफल और लूईस गन।

पुलिस लाइन से प्राप्त मस्केट्री राइफल से एक बार में एक ही गोली चलाई जा सकती है, जो दो सौ गज से ज्यादा दूर नहीं जाती है।

लेकिन आर्मी मैगजिन राइफल का महत्त्व उससे अधिक है। इससे एक बार में

दस गोलियाँ चलाई जा सकती हैं। इसलिए ये तो चाहिए ही चाहिए—चाहे जैसे हो।

अन्त में कोई बाधा, बाधा न रही। जहाज के लंगर डालने वाले रस्से से दरवाजे के दोनों हैंडिल बाँधने के बाद मोटर से बाँध कर फुल-स्पीड से मोटर चला दी गई। बस तुरन्त....सब टूट गया।

फिर वही दृश्य। राइफलें! और राइफलें! रिवाल्वर और लूईस गन।

लेकिन कारतूसें? दस सेट वाले मैगजिन राइफलों के लिए उपयुक्त कारतूसें कहाँ हैं? आश्चर्य? कहीं नहीं...चप्पा-चप्पा ढूँढ़ डालने पर भी कारतूसें नहीं मिलीं।

अब? इतनी आर्मी राइफलें, इतनी लूईस गन सब बेकार हो जाएँगी, अगर '३०३ बोर वाली कारतूसें नहीं मिलीं तो।

एक के बाद एक बाधा। अचानक सार्जेण्ट ब्लैकबर्न, मि० फलेन और जहाज कम्पनी के गोरे अफसर आ पहुँचे। उनकी आँखों में आश्चर्य? ये कौन हैं? इनका इरादा क्या है?

फिर उत्तर मिला—धाँय! धाँय! फलेन वहीं गिर गए, आहत होकर....बाकी भाग गए।

अब सब को वापस जाना होगा, हेड-क्वार्टर पुलिस लाइन में।

यथासंभव अस्त्र-शस्त्र साथ लिया गया। बाकी हथौड़े की चोट से तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिए गए। उसके बाद ही सुनाई पड़ा, जनरल बल का नया आदेश—'सेट दि आर्मरी इन फायर।'

देखते ही देखते आर्मरी धधकने लगी। उसी के साथ सामूहिक जयध्वनि—'इनक्लाब जिन्दाबाद!'

फिर बाधा। इस बार आए जिला मेजिस्ट्रेट मिस्टर विलकिन्सन।

देखते ही आर्डर मिला—'फायर!'

मारा गया साथ आया अर्दली। ड्राइवर वीरमन थापा भी बच न पाया। वह भी वहीं गिर गया। सिर्फ बचे विलकिन्सन जो अँधेरे का फायदा उठा कर भाग खड़े हुए।

कुछ ही देर में जनरल बल अपने दल के साथ हेडक्वार्टर पहुँच गए। इस बीच अम्बिका चक्रवर्ती भी अपने साथियों के साथ आ गए टेलीफोन भवन नष्ट करके।

जालियांवाला बाग की निष्ठुर हत्या का बदला लेने के इरादे से नरेश राय, त्रिपुरा सेन, देव प्रसाद गुप्त, अमरेन्दु नन्दी, वीरेन दे, मनोरंजन सेन जैसे दल के दु:साहसी युवकों को भेजा गया था पहाड़तली के यूरोपियन-क्लब पर हमला करने के लिए। लेकिन गुड-फ्राइडे के उपलक्ष में क्लब बंद होने के कारण, वह योजना कार्यान्वित न हो सकी।

इसी बीच वे भी मुख्यवाहिनी से आ मिले थे।

अब भारतीय झण्डा फहराने की बारी थी। बिगुल के साथ झण्डा फहराया गया। कमाण्ड मिला—'लोड! ऐम! फायर।'

इसी के साथ तीन-तीन बार लगभग पचास मास्केट्री राइफलें गरज उठीं। उनका मुँह आकाश की ओर उठा था। अन्त में अस्थाई सरकार बना कर मास्टरदा को 'गार्ड

ऑफ ऑनर' दिया गया।

फिर राइफलें गरज उठीं, फिर वही, 'इनक्लॉब जिन्दाबाद ! चटगाँव रिपाब्लिक आर्मी जिन्दाबाद ! विद्रोह दीर्घजीवी हो !'

सभी खुशी से झूम रहे थे। उनका इतने दिनों का स्वप्न सार्थक हुआ। सारे प्रमुख ठिकाने उनके अधिकार में आ चुके थे। आक्जिलियरी फोर्स, टेलिफोन भवन नष्ट हो चुके थे। टेलिफोन की लाइन शहर के बाहरी भाग से विच्छिन्न थी। रेल-लाइन का भी यही हाल था।

अब जेल, इम्पीरियल बैंक, कुछ पुलिस चौकियों को जीतना ही बाकी था।

लेकिन अचानक यह क्या ? रात के अँधेरे को चीर कर लूईस गन से गोलियाँ चलने की आवाज़ कहाँ से आ रही है...ट्रा ट्रा ट्रा ट्रा ट्रा ट्रा ट्रा....

तुरन्त सभी लेट गये। एक साथ मस्केट्री राइफल द्वारा सबने जवाब दिया.... वॉटर वर्क्स को लक्ष्य कर।

डबल मूरिंग जेटी में एक लूईस गन है, यह खबर उन्हें ज्ञात थी। कई बार यह प्रस्ताव भी रखा गया कि उस पर कब्जा कर लिया जाए, परन्तु लोगों की कमी के कारण यह सम्भव नहीं हो सका था।

पर यह कौन जानता था कि इसी एक लूईस गन के भरोसे शत्रु तत्परता के साथ उनका सामना करेगा ?

बस, कुछ ही क्षण....उसके बाद चुप।

इस बार विप्लवी नेताओं के सामने एक कठिन प्रश्न उठ खड़ा हुआ। स्वचलित लूईस गन के आगे मस्केट्री राइफल कितनी देर तक ठहरेंगी ? इस हालत में ज्यादा देर तक लड़ाई नहीं चल सकेगी।

हुक्म हुआ—जितना अस्त्र-शस्त्र लिया जा सकता है ले लो, बाकी नष्ट कर दो। उसके बाद पेट्रोल डाल कर पुलिस लाइन ही जला डालो।

यही किया गया। इन सारे कामों का जिम्मा हिमांशु सेन पर था। वे ही पेट्रोल का टिन लेकर आगे बढ़ आए।

और उसी समय मुसीबत आ गई। न जाने कब और कैसे उनके कपड़ों में काफी पेट्रोल गिर चुका था, इसका पता तब लगा जब उन्होंने आग लगाई। भक् से उनके कपड़ों में आग गई....ओह ! कितना भयंकर दृश्य था....देखा नहीं जा रहा था।

जल्दी से, किसी भी सलाह की परवाह न करके जनरल अनन्त सिंह और गनेश घोष उन्हें लेकर किसी सुरक्षित स्थान की ओर भागे। उनके साथ गए आनन्द गुप्त और जीवन घोषाल।

फलस्वरूप, ये जो वे गए फिर लाख कोशिश करने पर भी मूलवाहिनी के साथ सम्पर्क स्थापित न कर सके।

इधर इन्तजारी करते-करते दो घंटे बीते...लेकिन कहाँ जनरल सिंह, कहाँ गनेश घोष ?

आनन्द गुप्त या जीवन घोषाल ही कहाँ चले गए ? तो क्या, इस बीच पुलिस ने किसी री-एन्फोर्समेंट का प्रबन्ध कर लिया है ?

अवश्य ही—यही बात होगी । वरना अब तक वे लोग लौट क्यों नहीं रहे हैं ? अवश्य ही पुलिस ने इन चारों को पकड़ लिया है। हो सकता है इन्हें भी वे मिलिट्री सैनिकों की मदद से घेर लें ।

न ! ऐसी परिस्थिति में शहर की तरफ जाना ठीक नहीं होगा । यहाँ रहना भी सुरक्षित नहीं । शत्रु को जितना समय मिलेगा, उतना ही मौका ढूंढ़ेंगे....इसलिए सब पहाड़ की तरफ चलो ।

दुर्भाग्य ! मल्लिका, दुर्भाग्य ही था क्योंकि असली बात तो बिल्कुल विपरीत थी ।

असल में मुट्ठी भर लोगों ने एक लूईस गन की मदद से मामूली सी बाधा डालने की कोशिश की थी । उस पर वे यह तय नहीं कर पा रहे थे कि आत्म-समर्पण करें या भाग जाएँ ।

इसके अलावा शहर असुरक्षित था । यहाँ तक कि अंग्रेजों ने उस दिन डर के मारे शहर छोड़ दिया था और कर्णफुली नदी पर लंगर डाले जहाज पर जा कर आश्रय लिया था । सैनिक आगमन उसके तीन दिन बाद हुआ था । विप्लवी यह सब नहीं जानते थे । असल में दोनों मुख्य सेनाध्यक्षों की अनुपस्थिति के कारण ही उनके मन में ऐसी बात आई ।

दुर्भाग्य का अन्त यहीं नहीं हुआ । सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि जब अनन्त सिंह और गनेश घोष लौट कर पुलिस लाइन आए, वहाँ कोई नहीं था । उससे भी बड़ी बात कि मुख्य सेना वाहिनी ने उनके मोटर की हेड-लाइट देखी पर यह सोच कर छिपे रहे कि यह पुलिस की गाड़ी होगी ।

१६ तारीख—सारा दिन वे सुलुकबहर पहाड़ पर छिपे रहे । उसके बाद शुरू हुई पथ-परिक्रमा ।

अन्त में पहुँचे फतेहाबाद । भूखे-प्यासे....कई दिनों के जागे । प्यास मिटाने के लिए कुछ लोगों ने तो लुब्रीकेटिंग ऑयल तक पी डाला । उस पर तीन दिन का कठोर परिश्रम और लम्बा रास्ता तय करने के कारण सभी थके थे....क्लांत थे ।

फिर भी हर युवक उत्साह से भरपूर था । 'हम हार नहीं मानेंगे । हमारे साथ अस्त्र है, डरना कैसा ? फिर भी ऐसी अनिश्चितता स्वीकार करने को हम प्रस्तुत नहीं । हमें वास्तविकता का सामना करना होगा । पहले प्लॉन के अनुसार शहरों पर कब्जा करेंगे । हम आमने-सामने लड़ना चाहते हैं ।'

यही सही । तरुण-दल की स्फूर्तिदायक बातें सुन कर मास्टरदा सहर्ष तैयार हो गए । 'चलो सब, शहर लौट चलें ।'

रात का अंधेरा छाते ही फिर यात्रा आरम्भ हुई । आगे बढ़ो । चढ़ाई-उतराई

पार करते हुए बढ़ चलो। सुबह होने में देर नहीं है। इससे पहले ही हमें शहर की सीमा पर पहुँच जाना चाहिए।

लेकिन सब व्यर्थ हो गया। शहर पहुँचने से पहले ही पूरब में लाली छाने लगी। अवश्य ही इतनी देर में सब मालूम हो चुका होगा। दिन के इतने उजाले में इतने सारे मिलिट्री की पोशाक पहने तरुण—सन्देह उत्पन्न कर देंगे। सामने जलालाबाद की पहाड़ी थी। वहीं छिपना पड़ा।

शाम को पाँच बजे होंगे। सूर्यास्त जाने वाला था। लग रहा था कि प्रकृति की गोद में किसी ने मुट्ठी भर-भर अबीर बिखेर रखी थी।

छोटी-छोटी टुकड़ियों में बँट कर सभी पहाड़ पर विश्राम कर रहे थे। सब के मन में एक ही सवाल था। 'कब हम शहर पर कब्जा कर सकेंगे? कब इम्पीरियल बैंक, जेलखाना, कोर्ट-कचहरी....सब पर हमारा अधिकार हो पाएगा?

'नहीं है ·३०३ बोर वाली आर्मी राइफल तो क्या हुआ? न सही लूईस गन.... हम साहस और शौर्य में किसी से कम नहीं। जो कुछ हमारे पास है, हम उसी से, जीवन के अन्तिम क्षण तक लड़ाई जारी रखेंगे। किसी दशा में हार नहीं मानेंगे....किसी तरह भी नहीं।'

एक टुकड़ी, गोलाकार बैठी है जिसमें हैं सुरेश देव, विनोद चौधरी, जितेन्द्र दास गुप्ता और शम्भु दस्तिदार।

दूसरी टुकड़ी में हैं कृष्ण चौधरी, विनोद दत्त, सरोज गुहा, काली दे, मधुसूदन दत्त, नोनी देव और मलिन घोष।

उनसे थोड़ी दूर पर बैठे थे क्षीरोद बनर्जी, हेमेन्दु दस्तिदार, काली चक्रवर्ती, अर्धेन्दु दस्तिदार, और रणधीर दासगुप्ता।

कुछ नीचे की तरफ थे सहाय राम दास, मोती कानूनगो, विधु भट्टाचार्य, नारायण सेन और पुलिन विकास घोष।

उनसे भी कुछ हट कर बैठे थे महेन्द्र चौधरी, निर्मल लाला, वीरेन्द्र दे, विजय सेन और निताईपद घोष।

दूसरी जगह पर विराजित थे अश्विनी चौधरी, वनबिहारी दत्त, शशांक दत्त और सुबोध बॅल।

और भी हट कर फनीन्द्र नन्दी, हरिपद महाजन, भवतोष भट्टाचार्य, सुधांशु बोस और सुबोध चौधरी।

और हैं ब्रिगेडियर त्रिपुरा सेन, मनोरंजन सेन, देव प्रसाद गुप्ता, हरि बॅल (टैगरा), रजत सेन और स्वदेश राय।

यह वही स्वदेश राय हैं जो दलभुक्त न होते हुए भी पुलिस लाइन पर हमला करते समय आकर इनमें शामिल हो गए थे।

अन्त में और हैं सर्वप्रिय मास्टरदा सूर्य सेन, अम्बिका चक्रवर्ती, निर्मल सेन तथा जनरल लोकनाथ बॅल।

सभी के बीच गूंज रहा था—यही एक सवाल। शहर की वर्त्तमान स्थिति क्या होगी ?

खबर लाने के लिए इस बीच फकीर सेन, द्विप्तीमेधा घोष, अमरेन्दु नन्दी को भेजा गया था पर अभी तक उनका कहीं पता नहीं।

अचानक कुछ देख कर अलसाई दृष्टि प्रखर हो उठी प्रभास बॅल की। यह पहरा दे रहे थे।

नीचे पहाड़ के किनारे-किनारे एक रेल लाइन बहुत दूर तक चली गई है। उस पर एक ट्रेन चलते-चलते रुक क्यों गई ?

वहाँ तो कोई स्टेशन नहीं है। फिर ?

अरे यह क्या ? ट्रेन से तो मिलिट्री उतर रही है। अनगिनत मिलिट्री जवान; देखते ही देखते चंचलता फैल गई सर्वत्र। मिलिट्री....गाड़ी से उतर कर इधर ही तो आ रही है मिलिट्री।

'तैयार हो जाओ। लड़ाई पास है। यह युद्ध है साम्राज्यवादी सामरिक शक्ति के विरुद्ध अजेय विप्लवी शक्ति की। देखना है आज की इस ऐतिहासिक लड़ाई में कौन हारता है, कौन जीतता है।'

'सुनो लोकनाथ,' मास्टरदा सूर्य सेन ने आदेश दिया—'संग्राम निकट है। इस संग्राम का मैं तुम्हें सेनापति बना रहा हूँ। तुम सबको आदेश दो।'

'ठीक है।' ससम्मान उत्तर दिया जनरल बॅल ने— 'आशीर्वाद दीजिए, मैं आपके दिए इस सम्मान की रक्षा कर सकूं। गेट रेडी ! सब अपने-अपने सेक्शन में जाकर लायिंग पोजीशन ले लो। याद रखना, जीत हमारी ही होगी। हम विप्लवी हैं। साम्राज्य-वादी शक्ति के आगे हम सिर नहीं झुकाएँगे, न हमने झुकाया है। जो भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, जीत हमारी होगी ही।'

सभी ने अपने-अपने सेक्शन पर पहुँच कर पोजीशन ले ली।

गुरु निर्मल सेन, प्रथम श्रेणी के नेता अम्बिका चक्रवर्ती, यहाँ तक कि रिपब्लिकन आर्मी के नायक मास्टरदा भी इससे नहीं बच सके। लोकनाथ सेनापति हैं, उनका आदेश मानना ही होगा। यही मास्टरदा की विशेषता है, जिसकी वजह से चट्टगाँव के हर प्राणी के वे मास्टरदा थे।

संग्रामप्रिय तरुणों की टोली तैयार थी।

सभी के हाथों में थी मस्केट्री राइफल—गोली भरी। साँस रोके पड़े थे सब, अगले आदेश की प्रतीक्षा में।

वह देखो, संगीन लिए वे पहाड़ पर चढ़ते चले आ रहे हैं। ये रहे धान के खेत से सटी खुली जमीन के बीच में। अब उन्हें आगे बढ़ने देना ठीक नहीं। यही मौक़ा है। कब आदेश देंगे जनरल ? कब ?

उसी समय जनरल बॅल की हुंकारध्वनि गूंजी—'हॉल्ट।'

किंकर्त्तव्यविमूढ़ सेनावाहिनी इससे पहले कि कुछ समझ पाती, वही बहु-आकांक्षित कमान्ड—'फायर !'

एक साथ सारी मस्केट्री रायफलें गरज उठीं—धांय, धांय, धांय, धांय !

दौड़ ! जिस तरफ हो सका दौड़े। कोई भागने में सफल हुआ, कोई दूसरों के शरीर से टकरा कर पहाड़ पर से लुढ़कता नीचे जाने लगा।

भयंकर विजयोल्लास से गूंज उठा जलालाबाद पहाड़। 'इनक्लाब जिन्दाबाद ! साम्राज्यवादी मुरदाबाद ! बिना लड़े क्यों भाग रहे हो डरपोकों ? हिम्मत हो तो आगे आओ !'

चिंतित हुए कॅप्टन टेट्, कर्नल डॉल्स स्मिथ—डी० आई० जी० फारमर, श्वेतांग युद्ध-अधिकारी। बिखरी हुई ब्रिटिश सेना को एक खन्दक की आड़ में इकट्ठा कर के उन्होंने सलाह-मशविरा शुरू किया।

इस धान के खेत को पार किये बिना उनके लिए आगे बढ़ना असम्भव था। और यह रास्ता अपनाना कोई चाहता नहीं था। अब क्या किया जाये ?

थोड़ी देर में नई योजना बना कर सेना तैयार हुई। इन्होंने ड्रम और बिगुल बजाया। एकदम से दौड़ कर जाना होगा बैनट चार्ज करने के लिए। सबको एक बार में खत्म करना है। कोई बचने न पाये।

पर सब व्यर्थ था। ज्यों ही संगीन तान कर दो कदम बढ़े त्यों ही सुनाई पड़ा—'फ्रेन्ड्स ! फायर। लोड ! फायर !....फायर !...फायर !'

फिर भगदड़। फिर खड्ड के पीछे जा छिपे। लेकिन ज्यादा देर के लिए नहीं। इस बार, कुछ देर बाद ही दक्षिण पूरब के कोने पर स्थित एक ऊँचे पहाड़ से बाहकर मशीनगन की आवाज़ आने लगी—ट्रॉं-ट्रॉं-ट्रॉं-ट्रॉं....

तुरन्त जनरल बॅल ने पहाड़ के दाहिनी ओर के तरुण समूह को आदेश दिया—'फ्रेन्ड्स, एनिमी ऑन दि साउथ ईस्ट हिल....टेन राउन्ड रैपिड फायर।'

इसी आदेश के साथ दक्षिण-पूर्व के कोने पर स्थित पहाड़ को लक्ष्य कर मस्केट्री राइफल गरज उठीं—धांय-धांय-धांय-धांय....

ट्रॉं ट्रॉं ट्रॉं ट्रॉं....क्षण भर बाद और एक मशीनगन उत्तर-पूर्वी कोने की एक पहाड़ी चोटी से गोले फेंकने लगी। मानो उनका इरादा था कि इन दुष्ट लड़कों को दुनिया से मिटा देने के लिए अगर जलालाबाद पहाड़ उड़ा देना पड़े तो यह भी मंजूर है।

इस बीच एक घंटा बीत गया। शाम का अंधेरा पहाड़ पर छाने लगा।

फिर भी मशीनगन आग उगलती रहीं। चारो तरफ धूल ही धूल। एक-एक करके पेड़ टूट-टूट कर गिर रहे थे। फिर भी विभिन्न ओर से ट्रॉं-ट्रॉं-ट्रॉं-ट्रॉं....

एक ओर स्वचलित मशीनगन, दूसरी ओर मस्केट्री राइफल। '३०३ बोर वाली आर्मी राइफल होती तो एक बात भी थी। उससे और कुछ नहीं तो एक बार में दस गोलियाँ तो चला सकते थे। मस्केट्री राइफल में दम ही कितना है ?

फिर वे मरने से नहीं डरते हैं। मरना तो एक दिन है ही।...सभी मरते हैं.... बच कोई नहीं सकेगा। तो फिर कायरों की मौत क्यों मरा जाये ? नहीं—ऐसी मृत्यु नहीं चाहिये। वे सिर्फ चाहते है—वीरों की तरह मरना।

कुछ समय और बीता।

सांय-सांय करके गोलियाँ चल रही थीं। कोई किसी को छोड़ने को तैयार नहीं ....कोई हार भी नहीं मानेगा।

अचानक तरुण विप्लवियों के सामने एक कठिन समस्या आ खड़ी हुई। लगातार गोली बरसाने के कारण, राइफलों के बैरेल बेहद गरम हो गये थे। यहाँ तक कि रुमाल से पकड़ना भी असम्भव था। इसके अलावा कारतूसें भी चेम्बर में घुसाने में असुविधा हो रही है। मामला क्या है ? ऐसा क्यों हो रहा है ?

समस्या-समाधान की जिम्मेदारी ली मास्टरदा और सर्व-हित-चिन्तक निर्मल सेन ने।

मशीनगन लगातार चल रही थी। लाइंग पोजीशन बदलना असम्भव था। इसी-लिए छाती के बल रेंगते हुए एक-एक करके वे दोनों सभी की राइफलों के बैरेल लुब्रि-केटिंग ऑएल से साफ करने लगे।

'लो, अब चलाओ। याद रखो—डरपोक असली मौत के पहले कई बार मर चुकता है, पर बहादुर और चौकस मौत का सिर्फ एक ही बार स्वाद लेता है।'

सचमुच यही हुआ। सबसे पहले जनरल बल के छोटे भाई, १४ वर्षीय किशोर—टैगरा शहीद हुआ। शरारती लड़का। डर किसे कहते हैं जानता तक नहीं था। रह-रह कर उछल कर खड़ा हो जाता और मशीनगन की ओर लक्ष्य कर के गोली चलाता। परन्तु इसके अनिवार्य परिणाम से बच न सका। अचानक ढेर सारी गोलियों ने आकर उसका शरीर छलनी कर दिया।

मरने से पहले उसने एक ही बात कही—'सोनाभाई (जनरल बल), मैं चला। लेकिन तुम लोग रुकना नहीं। गोली चलाते चलो।'

विप्लवियों का जीवन बड़ा कठोर होता है। यहाँ हृदय की कमजोरी का कोई स्थान नहीं। जानती हो मल्लिका, जनरल बल ने छोटे भाई की बात का क्या उत्तर दिया था ?

कहा था—'कौन है सोनाभाई ? युद्धक्षेत्र में कोई सोनाभाई नहीं है। हम सैनिक हैं। हमारा एकमात्र कर्तव्य—है डू एंड डाई।'

—डू एण्ड डाई। नये सिरे से हर विप्लवी तरुण ने शपथ ग्रहण किया। 'जलालाबाद के युद्ध में हुए प्रथम शहीद टैगरा को हम कभी नहीं भूलेंगे। उसकी मृत्यु का बदला हम लेंगे ही लेंगे।'

ट्रॉ-ट्रॉ-ट्रॉ-ट्रॉ....दक्षिण-पूर्व के कोने वाली पहाड़ी चोटी से एक और बाइकर मशीनगन गरजने लगी।

ब्रिगेडियर त्रिपुरा सेन को लगी। थोड़ी देर में निर्मल लाला। उसके बाद ही

विधु भट्टाचार्य ।

हँसमुख विधु भट्टाचार्य । हरेक को हमेशा हँसाते आये थे । मरते समय भी बाज नहीं आये । हँसते-हँसते अपने अभिन्न हृदय मित्र नरेश राय से बोले—'अब तू आ जा । मैं तुझे रिसीव करूँगा ।'

मित्र का अभाव बहुत देर तक सहना न पड़ा नरेश राय को । देखते ही देखते वे भी अपना कर्तव्य समाप्त कर के चल दिये ।

अब गिरे बिनोद दत्त । फिर भी रुकना नहीं, थकना नहीं । बुरी तरह से घायल हो कर भी वे मस्केट्री राइफल से गोलियां चलाते रहे—धाँय-धाँय-धाँय-धाँय ! लड़ाई तो सैनिक का धर्म है....यहां आराम करने का सवाल कहां उठता है ?

इसके बाद अर्धेन्दु दस्तिदार । लापरवाह दुर्दान्त युवक । कुछ दिनों पहले अपने ही बनाये बम के फटने से घायल हो चुके थे । अभी तक ठीक से घाव नहीं सूखा था । सारे शरीर पर बैन्डेज बाँध कर ही इस लड़ाई में आ डटे थे ।—'वाह ! जहाँ तुम लोग मौत से पंजा लड़ाने चले हो, वहाँ मैं क्यों पीछे रहूँ ? नहीं, यह नहीं होगा । मैं भी तुम लोगों के साथ चलूँगा ।'

उसके बाद शशांक दत्त गये । गये मधुसूदन दत्त । उनके शरीर की इस तरह से धज्जियां उड़ीं कि उन्हें पहचानना कठिन हो गया ।

अगला नम्बर था अम्बिका चक्रवर्ती का । देखते ही देखते खून से उनका सारा शरीर ढंक गया ।

सब के बाद गये मोती कानूनगो, पुलिन विकास घोष, जितेन दासगुप्ता और प्रभास बल । सभी साथी जा चुके थे, ये क्यों पीछे पड़े रहें ?

अचानक परिस्थिति जटिल हो उठी वनबिहारी दत्त के लिए । राइफल अत्यन्त गरम हो गयी थी । रूमाल से भी पकड़ना मुश्किल है । इसके अलावा चेम्बर जाम हो गया है । चेम्बर में कारतूसें भी नहीं घुस रही हैं ।

दूर से यह देख कर, निहत प्रभास बल की राइफल लेकर छाती के बल घिसटते हुए मास्टरदा उनके पास आये—'यह लो । अब मारो ।'

देख कर सारा शरीर रोमांचित हो उठा वनबिहारी का । मास्टरदा ! स्वयं मास्टरदा....युवा विद्रोहियों के सर्वप्रिय नायक ? मास्टरदा अपने हाथों से लाकर उन्हें राइफल दे रहे हैं ? इससे बड़ा गौरव और क्या हो सकता है ?

पर नहीं । चली नहीं । इसका भी वही हाल था । इसके चेम्बर में भी कारतूसें नहीं घुस रही हैं । जरा सा लुब्रिकेटिंग ऑयल चाहिये ।

अचानक कुछ देख कर वनविहारी की आँखें जल उठीं । नहीं, कोई जरूरत नहीं है । इस राइफल में अभी तक प्रभास बल का ताजा खून लगा है । कुछ देर तक यही लुब्रिकेटिंग आयल का काम करेगा । शहीद का खून ।....यही किया वनबिहारी ने । खून से चेम्बर साफ करके वे नये उत्साह से गोलियाँ दागने लगे । धाँय ! धाँय ! धाँय !

इस बार भूखे शेर की तरह गरज उठे जनरल लोकनाथ बल—'फायर, अन्टिल

दि एनिमी मेशीनगन इज़ कम्प्लीटली साइलेन्स्ड ।—इस मशीनगन को बन्द करना ही है। लगातार मारते चलो, रुकना नहीं। डू एण्ड डाई।'

शुरू हुआ तीखा आक्रमण। इस मशीनगन को बन्द करना ही होगा। हम मर जाएँगे ! लेकिन साम्राज्यवादी शक्ति के आगे सिर नहीं झुकाएँगे।

अन्त में वही हुआ। मशीनगन का मुँह बन्द हुआ तुच्छ मस्केट्री राइफल के आगे।

यह मानना ही पड़ेगा। किराये के सैनिकों और इन उत्साही युवकों के मनोबल में ज़मीन-आसमान का अन्तर था।

ये तो अजेय, मृत्युंजय हैं। अंधेरा बढ़ गया। ऐसे मौके पर ये लड़के कब टूट पड़ें इसका कोई ठिकाना नहीं—इससे अच्छा है भागना चाहिये।

देखते-देखते रात हो गई। जलालाबाद पहाड़ अंधेरे में डूब गया। सभी थके, सभी पस्त। युद्ध में जीत भले हुई हो, उनके मन पर दुःख के काले बादल छाए थे। सहकर्मियों में से एक-एक करके बहुत से लोग चले गए थे। अब वे नहीं लौटेंगे....उनकी आवाज़ कभी सुनने को नहीं मिलेगी। पर इस बात पर पीछे नहीं हट सकते। विप्लव कहीं रुका है ?

पर अब जलालाबाद में नहीं। आज दुश्मन भले ही लौट गया है, पर कल इससे भी बड़ी ताकत के साथ लौटेगा। अतएव यहाँ रहना उचित नहीं होगा।

शुरू हुआ मृत साथियों को गार्ड ऑफ ऑनर देना। सभी को एक कतार में सजा कर रखने के बाद जनरल बल ने कहा—

Comrades in close column of groups, in single rank, fall in.

खट-खट खट-खट....तुरन्त सभी ने पंक्तिबद्ध होकर पोजीशन ली—राइफलों की नलियाँ नीची कर लीं। उसके बाद ही सभी ने मृत सहकर्मियों को अभिवादन जताया। सारा पहाड़ काँप उठा।—'चट्टगाँव के विद्रोही युवक ज़िन्दाबाद ! विप्लव दीर्घजीवी हो। विदा मित्र, विदा ! तुम्हें हम कभी नहीं भूल सकेंगे। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में तुम्हारा यह त्याग....स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा।'

शुरू हुई पथ-परिक्रमा। शुरू हुआ चढ़ाई-उतराई से होते हुए आगे बढ़ना। चारों ओर गहरा अंधेरा। दो हाथ आगे की चीज साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ रही थी। इसी अंधेरे में चलते वक्त जनरल बल, न जाने कब, कुछ साथियों के साथ, मुख्य दल से विच्छिन्न हो गए, कोई जान तक न सका।

इस सम्बन्ध में वयोवृद्ध विप्लवी नेता श्रद्धेय चारुविकास दत्त की लिखी कुछ लाइनें उद्धृत कर रहा हूँ—

'फिर निरुद्देश्य यात्रा आरम्भ हुई। पीछे परम प्रिय मित्रों के शव-देह और सामने गहरे अंधेरे से ढँका रास्ता, हृदय पीछे खींचता, कर्त्तव्य आगे बुलाता।

प्यास से छाती फट रही थी। लड़ाई से थकी देह को हर कोई खींच-खींच कर ले चल रहा था। भारी युद्ध का सामान शरीर की अन्य इन्द्रियों की भाँति ही व्यर्थ लग रहा था। इस पर विनोद चौधरी और विनोद दत्त के आहत शरीर का बोझ भी था। उन्हें ले कर उतरना और भी कठिन था।

पहाड़ से उतरने के कुछ बाद ही अब रास्ता न था। बिल्कुल सपाट ढलान थी...काफी दूर जाकर समतल जमीन थी।

लौटना संभव न था। नया रास्ता ढूंढ़ने का वक्त नहीं था। आँख बन्द करके कूदने के अलावा और कोई चारा न था।

धीमी आवाज़ में पीछे से लोकनाथ बोले—'डरने की कोई बात नहीं, कूद जाओ।'

घना अंधेरा। सामने का आदमी तक दिखाई नहीं पड़ रहा था। परन्तु चार-चार, पाँच-पाँच की टोलियों में बँट कर लोग कूदने लगे।

ये लोग कुछ देर खड़े रहते। अगला प्रश्न था किधर जाएँ।

फुसफुसा कर बात करना भी संभव नहीं था। कण्ठनली तक सूख रही थी, बन्द हो गई थी। कुछ घंटे की गोलाबारी से कान भी बन्द हो रहे थे।

पाँच-सात मिनट का व्यवधान। सबसे पहले लोकनाथ बल और उनके साथी अंधेरे में अदृश्य हो गए। दूसरे दल में सूर्य सेन और कुछ लोग और समतल रास्ता पकड़ कर आगे बढ़ने लगे।

तभी मास्टरदा ने पूछा—'लोकनाथ वगैरह किस रास्ते से गए?'

उनका कहीं पता नहीं चला। फिर रास्ता चलना शुरू हुआ।

ठीक पीछे नेता सूर्य सेन का हाथ पकड़ कर निर्मल सेन चल रहे थे। उद्देश्य था अपने बलिष्ठ शरीर पर मास्टरदा के दुर्बल, दुबले-पतले शरीर का भार सँभाले रहें। दल के हर व्यक्ति की सुख-सुविधा, योग्यता-अयोग्यता, आशा-आकांक्षा, वेदना-अनुभूति से यही एक आदमी जुड़ा हुआ था।

सभी के अनजाने में, सभी के मन का काम करने की प्रेरणा देने वाले व्यक्ति थे ये निर्मलचन्द्र सेन और इसीलिए सभी के प्रिय और अपने थे निर्मलदा। यही आदमी मास्टरदा के थके-माँदे शरीर को बड़ी चतुराई से ढो रहे थे।

रात भर चले, सुबह हुई पर रास्ता खत्म नहीं हुआ। दुर्गम पहाड़ को इधर-उधर से घूम-फिर कर सिर्फ आधा मील ही चले और एक दूसरी पहाड़ी पर आ पहुँचे।

मास्टरदा दूर जलालाबाद पहाड़ को उदास निगाहों से देखते रहे....निष्ठुर वध-भूमि। रह-रह कर दोनों आँखें जल उठतीं....उनकी आँखों के आगे अम्बिका चक्रवर्ती से लेकर टेगरा....हरेक का चेहरा आ रहा था। सभी उनके जीवन के इतिहास से जुड़े थे।'

सभी के मृत समझ लेने पर भी अम्बिका चक्रवर्ती उस वक्त भी जीवित थे, मल्लिका। अचानक बड़े तड़के उन्हें धीरे-धीरे होश आया।

लेकिन कहाँ हैं मास्टरदा ?

मस्तमौला निर्मल सेन ?

कहाँ गए लोकनाथ बल और बाकी सारे सहकर्मी ? उनके पास कोई नहीं था।

शरीर अपने वश में नहीं। सीधे खड़े हो सकें, इतनी शक्ति तक नहीं थी। फिर भी वे धीरे-धीरे लुढ़कते हुए पहाड़ से उतरने लगे।

सुबह होते ही शत्रु आकर चारों तरफ से घेर लेंगे। उससे पहले यहाँ से हटना होगा। किसी भी तरह से मास्टरदा को ढूँढ़ लेना होगा।

अनुमान गलत नहीं था। दूसरे दिन सुबह होते ही शत्रु सेना ने जलालाबाद पहाड़ को चारों ओर से घेर लिया। इस बार वे संख्या में बहुत ज्यादा थे। उनके पास अस्त्र भी अधिक थे। जैसे भी हो विद्रोहियों को पकड़ना ही होगा। उनके नायक सूर्य सेन को पकड़ना ही है।

पर कहाँ गए सूर्य सेन ? कहाँ हैं उनके अनुयायी तरुणगण ?

कोई नहीं था। सिर्फ ११ किशोर कतार से चिरनिद्रा में लेटे थे और वहाँ पड़े थे हजारों की संख्या में इस्तेमाल में लाए गए कारतूसों के खाली कवर। इसके अलावा वहाँ कुछ न था।

मोती कानूनगो और अर्धेन्दु दस्तिदार में प्राण शेष थे, लेकिन ज्यादा देर के लिए नहीं। थोड़ी ही देर में मोती कानूनगो ने अपने साथियों का रास्ता अपनाया। अर्धेन्दु को अस्पताल भेजा गया.... उनकी मृत्यु वहीं हो गयी।

शासकों की दुश्चिन्ता का अन्त न था। इन शवों को लेकर क्या किया जाए ?

शहर ले जाना ठीक नहीं होगा। तब तो युवकों को रोकना बहुत मुश्किल हो जाएगा। उससे तो अच्छा है, यहीं इन्तजाम किया जाए।

वही किया गया। अन्त में पेट्रोल डाल कर सभी को जला डाला गया। जलालाबाद धन्य हुआ।

इस जगह पर मैं युवाविद्रोही अनन्त सिंह की लिखी कुछ लाइनें उतार रहा हूँ—'आग लगाई गई। देखते ही देखते, ग्यारह चिताएँ दहक उठीं—आकाश लाल हो गया। गुरखा सैनिक एटैन्शन में सिर झुकाए खड़े रहे। अंग्रेज सेनाध्यक्षों ने अपनी टोपें उतार कर हाथ में ले लीं। भारतीय अफसरों ने भी सिर झुका कर विप्लवियों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। किसी-किसी की आँखें भर आईं। देखते ही देखते, उनका शरीर जल कर राख हो गया।

जलालाबाद का युद्ध—अंग्रेजों के विरुद्ध एक गौरवपूर्ण युद्ध था। इसे भारतवासी कभी न भूल सकेंगे। शाम तक सारे शहर में बात फैल गई। चट्टगाँव के लोग शोकाकुल हुए...न जाने कितनी माताओं की गोदें सूनी हो गई....कितनी बहनों ने भाई खोये। घर-घर दुःख की छाया मँडराने लगी, पर विजय-गर्व भी था। उस दिन चट्टगाँव के कितने घरों में सन्ध्या का दीपक नहीं जलाया गया। खाना नहीं पकाया गया, चूल्हा नहीं जलाया गया।

२२ अप्रैल १६३०—शहीदों की चिता की लाल अग्निशिखा ने आकाश के सीने में लाल अक्षरों से लिख दिया—'साम्राज्यवाद का पतन हो! विप्लव दीर्घजीवी हो!'

युवा विद्रोहियों के एकनिष्ठ नेता अनन्त सिंह उस समय कहाँ थे? कहाँ गए जनरल गनेश घोष? आग में जल गए हिमांशु सेन को लेकर १८ अप्रैल को वे लोग मुख्य सेना से अलग हो गए थे। आज तक उनका पता नहीं था। कहाँ गए वे लोग?

उसी दिन रात के आठ बजे खबर मिली। चट्टगाँव से आठ मील दूर पुटियारी रेल स्टेशन से।

अचानक कुछ देख कर स्टेशन मास्टर अश्विनी घोष का लोभी मन सचेतन हो उठा। काउन्टर पर एक सुन्दर युवक खड़ा था। थोड़ी दूर पर और तीन युवक। देख कर लग रहा था देहाती हैं।

पर क्या वास्तव में वे देहाती हैं? चट्टगाँव में भयंकर लड़ाई हुई है, खबर मिली है। उन्हीं में से कोई न हो। अवश्य ही यही बात होगी।

नहीं। यह मौका किसी हालत में छोड़ना नहीं चाहिए। अगर पकड़ा दिया तो सरकार बहादुर से मोटी रकम इनाम में मिलेगी। हो सकता है कोई उपाधि भी मिल जाए। नौकरी के जीवन में इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा? ज्यों ही ट्रेन आई, अपने शक की बात गार्ड फरेरा से बता दी अश्विनी घोष ने।

सिर्फ इतना ही नहीं। उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ सीताकुण्ड, फेनी कुमिल्ला, लकसाम इत्यादि स्टेशनों पर भी टेलीग्राम कर दिया। 'इस नम्बर के टिकट वाले यात्रियों पर नजर रखिए....इनका हावभाव सन्देह-जनक है।'

तेजी से ट्रेन चल रही थी और उसी के साथ व्याकुल मन भाग रहा था। एक डिब्बे में चार निरीह ग्रामीण यात्री। लक्ष्य:...कलकत्ता।

बहुत कोशिश करने पर भी मास्टरदा और मुख्य सेनावाहिनी का पता नहीं चल पाया। अब इसकी आशा भी नहीं रही।

इधर ढाका और कलकत्ते से असंख्य सैनिक आ गए थे। अब यहाँ पड़े रह कर

फ़ायदा क्या होगा ? इससे तो अच्छा है कलकत्ता चला जाए ।

रात के दो बजे फेनी पहुँचे । स्टेशन में ट्रेन घुसते ही डिब्बे में पुलिस घुस आई ।

देखें सब का टिकट । हाँ, यही वह चारो हैं । ये ही लोग पुटियारी से ट्रेन पर चढ़े हैं । 'चलो, तुम लोग स्टेशन मास्टर के कमरे में ।'

अनन्त सिंह के नाम उन दिनों कितने कहानी-किस्से प्रचलित थे । लोग कहा करते थे कि वह सिर्फ़ हाथों ही से नहीं, पाँव, नाक, कान सबसे रिवाल्वर चला सकते हैं ।

थोड़ी देर बाद ही यह बात साबित भी हो गई । चीजों की तलाशी हो चुकी थी, अब शरीर की तलाशी ली जाएगी ।

पहले बुलाए गए जीवन घोषाल—'देखें, तुम्हारी कमर में क्या है ?'

बस, फिर क्या ? अनन्त सिंह का रिवाल्वर गरज उठा—धाँय ! धाँय !

इशारा पाते ही जीवन घोषाल और आनन्द गुप्ता ने भी आग बरसाई ।

गनेश घोष उस समय दो सिपाहियों के साथ लघुशंका हेतु गए थे । सिग्नल पाकर उन्होंने भी गोलियाँ दागीं—धाँय ! धाँय ! धाँय !

शुरू हुआ हो-हल्ला, चीख-पुकार । 'अरे बाप रे ! मार डाला, कमर तोड़ दी । वह भाग रहे हैं । उन्हें पकड़ो ।'

लेकिन व्यर्थ था । किसे पकड़ता....कोई वहाँ था ही नहीं । पलक झपकते सब गायब हो चुके थे ।

मुसीबत दूसरी तरफ से आई । भागते समय दल से अलग हो गए अनन्त सिंह । घुप् अँधेरा....उसके बाद गनेश घोष ।

हालाँकि थोड़ी देर में आनन्द गुप्ता और जीवन घोषाल को गनेश घोष मिल गए, पर अनन्त सिंह से फिर किसी तरह से भी सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सका ।

भेंट हुई कलकत्ते में । बहुत चक्कर काटते-काटते चारों फिर आकर मिले । आश्रय का इन्तजाम हुआ चन्दन नगर में ।

इस मामले में युगान्तर दल के भूपेन्द्र कुमार दत्त, किरण मुखर्जी, कालीचरण घोष, सुभाष के मँझले भाई साहब शरत बोस और बी० वी० के प्रसिद्ध नेता भूपेन्द्र किशोर रक्षित की भूमिका अधिक उल्लेखनीय थी ।

२४ अप्रैल को अमरेन्द्र नन्दी ने एक नए इतिहास की रचना की ।

अमरेन्द्र नन्दी की बात तुम्हें पहले भी बता चुका हूँ । मास्टरदा ने उन्हें आदेश किया—'तुम जा कर सब देख सुन आओ । आकर मुझे रिपोर्ट दो ।'

लेकिन मल्लिका, वे लौट न सके । उसके पहले ही पुलिस और मिलिट्री ने चारो तरफ से घेर लिया ।

अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह में फँस गए । एक तरफ पुलिस और मिलिट्री सेना के साथ कैप्टन टेट, डी० आई० जी० फारमर जैसे लोग । दूसरी तरफ अमरेन्द्र अकेले ।

फिर भी इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी के सैनिक होने के नाते उन्होंने स्वेच्छा से आत्म-समर्पण नहीं किया।

एक कलवर्ट के नीचे आ छिपे। दोनों हाथों में गोलियों से भरे दो रिवाल्वर। आने दो पुलिस या मिलिट्री को—हाथों में अस्त्र है तो डर कैसा?

—'अभी भी आत्म-समर्पण कर दो।' बार-बार श्वेतांग. अधिकारी गण कहने लगे—'तुम डरो मत। अस्त्र फेंक दो। चुप मत रहो, जवाब दो।'

जवाब गोली से दिया—धांय! धांय! बस सब खत्म। आत्म-समर्पण करने से तो अच्छा है मृत्यु को गले लगाना। उन्होंने किसी भी दशा में आत्म-समर्पण नहीं किया।

मास्टरदा ने आश्रय लिया था दल के एक शुभाकांक्षी, कोयेपाड़ा के विनय सेन के घर में।

कुछ लोगों के साथ जनरल बल अलग हो गए, यह मैं पहले बता चुका हूँ। अब पता करते हुए वे और दूसरे, धीरे-धीरे मास्टरदा के पास इकट्ठा होने लगे। विचार-विमर्श शुरू हुआ। अब क्या किया जाए? रुकने से काम नहीं चलेगा। चोट पर चोट करना है। कड़ी मार।

रजत सेन, देव प्रसाद गुप्ता, स्वदेश राय, मनोरंजन सेन, सुबोध चौधरी, फनीन्द्र नन्दी जैसे युवक जान की बाजी लगाने को उतावले हो रहे थे। खून चाहिए। खून से ही हम जलालाबाद के अपने शहीद मित्रों का तर्पण करेंगे। अन्त में इन लोगों ने आ पकड़ा निर्मल सेन को। छोटे-बड़े सभी के प्रिय नेता निर्मल सेन—'आप जरा मास्टरदा को समझा कर कहिए, निर्मलदा। हमें अनुमति चाहिए।'

५ मई को अनुमति मिली। मास्टरदा और निर्मलदा के पांव छू कर प्रणाम किया और छहों मित्र अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर चल पड़े। यूरोपियन क्लब पर आक्रमण करके ही खून का बदला लिया जाएगा। किसी को छोड़ना नहीं है।

नहीं, सुविधा नहीं हुई। चारों तरफ सशस्त्र मिलिट्री। किसकी हिम्मत है कि उनके कड़े पहरे को पार करता? इसलिए उस दिन प्रोग्राम स्थगित कर दिया गया।

सामने ही रजत का घर था। अभी उस दिन रजत की मां ने अनन्तदा और गणेशदा को पुलिस और मिलिट्री की नजरों से बचा कर रखा था। वह हर छोटे-बड़े की मां थीं। इसी मौके पर क्यों न उनके पांव की धूल ले ली जाए? हर्ज क्या है?

'तू?' इतने दिनों बाद खोए हुए पुत्र को खुशी और भाव-विभोर होकर उन्होंने गले से लगा लिया। विनोदिनी देवी खुशी से रोने लगीं—'आओ बेटा! तुम सब यहां बैठो।'

'मां, तुम मुझ पर गुस्सा तो नहीं हो?' रजत मां के पांव छूने के लिए झुका, तो लाड़ जताता हुआ बोला।

'गुस्सा?' उनके सारे चेहरे पर मुग्ध विह्वल भाव था—'पागल लड़का। मैं

क्या कभी तुम पर गुस्सा रह सकती हूँ ? तुम लोगों की माँ हूँ, मुझे इस बात का कितना गर्व है, यह सिर्फ मैं ही जानती हूँ। तुम तो बेटा, आज सारे देश के लिए गर्व हो।'

'माँ, बड़ी भूख लगी है। कुछ खाने का इन्तजाम करो न।'

'अभी करती हूँ। तुम लोग ज़रा देर बैठो। मैं खाने का इन्तजाम करती हूँ।'

खाना तैयार। देख कर तरुणदल खुशी से झूम उठा। माँ ने स्वयं पकाया है—इसकी तुलना नहीं हो सकती है।

मल्लिका, फिर भी वे खा नहीं सके। इससे पहले ही पहरे पर नियुक्त रजत के छोटे भाई ने आकर बताया, 'भइया, जल्दी ! पुलिस आ रही है।'

'पुलिस !' तुरन्त सभी तन कर खड़े हो गए। सबके हाथ में रिवाल्वर। माँ के पाँव छू कर पिछले दरवाजे से एक-के-बाद-एक निकल कर अँधेरे में अदृश्य हो गए।

पुलिस चकित। आश्चर्य ! कहीं कोई नहीं था। पर खबर तो झूठी नहीं थी। गए कहाँ ?

वे तब कर्णफूली नदी के बीचोबीच थे। उनका इरादा उस पार पहुँचने का था।

खबर पाते ही पुलिस वाहिनी मोटर-लंच लेकर पीछे भागी।

'जोर से चलाओ। सर्चलाइट की रौशनी में उनकी नाव दिखाई पड़ रही है। उनका पीछा करो। लेकिन फासला रखते हुए क्योंकि उनका कोई भरोसा नहीं। धाँय से कब गोली चला कर सिर ही फोड़ सकते हैं। संभल कर।'

'नाव रोक दो।' सर्चलाइट द्वारा बार-बार संकेत दिया जाने लगा—'नाव वापस लाओ।'

उत्तर न देकर और जोर से नाव तीर की तरफ बढ़ती गई। वे मरने से नहीं डरते हैं, पर बिना लड़े पकड़ में नहीं आएँगे।

दूसरे किनारे पर पुलिस पहुँच कर ठगी सी रह गई। कहीं कोई नहीं है—कहाँ गए ? हवा में गायब हो गए क्या ?

इसी बीच हजारों सैनिकों के साथ थाने के इन्चार्ज आजिम खाँ साहब, डी० एस० पी० आसानुल्ला, पटिया के दारोगा, कर्नल डेलास्मिथ, डी० आई० जी० फरमार, मैकडोनाल्ड, हेम दारोगा....एक के बाद एक सभी।

विप्लवियों का पता न मिला तो शुरू हुई वही पुरानी कूटनीतिज्ञों वाली चाल। अर्थात् यहाँ के सीधे-साधे भोले-भाले मुसलमानों को बुलाओ। उनसे कहो कि तुम्हारे गाँव में डाका पड़ा है। पकड़वा देंगे तो अच्छा इनाम मिलेगा।

इससे काम बना। चारो ओर हल्ला मच गया—'डाकू ! उधर जा रहे हैं, पकड़ो।'

बाधा पड़ी तो गोली चलाई इन्होंने—'भाई लोग, हमारा रास्ता छोड़िए। हम डाकू नहीं हैं। तुम्हारा कोई नुकसान नहीं करेंगे। हमारी अंग्रेजों से दुश्मनी है। तुमसे हमें कुछ नहीं लेना है।'

लेकिन कौन सुनता है उनकी बात ? इस बीच गोली लगने से कुछ लोग घायल

भी हो चुके थे, फिर भी वही रट—'डाकू ! इन्हें पकड़ो, इनाम मिलेगा ।'

अनजाना अनदेखा माहौल । रास्ता पहचानते नहीं, उस पर चारो ओर गहरा अँधेरा ।

युद्ध में घायल हो जाने से पहले पकड़े गए सुबोध चौधरी । उसके बाद फनीन्द्र नन्दी । बाकी चार जने जुल्धा गाँव में जा छिपे ।

पूरब में लाली छाने लगी । अँधेरा कट रहा था धीरे-धीरे ।

तीन दिन से खाया नहीं था । प्यास मिटाने को पानी नहीं मिला था । धीरे-धीरे शरीर शिथिल हुआ जा रहा था । कुछ खाए बिना एक कदम चल सकना असम्भव था ।

सामने ही एक मुसलमान परिवार रहता था । दरवाज़े पर एक वृद्धा खड़ी थी ।

असहाय से सब उनके सामने जाकर खड़े हुए—'हमें कुछ खाने को दोगी माँ ? हमने तीन दिन से कुछ नहीं खाया है ।'

माँ ! वृद्धा का हृदय ममता से भर आया । चेहरा खिल उठा । सारी रात गाँव में गोलियाँ चल रही थीं । लगभग पूरा गाँव मिलिट्री से घिरा है ।

इस दशा में आगन्तुकों का परिचय जानने में ज़रा भी देर नहीं लगी । सब जानते हुए भी 'माँ' सम्बोधन के दावे की उपेक्षा नहीं कर सकी । इसलिए माँ की तरह ही बोली —'मैं अभी इन्तजाम करती हूँ । लेकिन यहाँ खड़े मत रहो, मेरे बच्चों ! सामने के जंगल में जाकर छिप जाओ । मैं थोड़ी देर में खाना लेकर पहुँचती हूँ ।'

लेकिन मल्लिका, इतने अरमानों का खाना इस बार भी वे न खा सके । इससे पहले ही किसी एक ने इन्हें देख लिया तो खुशी से चिल्ला उठा—'ये रहे ये लोग—वहाँ छिपे हैं ।'

सुनते ही पुलिस की सीटी बजने लगी चारो ओर से ।—'अपराधियों का पता लग गया है सब इधर आ जाओ । तैयार हो जाओ । लड़ना है ।'

धीरे-धीरे घेरा छोटा होने लगा । राइफल और मशीनगन के साथ सैनिक छाती के बल, ज़रा-ज़रा आगे बढ़ रहे थे । लग रहा था, न जाने कितना बड़ा युद्ध-स्थल है ।

बाँस-जंगल में छिपे रजत, स्वदेश, मनोरंजन और देवप्रसाद भी तैयार थे । हाथों में रिवाल्वर । प्राण भले ही चले जायँ, आत्म-समर्पण करके वे ऐसे गौरवपूर्ण इतिहास को कलंकित नहीं करेंगे ।

डी० आई० जी० फरमार के आदेश पर, हेम दारोगा ने भोंपा मुँह के आगे करके अन्तिम आदेश जारी किया—'हाथों का अस्त्र फेंक दो । इस तरह लड़ाई का अर्थ है मृत्यु । आत्म-समर्पण करो ।'

जानती हो मल्लिका, उन लोगों ने इसका क्या उत्तर दिया ?

मनोरंजन की आवाज़ सुनाई पड़ी—'मनोरंजन इज़ नॉट नो हाउ टू सरेन्डर.। आई वॉन्ट टू बी जतीन मुखर्जी ऑफ बलासॉर ।'

और इसी के साथ जंगल की ओर से गोलियाँ आने लगीं—धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय !

शुरू हुई लड़ाई ।

इतनी बड़ी सेना और सैनिक अस्त्र-शस्त्र के आगे चार रिवाल्वर कितनी देर ठहर सकते थे ? कुछ ही देर में गोलियाँ खत्म हो गईं । तो फिर ? क्या आत्म-समर्पण ? नहीं, कभी नहीं ।

अचानक जंगल की ओर से तेजस्वी आवाज़ आई—'प्राण रहते हम पकड़ में नहीं आएँगे । मैं देवू को गोली मारता हूँ । रजत, तू मुझे । इसी तरह हम एक दूसरे को मार कर पृथ्वी से चिर विदा लेंगे । फिर भी घृणित साम्राज्यवादी शक्ति के आगे नहीं झुकेंगे । रेडी प्लीज़ । वॉन टू थ्री....'

धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय !

स्वदेश, मनोरंजन और रजत तुरन्त खत्म । देवप्रसाद भी अब तब । उसका भी समय आ गया था ।

प्रभु का आदेश पाते ही हेम दारोगा देवप्रसाद के चेहरे पर झुका । पूछा—'आप क्या कुछ कहना चाहते है ? बड़े साहब यहीं हैं । इच्छा हो तो उनसे कह सकते हैं ।'

अरे बाप रे ! जिसे कहते हैं नाग का बच्चा ? मृत्युपथ-यात्री देवप्रसाद ने क्या कहा, सुनोगी मल्लिका ?

नहीं, अपनी बात नहीं । पिता माता भाई-बहन किसी की बात नहीं । अपनी एकमात्र अन्तिम वासना प्रकट की—'कौन बड़ा साहब ! लोमैन ? हाथ जख्मी हो गया है वरना अभी उसे गोली से उड़ा देता ।'

कैसी निर्भीक वाणी थी । कल्पना तक नहीं की जा सकती है । देवप्रसाद की यह अन्तिम वासना पूरी हुई, मल्लिका । तीन महीने बाद पुलिस के सर्वेसर्वा लोमैन को एक दिन अन्तिम शय्या लेनी पड़ी इसी बांगला देश की मिट्टी पर । यह कैसे, बाद में बताऊँगा ।

अप्रैल बीत गया । मई का महीना भी बीतने वाला ही था । इस बीच पुलिस और मिलिट्री की तत्परता के फलस्वरूप युवा विद्रोह के कार्यकर्ताओं में से कुछ पकड़े जा चुके थे । लेकिन महान् विप्लवी सूर्य सेन कहाँ गए ? कहाँ गए उनके हितैषी, हर काम के सहायक निर्मल सेन ? गनेश घोष, अनन्त सिंह, अम्बिका चक्रवर्ती, लोकनाथ बॅल जैसे प्रमुख नेताओं का भी पता नहीं था । जब तक ये सब जेल के बाहर रहेंगे सरकार बहादुर को चैन नहीं मिलेगा ।

दुर्घटना घटित हुई २८ जून को । अचानक अनन्त सिंह ने स्वयं जाकर आत्म-समर्पण किया, गुप्तचर विभाग के हेड-क्वार्टर इलिसियम-रो में जाकर । उसी के साथ लोमैन के लिए एक चिट्ठी । जिसमें लिखा था—

प्रिय मिस्टर लोमैन,

१६३० साल की २८ जून को मैं तुमसे मिलूंगा। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि मुझे गिरफ्तार करने का यह मौका तुम चूकोगे नहीं। मैं इसके लिए तैयार हूँ। यह न सोचना कि मैं आत्म-समर्पण कर रहा हूँ। कोई आत्म-समर्पण कब करता है ? जब वह बिल्कुल ही लाचार होता है, या उसके आगे आत्मरक्षा का कोई रास्ता खुला नहीं रह जाता। उसी वक्त वह झुकता है।

मैं क्या इस वक्त असहाय हूँ ? नहीं, कभी नहीं। मेरे पास आत्मरक्षा करने को अस्त्र हैं, खर्च करने के लिए काफ़ी धन भी है, मुझे सहायता कर सकें ऐसे लोग भी हैं। बंगाल में, बंगाल के बाहर, या भारत के बाहर रह सकूं, वह आश्रय भी है। फिर भी अपने को पकड़वा रहा हूँ, इसका कारण क्या है ? तुम क्या सोच रहे हो कि अपने काम का मुझे पछतावा है ? नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं बूंद भर भी दुःखी नहीं। तो क्या ऊपर से मेरे लिए कोई आदेश आया है ? नहीं। यह मेरा व्यक्तिगत मामला है और बिल्कुल गोपनीय। विद्रोही अनन्तलाल सिंह।

खबर सुन कर सारा देश चकित रह गया। सभी एक ही प्रश्न पूछ रहे थे—'मामला क्या है ?'

जहाँ अमरेन्द्र, रजत, स्वदेश, मनोरंजन, देवप्रसाद जैसे लड़कों ने आत्म-समर्पण की जगह मृत्यु का वरण कर लिया, वहाँ अनन्त सिंह जैसे प्रथम श्रेणी के नेता को इस तरह, स्वेच्छा से अपने को पकड़वाने की क्या ज़रूरत थी ?

इसके पीछे कोई प्लॉन तो नहीं ?

हॉल ही मे इस प्रश्न का उत्तर उन्हीं की लेखनी से मिला है, मल्लिका। उन्होंने लिखा है—

'नहीं, उस दिन उन्होंने कोई प्लॉन नहीं बनाया था। यह उनका सम्पूर्ण व्यक्तिगत मामला था। इसके साथ युवा-विद्रोह का कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए यह प्रसग यहीं खत्म कर देना चाहिए।'

लेकिन उनके इस आत्म-समर्पण के मामले का नतीजा अच्छा हुआ था। पकड़े गए कैदियों में से कुछ अपरिपक्व लड़कों ने थोड़ी बहुत बातें बता दी थीं। प्रिय नेता अनन्त दा को अपने बीच पाकर वे फिर बदल गए—'नहीं, हमने स्वेच्छा से कुछ भी स्वीकार नहीं किया है। पुलिस ने जबरदस्ती हमसे कबुलवा लिया है।'

निस्सन्देह यह अनन्त सिंह का ही काम है। उन्होंने ही उस दिन असम्भव को सम्भव कर दिखाया था।

अब गायब हुए लोकनाथ बॅल।

मास्टरदा के कहने पर पहले वे कलकत्ता आए। उसके बाद चन्दन नगर के उसी गुप्त ठिकाने पर।

मास्टरदा ने जान-बूझ कर ही लोकनाथ के लिए यह व्यवस्था की।

एक तो वे चट्टगाँव भर में व्यायाम सिखाने के कारण प्रसिद्ध थे। उस पर उनका गठा शरीर, लम्बे-चौड़े और गोरा रंग। अचानक देख कर लगता सुभाष बोस है। इस हालत में लम्बे समय तक लोगों की नजरों से बच कर रहना कठिन था।

लेकिन ज्यादा दिन छिपना नहीं पड़ा।

पहली सितम्बर। किसी अज्ञात सूत्र से खबर पाते ही उस दिन आधी रात को, कलकत्ते के पुलिस-कमिश्नर चार्ल्स टेगार्ट ने पूरा मकान घेर लिया। उसके बाद दोनों तरफ से शुरू हुआ रिवाल्वरों का गरजना।

विशाल पुलिस सेना के विरुद्ध ये मामूली चार रिवाल्वर कितनी देर टिकते ? इसीलिए भयंकर लड़ाई के बाद लोकनाथ बल, गनेश घोष, आनन्द गुप्ता पकड़े गए।

पति-पत्नी का अभिनय कर इतने दिनों से जिन दोनों ने इन लोगों को छिपा रखा था वे भी न बच सके। वे थे शशधर आचार्य और सुहासिनी गांगुली।

सिर्फ एक जने का कुछ न कर सके। वे हमेशा के लिए सो गए। वे थे जीवन घोषाल। उनका सारा शरीर गोलियों की बौछार झेलते-झेलते छलनी बन चुका था।

६ अक्टूबर को अम्बिका चक्रवर्ती पकड़े गए। उस समय तक वे पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो पाए थे। उनके शरीर पर उस वक्त भी जलालाबाद की गोलियों का घाव था।

इधर मास्टरदा तैयार थे। एक बड़ी जरूरी खबर मिली थी गुप्त-सूत्रों से।

खबर थी; पुलिस विभाग के सर्वेसर्वा मालिक मिस्टर क्रेग की गतिविधियों की। पक्की खबर....इसलिए मौका चूकना बुद्धिमानी नहीं होगी।

चट्टगाँव के जनसाधारण पर जो अमानुषिक अत्याचार किया जा रहा था उसका प्रायश्चित्त इसी काम से होगा।

आगे आए दल के एक जिम्मेदार कार्यकर्ता रामकृष्ण विश्वास।

'अब मेरा नम्बर है। बम फट कर घायल हो जाने की वजह से उस दिन की लड़ाई में मैं भाग नहीं ले सका था। पर इसके ये मतलब नहीं कि मैं पीछे रहूँगा।'

यथासमय रामकृष्ण काली चक्रवर्ती के साथ ट्रेन पर चढ़ बैठे। जाना था—चाँदपुर। क्रेग का लक्ष्य भी था चाँदपुर। इसीलिए असुविधा की कोई बात नहीं।

पहली दिसम्बर। रात का अन्तिम प्रहर। बाहर भयंकर कोहरा....दो हाथ आगे की चीज नहीं दिखाई पड़ रही थी। जैसे ही गाड़ी चाँदपुर स्टेशन में घुसी, दो लोग तेजी से प्रथम श्रेणी के डिब्बे की ओर बढ़ गए। यही मौका है। इस मौके का फायदा उठाना चाहिए।

उधर ओवरकोट पहन कर कौन बैठा है ? क्रेग है न ? हाँ, वही है।

दोनों की रिवाल्वरें आग बरसाती एक साथ गरज उठीं—धाँय ! धाँय ! धाँय !

धाँय !

हो-हल्ला, चीख-पुकार शुरू हुई। वह भाग रहे है! पकड़ो उन्हें। पर सब बेकार। कहीं कोई नहीं दिखाई पड़ा।

और भी पता चला कि मृत व्यक्ति क्रेग नहीं, रेल इन्स्पेक्टर तारिणी मुखर्जी। हाँ, देख कर समझना मुश्किल था। दोनों के चेहरे में बड़ी समानता थी।

तुरन्त खबर पहुँच गई कुमिल्ला, लकसम, चट्टगाँव और यहाँ-वहाँ सर्वत्र। कड़ी नजर रखी जाए। एक आदमी पुलिस के हाथों से बच कर न निकल सके। किसी पर शक होते ही उसे रोक लो। जैसे भी हो सके फरार अपराधियों को पकड़ना है।

दूसरे ही दिन अखबारों में खबर निकली—

गोली लग कर इन्स्पेक्टर निहत
चाँदपुर स्टेशन पर तहलका

'चाँदपुर, १ली दिसम्बर! आज खूब सुबह चाँदपुर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर रेलवे के पुलिस इन्स्पेक्टर बाबू तारिणी मुखोपाध्याय गोली लगने से निहत हुए हैं। २ नवम्बर डाउन सूर्मा मेल के सामने बंगाल पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर क्रेग की अभ्यर्थना करने के लिए जा कर वे मारे गए। वे पुलिस की यूनिफार्म पहने हुए थे। इस घटना के बाद अस्पताल ले जाते समय उनकी मृत्यु हो गई।

स्थानीय पुलिस अपराधियों की तलाश कर रही है। हर जगह की तलाशी ली जा रही है। लेकिन आज तक किसी को पकड़ा नहीं जा सका है।' [आनन्दबाजार, २ दिसम्बर १९३०]

दूसरे ही दिन दोनों पुलिस के हाथों पकड़े गए। मरने से पहले तारिणी मुखर्जी एक बात बताना नहीं भूले थे। अपराधियों में से एक के शरीर पर नीले रंग का शाल था। यही शाल उनके लिए काल बन गया।

अखबार में उनकी गिरफ्तारी का जो विवरण निकला था वह इस प्रकार था—

'चाँदपुर स्टेशन पर इन्स्पेक्टर तारिणीनाथ मुखर्जी के हत्याकाण्ड से सम्बन्धित, पिछले कल, दोपहर को एक बजे डिस्ट्रिक बोर्ड के रास्ते पर दो बंगाली युवकों को गिरफ्तार किया गया है। उनके पास से गोली भरे तीन रिवाल्वर, एक बम, कुछ कारतूसें और कुछ बिजली की मशालें मिली हैं।

इनके शरीर पर चादरें थीं और ये लोग चाँदपुर से लाकसम की तरफ आ रहे थे।

युवकों के नाम हैं— रामकृष्ण विश्वास और कालीपद चक्रवर्ती। ये लोग चट्टगाँव अस्त्रागार लूट से सम्बन्धित फरार अपराधी हैं। इन्हें कुमिल्ला लाया गया है।' [आनन्द-बाजार, ३ दिसम्बर, १९३०]

मुकदमा चलने पर रामकृष्ण को फाँसी की सजा और उम्र कम होने की वजह से कालीपद को आजीवन कारावास की सजा मिली।

निश्चित दिन रामकृष्ण को फांसी हो गई। लेकिन इससे पहले वे अपनी संगठन-शक्ति की अनूठी मिसाल छोड़ गए। यह उज्ज्वल-रत्न थी—प्रीतिलता वाद्दादार।

यही प्रीतिलता, छोटी बहन अमिता बन कर उनसे अलीपुर जेल में मिलने आई थी उस दिन। सिर्फ उसी दिन नहीं, बहुत बार।

पुलिस यह बात जान भी न पाई। जब पता चला तब सब खत्म हो चुका था।

रामकृष्ण को फांसी होते ही प्रीतिलता कलकत्ता छोड़ कर चट्टगांव लौट गई। उसने प्रतिज्ञा की कि जैसे भी हो सकेगा वह मास्टरदा से मिलेगी जरूर। उनसे मिलना बहुत जरूरी था।

ज्यादा प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं हुई। ठीक समय पर वह एक छोटा-सा अनुरोध लेकर मास्टरदा के सामने उपस्थित हुई।—'इस बार मुझे एक बार मौका दीजिए, मास्टरदा। सिर्फ एक मौका।'

चट्टगांव में उस समय पुलिस और मिलिट्री भरी हुई थी। हर गांव में अस्थायी छावनियां ही छावनियां। अनगिनत साधारण जनता डर गई थी। खासतौर से बच्चे, किशोर और युवकों का तो कहना ही क्या था। सभी के लिए अलग-अलग परिचय-पत्र थे। इन परिचय-पत्रों के अलावा कोई एक कदम कहीं नहीं जा सकता था। उस पर भी एक ही तरह का नहीं—बल्कि लाल-नीला-सफेद....अलग-अलग-रंगों के परिचय-पत्र।

अखबार में निकला विवरण यहां दे रहा हूँ। इसी विवरण से तुम समझ सकती हो कि उन दिनों चट्टगांव के लोग कैसा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर किए गए थे। वह भी दो-एक दिन के लिए नहीं....कई सालों के लिए।

—'पिछले कल, १४४ धारा जारी करने के बाद विभिन्न केन्द्रों पर मिलिट्री का पहरा लगा दिया गया। कल रात से बड़ी सड़क पर गश्ती पुलिस का पहरा चल रहा है।

जिला मजिस्ट्रेट ने एक आदेश जारी किया है कि जन साधारण रात १० बजे के बाद घर से तभी बाहर निकलेंगे जब उन्हें विशेष अनुमति मिली होगी। स्थानीय अफसरों ने शान्ति स्थापित करने के लिए यह कठोर नियम अपनाया है।' [आनन्द-बाजार २५ अप्रैल, १९३१]

कठोर व्यवस्था का नमूना तीन दिन बाद ही देखने को मिल गया—

चट्टगांव में सामरिक सतर्कता

हर मोड़ पर तोप।

कमिश्नर के घर पर एक बैठक हुई। उस बैठक में जो भी प्रस्ताव रखा गया उसे अधिकारियों ने मान लिया है।....दायित्वपूर्ण पुलिस अधिकारी हर मोड़ पर पहरे पर नियुक्त हैं।

हर रास्ता चलते आदमी की खानातलाशी ली जा रही है और जगह-जगह पर लोहे के तार से लिपटे तख्त रख कर रुकावट बनायी गयी है। भयंकर दीखने वाली

तोपें, आन्ताकाली पहाड़ पर बने मकानों को लक्ष्य कर तथा पल्टन में बुल्फ-ब्रदर्स के घर पर और अन्य महत्वपूर्ण मोड़ों पर, रखी गई हैं।' (आनन्दबाजार, २८ अप्रैल १९३१)

उधर मुकदमा शुरू हुआ। कुल ३२ कैदी। गनेश घोष, अनन्त सिंह, लोकनाथ बल, हेरम्ब बल, आशुतोष भट्टाचार्य, सुकुमार भौतिक, अर्धेन्दु गुहा, फनीन्द्र नन्दी, सहायराम दास, अश्विनी कुमार चौधरी, सौरीन्द्र दत्त चौधरी, श्रीपति चौधरी, रणधीर दासगुप्ता, धीरेन्द्रलाल दस्तिदार, सुखेन्दु विकास दस्तिदार, ननीगोपाल देव, मलिन विकास घोष, निताईपद घोष, मधुसूदन गुहा, सुबोधचन्द्र मित्र, सुबोध चौधरी, सुबोध विश्वास, सुबोध बॅल, सुबोध राय, शान्तिभूषण नान, विजय कुमार सेन, अनिल कुमार रक्षित, आनन्द गुप्ता, नन्दलाल सिंह।

बाकी तीन जने थे अविभावक। कालरपोप की लड़ाई में रजत सेन और देवप्रसाद गुप्ता भले ही मारे गए हों, उनके अविभावकों को छोड़ा नहीं गया। उन्हें भी कैदी के कटघरे में लाकर खड़ा किया गया। तीसरे थे अनन्त सिंह के पिता गोपाल सिंह। वे भी आसामियों की सूची में थे।

उस समय सारे भारत की नज़र चट्टगाँव पर लगी थी। क्या पता कैदियों के भाग्य में क्या लिखा है। बदला लेने का मौका क्या अंग्रेज सरकार इतनी आसानी से छोड़ देगी ?

अगर भरोसा था तो इसी बात का कि शरतबोस, वीरेन्द्र शासमल, श्रीश बसु, अखिल दत्त, कामिनी दत्त, एन० आर० दासगुप्ता, कालीचरण घोष, एन० सी० मुखर्जी, महिम गुहा, जे० के० घोषाल, सन्तोष बोस जैसे प्रमुख और दक्ष वकील अपराधियों की ओर से थे। देखना था क्या होता है।

अब मास्टरदा ने नई योजना बनाई। जैसे भी हो, विचाराधीन क़ैदियों को छुड़ा कर लाना ही होगा।

रास्ते दो खुले हैं—पहला, डाइनामाइट द्वारा कचहरी की इमारत को उड़ा दिया जाए और इसी बीच सब को छुड़ा लिया जाए। और दूसरा है, जेल की दिवाल उड़ा कर इन्हें छुड़ाना।

तुरन्त सक्रिय हो उठे निर्मल सेन, तारकेश्वर दस्तिदार, महेन्द्र चौधरी, शैलेश राय, अर्धेन्दु गुहा, श्रीपति चौधरी, दिनेश चक्रवर्ती, और निवाखा घोष जैसे प्रमुख कार्यकर्ता। यह मौका छोड़ना नहीं है। जैसे भी हो इस योजना को सार्थक बनाना है।

कैदियों में अर्धेन्दु गुहा, मधुसूदन गुहा जैसे कुछ लोग जमानत पर छूटे हुए थे। ठीक समय पर वे कोर्ट पहुँचते, फिर काम खत्म होने पर घर वापस चले जाते।

खास तौर से अर्धेन्दु की मदद से ही सम्पर्क स्थापित हो सका, मास्टरदा और कैदियों के बीच। काम काफी आगे बढ़ा। धीरे-धीरे जेल के अन्दर पहरे पर नियुक्त सिपाहियों को वश में लाया गया।

फिर भी कुछ न हो सका। १९३१ की दो जून को सारा राज़ खुल गया। एक किशोर विप्लवी बालक के पकड़ जाने से ऐसा हुआ। इतना ही नहीं। जेल के अन्दर

राजमिस्त्री गड्ढा खोद रहे थे, जब अचानक एक जगह जेल के अस्त्र-शस्त्र मिले। फलस्वरूप इतने दिनों की सारी मेहनत, सारा अर्थ-व्यय, व्यर्थ हो गया।

अखबारों में निकला—

चट्टगाँव जेल में जानलेवा अस्त्र-शस्त्र

'ज्ञात हुआ है, स्थानीय जेल के भीतर ट्राइबुनल मुकदमें के कैदियों के निवास-स्थान के पास, आज सुबह कुछ भयंकर खतरनाक अस्त्र-शस्त्र पाये गये हैं।

अभी तक सही समाचार प्राप्त नहीं हुए। लोकनाथ बल की अस्वस्थता के कारण आज ट्राइबुनल की विशेष बैठक नहीं हुई।' [आनन्दबाजार, ६ मई १९३१]

चट्टगाँव में डाइनामाइट का आविष्कार
अदालत के निकट डिनामाइट का पूरा बक्स

'आज प्रातःकाल साधारण जनता यह सुन कर आश्चर्यचकित हो गई कि कचहरी के पास, जमीन में डाइनामाइट मिला है।

ज्ञात हुआ है, चार अजीब से काले बक्सों में पूरा डाइनामाइट, कलेक्टरी से पश्चिमी जमीन के नीचे मिला है। ये अदभुत दर्शनीय बक्से कचहरी की उत्तर और दक्षिण की सीढ़ियों तक लम्बे तार से जुड़े हुए थे।

बक्सों के चारों तरफ तार था, और वही तार उत्तर तथा दक्षिण के लम्बे तारों से जुड़ा था। यह बक्से कचहरी की दीवार के कई फुट नीचे जमीन खोदने पर प्राप्त हुए हैं। [आनन्दबाजार, ३ जून १९३१]

चट्टगाँव में संध्याकालीन कर्फ्यू ऑर्डर जारी

'फौजदारी की दण्ड विधि १४४ धारा के अनुसार आज जिला मजिस्ट्रेट ने, १६ से २६ साल के सभी हिन्दू भद्र युवकों को, शाम के सात बजे से सुबह ५ बजे तक, घर से निकलने के लिए मना किया है।

अगली ८ जून से यह आदेश लागू होगा और चट्टगाँव म्यूनिसिपैलिटी, जेटी और पहाड़तल्ली इलाकों में जो समस्त हिन्दू युवक रहते है या जाते हैं, उन पर यह कानून लागू होगा।' [आनन्द बाजार, ६ जून १९३१]

चट्टगाँव में नित्य नए आविष्कार

'ज्ञात हुआ है, आज प्रातःकाल दिवान बाजार स्थित एक मकान की खानातलाशी लेते समय पुलिस को कुछ ताजे कारतूस, दो बक्स विस्फोटक पदार्थ, एसिड और कुछ बिजली के तार मिले।

हृदय दास नामक स्थानीय व्यक्ति को इस सम्बन्ध में गिरफ्तार किया गया है।

और भी कुछ घरों की खानातलाशी लेने पर तीन युवक गिरफ्तार हुए हैं। इनमें अस्त्रागार लूटने के मामले से सम्बन्धित, विचाराधीन अपराधी, और जमानत पर छूटे, अनिल रक्षित नामक स्थानीय युवक भी शामिल हैं।' [आनन्दबाजार, १८ जून १९३१]

चट्टगाँव में दण्डात्मक पुलिस
१४ दिन के भीतर टैक्स

'जिला मजिस्ट्रेट के ऑफिस से चट्टगाँव जिले के ५२ ग्राम निवासियों पर आदेश जारी हुआ है कि वे प्यूनइटिव (दण्डात्मक) टैक्स पुलिस के लिए प्रदान करें। नोटिस जारी होने के १४ दिन के अन्दर टैक्स देना होगा।' [आनन्द बाजार, १९ दिसम्बर १९३१]

कौन चाहता है सार्थकता के स्थान पर विफलता ? फिर भी विधि के विधान को मानना ही पड़ता है।

पराधीनता के नागपाश से देश को मुक्त करने की प्रेरणा प्राप्त कर जिन लोगों ने स्वेच्छा से सुख-शांति का जीवन त्याग दिया था और कठोर रक्तरंजित रास्ता अपनाया था, उन लोगों ने भी इस सरल साधारण सत्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया था।

मास्टरदा भी इससे अनभिज्ञ न थे। इसीलिए सामयिक विफलता से हताश न होकर इस बार उन्होंने विनोदबिहारी दत्त, सरोज गुहा, रमेन भौमिक, विनोद चौधरी जैसे दु:साहसी तरुणों को नया उत्तरदायित्व सौंपा और जिले के बाहर भेज दिया।

'जाओ, दु:साहसी बन कर आगे बढ़ो। सिर्फ जिले में विप्लव सम्बन्धी कार्यक्रम सीमित रखने से काम नहीं चलेगा। अब इसे सम्पूर्ण बंगाल में फैला दो....कोने-कोने में।'

कुमिल्ला के विख्यात डी० एस० पी० एलिसन भी न बच पाये। उन्हें यह सजा दी शैलेश राय ने। पुलिस उनका पता तक न चला सकी।

चट्टगाँव के गुप्तचर विभाग के जबरदस्त आफिसर आसानुल्लाह भी नहीं बचे। चट्टगाँव के रहने वाले इस महापुरुष के निर्दय अत्याचार को शायद ही आज तक भूले हों।

इसी आसानुल्लाह ने गिरफ्तारी के बाद अस्वस्थ अम्बिका चक्रवर्ती पर भयंकर अत्याचार किया था। इतनी मार मारी थी कि अन्त में वे कराहने लगे थे। कराहते हुए उन्होंने पानी माँगा था।

'पानी, जरा सा पानी।'

'पानी ?' तुरन्त जंजीरों में जकड़े कैदी के सारे शरीर पर उन्होंने मूत्र त्याग कर दिया। उनके अट्टहास से कैदखाना गूंज उठा—'ले पानी ! जितना जी चाहे उतना पी ले।'

विश्वास करना कठिन है। रुचि भी नहीं होती, फिर भी यह बात दिन के प्रकाश के समान सत्य है।

देशद्रोहिता के लिए माफ नहीं किया जा सकता। आज या कल, इसकी सजा

उसे मिलेगी ही मिलेगी। अब वही सजा मिलने की बारी आई।

१९३१ साल। ३० अक्टूबर। जिला मेजिस्ट्रेट, पुलिस चीफ खान बहादुर आसानुउल्लाह वगैरह उस दिन चट्टगाँव के निज़ाम पल्टन मैदान में मौजूद थे। आज फाइनल था। खेल खत्म होने पर विजयी दल को पुरस्कार वितरण किया जायेगा।

चारों तरफ पुलिस का कड़ा पहरा। कोई सामने नहीं आ सकता था। अचानक रिवाल्वर की गरज सुनाई पड़ी—धाँय! धाँय! बस, खान बहादुर खत्म।

घटनास्थल पर आततायी हाथों-हाथ पकड़ा गया। नाम—हरिपद भट्टाचार्य। लेकिन यह क्या? यह तो तेरह-चौदह साल का बच्चा है। विश्वास करना मुश्किल था।

विप्लव का रास्ता फूलों का नहीं होता। अपमान, अत्याचार और कष्ट तो मामूली बात है। फिर भी उस छोटे से बच्चे हरिपद पर उस दिन जो पैशाचिक अत्या-चार किया गया था, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

पहले तो स्वीकारोक्ति के लिए अंगुली में सूई चुभोई गई। उसके बाद बैटरी चार्ज। 'बताओ तुम्हारे नेता सूर्य सेन कहाँ हैं? बता दोगे तो इनाम मिलेगा। बहुत सारा रुपया।'

गरीब माँ-बाप का बेटा था। खूब ही गरीब। बड़ी मुश्किलों से पढ़ता-लिखता है....वह भी स्कूल में नहीं, टोल में। फिर भी हरिपद ने उस प्रलोभन के आगे सिर नहीं झुकाया। एक बार के लिए भी नहीं।

उत्तर जब नहीं मिला तक उसकी आँखों के सामने ही वृद्ध पिता-माता पर अत्याचार शुरू हुआ। उसी के साथ घर-द्वार जला कर राख कर दिया गया। देख लो, जी भर कर देख लो। अब देखो, कैसा लग रहा है? अब बताओ, सूर्य सेन कहाँ हैं? कहाँ हैं उनके सहायक निर्मल सेन? कहाँ हैं तारकेश्वर दस्तिदार, विनोदबिहारी दत्त, महेन्द्र चौधरी जैसे दल के दूसरे लड़के?

हरिपद चुप। एक शब्द नहीं बोला। जिरह पर जिरह। सवाल पर सवाल। फिर भी उसके मुँह से एक शब्द नहीं निकाल सके।

अब शुरू हुई शोभा-यात्रा। चारो तरफ पुलिस का घेरा, बीच में हरिपद। जो जहाँ हो, तमाशा देखो।

जब-जब लोग भीड़ लगाते, तब-तब भयंकर मार पड़ती। उसी के साथ गन्दी गाली। 'चुप रहने से काम नहीं चलेगा। अपना भला चाहते हो तो जवाब दो। कहो, अंग्रेज बहादुर की जय।'

हज़ार अत्याचार करने पर जो संभव नहीं हुआ वह अब सम्भव हुआ, मल्लिका।

हरिपद ने सचमुच ही जवाब दिया। सुनोगी क्या कहा? मार खा-खा कर जर्जर वीर बालक ने हजारों लोगों के सामने सीना तान कर कहा—'जय, मास्टरदा की जय! ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।'

एक दिन, दो दिन नहीं, इसी तरह से चलता रहा लगातार। मार खाते-खाते सारे शरीर से खून बहने लगा था। संगीन की नोक चुभते-चुभते आँख-मुँह अस्वाभाविक

ढंग से फूल आया था। फिर भी बालक हरिपद बार-बार एक ही बात कहता रहा—'जय, मास्टरदा की जय! साम्राज्यवाद का नाश हो।'

हरिपद आज भी जिन्दा हैं, मल्लिका। उम्र कम होने की वजह से उन्हें फाँसी का फन्दा छीन नहीं सका था। लेकिन इस स्वाधीन भारत के कितने आदमी उन्हें पहचानते हैं? कितने हैं जिन्होंने उनका नाम सुना है?

राष्ट्र उन्हें भले ही स्वीकृति न दे, इतिहास उनकी कीर्ति को अस्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन तुम लोग? हरिपद जैसे अत्याचार-भोगी व्यक्ति को तुम लोग उचित सम्मान प्रदान न कर सको, तो यह तुम्हारे ही लिए शर्म की बात है, मल्लिका।

यहीं अन्त नहीं हुआ। कुछ दिन जाते न जाते और एक उत्साही देशद्रोही को भी इसी तरह नियति के सामने सिर झुकाना पड़ा।

मास्टरदा उस वक्त कानूनगो मोहल्ले के गुप्त-अड्डे में रहते थे। उनके साथ थे निर्मल सेन और अन्य कुछ विश्वासी कार्यकर्ता।

उस दिन तारकेश्वर दस्तीदार और वीरेन दे आ मिले इसी कानूनगो मोहल्ले के गुप्त-अड्डे पर। मास्टरदा के साथ भविष्य की कार्य-प्रणाली पर विचार-विमर्श करना जरूरी है।

आलोचना खत्म हो गई। फिर इन्हें शहर के निश्चित ठिकाने पर लौटना होगा।

तारकेश्वर काफ़ी बीमार थे। कुछ ही दिनों पहले बम-विस्फोट के फलस्वरूप उनका सारा शरीर जल गया था। अभी भी उनकी तबियत ठीक नहीं हुई थी। फिर भी हर बाधाओं की उपेक्षा करके वे आगे बढ़े थे सिर्फ कर्त्तव्य के लिए।

धूप-छाँह....अजीब उदासी सी छाई थी। उमस-भरी दोपहर में रास्ते पर पाँव रखते ही तारकेश्वर की निगाहें अचानक चमक उठीं। थोड़ी दूर पर एक आदमी खड़ा था। भोला-भाला सा। मानो इसी गाँव का कोई है।

लेकिन नहीं। जरा पता करना जरूरी है। आस-पास मास्टरदा हैं जिनके सिर की क़ीमत रखी गई है दस हजार रुपए। उस पर उनके साथ निर्मलदा भी हैं। इसीलिए सतर्क रहना जरूरी है।

योजना के अनुसार, लम्बे-लम्बे डग भर कर कुछ दूर तक जाने के बाद ही, अचानक वे दोनों पलट कर खड़े हो गए। देखा जाए, यह आदमी इनका पीछा करता हुआ, पीछे-पीछे आ तो नहीं रहा है।

जो सोचा था वही बात थी। इन्हें अचानक मुड़ कर खड़े होते देख, वह आदमी जहाँ था वहीं खड़ा हो गया, घबड़ा कर।

इस बार तारकेश्वर को पहचानने में जरा भी गलती नहीं हुई। शशांक दारोगा। साधारण पोशाक में होते हुए भी यही है वह कुख्यात शशांक भट्टाचार्य। पर यह इस

वक्त यहाँ क्या कर रहा है ? इसका इरादा क्या है ? इसने मास्टरदा के छिपने की बात का पता तो नहीं लगा लिया है ?

नहीं, माफ़ नहीं करना है। इस निरर्थक कौतूहल की सजा उसे मिलनी ही है। सबसे पहला सवाल है मास्टरदा की सुरक्षा का। इसलिए किसी हालत में इसे नहीं छोड़ा जाएगा।

सामने ही एक रास्ता था जो दो हिस्सों में बँटता था। कुछ तय करके दोनों दो रास्तों की ओर तेज कदमों से बढ़ गए। अर्थात्, अनुसरण करने वाला कोई भी रास्ता क्यों न पकड़े, वह बच नहीं सकता है। गोलियों से भरे दो रिवाल्वर, दोनों के पास थे।

मोड़ के पास पहुँच कर शशांक दारोगा कुछ क्षणों के लिए रुका। अब ? किधर गए दोनों ? क्या हाथ की चिड़िया उड़ गई ?

क्षण भर, उसके बाद ही कुछ सोच कर शशांक दारोगा बरमा गाँव के खेत के रास्ते आगे बढ़ने लगा। इसी रास्ते से वे लोग गए होंगे। जैसे भी हो इन्हें पकड़ना ही होगा। पकड़वा देने पर काफी रुपया इनाम में मिलेगा इसी के साथ नौकरी मे पदोन्नति भी होगी। न, यह मौका खोना ठीक नहीं।

एक फ़ूस के ढेर के पीछे छिप कर तैयार खड़े थे तारकेश्वर—यह रहे शशांक दारोगा, धीरे-धीरे बढ़ते आ रहे हैं। और थोड़ा पास। हाँ, बस, अब ठीक है।

बस, क्षण भर की बात है—उसके बाद ही तारकेश्वर के हाथ की रिवाल्वर गरज उठी—धाँय ! धाँय ! धाँय !

भयंकर रूप से घायल होकर दरोगा जी वहीं लोट गए। उन्हें क्या पता था, इनाम इतनी जल्दी हाथों-हाथ मिल जाएगा।

१९३२ साल। १३ जून को शुरू हुई ऐतिहासिक धलघट की लड़ाई।

मास्टरदा, निर्मल सेन, प्रीतिलता, अपूर्व सेन वगैरह उस दिन छिपे हुए थे धलघट निवासी सावित्री देवी के यहाँ।

अचानक एक बहुत बड़ी गोरखा सेना के साथ आ धमके कैप्टन कैमरन। उसके बाद ही शुरू हो गई आग-वर्षा। दोनों तरफ से।

सबसे पहले लेटना पड़ा सैनिकों के सेनापति कैप्टन कैमरन को। उसके बाद निर्मल सेन और अन्त में अपूर्व सेन को।

मास्टरदा प्रीतिलता के साथ दूसरी जगह भागने में सफल हो गए। हजार कोशिश करके भी उनको रोका नहीं जा सका।

मनुष्य मरता है, लेकिन इतिहास नहीं।

आज मास्टरदा कहाँ हैं ? कहाँ हैं प्रीतिलता और युवा विद्रोहियों के नेता, छोटे-बड़े सभी के प्रिय निर्मल सेन ? आज कोई जीवित नहीं है। लेकिन उस दिन की इस

घटना का विवरण प्रीतिलता ने अपने हाथों डायरी में लिखा था....जो आज इतिहास के लिए साक्षी है। यहाँ कुछ विशेष लाइनें दे रहा हूँ—

'उस दिन निर्मलदा जो सारी बातें बता रहे थे, उससे लग रहा था कि निर्मलदा समझ गए है कि जो कुछ कहना है उन्हें कह लेना चाहिए। हो सकता है बाद में मौका न मिले।

निर्मलदा बोले, 'मास्टरदा का आखिरी काम अभी बाक़ी है। वह है फीमेल ऐक्शन—लड़कियों से एक बार ताकत का खेल खिलवाना।'

मैं बोली—'मेरी मरने की बड़ी इच्छा हो रही है।'

निर्मलदा बोले—'तू क्यों मरेगी ?'

किसे पता था कि कुछ ही घंटों में मौत आ टपकेगी और निर्मलदा को बाँध कर ले जाएगी। मुझे छुएगी तक नहीं।

'आश्चर्य की बात थी। मास्टरदा के साथ दो दिन से ज्यादा बात भी नहीं हुयी थी। मैं सारे दिन निर्मलदा के साथ ही बैठी थी। उस दिन सुबह भोला (अपूर्व सेन) को बुखार था। इसी बुखार की हालत में सारे दिन मज़ाक करता रहा। मैं जितना ही इस खुशी के झरने को देख रही थी उतनी ही मुग्ध हुई जा रही थी।

मैं जिस समय साबूदाना पका रही थी वह गुनगुना कर गा रहा था—

'आज मेरे प्राण नाच रहे हैं,
मोर की तरह नाच रहे हैं....रे।'

उसने मेरे हाथों पकाया आखिरी खाना खा लिया। ठीक उसी समय मास्टरदा बिजली सी फुर्ती से दौड़ कर नीचे से आए—'पुलिस आई है।'

समझ गई....इसी क्षण सब खत्म हो जाएगा। उनसे मैंने कहा—'मैं आप लोगों के साथ ही रहूँगी।'

आदेश देने के इरादे से बड़ी-बड़ी आँखें दिखाईं मास्टरदा ने—'नीचे औरतों के पास चली जाओ। उनकी रिश्तेदार हो, यही कह कर परिचय देना।'

सीढ़ी से नीचे उतर गई। ऊपर रह गए भोला (अपूर्व सेन), मास्टरदा और निर्मलदा।

कैप्टन कैमेरन भरा रिवाल्वर लेकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। निर्मलदा ने खड़े हो कर गोली चलाई। कैमेरन गोली लगी हालत में ज़मीन पर गिर पड़े।

दोनों तरफ से गोलियाँ चलने लगीं। मास्टरदा लोग ऊपर से और पुलिस नीचे से। अचानक निर्मलदा की चीख सुनाई पड़ी। अब मैं अपने को न रोक सकी। दौड़ कर ऊपर जाने लगी तो नीचे की तीन महिलाओं ने मुझे पीछे से पकड़ लिया। उधर निर्मल दा दर्द से कराहते हुए बुला रहे थे, 'रानी ! रानी !'

अन्तिम समय में अगर एक बार उनके पास पहुँच सकती ? न जाने वह क्या कहना चाह रहे थे !

इसी समय मास्टरदा और भोला नीचे उतर आए। उन्हे देख कर मुझे बड़ी

खुशी हुई। अभी तक लग रहा था; ये लोग कोई भी नहीं बचे हैं।

मैं मास्टरदा के पाँव पर जा गिरी—'मास्टरदा, मुझे छोड़ कर मत जाइएगा। मैं आपके साथ जाऊँगी।'

उस समय मास्टरदा के बगल में भोला खड़ा था। कैसे सुन्दर लग रहे थे। इतनी बड़ी मुसीबत, लेकिन चेहरे पर ज़रा चंचलता तक नहीं। अपूर्व मास्टरदा के आदेश की प्रतीक्षा कर था रिवाल्वर के ट्रिगर पर अंगुली रख कर।

तीनों रवाना हुए। भोला आगे-आगे रास्ता दिखाता चला। सूखी पत्तियों पर पाँव की खस-खस आवाज़ होते ही अंधेरा भेद कर गोली आई और अपूर्व का सीना बेंधती निकल गई।

रामकृष्णदा ने कहा था, भोला से परिचय कर लेना। दो दिन से उसकी हँसी सुन रही थी। आज वह मेरे ही सामने मृत्यु की गोद में कूद पड़ा।'

इस बीच न जाने कब, आकाश में काले बादल छा गए थे। अब पानी शुरू हुआ। पहले बूंदा-बांदी, फिर मूसलाधार।

इसी पानी-तूफान में प्रीतिलता के साथ मास्टरदा पहुँचे जेष्ठपुरा।

तूफान न केवल बाहर था, उनके मन में भी था। भयंकर तूफान। इस लड़ाई के जीवन साथी जो हमेशा छाया की तरह साथ रहे, वही निर्मल सेन अब नहीं रहे। उस दिन मास्टरदा का मनोभाव कैसा था, इसका विवरण श्री चारु विकास दत्त की 'चट्टगाँव अस्त्रागार की लूट' नामक पुस्तक में है। लो पढ़ो—

'ऊपर आकर मास्टरदा का उदास और उतरा हुआ चेहरा देख कर महेन्द्र सिहर उठा। दोनों आँखें धँसी हुई, मुंह अस्वाभाविक रूप से गम्भीर। महेन्द्र ने उनके पास बैठने पर पहली बार देखा कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है।

'दुःखी हो कर मास्टरदा बोले—'आज मेरा दुर्दिन है। मेरा दाहिना हाथ कट गया है आज। जिस समय सबसे ज्यादा ज़रूरत निर्मल बाबू की थी उसी समय निर्मल बाबू ही चले गए।'

'आगे कुछ न कह न सके। गला रुद्ध हो आया। दुःख के कारण वे दिशाहीन से हो गए। उस दिन उस आश्रय स्थल में उदासी छा गई थी। सभी को ज्ञात हो गया कि निर्मलदा नहीं रहे, अपूर्व सेन नहीं रहे।'

अगली घटना आज के इतिहास में विशेष रूप से स्थान रखती है। वीरांगना प्रीतिलता उद्दादार के नेतृत्व में पहाड़ के नीचे स्थित यूरोपियन क्लब पर आक्रमण।

युद्ध-सज्जा में सुसज्जित प्रीतिलता का सारा मन खुशी से नाच रहा था। कितनी तृप्ति थी। सारी उम्र इसी समय की प्रतीक्षा थी।

१९३२ साल । २४ सितम्बर ।

विदा लेने से पहले भाव-विभोर हो कर मास्टरदा से बोलीं—'मास्टरदा, हमेशा के लिए जाने की अनुमति दीजिए । आशीर्वाद दीजिए कि आपकी इच्छा पूरी कर सकूँ । मैं अयोग्य सिद्ध न होऊँ ।'

'जाओ बहन ।' सस्नेह प्रीतिलता के सिर पर हाथ रखते हुए मास्टरदा बोले—'विजयी बहन का गर्व लिए वापस आना ।'

'आपका आशीर्वाद विफल नहीं जा सकता', प्रीतिलता हँसी—'फिर भी मैं सदा-सदा के लिए जाती हूँ ।'

मास्टरदा मन ही मन उदास हुए । आँख के सामने से एक-एक करके कितने लोग जा चुके हैं । जा चुका है टैगरा, विधु, नरेश, त्रिपुरा, स्वदेश, रजत—ऐसे ही और कितने । अन्तरंग मित्र निर्मल बाबू भी अपना काम पूरा करके जा चुके हैं ।

आज भी जाने की बारी आई है । कौन कह सकता है कि इनमें से कोई नहीं लौटेगा । आ भी सकते हैं, या यही आखिरी मुलाकात है !

पर यह प्रीति ? मौका पा कर भी क्या यह लौटेगी ?

मास्टरदा से विदा लेकर यथासमय निश्चित स्थान पर पहुँच गईं प्रीतिलता । उनके साथ थे महेन्द्र चौधरी, सुशील दे, शान्ति चक्रवर्ती, काली दे, प्रफुल्ल दास जैसे निडर तरुण ।

सभी तैयार । सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित । अब केवल प्रतीक्षा थी दल की नेत्री के इशारे की ।

पहले महेन्द्र चौधरी और सुशील दे, मुसलमान गाड़ीवान की पोशाक में, बड़े आराम से अन्दर चले गए । वहाँ मिलिट्री पुलिस का पहरा था, फिर भी । मानो बाहर इन्तजारी में बैठे गाड़ीवान साहब मेमसाहब का नाच देखना चाहते हैं । प्रीतिलता और अन्य लोग पीछे के छोटे दरवाजे से घुसे ।

रात के दस बजे थे । अन्दर सौ से भी अधिक श्वेतांग नर-नारी खाने-पीने और नाच-गाने में मस्त थे ।

सहसा क्लब की इमारत काँप उठी । भयंकर विस्फोट की आवाज....उसी के साथ गोलियों की बेतहाशा बौछार—धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय !

तुमने भी इसी तरह से जालियाँवाला बाग में बेकसूर भारतवासियों को मारा था । उनके खून से मिट्टी लाल कर दी थी । आज देख लो, भारतवासी इसका बदला लेना जानते हैं या नहीं !

'कम्पनी, फॉल इन !' कुछ ही क्षणों बाद आदेश दिया प्रीतिलता ने—'हमारा काम खत्म हुआ है । अब सब लौट चलो । रेडी ! कुइक मार्च ।'

कुछ कदम बढ़ते ही महेन्द्र चौधरी ठिठक कर खड़े हो गए ।

यह क्या ? दल के सभी है, लेकिन प्रीतिदी कहाँ गई ? वह क्यों नहीं दिखाई पड़ रही हैं ? कहाँ गईं ?

पागलों की तरह दौड़े महेन्द्र चौधरी । प्रीतिदी ! प्रीतिदी ! यह क्या ? आप यहाँ क्यों खड़ी है ? यह देखिए, मिलिट्री आर्म्ड-कार आ रही है । अब देर मत कीजिए । चलिए प्रीतिदी ।'

'नहीं भाई ।' प्रीतिलता हँस कर बोलीं, 'यह रिवाल्वर लेते जाओ । यह मास्टरदा को दे देना । उन्हें मेरा प्रणाम कहना । मेरा आदेश है, एक क्षण की देरी मत करो, आगे बढ़ो ।'

दल की नेता का आदेश पाकर, आँसुओं को रोकते हुए महेन्द्र चौधरी ने आगे की तरफ पैर बढ़ाया ।

और प्रीतिलता ? वह तब कहाँ ?

तीव्र विष के कारण तब तक वह पृथ्वी की सीमा लाँघ कर स्वर्गलोग में पहुँच चुकी थीं—जहाँ थे उनके प्रिय रामकृष्णदा और निर्मलदा ।

हर तरह की कार्यवाही हो जाने के बाद प्रीतिलता का पार्थिव शरीर उनके पिता को सौंप दिया गया । अग्नियुग की पहली वीरांगना नारी, शहीद प्रीतिलता का शरीर इसके बाद सब के अनजाने में जला दिया गया । उस दिन किसी ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की । यह हिम्मत किसी में थी भी नहीं ।

मृत्यु से पहले, अज्ञात स्थान से प्रीतिलता ने अपनी माँ को एक चिट्ठी भेजी थी ।

ऐसी मर्मस्पर्शी चिट्ठी कोई क्या लिखेगा, मल्लिका ?

'माँ ! माँ, तुम मुझे बुला रही थीं ? मुझे लगा कि तुम मेरे सिरहाने बैठी, बार-बार मुझे बुला रही हो और तुम्हारे आँसुओं से मेरी छाती भींग रही है । माँ, क्या तुम सचमुच इतना रो रही हो ? मैं तुम्हारे बुलाने पर आवाज़ न दे सकी । बुलाते-बुलाते तुम हैरान हुई जा रही हो ।

'स्वप्न में एक बार देखना चाहा था—तुम अपनी लाडली बेटी की जिद्द पूरी करने आई हो । लेकिन माँ, मैंने तुमसे एक बात तक नहीं की । सिर्फ दोनों आँखों से तुम्हारा आँसुओं से सिंचा चेहरा देखती रही । मैंने तुम्हारा चेहरा तक पोंछने का प्रयास नहीं किया ।

'माँ, तुम मुझे माफ करना, मैं तुम्हे बहुत कष्ट देकर जा रही हूँ । मैं तुमको दुःख देने से हमेशा घबड़ाई । मैंने कभी नहीं चाहा कि मुझसे तुम्हें दुःख पहुँचे । मैं तो स्वदेश-जननी की आँखों के आँसू पोंछने के लिए अपना खून देने आई हूँ । तुम मुझे आशीर्वाद दो, अन्यथा मेरी मनोकामना पूरी नहीं होगी ।

'एक बार तुमको देख न सकी, पर इसके लिए तुम मुझे गलत मत समझना । मैं एक सेकेन्ड के लिए भी तुम्हें नहीं भूल सकूँगी । हर क्षण तुम्हारे आशीर्वाद की कामना करती हूँ ।

'मेरा अभाव तुम्हें पागल कर रहा है । माँ, मैं यह जानती हूँ । मुझे मालूम हुआ

है कि दरवाजे पर बैठी-बैठी तुम सब को बुला कर कहती हो—अरे आओ, तुम लोग आकर मेरा रानीविहीन राज्य देख जाओ।

'तुम्हारी यह तस्वीर मेरी आँखों के आगे से हटती नहीं है। तुम्हारी यह बातें सुन कर मेरे हृदय का एक-एक कतरा रो उठता है।

'माँ, तुम अब इस तरह से मत रोना। मैं सत्य के लिए, स्वाधीनता के लिए, प्राण देने आई हूँ। तुम्हें इससे खुशी नहीं हो रही है?

'तुम क्या कर सकती हो माँ? देश पराधीन है। देशवासी इन विदेशियों के अत्याचारों से जर्जर हैं। देश माता इनकी जंजीर के भार से झुक गई हैं। लांछित और अपमानित हो रही हैं।

'माँ, तुम क्या चुपचाप इस अत्याचार को सहती जाओगी? तुमसे क्या अपनी एक सन्तान इस मुक्ति के लिए उत्सर्ग करते नहीं बनेगा? तुम क्या रोती ही रहोगी?

'अब मत रोना। जाने से पहले मैं तुम्हें सपने में देखना चाहती हूँ। मैं घुटने टेक कर तुमसे क्षमा चाहूँगी।

'मैं तुम्हारे मन को बहुत दुःख पहुँचा कर आई हूँ। इच्छा हो रही है, दौड़ कर जाऊँ और माफी माँग आऊँ। तुमने प्यार से मुझे हृदय से लगाना चाहा था पर मैं हाथ छुड़ा कर चली आई थी। तुम खाना परोसी थाली ले कर मेरी खुशामद करती रहीं पर मैं पीठ फेर कर चली आई।

'नहीं, अब नहीं सहन हो रहा है। क्षमा माँगने के अलावा और कोई रास्ता नहीं। कितने आश्चर्य की बात है माँ? तुम्हारी रानी इतनी निष्ठुर कैसे हो गई? माँ माफ करो, मुझे तुम माफ कर दो।'

इस बीच मुकदमे का फैसला निकला।

कानूनविदों की चेष्टा असफल नहीं हुई। न्यायाधीश मिस्टर इयूनी किसी को भी प्राणदण्ड नहीं दे पाए।

गनेश घोष, अनन्त सिंह, लोकनाथ, बॅल, फनीन्द्र नन्दी, सुबोध चौधरी, सुबोध राय, आनन्द गुप्त, फकीर सेन, लाल मोहन सेन, सुखेन्दु दस्तिदार, रणधीर दासगुप्ता, सहायराम दास।

उपर्युक्त लोगों को आजीवन कारावास की सजा मिली। नन्दलाल सिंह को दो साल का कारावास। अनिल बन्धु दास को तीन साल की सजा। बाकी सभी को छोड़ दिया गया।

एक दूसरे मुकदमे में सरोजकान्ति गुहा को आजीवन कारावास। अम्बिका चक्रवर्ती को प्राणदण्ड। लेकिन दण्ड कार्यान्वित नहीं हो सका। अपील करने पर इसे आजीवन कारावास में बदल दिया गया। समाचार पत्र का विवरण नीचे उतारता हूँ, पढ़ो—

चट्टगाँव अस्त्रागार लट के मुकद्दमे की राय
१२ लोगों को आजीवन कारावास

आज चट्टगाँव अस्त्रागर लूट के मुकद्दमे की राय निकली है t

आजीवन कारावास

निम्नलिखित व्यक्तियों को आजीवन कारावास का दण्ड मिला है :

१. गनेश घोष, २. अनन्त सिंह, ३. लोकनाथ बॅल, ४. आनन्द गुप्त, ५. फनी नन्दी, ६. सुबोध चौधरी, ७. सहायराम दास, ८. फकीर सेन, ९. लालमोहन सेन, १०. सुखेन्दु दस्तिदार, ११. सुबोध राय, १२. रणधीर दासगुप्ता ।

कारावास

अनिलबन्धु दास को तीन साल का सश्रम कारावास और नन्दसिंह को दो साल का कारावास ।

मुक्ति और गिरफ्तारी

बाकी १६ लोगों को स्पेशल ट्राइबुनल में मुक्त किया गया है । लेकिन उसी के साथ उन्हें आर्डिनेन्स के अनुसार गिरफ्तार किया गया । जेल के भीतर कैदियों के सामने राय दी गई । कैदियों ने बड़े जोश के साथ 'बन्देमातरम्' के नारे लगाये और राय का स्वागत किया ।

लम्बे १९ महीने की सुनवाई के बाद आज चट्टगाँव अस्त्रागार लूट के मुकद्दमे का अन्त हुआ । १९३० की १८ अप्रैल को यह घटना घटित हुई थी । जिला सेशन जज मिस्टर जे० इयूनी, आई० सी० एस० (प्रेसीडेन्ट), अवसरप्राप्त जिला और सेशन जज मि० एन० एन० लाहिड़ी और खाँ बहादुर अब्दुल हाइक ट्राइबुनल के सदस्य हैं और इन्होंने इन तीस कैदियों का फैसला किया ।

जिन १६ कैदियों को मुक्त किया गया, उन्हें बंगाल आर्डिनेन्स के अनुसार पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और विशेष रूप से किराये पर लिये गये एक जहाज पर अन्य १४ अपराधियों के साथ किसी अज्ञात स्थान के लिए ले जाया गया है । [आनन्द-बाजार, २ मार्च १९३२]

लेकिन असली आदमी कहाँ गया ? कहाँ गया अग्नियुग का वह सर्वप्रिय नायक सूर्य सेन ? हजार कोशिशों के बावजूद, शासकों की नींद और चैन उड़ाने वाला वह आदमी तो पकड़ ही में नहीं आ रहा है ।

अन्त में आई १९३३ की २ फरवरी । उन दिनों मास्टरदा गौराला ग्राम में थे । अंग्रेज सरकार ने उनके सिर की क़ीमत रखी थी दस हजार रुपए ।

पिछले तीन सालों में, इस एक मामले में, पुलिस की किसी ने मदद नहीं की थी । मास्टरदा के लिये ऐसा विश्वासघात वे नहीं कर सकते ।

दल के विश्वस्त कर्मचारी वृजेन सेन इसी गाँव के रहने वाले हैं । वे ही मास्टर दा को सुरक्षा का ख्याल कर यहाँ ले आए थे ।

साथ आए थे सुशील दासगुप्ता, शान्ति चक्रवर्ती, कल्पना दत्त, मणि दत्त जैसे दूसरे प्रमुख लोग।

आश्रय प्रदान किया विश्वास-गृह की गृहवधु श्रीमती क्षिरोदा प्रभा विश्वास ने।

मास्टरदा जैसे भयंकर विप्लवी को आश्रय देने के मतलब थे अनिवार्य रूप से विपत्ति को बुलावा देना। फिर भी वह अपने निश्चय से हिलीं नहीं।

मुसीबत आती है तो आए, लेकिन जानबूझ कर इस सर्वत्यागी पुरुष को हिंसक शेरों के मुँह के सामने डालने को वह तैयार नहीं थीं।

मुसीबत आई बृजेन सेन के भाई, पड़ोसी नेत्र सेन की ओर से। पत्नी और छोटे भाई बृजेन के रहस्यात्मक हाव-भाव देख कर उन्हें आश्चर्य होता। रात-दिन दोनों क्या खुसुर-फुसुर किया करते हैं?

किसी के लिए कभी-कभी वे खाना भी ले जाते हैं। कौन है वह आदमी?

असली बात का पता पत्नी से चला।

मास्टरदा इसी गाँव में हैं।

खाना उन्हीं के लिए जाता है। ऐसे आदमी को खाना खिलाना भी एक पुण्य है।

'ठीक ही तो है।' सुनते ही नेत्र सेन उछल पड़े। 'पुण्य तो होगा ही। लेकिन ऐसे आदमी को ऐसी-वैसी चीज तो नहीं खिलाई जा सकती। कुछ बढ़िया खाने का इन्तजाम करना चाहिए कि नहीं?'

फौरन वे थैला लटका कर बाजार करने के इरादे से चल दिए। काम-काजी आदमी ठहरे।

ऐसा मौका क्या छोड़ना चाहिए? शराब और जुए में सब खत्म हो गया है। रुपये मिल जायें तो कुछ दिनों के लिये निश्चिन्त हो जाऊँ। मामूली रुपया भी नहीं, पूरे दस हजार के नोट।

उस दिन कुछ देख कर उनके छोटे भाई बृजेन सेन भयंकर रूप से चौंक उठे।

अरे, यह क्या? भाई साहब खिड़की से बत्ती दिखा कर किसे सिग्नल भेज रहे हैं? मामला क्या है?

तुरन्त बृजेन सेन विश्वासगृह की ओर तीर की तरह भाग कर पहुँचे। कैसे भी हो, मास्टरदा को बचाना ही होगा। जरूरत पड़ी तो अपने प्राण देकर भी बड़े भाई के पापों का प्रायश्चित्त करेंगे। मास्टरदा कितने बड़े है, कितने महान् हैं।

लेकिन तब-तक बहुत देर हो गई थी। कैप्टन वैमस्ली के नेतृत्व में विशाल गोरखा सेना, तब-तक सारे मकान को घेर चुकी थी। बीच-बीच में उनके छोड़े रॉकेट बम की रोशनी से चारो तरफ दिन का सा उजाला हो जाता था। भागने तक का रास्ता नहीं था।

इसी बीच सबने यही कोशिश की कि मौका पाते ही यहाँ से किसी तरह खिसक लिया जाये। घर के पिछवाड़े एक बाँस का बेड़ा था। उसके बाद ही गन्दे पानी का एक

तालाब था। किसी तरह से यह दोनों चीजें पार कर सकें तो बचा जा सकता है।

आगे बढ़े सुशील दासगुप्ता। पहले उन्होंने गोद में उठा कर कल्पना दत्त को बेड़े के उस पार पहुँचा दिया। उसके बाद और दो जनों को छोड़ आए। अब मास्टर दा की बारी थी। लेकिन कार्य रूप में परिणत होने से पहले ही अँधेरे से एक गोली आई और सुशील दासगुप्ता का हाथ जख्मी कर गई।

मास्टरदा ने स्वयं प्रयास किया और बेड़ा पार कर गए, पर अन्त तक नहीं बच सके। अँधेरे में ठीक से देख न सकने के कारण वे एक गोरखा पर ही जा गिरे। फलस्वरूप बहुत दिनों बाद सूर्य सेन पकड़े गए। साथ ही शुरू हुआ इतिहास का नया अध्याय।

और नेत्र सेन? उनका क्या हुआ? क्या हुआ उनके दस हजार रुपयों के पाने का? पुरस्कार उन्हें मिला था। मिला था कुछ ही दिनों में।

उस दिन रात को सेन महाशय बड़े मौज के साथ खाने बैठे। सारा चेहरा खुशी से दमक रहा था। मालूम हुआ है कि पुरस्कार का रुपया बहुत जल्दी मिलने वाला है। अब इसमें देर नहीं।

सचमुच देर नहीं हुई। क्षण भर बाद ही देखा गया कि वे नहीं हैं। गंड़ासे के एक ही वार में उनका सिर धड़ से अलग होकर खाने की थाली में लोट रहा था।

मास्टरदा बंदी हुए लेकिन, मल्लिका, इसकी वजह से युवा विद्रोहियों का कार्य बन्द नहीं हुआ।

अब से जिम्मेदारी संभाली तारकेश्वर दस्तिदार ने। उनका पहला लक्ष्य था, जेल तोड़ कर मास्टरदा को बाहर निकाल लाना। जैसे हो, चाहे जो भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, मास्टरदा सब को चाहिए ही चाहिए। मास्टरदा की कमी कभी पूरी नहीं होगी।

तैयारी शुरू हुई। पहले तो जेल में जाल फैलाना शुरू किया, विचाराधीन कैदी सुखेन्दु दत्त और अमूल्य विश्वास ने; यह काम धीरे-धीरे होने लगा।

चाल व्यर्थ नहीं गई। सिपाही, जमादार, वार्डर, डाक्टर, अनेकों इस जाल में फँसने लगे। धीरे-धीरे आठ रिवाल्वर, बहुतायत से विस्फोटक पदार्थ विभिन्न सेलों और फाटकों की डुप्लीकेट चाभियाँ—एक-एक कर इकट्ठा होने लगीं जेल के भीतर।

फिर भी कुछ न हो सका। पहले की तरह इस बार भी अचानक सारा भेद खुल गया, जब दल के विश्वस्त कार्यकर्त्ता शैलेश राय गिरफ्तार हुए।

१८ मई को शुरू हुआ गहरा-युद्ध।

तारकेश्वर दस्तिदार, कल्पना दत्त, मनोरंजन दास, जैसे प्रमुख भागे हुए विप्लवी गण, उस दिन जाकर इकट्ठा हुए गहिरा गाँव के गुप्त अड्डे में। अचानक शोर मचा, 'पुलिस, पुलिस'। उसके बाद ही शुरू हुई गोलाबारी—धाँय! धाँय! धाँय! धाँय!

विशाल सैनिक शक्ति के आगे रिवाल्वर से कितनी देर तक लड़ा जा सकता है ? इसलिए सबसे पहले गोली लगने से युवक मनोरंजन दास गिर गए। उसके बाद गृह-स्वामी पूर्ण तालुकदार और निशी तालुकदार।

बाध्य होकर कल्पना दत्त, तारकेश्वर दस्तिदार ने धीरे-धीरे अपने को पकड़वा दिया। इसके अलावा कोई चारा नहीं था।

अब नए नेता चुने गए विनोद बिहारी दत्त।

इस बीच विश्वासघातक नेत्र सेन को मृत्युदण्ड, कुमिल्ला के कुख्यात एलिसन हत्या-काण्ड जैसे विभिन्न संगठनों के मामले में उल्लेखनीय भूमिका निभा चुके थे।

उधर सभी के अनजाने में मुकदमा शुरू हो गया। कैदी थे सूर्य सेन, तारकेश्वर दस्तिदार और कल्पना दत्त। जिस सूर्य सेन के कारण इन तीन सालों से साम्राज्यवादी सरकार चैन से बैठ तक नहीं सकी थी, वह उन्हें आसानी से छोड़ने की नहीं, यह सभी जानते थे। हुआ भी वही। दोनों को प्राणदण्ड दिया गया। कल्पना दत्त को आजीवन कारावास।

अब बारी आई बदला लेने की।

लेकिन बदला लेगा कौन ? देखा जाए तो सभी जेल में थे। ऐसी स्थिति में कौन इस काम की जिम्मेदारी लेगा ?

'हम लेंगे।'

आगे बढ़ आए नित्यगोपाल भट्टाचार्य, हिमांशु भट्टाचार्य, कृष्ण चौधरी, हरेन्द्र चक्रवर्ती जैसे चट्टुल के निडर बालवृन्द। 'अग्नि ऋषि मास्टरदा के प्रति यह अन्याय-पूर्ण आदेश हम किसी हालत में मुँह बन्द रख कर नहीं मानेंगे। इसका हम जवाब देंगे ही देंगे।'

जवाब दिया। सात जनवरी को पल्टन के खेल के मैदान में।

उस दिन अंग्रेज समाज के अधिकांश लोग वहाँ उपस्थित थे। चारो तरफ से पुलिस और मिलिट्री के अटूट घेरे में। इसीलिये किसी तरह का कोई आतंक नहीं था।

मृत्यु निश्चित है जान कर भी चट्टुल के ये बालक आगे बढ़े। उसके बाद ही हृदय कांप उठे, ऐसी भयंकर आवाज हुई—ब....म्। उसी के साथ रिवाल्वर गरजे धांय ! धांय ! धांय !

खून से नहा उठे पुलिस चीफ मिस्टर क्लियरी। आहतों की संख्या भी कम न थी। उसके बाद शुरू हुआ पुलिस और मिलिट्री का हमला।

जो होना था वही हुआ। नित्यगोपाल भट्टाचार्य और हिमांशु भट्टाचार्य घटना-स्थल पर मारे गए। कृष्ण चौधरी और हरेन्द्र चक्रवर्ती ने प्राण त्यागे फाँसी के फंदे से लटक कर।

यह लिस्ट यहीं नहीं खत्म होती। इसके अलावा भी कई तरुणों ने प्राण दिये

विभिन्न कारणों से।—ये थे हिमांशु सेन, अर्धेन्दु दस्तिदार, शैलेश्वर चक्रवर्ती, वीरेन दे जैसे शहीद गण।

१६३४ साल। ११ जनवरी। शाम के सात बजे थे।

सहसा ही चंचलता दिखाई दी चट्टगांव के जेल में बन्द तरुण कैदियों में। मास्टरदा! मास्टरदा! मास्टरदा!

कन्डेम्ड सेल से वार्डर की मदद से मास्टर दा ने गुप्त रूप से अपने साथियों के लिए संदेश भेजा था। यही उनकी अन्तिम वाणी थी। दो पन्ने की यह अमूल्य वाणी मैं ज्यों की त्यों उतार रहा हूँ, मल्लिका—

'Ideal and unity is my farewell message. Rope is hanging over my head. Death is knocking at my door. Mind is soaring towards Eternity. This is the time for 'Sadhana,' this is the time for preparation to embrace death as a friend and this is the time to recall lights of other days as well.

Sweet remembrance of you all, my dear brothers and sisters break the monotony of my life and cheer me up, at such a pleasant, at such a grave, at such a solemn momemt, what shall I leave behind for you? Only one thing, this is my dream, a golden dream—a dream of free India. How auspicious a moment it was, when I first saw it. Throughout my life most passionately and untiringly I have pursued it like a lunatic. I know not how far I proceeded towards the fulfilment of my dream. I know not where I am compelled to stop my pursuit today. If icy hands of death give you a touch before the goal is reached, then give the charge of your further pursuit to your followers as I do today. Onwards my comrades, onward—never fall back. The day of bondage is disappearing and dawn of freedom in ushered in. Be up and doing. Never be disappointed. Success sure. God bless you.

Never forget the 18th April, 1930, the day of Eastern Rebellion in Chittagong. Keep ever fresh in your memory the fights of Jallalabad, Julda, Chandernagar and Dhalghat. Write in red letters in the core of your hearts the names of all patriots who have sacrificed their lives at the altar of India's freedom.

My earnest appeal to you—there would be no division in our organization. My blessings to you all inside and outside the jail.

Fare you well.

Chittagong Jail
11th Jan. '34
at 7 p. m.

Long live Revolution
'Bandematarm'

हमारी अन्तिम वाणी है—आदर्श और एकता ! मेरे सिर पर फाँसी का फंदा लटक रहा है । मृत्यु मेरे दरवाजे पर दस्तक दे रही है । मेरा मन भाग रहा है अनन्त की ओर । यही तो मेरी साधना का समय है । यही तो समय है जब मैं मृत्यु को मित्र की भाँति गले लगाऊँ, खोए हुए दिनों को, नए सिरे से फिर से याद करूँ ।

मेरे भाइयों और बहनों, तुम सब को कह रहा हूँ—मेरे इस वैचित्र्य जीवन की एकरसता को तुम सब मिल कर खत्म कर दो । मुझे उत्साह प्रदान करो । इस आनन्दमय, पवित्र और महत्वपूर्ण समय में, मैं तुम्हारे लिए क्या छोड़ कर जा रहा हूँ ? सिर्फ एक चीज, वह है मेरा स्वप्न । एक सुनहरा स्वप्न । स्वाधीन भारत का स्वप्न । कभी एक शुभ मुहूर्त में मैंने यह सपना देखा था । उत्साह से भर कर, जीवन भर पागलों की तरह उसी के पीछे भागता रहा । यह नहीं जानता हूँ, उस स्वप्न को कहाँ तक सफल बना सका हूँ ।

मेरी मृत्यु का शीतल स्पर्श, अगर जरा भी तुम्हारे मन को छू सके, तब फिर मेरी इस साधना को तुम अपने अनुगामियों में फैलाना—जैसा कि मैंने फैलाया है । मित्रों, आगे बढ़ते चलो । कभी भी पिछड़ न जाना । दासता के दिन खत्म हो रहे हैं । स्वाधीनता की लग्न पास आ गयी है । उठो । जागो । जीत हमारी सुनिश्चित है ।

१६३० साल, १८ अप्रैल के दिन चट्टगाँव विद्रोह की बात कभी मत भूलना । जलालाबाद, जलधा, चन्दननगर और धलघाट की लड़ाइयों की बात हर समय याद रखना । जिन वीर सैनिकों ने स्वाधीनता संग्राम के लिए जीवन त्यागा है, उनके नाम अपने हृदय में खून से लिख कर रखना ।

मेरा यही अनुरोध है, तुम लोग इस संगठन को कभी तोड़ मत देना । जेल के बाहर हो या भीतर, सभी को मेरा प्यार और आशीर्वाद । विदा ।

चट्टगाँव जेल
११ जनवरी, १६३४
शाम ७ बजे

विप्लव दीर्घजीवी हो ।
बन्दे मातरम्

(चट्टगाँव के युवा सैनिक श्री अर्धेन्दु गुहा के सौजन्य से प्राप्त)

अँधेरी रात । निस्तब्ध । चारों ओर मौन । पत्ता तक नहीं हिल रहा था ।

कन्डेम्ड सेल के भीतर मास्टर दा बेखबर सो रहे थे। उनके चेहरे पर सुख और शान्ति व्याप्त थी।

अचानक दरवाज़ा खुलने की आवाज़ से नींद खुल गई। 'सब तैयार है। अब चलना है।'

वह दृश्य भूलता नहीं है। दृढ़, निश्चित कदमों को उठाते मास्टर दा और तारकेश्वर दस्तिदार बढ़ने लगे बध-मंच की ओर। उनके मुँह से एक ही आवाज़ निकल रही थी—'बन्देमातरम्'। एक ही मातृ-मंत्र—'बन्देमातरम्'

'बन्देमातरम्'—जेल के सैकड़ों क़ैदी दुःख और आक्रोशवश लोहे के सींकचों पर सिर पीटने लगे—'बन्दे मातरम्! बन्दे मातरम्! मास्टरदा जिन्दाबाद।'

शुरू हुआ लाठीचार्ज। सिर्फ एक बार नहीं—लगभग सारी रात चलता रहा। नहीं—किसी प्रकार की जयध्वनि नहीं सुनाई पड़नी चाहिए। एक शब्द नहीं बोलोगे।

लेकिन कौन सुनता है? किसकी बात सुनता है? हज़ारों पुलिस और मिलिट्री की मशीनगनें जिन्हें वश में न ला सकीं, उन्हें चुप कराना क्या इतना आसान है? इसी लिए हर चीज़ तुच्छ कर के यही मातृ-मंत्र गूंजता रहा—'बन्देमातरम्' 'बन्देमातरम्।'

उनके साथ स्वर मिलाया साधारण कैदियों ने भी—मास्टरदा जिन्दाबाद! मास्टरदा जिन्दाबाद! मास्टरदा जिन्दाबाद!

सूर्य अस्त हो गया, लेकिन क्षण भर के लिए। दूसरे ही क्षण एक नया सूर्य आकाश में जगमगा उठा। वह नई रोशनी, बंगाल के चारों ओर, धूल के एक-एक कण में फैल गई। इस नए प्रकाश ने लिख दिया—'मास्टरदा जिन्दाबाद! तुम्हारी मृत्यु नहीं हुई है, तुम अमर हो, मृत्युंजयी हो।'

'जिसने सुना है कानों से—
उसका आह्वान गीत; वही निर्भीक प्राणों से पहुँचा
संकट के बीच, कर दिया उसने विश्व विसर्जन,
सीना बढ़ा कर अत्याचार सहे, मृत्यु का गरजन
सुना संगीत समझ कर।'

—रवीन्द्रनाथ

अग्नियुग ।

छोटा सा एक शब्द है। लेकिन इस छोटे से शब्द में समाई है गहरी निष्ठा, असीमित आत्मत्याग, और अनन्त अत्याचार की कहानी ।

उसका पूरा इतिहास आज भी अलिखित है। शायद कभी लिखा भी न जा सके।

शुरू हुआ था १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में। उसके बाद सिर्फ इतिहास ही इतिहास । स्वाधीनता की वेदी पर सैकड़ों हजारों शहीदों के खामोश आत्म विसर्जन का रक्तरंजित इतिहास ।

१९३० में सूत्रपात हुआ—चट्टगांव का सशस्त्र विप्लव—यही अन्तिम पर्व था। उसके बाद फैल गया यहाँ-वहाँ—सर्वत्र ।

सुभाष के प्रसंग में, इसी अन्तिमपर्व के कुछ अंश मैं तुम्हें सुनाऊँगा, मल्लिका ।

चट्टगांव का सशस्त्र विप्लव हुआ १९३० को १८ अप्रेल को।

सुभाष उन दिनों जेल में थे। अपराध—पिछले वर्ष अगस्त के महीने में अखिल भारतीय लांछित राजनैतिक दिवस के उपलक्ष में उन्होंने सरकारी आज्ञा न मान कर शोभा-यात्रा निकाली थी। फलस्वरूप उन्हें नौ महीने का सश्रम कारावास का दण्ड मिला।

असहयोग आन्दोलन के कैदियों की भीड़ से उस समय अलीपुर जेल में तिल धरने को जगह नहीं थी। सुभाष के अलावा भी दूसरे नेतागण वहाँ थे।

साधारण सत्याग्रही कैदियों ने शोर मचाया—'हम लोग सी-क्लास चोर और जेबकतरों के साथ नहीं रहेंगे। इसके अलावा हम कैदियों की पोशाकें भी नहीं पहनेंगे।'

'पहनोगे कैसे नहीं ?' गरज उठे जेलर मेजर सोमदत्त, 'जरूर पहनोगे। इसके अलावा रहोगे भी सी-क्लास में।'

'कभी नहीं। किसी हालत में नहीं। बोलो भाइयों, 'बन्दे मातरम' ।

'अच्छा, ऐसी बात।' सोमदत्त ने तुरन्त आदेश दिया 'पगली घंटी' बजाने का।

दौड़ती आई पुलिस, हवलदार, वार्डर और सार्जन्टों का दल—'अचानक क्यों बुलाया है ?

'सब को लॉक-अॅप में बन्द कर दो।' सोमदत्त ने आदेश दिया, 'अभी। फौरन।'

उधर घंटी सुन कर तब तक वार्ड के बाहर निकल आए सुभाष, यतीन्द्रमोहन, सत्य बख्शी जैसे नेतागण। सभी के चेहरे पर जिज्ञासा—मामला क्या है? असमय में यह पगली घंटी क्यों ?

'किसी को बाहर नहीं रहने दिया जाएगा।' सुभाष वगैरह को देखते ही गरज पड़े मेजर सोमदत्त, 'मेरा हुक्म है, अभी सभी को अपने-अपने वार्डों में लौटना होगा। इमीजिएटली।'

किसी ने परवाह तक न की। इस तरह की पुलिस-धमकियों की वे कतई परवाह नहीं करते ।

'अच्छा।' गुस्से से सोमदत्त ने आदेश दिया, 'चार्ज'।

उसी के साथ सुभाष की बलिष्ठ देह पर हिंसक पशु-दल कूद पड़े। सिर्फ मार और मार...जिसे कहते हैं, अमानुषिक मार।

यतीन्द्र मोहन सेनगुप्ता, सत्य बख्शी, किरणशंकर राय, सत्य गुप्ता, नृपेन बनर्जी, किसी को नहीं छोड़ा गया। खुली छूट है, अब किस बात की चिन्ता ? मारो। सब को मारो। खूब मारो।

इधर हँसते-हँसते मेजर सोमदत्त बेहाल हुआ जा रहा था। 'तुम्हारी यह हिम्मत। मुझे सम्मान नहीं दिखाओगे ? तो फिर देखो, लाठी के जोर से मैं अपना सम्मान प्राप्त कर सकता हूँ या नहीं।'

देखते ही देखते सारी महानगरी जान गई।

अलीपुर जेल में लाठी-चार्ज। कुछ एक पठान कैदियों को भड़का कर जेलर सोमदत्त का पैशाचिक उल्लास।

सुभाष बुरी तरह से घायल। अभी तक होश में नहीं आए हैं। जिन्दा बचेंगे, इसमें भी सन्देह है।

उस दिन के कलकत्ते के हाल का तुम अन्दाज नहीं लगा सकोगी, मल्लिका।

सारा शहर उत्तेजित हो उठा भयंकर रूप से। इतनी हिम्मत उस पंजाबी मेजर सोमदत्त की ? इसका बदला चाहिए। न्याय चाहिए।

लाखों लोगों की भाषा को एक तार में पिरोया 'वेणु' के सम्पादक श्री भूपेन्द्र किशोर रक्षित राय ने। उन्होंने अपने सम्पादकीय स्तम्भ में लिखा—'हम बंगाल की तरुण-शक्ति का आह्वान करते हैं। जो शक्ति सारे अलीपुर जेल को उखाड़ कर गंगा में डुबो देगी। और सरकार के दु:कर्म का प्रतिवाद करेगी।'

विप्लवी का परिचय उसकी बातों से नहीं, कामों से मिलता है। इसीलिए दल का निर्देश पाते ही गोलियों से भरे रिवाल्वर लेकर वीरेन घोष और अन्य विप्लवी चल पड़े।—'सोमदत्त का सिर चाहिए। उसे अपने खून से सुभाष के खून का ऋण चुकाना होगा।'

लेकिन कहाँ गया सोमदत्त ! इतना कच्चा खिलाड़ी वह नहीं। उसने भी इतने दिनों में जान लिया था कि बंगाली क्या चीज हैं। इसीलिए हजार आवश्यकता पड़ने पर भी, सिपाहियों के सशस्त्र घेरे में भी, वह अलीपुर जेल के दुर्ग से बाहर पाँव धरने तक को तैयार न हुआ।

अन्त में पं० मदनमोहन मालवीय के पास जाकर रो दिया, 'उनके हाथों से मुझे बचा लीजिए पंडितजी। मैं आपके पाँव पड़ता हूँ।'

'गेट आउट।' गरज उठे मालवीय जी—'तुम्हारी इतनी हिम्मत ? तुमने किसे, छुआ है जानते हो ? जाओ, निकल जाओ मेरी आँखों के सामने से। मैं तुम्हारा मुंह तक

नहीं देखना चाहता।'

इसी के साथ भाग खड़ा हुआ वह वीर पंजाब-पुत्र। कहावत है, जान बची लाखों पाए। पहले जान तब दूसरी बात।

इधर शुरू हुई दूसरी नई योजना। अब क्या किया जाए? सोमदत्त भाग गया है। पर रक्ताक्षरों में लिखा संकल्प तो झूठा नहीं हो सकता। इसका जवाब तो देना ही है। ऐसा जवाब जिसे वे जिन्दगी भर न भूल सकें।

१९३० साल। फिर लौटो, मल्लिका।

चट्टल के सूर्य, सूर्य सेन इतिहास पर इतिहास की रचना करते चल रहे थे। इसी के साथ सक्रिय हो उठीं दूसरी विप्लवी संस्थाएँ भी।

अब देर नहीं। साम्राज्यवादी शक्ति को सिर उठाने का मौक़ा देना ठीक नहीं। अब इधर से हमला होना चाहिए। चारों ओर से घेर कर मारो।

पहला हमला किया युगान्तर पार्टी के दो दुस्साहसी तरुणों ने—दिनेश मजुमदार और अनुजा सेन ने।

२५ अगस्त। दिन के ग्यारह बजे होंगे।

डलहौजी स्क्वायर के ईस्ट में खड़े थे दिनेश मजुमदार और अनुजा सेन। कुछ दूर पर खड़े थे शैलेश नियोगी, अतुल सेन और कालीपद घोष।

विप्लवियों के पहले नम्बर के दुश्मन पुलिस कमिश्नर सर चार्ल्स ट्रेगार्ट रोज़ इसी वक्त लालबाजार जाते हैं, अपनी कार से। आज उनकी खैर नहीं।

वक्त हो रहा था। वह दूर के मोड़ पर उनकी कार दिखाई पड़ी है। धीरे-धीरे बढ़ती आ रही है।

पलक झपकते दिनेश मजुमदार का दाहिना हाथ उठा। दूसरे ही क्षण उन्होंने भयंकर आक्रोश के साथ टी० एन० टी० बम फेंका ट्रेगार्ट की कार पर।

इसी के साथ भयंकर विस्फोट हुआ। सारा डलहौजी स्क्वायर काँप उठा—'ब....म्।'

धुआँ खत्म होते ही परिणाम देख कर दिनेश मजुमदार की देह काँप उठी।

नहीं, ठीक से नहीं लगा। कार के बाँए दरवाज़े से लग कर बम बाहर ही फट गया था। ड्राइवर के दाहिने हाथ में मामूली सी चोट लगी है, लेकिन ट्रेगार्ट बिल्कुल साफ बच गया था।

और अनुजा! उसका क्या हुआ?

दुर्भाग्य! ज़रा-सी देर हो जाने के कारण उनका बम हाथ में ही फट गया, जिससे कि उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गए। एक भयंकर दृश्य था वह। भयंकर विस्फोट के कारण अनुजा का पेट फट गया और सारी अंतड़ियाँ बाहर आकर रास्ते भर में बिखर गईं। यहाँ-वहाँ हर जगह फैल गईं।

फिर भी जी-जान से अपने शरीर को तान कर इसी हालत में अनुजा सामने के पार्क की ओर बढ़े। पर किसी तरह से हाथ बढ़ा कर पार्क की रेलिंग पकड़ते ही वहीं गिर गए। वहीं उनके प्राण निकल गए।

दिनेश मजुमदार बच न सके। उन्होंने बड़ी कोशिश की कि भागती हुई जनता के बीच छिप जाँए पर खून से लथपथ शरीर लेकर ऐसा करना सम्भव नहीं हुआ। कुछ दूर जाने के बाद ही बेहोश हो कर जमीन पर गिर पड़े। उसके बाद क्या हुआ, उन्हें कुछ नहीं मालूम।

यह चार्ल्स ट्रिगार्ट अजीब आदमी था। उसके हाथ से बचना असम्भव था। यहाँ भी यही हुआ।

दल के नेता भूपेन्द्र कुमार दत्त और किरण मुखर्जी पहले ही पकड़े जा चुके थे।

बम फटने के बाद पहले पकड़े गए डाक्टर नारायण राय। उसके बाद डाक्टर भूपाल बसु। अन्त में यतीश भौमिक, कालीपद घोष, सुरेन दत्त, रोहिणी अधिकारी, अद्वैत दत्त, अम्बिका राय वगैरह।

लड़कियाँ भी न बच पाईं। नाना प्रकार की विप्लवी पार्टी के विशेष सदस्यों में थीं शोभारानी दत्त, कमला दास रेणुसेन। एक-एक करके सभी पकड़ गईं।

बम वाले षड्यन्त्र में पीछे रह कर प्रेरणा देने वाले नेता रसिक दास १५ सितम्बर को पकड़े गये। अन्त में पकड़ी गईं गड़पारा लेडीज हॉस्टल की सुपरिंटेन्डेन्ट कमला दासगुप्ता—जिनकी इस मामले में उल्लेखनीय भूमिका थी।

सिर्फ बच गए थे मनोरंजन गुप्ता। वह भी तीन महीने बाद अचानक ही पकड़े गए। इस कारण कुछ दिनों के लिए दल की गति धीमी पड़ गई।

फिर मुकद्दमा शुरू हुआ। लाख कोशिश करने पर भी गवाह और प्रमाण के अभाव के कारण महिलाओं को इस मामले में घसीटा नहीं जा सका। इसलिए बाध्य होकर उन्हें छोड़ना पड़ गया। कमला दासगुप्ता भी एक दिन छूट कर जेल से बाहर आ गईं।

मुकदमा शुरू हुआ। एक नहीं दो-दो। पहला सिर्फ दिनेश मजुमदार के खिलाफ और दूसरा औरों के विरुद्ध। फैसले में सभी को बहुत कड़ी सजा दी गई। दिनेश मजुमदार को आजीवन कारादण्ड मिला। दूसरे में क्या हुआ यह समाचार-पत्र के अनुसार निम्नलिखित था—

कलकत्ता बम विस्फोट का फैसला
कठोर दण्डादेश

'पिछले दिन अलीपुर स्पेशल ट्राइबुनल ने कलकत्ता बम विस्फोट के मुकदमें की राय दी है। १० आसामियों में से ८ जनों को १० से २० वर्ष तक का आजीवन कारावास का दण्ड मिला है। कैदी अतुलचंद गांगुली और शरतचन्द दत्त को मुक्त किया गया है।'

दण्ड का रूप

डाक्टर नारायणचन्द राय एम० बी० कलकत्ता कॉरपोरेशन के काउन्सलर हैं। ये तथा डाक्टर भूपाल बोस एम० बी०, दोनों को ही विस्फोटक कानून की ४ थी धारा सहित पठित १२०वीं धारानुसार हरेक को २० वर्ष का आजीवन कारादण्ड दिया गया है।

सुरेन्द्रनाथ दत्त और रसिकलाल दास को विस्फोटक कानून की ४थी धारा सहित पठित १२०वीं धारानुसार १५ वर्ष का आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया है।

यतीशचन्द्र भौमिक और अम्बिकाचरण राय, उर्फ नन्द और आदित्यचरण दत्त को १२ वर्ष का आजीवन कारावास और ३०२ धारा सहित पठित १२०वीं धारानुसार आठ साल का सश्रम कारादण्ड दिया जाता है।

रोहिणीकान्त अधिकारी को १० वर्ष का कारादण्ड दिया गया है।' [आनन्द-बाजार, २८ नवम्बर १९३०]

फैसले में और भी कहा गया कि ७१ नम्बर मिर्जापुर स्ट्रीट और सरस्वती प्रेस इसका मूल केन्द्र, है जहाँ से षड्यन्त्रकारी प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसके साथ जुड़े हैं मनोरंजन गुप्त, अरुण गुहा तथा भूपेन्द्र कुमार दत्त जैसे युगान्तर दल के नेतागण।

अपील करने पर राय में थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया। डाक्टर राय और डाक्टर भूपाल बोस की सजा घटा कर १५ वर्ष कर दी गई। सुरेन दत्त की १२ साल और यतीश भौमिक की दो साल।

और प्रमाण के अभाव के कारण रसिक दास, अद्वैत दत्त और अम्बिका राय छोड़ दिए गए।

फिर भी यह मुक्ति, मुक्ति न थी।

छूटते ही जेल के फाटक पर उन्हें फिर पकड़ लिया गया और बिना किसी मुकदमें के सालों बन्दी रखा गया।

पर दिनेश मजुमदार को ज्यादा दिन तक बन्दी नहीं रख सके। दो साल बाद ही एक दिन वे मेदिनीपुर जेल की ऊँची चहरदीवारी लाँघ कर गायब हो गए। भयंकर लड़ाई के बाद वे १९३३ की २२ मई को पकड़े गए कार्नवालिस स्ट्रीट पर।

इस बार प्राणदण्ड दिया गया। यह सजा कार्यरूप में परिणत हुई १९३४ को ९ जुलाई को।

अब आगे आई वही बी० वी। चोट पर चोट करते-करते, बी० वी० के जूझार तरुणों ने साम्राज्यवादियों का घमण्ड, धूल में मिला दिया।

मैं तुम्हें हेमबाबू की बात पहले बता चुका हूँ। उनकी बात सिर्फ एक थी—डू एंड डाई।

कोई भी बिना मारे वापस नहीं आएगा। इसके लिए जान जाती है तो जाए,

पर काम पूरा होना चाहिए । और मारना होगा ब्रिटिश शासन-तन्त्र के चुने हुए स्टीलफ्रेमों को । चुने हुए श्वेतांग अफसरों को—किसी भी साधारण आदमी को नहीं मारना है ।

बी० वी० के तरुणों ने खून से लिख कर शपथ ग्रहण किया—'ऐसा ही होगा । हम वादा करते हैं कि बिना काम पूरा किए कभी वापस नहीं लौटेंगे । एक आदमी भी नहीं ।'

पहला टारगेट—बंगाल का इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस एफ० जे० लोमैन ।

यह वही लोमैन है जिसके लिए चट्टगाँव के वीर शहीद देवप्रसाद गुप्ता ने अपना अन्तिम खेद प्रकट किया था, 'मेरा हाथ बेकार हो गया है वरना मैं लोमैन को गोली मार देता ।'

योजना बन गई । अस्त्र-शस्त्र का आखिरी परीक्षण भी हो गया । बस, मौके की इन्तजारी थी ।

मौका मिला १९३० की २९ अगस्त को । डलहौजी की घटना के ठीक चार दिन बाद ।

सुबह के नौ बजे होंगे । अचानक ढाका मिडफोर्ड अस्पताल के बरामदे से कई बार गोलियों की आवाज सुनाई पड़ी—धाँय ! धाँय ! धाँय !

दो लोग सख्त जमीन पर लोट गए । एक बंगाल इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस, स्वयं मिस्टर जे० एफ० लोमैन और दूसरे थे ढाका के सुपरिंटेन्डेट ऑफ पुलिस के कुख्यात मिस्टर ई० हडसन जो कि ढाका में हिन्दु-मुसलमानों में मतभेद कराने के लिए प्रसिद्ध थे ।

योजना त्रुटिहीन थी । जल-पुलिस के सुपरिंटेन्डेट मिस्टर बर्ट अस्वस्थ थे । इलाज के लिए वे इस समय मिडफोर्ड मेडिकल स्कूल अस्पताल में भर्ती थे । पुलिस चीफ हडसन के साथ लोमैन उन्हीं को देखने आए थे ।

कहना व्यर्थ है कि इस मौके पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था । उस पर साधारण पोशाक पहने गुप्तचरों की भी वहाँ कमी नहीं थी ।

फिर भी कुछ न हो सका । लौटते वक्त अस्पताल की सीढ़ी पर पाँव रखते ही पास के देवदारु के पेड़ के पीछे से रिवाल्वर गरज उठे—धाँय ! धाँय ! धाँय !

उसी समय दोनों जमीन पर लोट गए । लोमैन के बारे में कुछ सोचना ही नहीं था । हडसन बचेंगे या नहीं, कहना मुश्किल है, क्योंकि चोट गहरी थी । बचने पर भी आजीवन काल पंगु रहना पड़ेगा ।

घटना जैसी तो आकस्मिक थी वैसी अस्वाभाविक । आसपास के लोग भौंचक्के रह गए । सभी दिशाहीन—क्या हो गया, कैसे हो गया । बिश्वास तक नहीं होता है ।

सिर्फ भौंचक्के नहीं हुए सामने खड़े सरकारी कान्ट्रेक्टर सत्तेन सेन । पुरस्कार और उपाधि की लालच में आकर उन्होंने तुरन्त दोनों हाथों से आततायी को पकड़ लिया ।

न, ऐसे मच्छर-मक्खी के लिए उनकी गोली फालतू नहीं थी। बदले में उन्होंने सिर्फ एक घूंसा मारा और इसी एक घूंसे के साथ उस बंगाली बहादुर का पुरस्कार और उपाधि का लोभ कपूर की तरह उड़ गया।

हो-हल्ला सुन कर बाग के माली, नौकर-चाकर, कुछ-कुछ भाग कर आए थे। लेकिन आततायी को पकड़ने से ज्यादा उनका विश्वास भागने पर था—'अरे बाप रे! ये तो पहले नम्बर के डाकू हैं।' इधर अपराधी तब-तक बड़ी चतुराई से अस्पताल की ऊँची दीवाल पर चढ़ गया था।

सामने ही थी एक गृहस्थ के घर की पानी की टंकी। क्षण भर के लिए वे उस टंकी पर खड़े हुए और उसके बाद ही कूद कर उस घर में गायब हो गए। वे फिर दिखाई नहीं पड़े।

चारों तरफ खबर फैलते ही हल्ला मच गया। क्या कह रहे हो? इतनी पुलिस, इतने सिपाही सन्तरी, उसी बीच यह घटना? यह तो आश्चर्य की बात है न! धन्य हैं ये लड़के!

सबसे ज्यादा खुश हुए लेखक शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय। दूसरे ही दिन बी० वी० के नेता भूपेन्द्र रक्षित राय के मुख से सब सुन कर वे खुशी से झूम उठे। बार-बार यही कहने लगे—'धन्य है वह लड़का। उसने समझा दिया है कि अब हम मुँह बन्द रख कर नहीं सहन करेंगे। जरूरत पड़ने पर जवाब देना हम भी जानते हैं। मिलने पर उसे मेरा आशीर्वाद कहना। कहना, मैंने उसे जी भर कर आशीर्वाद दिया है।'

शहर में चारों ओर अजीब-सा सन्नाटा छाया था। रास्तों पर लोग कम दिखाई पड़ते। यहाँ तक कि डर के मारे छोटे बच्चे तक रोना भूल गए।

गुप्तचर विभाग के बड़े साहब मृत। इस चोट को ब्रिटिश सरकार क्या खामोशी से सहेगी? नहीं। देखना है इस बार चोट किधर से होती है!

अनुमान गलत नहीं था। आमानुषिक अत्याचार शुरू हुआ।

इशारा पाते ही आ मिले शहर भर के गुण्डे। इस बार एंग्लो इण्डियन समाज भी पीछे नहीं रहा।

यह एंग्लो इण्डियन समाज भी विचित्र ही है। अंग्रेजों ने इन्हें कभी स्वजातीय कह कर स्वीकारा नहीं और ये भी आभिजात्य के गर्व के कारण भारतवासियों के साथ एकात्म नहीं हो सके। ये लोग आज तक उस कौए की तरह घूम रहे थे जिसने मोर के पर अपनी पूँछ में खोंस रखे थे।

इस घटना के बाद ही अंग्रेजों ने इन्हें स्वीकार कर लिया। उस पर गुण्डे तो थे ही। इसलिए एकतरफा मारपीट, गुण्डागर्दी अत्याचार शुरू हुआ। हर मनुष्य का सर्वस्व लूटना इनका नियम बन गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि अपराधी को पकड़ने में सफल न होने पर भी, सरकार को इस बात का पता चल गया कि वह था कौन।

विनय बोस। मेडिकल स्कूल के चतुर्थ वर्ष का छात्र विनय बोस। विक्रमपुर

राउथभोग गाँव के रेवती मोहन बोस का पुत्र विनय बोस। वही इस घटना का नायक था। जैसे भी हो सके, इसका सिर चाहिए।

लेकिन तब विनय बोस कहाँ ? बंगला देश के कोने-कोने में उनकी तस्वीर लगा दी गई। पुरस्कार की रकम ५ हजार से बढ़ा कर दस हजार कर दी गई लेकिन उनका कहीं पता न चल सका।

दूर-दूर तक यह बात फैली। लण्डन के राउन्ड टेबिल कान्फ्रेन्स में तेजबहादुर सप्रू ने तीव्र कटाक्ष किया—'हाफ़ दि वर्क ऑफ़ राउन्ड टेबिल कान्फ्रेंस पुट-थ्रू बाई विनय बोस।' अर्थात् तुम सब हो सख्त के भक्त। इतने दिनों से हम हजारों तरह से समझाने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन तुमने समझना नहीं चाहा। आज जैसे ही विनय बोस ने मजबूत डंडे से दो हाथ जमाया है, आँखें खुल गई हैं।'

जिस विनय बोस को लेकर इतना सब—वह कहाँ है !

पानी ही पानी ! मानो आकाश में छेद हो गया हो—इतना पानी। चारो ओर पानी ! यहाँ तक कि कहीं-कहीं घुटने भर पानी हो गया था।

इसी पानी-तूफान में दो ग्रामीण मुसलमान शहर के राजपथ पर चले जा रहे थे। शरीर पर मैली बनियान। फटी लुंगी और हाथों में तप्पी लगा जूता। स्पष्ट था किसी गाँव के गरीब मुसलमान हैं। शायद किसी मुकदमें के सिलसिले में शहर आए थे। अब गाँव वापस जा रहे हैं।

कौन हैं ये दोनों ? इनका परिचय क्या है ? जरा प्रतीक्षा करो, स्वयं पता चल जाएगा।

सामने ही दोलाई गंज स्टेशन ! ढाका से नारायन गंज जाने के लिए यही रेल स्टेशन था। धीरे-धीरे दोनों स्टेशन में घुसे। ढाका की तरफ से नारायण गंज जाने के लिए ट्रेन आने का वक्त हो गया था। लेकिन अभी कोई भी यात्री प्लेटफार्म में नहीं जा सकता है, क्योंकि पहले गाड़ी की तलाशी होगी।

बड़ी कुशलता से तलाशी का काम सम्पन्न हुआ। यहाँ तक कि ट्रेन के पाखाने भी देख लिये गये। खुली मालगाड़ियों को भी देखा गया। लेकिन कहाँ विनय बोस ? नहीं, इस ट्रेन में नहीं है। अब यात्री ट्रेन पर चढ़ सकते हैं।

ट्रेन फतुल्ला की ओर तीव्रगति से भाग रही थी। कमरे के एक कोने में सिमटे-सिमटे से बैठे थे ये दोनों ग्रामीण। चेहरा सपाट। अर्थशून्य; भावरहित। मानो मन ही मन सोच रहे थे कि कब पहुँचेंगे, कब बीवी का मुख देखेंगे।

कमरे में दूसरी तरफ ढाका विश्वविद्यालय के झुण्ड भर लड़के। हो-हल्ला करके पूरा कमरा सिर पर उठा रखा था। स्पष्ट था छुट्टियों में घर जा रहे थे। लेकिन वास्तव

में उनका लक्ष्य कुछ और था। दल का आदेश था कि इन दोनों निरीह ग्रामीणों को सुरक्षित नारायण गंज पहुँचाना होगा।

चाशड़ा स्टेशन। चारो तरफ घनघोर अँधेरा। दो हाथ दूर की चीज दिखाई नहीं पड़ती थी। उस पर आँधी-तूफान अलग।

गाड़ी एक मिनट रुकती है यहाँ। धीरे-धीरे ट्रेन ने रेंगना शुरू किया। इसके बाद का स्टेशन नारायण गंज है।

अचानक यह क्या? बाहर बड़े जोरों से सीटी बज उठी। डेन्जर सिग्नल।

'गेट अॅप! कुइक! रेडी!'—पलक झपकते कमरा खाली।

ढाका से खबर आई थी—इस ट्रेन को नारायण गंज में फिर से सर्च किया जाएगा। न सिर्फ ट्रेन, स्टीमर, लांच, बजरा, नाव, हरेक का चप्पा-चप्पा ढूँढ़ा जाएगा।

इधर के गुप्तचर ने यह बात मालूम कर ली। अतएव ट्रेन की सवारी यहीं खत्म। यहाँ से नारायण गंज ज्यादा दूर नहीं है, पैदल चलो।

दल के सदस्य गिरजा सेन के घर रात बिता कर दूसरे दिन तड़के फेरी द्वारा पार होकर बन्दर पहुँचे।

इधर नारायण गंज, उधर बन्दर। इस जगह का नाम ही बन्दर है। मल्लाह उधर से लिए जा रहा था।

वहाँ से चल कर वैद्य बाजार। वहाँ से फिर नाव। लेकिन हाँ, अब नकली मल्लाह नहीं। असली मल्लाह की नाव पर मेघना नदी पार करना होगा।

यात्री वही दो, पर अलग आदमी। मिर्जा साहब के बदले अब चले जमिन्दार और उनका नौकर। चले हैं अपना इलाका या कचहरी का निरीक्षण करने।

जमींदार थे बी० वी० के एक्शन स्क्वाड के चतुर और कर्मठ नेता सुपति राय। और नौकर? तुम स्वयं समझ लो, कौन हो सकता है।

सुबह बीती, शाम हुई। फिर रात आई।

मेघना का जल अशान्त हो रहा था। लहरों पर लहरें उठ रही थीं।

देखते-देखते काले बादलों से आसमान छा गया। ठंडी हवा चलने लगी।

आशंका से मल्लाह का चेहरा फक पड़ने लगा। बात कुछ गड़बड़ है। मेघना का जल आज सारे दिन ही अशान्त है। हवा भी तेज होने लगी है। लग रहा है, भयंकर तूफान उठेगा। ये बादल उसी का पूर्वाभास है।

अनुमान सही निकला। सहसा ही भयंकर तूफान उठा। उसी के साथ मेघना का रूप बदल गया। इस क़दर उठा-पटक शुरू हुई कि अविराम गति से आकाश छूती लहरें उठ-उठ कर गिरने लगीं। और नाव के ऊपर पानी आ-आकर पछाड़ें खाने लगा।

'हुजूर, अब मेरे वश का नहीं।' हताश होकर माँझी बोला—'बचना है तो हमें किनारे की तरफ लौटना पड़ेगा।'

'सर्वनाश!' जमींदार का चेहरा चिन्ता में डूब गया, 'मेरा तो काम पड़ा रह जायेगा। मुझे बहुत जरूरी काम है। जैसे भी हो, माँझी भाई, तुम मुझे पार कर दो। न हो, पैसे ज्यादा ले लेना।'

'पैसा! जान ही नहीं बची तो पैसा लेकर क्या करूँगा? इस आँधी-तूफान में मेघना पार करना, मैं क्या, मेरे बाप के वश में भी नहीं।'

'तो फिर?' चिन्तित हुए जमिन्दार बाबू, 'अब क्या किया जाए?'

'क्यों, इतनी चिन्ता की क्या बात है?' माँझी ने एक उपाय सुझाया—'इतना ही अगर जरूरी काम है, तब जहाज से चले जाइए। सामने ही फिलेग इस्टेशन है, कहें तो मैं उस इस्टेशन तक आपको छोड़ दूँ। थोड़ी ही देर में जहाज आएगा।'

अन्त में जमींदार बाबू क्या करते, राजी हुए। न जाते तो करते क्या? बहुत सारा रुपया वसूल करना है। वसूल होगा तभी न 'खजाना' भरेंगे?

स्टेशन स्थायी नहीं है। यूँ ही एक अस्थायी फ्लेग स्टेशन था। बस, इतना ही भरोसा था कि यहाँ पुलिस नहीं थी। विनय बोस जैसा डेन्जरस लड़का यहाँ नहीं आएगा। इसके अलावा पुलिस के जाल से निकलेगा कैसे?

स्टीमर मेघना की लहरों को लाँघता भागता चल रहा था। उसे भौख पहुँचना था।

अपने नौकर के साथ जमींदार बाबू गायब हो गये थे। उनकी जगह पर चल हैं, हमारे वही पूर्वपरिचित सरल साधारण ग्रामीण दोनों मुसलमान।

विभिन्न श्रेणी के यात्रियों की भीड़ लगी थी। इस भयंकर भीड़ में जमींदार बन कर चलने पर लोगों का ध्यान आकर्षित होगा। इससे तो अपनी वही वेशभूषा अच्छी है।

यथा समय भौख पहुँचे। यहाँ से ट्रेन। स्टेशन पर पुलिस है, लेकिन रहने दो। जरूरत पड़ेगी तो समझा जायेगा। आत्म-समर्पण तो करना नहीं है, लड़ेंगे उस वक्त।

लेकिन किशोर गंज पहुँच कर चौंक पड़े। सारा प्लेटफार्म लाल पगड़ियों में पटा पड़ा था। सुनने में आया, सारी गाड़ी ही सर्च की जायेगी। अभी तो इतिहास के अंतिम अध्याय तक पहुँचने के लिये काफ़ी रास्ता तय करना बाकी है। अभी से नाव डूब जायेगी क्या?

खिड़की के पास खड़े थे रेलवे के एक टी० टी०। पान चबाते हुए बड़े कौतूहल से वे इधर-उधर नज़र घुमा कर कुछ देख रहे थे।

दोनों मिर्जा गाड़ी से उतर कर उनके पाँव पकड़ कर रो पड़े—'हुजूर, हमने एक

गलत काम कर डाला है। इस बार हमें बच्चा समझ कर माफ़ कर दें सरकार !'

'क्या हुआ है ?' टी० टी० ने पूछा।

'अब क्या पूछते हैं ! जल्दी से गाड़ी आते ही चढ़ बैठा हूँ, टिकट नहीं ले सका हूँ। अब हमें माफ़ कर दें और दो टिकटों का इन्तजाम कर दीजिये। नहीं तो हमें पुलिस पकड़ ले जायेगी। देखिये न, कैसे आँखें तरेर कर देख रही है।'

'हट पगले !' हँस कर टी० टी० बोले—'वह तुम लोगों के लिये नहीं है।'

'नहीं-नहीं हुजूर, इनका कोई भरोसा नहीं। वह लोग सब कर सकते हैं। इससे अच्छा है आप हमारे लिये टिकट बनवा दें। हम रुपया दे रहे हैं। आपको भी कुछ देंगे।'

'कहाँ का टिकट चाहिये ?' प्रश्न पूछा टी० टी० ने। 'लो, अब ? जगह का नाम तो याद नहीं रहा। मकबूल चाचा ने कुछ कहा तो था लेकिन मैं तो भूल गया हूँ। ठहरिये, ठहरिये, याद करके बताता हूँ। हाँ-हाँ—याद आ गया। कलकत्ते, कलकत्ते। वहीं जाकर हम कपड़े के कारखाने में काम करेंगे। चलिये, अब देर मत कीजिये। आपके पाँव पकड़ता हूँ। हमें टिकट घर तक ले चलिये। हम भी आपके साथ चलते हैं।'

मल्लिका, इस तरह वे दोनों टी० टी० के पीछे-पीछे टिकट घर तक पहुँच गये ब्रिटिश पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर। पुलिस ने देख कर भी नहीं देखा। देख कर करेगी ही क्या ? वह तो जानती ही है कि टी० टी० इसी तरह के रोजाना बिना टिकट वाले यात्रियों को पकड़ते हैं। ये भी वही हैं।

कुछ देर बाद दोनों खुशी-खुशी वापस आ गये। इधर तलाशी भी खत्म हो चुकी थी, अब ट्रेन में चढ़ सकते थे।

मजा तो मैमन सिंह पहुँच कर आया। एकाएक तीर की गति से एक दारोगा साहब कम्पार्टमेन्ट में चढ़ आये। उनके साथ कुछ पुलिस कांस्टेबिल थे।

तुरन्त दोनों में से एक तो कमरे के लकड़ी के फर्श में फटी कथरी ओढ़ कर सो गया। और दूसरा थोड़ी दूर पर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया।

ट्रेन ने स्पीड पकड़ी। तब तक दारोगा साहब जम कर बैठ चुके थे। बातचीत से समझ में यह आया कि फिलहाल वे एक बड़ी जिम्मेदारी का काम लेकर जगन्नाथ-घाट जा रहे हैं।

उन दिनों दारोगा का बड़ा दबदबा रहता था। सिपाहियों को ही डाँट-डपट लगा रखी थी। उस पर उनके सामने डींग हाँक रहे थे—

'आये न जरा विनय बोस। मैं भी जगन्नाथ-घाट में जमा रहूँगा। मुझे तो पहचानता नहीं है। खप से उनकी गर्दन न दबाई तो कहना। ए तिवारी, बन्दूक में हर वक्त गोली भर कर रखा कर। उस साले का कोई भरोसा नहीं। न जाने कब एक गोली मार कर हडसन की तरह कमर ही तोड़ देगा। उस पर मैं ठहरा हार्ट का मरीज। इसीलिये तो नई तावीज ली है मैंने।'

'अरे, यह क्या ? बन्दूक की नली मेरी तरफ़ क्यों कर रखी है ? उसे जरा हटा कर रखो न। कहा नहीं, मुझे हार्ट की बीमारी है। मुझसे यह सब झंझट नहीं झेले जाते हैं।'

अचानक उनकी नज़र छद्मवेशी सुपति राय पर जा पड़ी। अरे हाँ ! यह आदमी कौन है ? तब से हाथ जोड़े खड़ा है।

'क्यों बे ?' तुरन्त अपनी पद-मर्यादा का ध्यान आया दारोगा साहब को—'उस तरह घोड़ा बना क्यों खड़ा है ? उधर बैठता क्यों नहीं ?'

'बच्चों की सी बात हो जायेगी हुजूर।' सुपति राय ने घिगलित भाव से कहा—'आपके हुकुम के बिना नहीं मैं बैठ सकता हूँ। बेइज्जती नहीं होगी ?'

सुन कर दारोगा साहब खुश हुए। हाँ, यही तो चाहिये। हाय, हाय, यह विनय बोस अगर ऐसा ही अच्छा लड़का होता तो दिल की बीमारी लेकर मैं इस तरह से भागता न फिरता।

'ठीक है, तू उधर बैठ जा।' दारोगा साहब उदारतापूर्वक बोले—'मैं तुझे बैठने का हुकुम देता हूँ। वह तेरे पाँव के पास कथरी लपेटे कौन पड़ा है ?'

'अरे सरकार, कुछ न पूछिये।' सुपति राय लगभग रो पड़े, 'मेरा चचेरा भाई नूर मिर्जा है। बुखार में बेहोश है, उस पर बदन में दो-चार दाने भी निकल आए हैं। अल्लाह ही जानता है कि उसके मन में क्या है ?'

'क्या ? एक तो दिल की बीमारी उस पर शीतला माता ?'

कूद कर दारोगा साहब कमरे के दूसरी ओर जा पहुँचे। ऐसी छूत की बीमारियों से बच कर रहना ही अच्छा होता है। खासतौर से दिल के मरीजों को।

जगन्नाथ घाट। इस लाइन पर यही आखिरी स्टेशन है। यहाँ से स्टीमर पर जाना होगा।

पद-मर्यादा के अनुसार दारोगा साहब दल-बल सहित पहले उतर गये। सबसे बाद में उतरे सुपति राय अपने अस्वस्थ चचेरे भाई के साथ। फटेहाल, असहाय हालत।

होगा ही। एक तो बुखार उस पर चेचक। अल्लाह के मन में क्या है, कौन जाने !

पानी में स्टीमर तैर रहा था। लक्ष्य सिराजगंज घाट। थोड़ी दूर।

तीन दिन हो गये थे खाना खाये। आज भी शायद ही मिले। कष्ट ? नहीं, कष्ट कैसा ? जो पराधीनता का नागपाश काटने निकले हैं, वे अभागे अच्छी तरह से जानते हैं कि इस रास्ते पर फूल नहीं बिछे हैं। अतएव, साधारण से इस सुख के लिए विचलित होने का कोई मतलब नहीं होता है।

लेकिन सुपति राय विचलित हुए। विनय की बात सोच कर हुए। यह तो मामूली लड़का नहीं है। इसमें अदम्य साहस है। दक्षता असाधारण है। इसका निशाना अचूक है।

आगे, भविष्य में इससे भी बड़ी लड़ाई के लिए उसका अमूल्य सेनापतित्व हमें चाहिये। उस भयंकर लड़ाई में सिंह की तरह सामना करने के लिए उसका स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है।

कम से कम, उसके लिए तो कुछ न कुछ इन्तजाम करना ही होगा। अभी। क्या पता, बाद में यह मौका मिले या न मिले।

स्टीमर में एकमात्र सहारा है बटलर। जिसका कारोबार ही अंग्रेज साहबों को लेकर है। तीसरे दर्जे के यात्रियों की बातों में वह आयेगा क्यों? देखने में हर्ज ही क्या है? चल कर कोशिश करते हैं।

'अरे, आप यहाँ हैं।' हँस कर बटलर के केबिन के दरवाजे के सामने जा कर सुपति राय खड़े हो गये—'आप ही इस लाइन के बड़े बटलर साहब हैं न?'

'हाँ! क्यों?' बटलर साहब ने गम्भीर रह कर जानना चाहा।

'नहीं, कुछ नहीं, ऐसे ही, हमारे साहब आज भी आपकी बड़ी तारीफ करते हैं। कहते हैं जगन्नाथ घाट लाइन के बड़े बटलर साहब के हाथ का जो खाना खाया है वैसा विलायत में भी नहीं खाया है।'

'कौन साहब?' बटलर ने पूछा।

'क्यों? हमारे जूट के कारखाने वाले साहब? अभी पिछले चैत में आपके हाथ का खा कर गये हैं। आपको याद नहीं है?'

सिर हिला कर हामी भरी। क्या पता, होगा। इस लाइन में ऐसे कितने साहब आया-जाया करते हैं। उनमें से कौन किस कम्पनी का साहब है, किसे याद रहता है?

'इसीलिए मैं कह रहा था कि हम दोनों को भी कुछ दीजिये न? इतना आपका नाम है, हम भी जरा चख कर देखते। नहीं नहीं, आपका नुकसान नहीं होगा। जो पैसा होगा, दूँगा।'

इसके बाद बटलर साहब ने कोई आपत्ति नहीं की। और करते भी क्यों? ऐसे मूर्खों से अगर ज्यादा पैसा हथिया लिया जा सके तो इसमें बुराई क्या है?

जगन्नाथ घाट से स्टीमर द्वारा सिराजगंज। सिराजगंज से सीधे सियालदा स्टेशन।

लेकिन सियालदा नहीं, मिर्जा साहब लोग उतर गये दमदम में। सियालदा बड़ा स्टेशन है, वहाँ अभ्यर्थना का प्रबन्ध बड़े पैमाने पर हो सकता है।

क्या फायदा? इससे अपना छोटा स्टेशन ही अच्छा है। अब मकबूल चाचा के कपड़े की मिल में काम भर जुगाड़ होना है।

सात नम्बर वलीउल्लाह लेन। मकान के मालिक हैं सुरेश मजुमदार। उनका

पूरा नीचे का मंजिल रिक्शा और मोटरों का गैरेज। जैसी जगह छोटी, वैसा ही अंधेरा। हर जाति के लोग यहाँ रहते हैं। पंजाब से लेकर उत्कल तक के रहने वाले। हर समय हो-हल्ला लगा ही है।

दुमंजिले की सज्जा इसके बिल्कुल विपरीत थी। कमरे खूब बड़े-बड़े और ठीक से सजाये हुए। वहाँ का वातावरण भी शान्त।

उन दिनों भागे हुए विप्लवियों के छिपने के लिए बी० वी० के कुछ गुप्त अड्डे थे। सुरेश बाबू का यह दुमंजिला मकान उसी का हेड क्वार्टर था। बंगाल के गवर्नर एन्डर्सन शूटिंग के मुक़दमें में जिन्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला था, वह उज्ज्वला मजुमदार इन्हीं की बेटी थी।

ठीक समय पर सुपति राय, विनय बोस को लेकर वहाँ जा पहुँचे। अपना उत्तर-दायित्व वे पूरा कर चुके, अब छुट्टी।

परन्तु निश्चित न रह सके सुरेश बाबू और बी० वी० के अन्य कार्यकर्तागण। यह जगह शहर के बीचोबीच है। नीचे भी हजारों तरह के लोगों का आना-जाना लगा रहता है। ऐसी हालत में विनय जैसे लड़के को यहाँ रखना ठीक नहीं। जितनी जल्दी हो सके उसे यहाँ से दूसरी जगह भेजना होगा।

लेकिन काम इतना आसान नहीं। बंगाल के कोने-कोने में उनकी तस्वीर प्रकाशित हो चुकी है। उसी के साथ-साथ पुरस्कार की भी घोषणा। पहले था ५ हजार, अब है दस हजार। ऐसी हालत में लाखों लोगों की आँखों के सामने से स्थानान्तरित करना मामूली बात नहीं।

उससे भी बड़ी बात थी—ट्रेगार्ट। विप्लवियों का सबसे बड़ा शत्रु चार्ल्स ट्रेगार्ट।

सचमुच भयंकर आदमी है। अभी कुछ ही दिनों पहले डलहौजी स्क्वायर में उस पर बम फेंका गया था जिससे कोई फायदा तो नहीं हुआ पर धर-पकड़ आज भी जारी है। चीते की तरह कहीं वह यहाँ न पहुँच जाए।

शत्रु होते हुए भी, बुद्धि, साहस और चालाकी के लिए उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। इससे पहले ब्रिटिश राज्य के इतिहास में ऐसा धूर्त और तीक्ष्ण बुद्धि-सम्पन्न आफिसर शायद ही कोई आया होगा। खास तौर से पुलिस कमिश्नर के रूप में उन्होंने जिस तरह से गुण्डों को ठिकाने लगाया था, उसकी तारीफ करनी ही पड़ जाती है।

आज वे गुण्डों के लिए चिन्तित नहीं हैं। वे चिन्तित हैं बंगाल के मृत्युप्रेमी युवकों को लेकर। ब्रिटिश साम्राज्य को चिन्तामुक्त करने के लिए इनका कठोरतापूर्वक दमन करना होगा।

ऐसे व्यक्ति की नजर बचा कर विनय को दूसरी जगह हटाना, संभव हो भी पाएगा?

सिग्नल डाउन।

कलकत्ते से ट्रेन आने का समय हो गया है। इसी बीच इंजन की रोशनी से सारा प्लेटफार्म आलोकित हो उठा था।

बैन्डल जंक्शन में पुलिस पहरेदार तैयार हो गए। उन्हें कठोर आदेश है कि कलकत्ते से बाहर जाने वाली हर ट्रेन के हर कमरे पर कड़ी नजर रखी जाए। किसी हालत में विनय बोस भागने न पाए। खूब सावधान रहना होगा।

लेकिन यह क्या ? सहसा कुछ देख कर सशस्त्र पुलिस वाहिनी तटस्थ हो गई। स्वयं जिला मजिस्ट्रेट की कार इधर चली आ रही है। मामला क्या है ? क्या साहब सरकारी काम से इसी गाड़ी से बाहर जा रहे हैं ?

नहीं, साहब नहीं। उनके कान्फीडेन्शियल क्लर्क सरोज राय। उनके साथ थे दो और व्यक्ति। एक युवक, दूसरे कुछ प्रौढ़। राय साहब के रिश्तेदार होंगे।

'सलाम बाबूजी।' सरोज बाबू को देख कर सशस्त्र प्रहरी दल ने अभिवादन किया।

'हाँ हाँ, सलाम !' हँस कर सरोज बाबू बोले—'अच्छी तरह से चारों तरफ नजर रखना। ख्याल रखना अपराधी किसी हालत में भाग न सके। पकड़ा देने पर १० हजार रुपया इनाम मिलेगा यह न भूल जाना।'

रिश्तेदारों को ट्रेन पर चढ़ा कर थोड़ी देर बाद ही सरोज राय वापस लौट गए। उसी जिला मजिस्ट्रेट की कार से। उनके साथ साहब का अर्दली और ड्राइवर था।

मल्लिका, तुम शायद ही विश्वास कर सको, यह युवक ही विनय बोस था। और प्रौढ़ व्यक्ति थे बी० वी० के एक्शन स्क्वाड के सीनियर मेम्बर, रेडा अस्त्रागार लूट वाले केस के नायक श्रद्धेय श्री हरिदास दत्त।

जिसे पकड़ने के लिए इतना कुछ किया जा रहा है, वही विनय बोस स्वयं जिला मजिस्ट्रेट की कार पर बैठ कर उनकी नाक के सामने से निकल जाएगा, यह किसी ने सपने में भी नहीं सोचा होगा। इस मामले में बी० वी० के शुभेच्छुक सरोज राय की भूमिका असाधारण थी। जिस प्रकार से उन्होंने अपने ऊपर यह मुसीबत ले ली, साधारणतया लोग ऐसा करते नहीं हैं।

कलकत्ते से कातरासगढ़ की कोयले की खान। आश्रय लिया दल के मित्र अनाथबंधु दास के क्वार्टर में। खूब बड़ा क्वार्टर था, इसलिए असुविधा नहीं हुई।

विनय लेकिन खुश नहीं था। न जाने कैसी अस्थिरता बनी थी। पुलिस चीफ लोमैन को अपने हाथों से मारा था, पर क्या यहीं उनका कर्तव्य खत्म हो गया ? भारत की स्वाधीनता के लिए उसे क्या और कुछ नहीं करना है ?

हरिदास बाबू उनकी मनोदशा समझ रहे थे। इसीलिए कुछ दिनों बाद ही वे विनय को लेकर कलकत्ता लौट आए।

आश्रय की व्यवस्था हुई बेलेघाटा में। दल के निष्ठावान व्यक्ति राजेश गुहा के

घर में।

राजेन बाबू बहुत खुश। विनय जैसा लड़का उनके पास रहेगा, यह तो भाग्य की बात है। ऐसा भाग्य कितनों का होता है।

विनय की खुशी का भी ओर-छोर न था। आदमी के नाते राजेन बाबू अतुलनीय थे। उससे भी बड़ा आकर्षण था, उनके छोटे-छोटे बच्चे। देखते ही प्यार करने की इच्छा होती।

उस पर भाभी। भाभी क्या, बिल्कुल माँ थी। पृथ्वी पर ऐसा निश्छल, निःस्वार्थ प्यार शायद ही कोई दूसरा दे सकता है।

अब शुरू हुई मन्त्रणा। विनय को लेकर क्या किया जाए? सबसे पहला प्रश्न उसकी सुरक्षा का था। इधर कुछ न कुछ इन्तजाम करना ही था।

सब सुनने के बाद सुभाष ने अपनी राय दी—'विनय विदेश चला जाए। कोई भी व्यक्ति हमेशा के लिए पुलिस की नजरों से नहीं बच सकता। एक न एक दिन पकड़ा जाएगा ही। इससे अच्छा है उनकी पहुँच के बाहर चला जाए।'

यही बात कही उनके मँझले भाई शरत बोस ने, आचार्य पी० सी० राय, लेडी अवला बोस ने भी। हाँ, विदेश चले जाना ही ठीक होगा।

हरिदास बाबू भी अपने इरादे में पक्के थे। न केवल कम्पनी के अस्त्र लूटने के मामले में बल्कि बाद में भी इसका प्रमाण मिला है।

इस बार भी उन्होंने यही किया। तुरन्त उन्होंने मि० गिल नामक किस जार्ज डॉक के एक पदस्थ कर्मचारी को पटा लिया। तय हुआ, दूसरे दिन सुबह पाँच बजे वे विनय को एक जहाज पर बैठा देंगे। जहाज इटली जाएगा, उसके बाद कोई चिन्ता की बात नहीं।

लेकिन विनय तैयार नहीं हुए, क्योंकि बी० वी० की अगली योजना में वह भाग लेना चाहते थे!

वह बड़ी खतरनाक योजना थी। साम्राज्यवादी अंग्रेजों का सबसे मजबूत ठिकाना था राइटर्स बिल्डिंग। इस बार वहाँ हमला करना होगा। मार-मार कर उनका गर्व मिट्टी में मिला देना होगा।

योजना तैयार। दल के एक और नेता प्रफुल्ल दत्त न केवल एक्शन स्कवार्ड के सदस्य थे, इन्जीनियर भी थे। उनकी मदद से राइटर्स बिल्डिंग में कहाँ, किस मंजिल के, किस कमरे में, क्या करना है, इसका विस्तृत नक्शा प्राप्त हो गया था। दिन तारीख तक तय हो चुकी थी। अब सिर्फ इन्तजारी करना था।

पहला लक्ष्य—जेल विभाग के सर्वोच्च पदाधिकारी कर्नल सिम्पसन। इन्हीं के इशारे पर उस दिन सुभाष के शरीर से इतना खून बहा था। इस बार इन्हें अपना खून दे कर सुभाष के खून का ऋण चुकाना होगा।

विनय हमेशा ही कम बोला करता है। इतना सुन कर केवल इतना ही बोला—'मैं जाऊँगा।'

उन दिनों बी० वी० की कार्यकारिणी के सदस्य थे, दल के सर्वप्रिय मँझले भाई साहब हरिदास दत्त, सत्य बख्शी, मेजर सत्यगुप्त, भूपेन्द्र दिशोर रक्षित राय, प्रफुल्ल दत्त, मनीन्द्र राय और रसमय सूर।

इनके प्रमुख सहायक थे ज्योति जोरदार, यतीश गुहा, तेजोमय घोष, जितेन सेन, सुधीर नन्दी, अशोक सेन, गोपाल सेन, अनिमेष राय, सचिन भौमिक, मणी सेन और निर्मल गुहा।

महिला कार्यकत्रियों की नेत्री थीं अध्यापिका मीरा दासगुप्ता। कभी-कभार उनके पास अस्त्र-शस्त्र भी सुरक्षित रखे जाते थे। उनके पिता उच्चपदस्थ सरकारी अफसर थे। इसलिए हर तरफ से सुरक्षित।

जब से भूपेन रक्षित राय और मेजर सत्य गुप्ता कैद हुए थे तब से एक्शन स्क्वाड बना था। इसका संचालन करते थे हरिदास दत्त, प्रफुल्ल दत्त, रसमय सूर, निकुंज सेन और सुपति राय।

प्रस्ताव सुनते ही सबने एक स्वर में इस बात का समर्थन किया। जब स्वयं विनय चाहता है तब 'नहीं' कहने का प्रश्न ही नहीं उठता है!

तय हुआ इस अभियान का संचालन विनय ही करेंगे। उनके साथ रहेंगे मृत्यु-भयरहित दो तरुण विप्लवी—दिनेश गुप्ता और बादल गुप्ता।

दिनेश गुप्ता। बी० वी० के भयंकर साहसी वीर सैनिक दिनेश गुप्ता। जैसे तो वे वीर, साहसी और सुन्दर स्वास्थ्य के अधिकारी थे, वैसे ही वे प्रसिद्ध थे लेखक, कवि, कलाकार, दार्शनिक के रूप में। 'प्रवासी' मामक मासिक पत्रिका में उनकी लिखी कहानियाँ खूब ख्याति अर्जन कर चुकी थीं। रवीन्द्रनाथ उनके जीवन के सबसे बड़े आदर्श थे। ऐसे रवीन्द्रनाथ के भक्त बिरले ही मिलेंगे।

लेकिन सब से ज्यादा प्रसिद्ध थी—उनकी संगठन शक्ति। इन्हीं ने बंगाल वॉलेन्टियर्स की मेदनीपुर शाखा की प्रतिष्ठा की थी।

अचानक आदेश मिला—'दिनेश, तुम्हें मेदनीपुर जाना होगा। वहाँ के लड़कों को संघबद्ध करो। आशा है तुम इस काम को कर सकोगे।'

बस, फिर क्या था? वे ढाका छोड़ कर मेदनीपुर कालेज में जा कर भर्ती हो गए।

'मैं कर सकूँगा? करना ही होगा! कितनी भी बाधा क्यों न आए, सब को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ूँगा।'

काम और काम, और काम! नए जीवन, नए वातावरण में, काम में डूब गए दिनेश।

इसका परिणाम अच्छा हुआ। देखते ही देखते सोता दैत्य जाग उठा।

अन्त में यह हालत हो गई कि लड़कों को रोकना मुश्किल हो गया। हर समय—'काम चाहिए। काम चाहिए।' की रट लगाने लगे।

अचानक फिर ज़रूरी बुलावा आया—'दिनेश, तुम ढाका आ जाओ। तुम्हारी बहुत ज़रूरत है।'

उपयुक्त साथी के हाथों में मेदनीपुर की जिम्मेदारी सौंप कर फिर ढाका लौटे। पहले पार्टी फिर दूसरी बात। व्यक्तिगत सुख-सुविधा का तो कोई प्रश्न ही नहीं था।

सात नम्बर वलीउल्लाह लेन की तरह ही बी० वी० वालों का दूसरा अड्डा था, न्यू पार्क-स्ट्रीट का एक मकान। यह भी दुमंजिला था। नीचे के हिस्से में दल के दो सदस्यों का चेम्बर—डाक्टर अनिमेष राय और डाक्टर हिमांशु बनर्जी।

दुमंजिले में एक से एक भयंकर विप्लवी जो छिपे हुए थे। इन्हीं में थे ऐक्शन स्क्वाड के सदस्य निकुंज सेन और सुपति राय। यहीं थे दिनेश और बादल। सुरक्षा की दृष्टि से इन्हें पहले से यहाँ ला कर रखा गया था।

७ दिसम्बर। सिर्फ एक ही दिन बाकी था। उधर तैयारी समाप्त हो चुकी थी। आग्नेय-अस्त्रों का बार-बार परीक्षण किया जा चुका था।

क़ीमती यूरोपीय कपड़े भी तैयार हो कर आ चुके थे। इन्हीं पोशाकों में सज-धज कर कल रायटर्स बिल्डिंग में जा घुसना है। हाव-भाव से यह जता देना होगा कि बड़े भारी अफसर हैं वरना दरबान रोक सकते हैं।

अचानक निकुंज बाबू को एक ज़रूरी बात का ख्याल आया। नक्शे में राइटर्स बिल्डिग के भीतर का पूरा विवरण रहने पर भी उसके आस-पास के गली-कूचों का ठीक से ज्ञान किसी को नहीं था। किसी को एक बार देख आना चाहिए।

विनय नहीं जा सकता है, क्योंकि वह छिपा है, पर इन दोनों में से एक को ले जाकर दिखा लाने में हर्ज क्या है?

अन्त में बादल को साथ ले कर निकले निकुंज बाबू। वह न सिर्फ उनके स्कूल का छात्र था बल्कि अपने हाथों से तैयार किया उपयुक्त शिष्य भी था। उनसे ज्यादा अच्छी तरह, बादल को और कौन पहचान सकता है।

शाम होने से पहले ही दोनों वापस आ गए। परिचित आदमी की मदद से बादल को दिखला-समझा कर वापस आ गए निकुंज बाबू। अब हर तरफ से निश्चिन्त।

उस समय दिनेश रवीन्द्रनाथ के 'बलाका' में खोए थे। इतने शान्त, सौम्य व्यक्ति कि दिनेश इन दिनों पहचान में नहीं आते थे।

अनजाने में ही निकुंज बाबू का दिल भर आया। इतने प्रिय दिनेश और बादल आज आँखों के सामने हैं। लेकिन कल? केवल भाग्य-विधाता ही बता सकते हैं कि कल के लिए उनके भाग्य में क्या लिखा है? आशीर्वाद या अभिशाप?

निकुंज बाबू की तन्मयता टूटी तो बोले—'सुनो दिनेश, तुम तो खाने के शौकीन हो। बोलो, जाने से पहले क्या खाओगे ?'

'ऐं।' 'बॅलाका' किताब एक किनारे रख कर दिनेश संभल कर बैठ गए—'खिलाइयेगा ? ठीक है, मैं राज़ी हूँ। पर मीनू हम बनायेंगे। और एक बात ! जब तक हम यह न कहें कि 'अब नहीं', तब तक खिलाते रहना होगा। क्या ? ठीक है न बादल ?'

मन ही मन बादल हँसा। 'खाऊ' के नाम से प्रसिद्ध दिनेशदा को अपने ऊपर कुछ ज्यादा ही गर्व हो गया है। चलो, कल पता चल जायेगा कि बादल गुप्ता कौन है ?

१९३० साल। ८ दिसम्बर। अग्नियुग के इतिहास का एक अविस्मरणीय दिवस।

सुबह से ही न्यू पार्क-स्ट्रीट के इस गुप्त केन्द्र में हो-हल्ला मच गया।

पहले तो शुरू हुआ दिनेश-बादल का खाना। देखने की चीज़ थी। कोई किसी से पीछे नहीं। जितना दिनेश खा रहा था, उतना ही बादल। कोई हार मानने के लिए तैयार नहीं।

निकुंज बाबू पूछते—'और गोश्त दूँ दिनेश ?'

'क्या पूछ रहे हैं ?' आश्चर्यचकित होकर दिनेश कहते—'अभी तो मैंने शुरू ही नहीं किया है।'

'बादल, तुम्हें दूँ ?'

'आप देते जाइये। वक्त आने पर मैं स्वयं मना कर दूँगा।'

'बादल, तुझसे न हो सकेगा।' दिनेश बिगड़ कर कहते—'तू मुझसे जीत नहीं सकता है, बेकार की जिद्द छोड़ दे।'

निकुंज बाबू चुपचाप दीर्घश्वास छोड़ते। आज स्वाधीनता की बलिवेदी पर इन्हें चढ़ना है। इनमें से कोई नहीं लौटेगा। कोई आज के बाद दुनिया की शक्ल नहीं देखेगा।

लेकिन देख कर कौन कह सकता है कि इनके मन में किसी तरह की चिन्ता है ? मृत्यु मानो इनके लिए एक खेल है।

और उम्र ही कितनी है ? विनय बाइस, दिनेश बीस और बादल ने अभी-अभी अट्ठारह साल में कदम रखा है।

खाना खत्म हुआ। थाली साफ। कहीं कुछ बचा तक नहीं।

सब काम खत्म हो गया। कपड़ा भी पहन चुके। अब केवल प्रतीक्षा करना था।

देख-सुन कर निकुंज बाबू बाहर चले गये। एक टैक्सी चाहिये। वहाँ से सीधे खिदीरपुर पाइप रोड के मोड़ पर पहुँचना होगा। रसमय बाबू विनय के साथ वहीं इन्तजारी करेंगे।

कुछ ही देर में टैक्सी लेकर निकुंज बाबू लौट आए। अब देर नहीं, बुला लेना चाहिये।

लेकिन निकुंज बाबू बुला न सके। उससे पहले ही कुछ सुन कर उनकी गति मन्थर होते-होते रुक गई। अन्दर के कमरे में दिनेश सुध-बुध खोकर रवीन्द्र नाथ की की कविता 'एबार फेराओ मोरे' (अब मुझे लौटाओ) की कुछ पंक्तियों का पाठ कर रहे थे :

'जिसने सुना है कानों से—
उसका आह्वान गीत, वही निर्भीक प्राणों से पहुँचा
संकट के बीच, कर दिया उसने विश्व विसर्जन,
सीना बढ़ा कर अत्याचार सहे, मृत्यु का गर्जन
सुना संगीत समझ कर।'

कविता की पक्तियाँ सुन कर निकुंज बाबू का हृदय हाहाकार कर उठा। दिनेश, इसी तरह से, कितने दिन, कितनी रातें गा उठा है। सारा कक्ष मुखर हो उठता था।

आज इस सब का अन्त हो जायेगा। सब पर पर्दा गिर जायेगा। समय पास है। जी न भी चाहे तो भी विदा करना है। चिरविदा।

मिनट भर के लिए झिझके, फिर धीरे से पुकारा—'दिनेश।'

'कौन ? ओ, आप ! टैक्सी आ गई है क्या ? गेट-अॅप बादल, गेट-अॅप ! कुइक ! हमारी यात्रा शुरू हुई....'

उधर मटियाबुर्ज के राजेन गुहा के घर पर भी यही दृश्य।

भाभी जी के पास सुबह से मरने तक का वक्त न था। देवरजी को क्या खाना पसन्द है, क्या चीज़ ज्यादा पसन्द है, इसी में लगी हैं।

हालांकि चल रहा है कल ही से, लेकिन फिर भी मन नहीं मान रहा है। बार-बार लग रहा है, कोई चीज़ छूट तो नहीं गई ? रह-रह कर मूक पीड़ा से हृदय हाहाकार कर उठता, फिर धीरें से अपने को संभाल लेतीं। आज हर चीज़ का अन्त है। फिर कभी स्नेह का कंगाल यह भाई उनके हाथ का बना खाना खाने नहीं आयेगा।

सुबह के सात बजे थे। विनय गहरी नींद में बेखबर सो रहे थे। निश्चिन्त, निर्विकार, सुख की नींद में।

बार-बार भाभी आकर लौट जातीं, बुलाते नहीं बन रहा था। बेचारा ! सोने दो। और कितनी देर यह नींद सोएगा ?—उसके बाद तो लाख बुलाओ, कभी नहीं जागेगा।

लेकिन अब तो देर करना ठीक नहीं। सवा सात बज चुके हैं। सुबह नौ बजे उसे हमेशा-हमेशा के लिए विदा करना होगा।

'देवरजी !' देवरजी !' भाभी ने बड़ी ममता से पुकारा।

हड़बड़ा कर उठ बैठे विनय, 'अरे बाप रे, बहुत वक्त हो गया है। भाभी, तुमने अब तक मुझे जायगा क्यों नहीं ?'

'चाय-वाय पी लो भाई। जाओ, मुँह धोकर आओ।'

मुंह धो कर लौटे तो विनय अवाक् रह गए। यह क्या ? इतनी मिठाई कौन खाएगा ?

'अच्छे भाई मेरे, खा लो।' भाभी ने करुण स्वरों में अनुरोध किया।

'जब तुम्हारे हाथ आया हूँ, बच तो सकूंगा नहीं।' खाते-खाते विनय बोले—'लेकिन अब ज्यादा देर नहीं कर सकता हूँ भाभी। ठीक नौ बजे आदमी लेने आ जाएगा। उससे पहले ही मुझे तैयार हो जाना है। मैं जा कर इस बीच नहाए लेता हूँ।'

नहा कर लौटते ही फिर खाने का तगादा। प्रतिवाद करना व्यर्थ होगा, इसलिए बैठना पड़ा। जिसे कहते हैं राजसूय-यज्ञ। नानाविध मछली, गोश्त, सब्जी, पुलाव, दही, मिठाई—कुछ भी छूटा न था। एक क्यों, दस खाते तब भी खत्म नहीं कर सकते थे।

'खा लो भाई, खा लो।' भाभी की आँखें बरसने को हुईं—'वरना यह दुःख मैं जीवन भर न भूलूंगी। मैंने यह सब कुछ तुम्हारे ही लिए बनाया है भाई।'

'देखो जरा।' हँस कर विनय बोले—'इतना खाना कोई आदमी खा सकता है ? इसके अलावा भाभी, तुम तो सब जानती हो। पेट भारी रहेगा तो लड़ूँगा कैसे ? मुझे कलाई की ताक़त दिखानी है। ठीक है, तुम अफसोस मत करो। मैं धीरे-धीरे खा लूंगा।'

खाना खत्म हुआ। अब पोशाक। ऐसी-वैसी पोशाक नहीं, एकदम बहुमूल्य राज-वेष। क़ीमती सूट, मँहगी टाई, कीमती जूता....सभी कुछ चमचमाता हुआ। सिर का हैट भी वैसा ही शानदार। यही तैयारी दिनेश और बादल की भी थी।

रसमय सूर आ गए। अब देर नहीं करना है। उधर पाइप रोड के मोड़ पर दिनेश और बादल पहुँच चुके है।

अपूर्व संयम के बल पर अब तक भाभी ने अपने मन पर काबू कर रखा था, लेकिन अब न रख सकीं। एक छोटे शिशु की भाँति भाई से बिछुड़ने के दुःख से रो पड़ीं।

तुरन्त विनय ने अपने को दृढ़ बनाया—'अरे यह क्या ? जिस देश की माताएँ युद्ध में जाते वक्त अपने बेटों को अपने हाथों से तैयार करती हैं, उसी देश की लड़की होकर तुम रो रही हो भाभी ? इसके अलावा तुम दल की सहकर्मिणी हो। तुम भी विप्लवी हो। यह कमजोरी तुम्हें शोभा नहीं देती है भाभी।'

'ठीक कह रहा है।' विनय की बातों का समर्थन करते हुए पत्नी के हाथों में कपड़े रख दिए राजेन बाबू ने—'तुम्हारा लड़का देश के इतिहास का नया अध्याय लिखने जा रहा है। इस समय तुम अपने हाथों से उसे कपड़े पहना दो। यह तो बहुत बड़ा सौभाग्य है। ऐसा मौका जीवन में फिर कभी नहीं आएगा।'

धीरे-धीरे अपने को संभाला भाभी ने। ठीक ही तो कह रहे हैं ? कितनों के हैं ऐसे बेटे ? यह कितना बड़ा है, कितना महान्। वीरों की तरह आज स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपने को उत्सर्ग करने जा रहा है। इस समय आँसू गिराना, उन्हें शोभा नहीं देता है। इससे अच्छा होगा वह स्वयं माँ की तरह उसे तैयार कर दें।

'चलूं भाभी।' विदा लेने से पहले माँ के समान भाभी के पाँव छूए विनय ने।

'आना भइया।' बस इतना ही। इससे ज्यादा कहने की क्षमता उनमें नहीं थी।

इशारा पाते ही पंजाबी ड्राइवर ने कार स्टार्ट कर दी। अपलक देखती रहीं भाभी। जब तक दिखाई पड़ता रहा तब तक। कार एक समय आँखों से ओझल हो गई।

जल्दी से भाभी ने आँचल से आँखें पोंछ लीं। शोक मनाने का उनके पास अवकाश कहाँ ? कहीं किसी पड़ौसी ने देख लिया तो प्रश्न पर प्रश्न पूछना शुरू हो जाएगा।

नहीं, यह तो उनका अपना दुःख है। इसका और कोई हिस्सेदार नहीं। हृदय टूट कर चकनाचूर होने पर भी हँसते रहना है। इसके अलावा उपाय ही क्या है ?

मल्लिका, उस दिन न सिर्फ यह भाभी, ऐसी कितनी भाभियों और माताओं ने, बहनों ने बाँगला देश के युवकों और किशोरों को, सहानुभूति और प्यार दिखा कर विपत्ति के मुंह से छिपा रखा था।

इसके बदले उन्हें मिला था अपमान, लांछना, अत्याचार। दुःख और दारिद्र्य। लज्जा और घृणा।

मल्लिका, आज देश स्वाधीन हुआ है। लोग हिसाब-किताब भी करने लगे हैं। हर एक का दावा है कि स्वाधीनता की लड़ाई में मैंने सब से ज्यादा कुर्बानी दी है, इसीलिए सबसे अधिक सुविधा मिलनी चाहिए।

यहाँ तक कि करोड़पति व्यापारी भी इससे बचे नहीं हैं। उनका कहना है कि भारत की स्वाधीनता के लिए हमने जो किया है वह किसी और ने नहीं किया है, इसीलिए कुछ सुविधाएँ तो उन्हें भी मिलनी चाहिए।

आज यह सब देखता सुनता हूँ तो लाखों अभागों का ख्याल आता है। वे लोग अपना हिसाब न कर सके थे। कभी कोशिश भी नहीं की थी इसलिए दुर्भाग्य ही उनका साथी बना रहा—हमेशा।

मल्लिका, तुम ठहरीं आज के युग की लड़की—पराधीनता का दुःख कितना दुःखदायी होता है, यह समझ नहीं सकोगी। उसी दुःख की आग में वे लोग हमेशा जलते रहे।

याद रखना—आज सारी दुनिया में तुम स्वाधीन कहलाती हो, सिर उठाए घूमती हो—स्वाधीनता उनकी समाधि पर प्रतिष्ठित है। बनी है, मिली है। इतिहास में उनकी कोई तुलना नहीं है।

खिदिरपुर पाइप रोड के मोड़ पर दोनों की बाँहों ने एक दूसरे को आलिंगन में ले लिया। इधर से आए विनय और रसमय बाबू। उधर से आए दिनेश, बादल और निकुंज सेन।

अब यात्रा शुरू। ऐतिहासिक यात्रा।

इशारा करते ही टैक्सी आगे बढ़ने लगी, डलहौजी स्क्वायर की तरफ।

स्थिर अपलक उधर देखते खड़े रहे रसमय सूर और निकुंज सेन। विप्लवी जीवन बड़ा कठोर है। तुच्छ भावावेग में टूटने से काम नहीं चलने का। फिर भी देखते-देखते दृष्टि धुंधली होने लगी रह-रह कर।

वह जा रहे हैं। वह देखो, जन-साधारण की भीड़ में खो गई उनकी टैक्सी। अब वे नहीं लौटेंगे, हजार बुलाने पर भी नहीं—कभी नहीं।

विदा, बंधु विदा! विनय! विनय, बादल, दिनेश—तुम्हारा यह आत्म-विसर्जन कभी व्यर्थ नहीं जाएगा। आज हो या कल, हम स्वाधीनता ले कर रहेंगे। उस स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में तुम्हारे चरम आत्मविसर्जन की कहानी स्वर्णाक्षरों में लिखी रहेगी।

गाड़ी डलहौजी स्क्वायर की ओर भाग रही थी। दूरी कम होती जा रही थी, पल-पल।

भीतर स्थिर-निश्चय बैठे थे विनय, बादल और दिनेश। सीने में अदम्य साहस और उत्साह लिए।

चोट पहुँचाना है। आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कमर तोड़ देनी है। जो भी बाधाएँ क्यों न आएँ, सब को तुच्छ कर के सीना तान कर आगे बढ़ना है।

उसके लिए वे चरम मूल्य चुकाने के लिए तैयार हैं। देंगे। ब्रिटिश शक्ति के अभेद दुर्ग से बाहर आने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? इस बात की वे कोशिश भी तो नहीं करेंगे।

लेकिन उससे पहले साबित करना होगा कि स्वाधीनता संग्राम के सैनिक मृत्यु से नहीं डरते। दिखा देंगे कि भीख माँगने पर स्वाधीनता नहीं मिलेगी। इसी तरह से क़ीमत दे कर स्वाधीनता प्राप्त की जाती है।

हमारा काम खत्म। अब तुम लोग हमारे खून की बूंदों के सहारे आगे बढ़ो।

ठीक १२ बजे थे। समय हो गया है, अब देर नहीं।

सामने अभेद दुर्ग—राइटर्स बिल्डिंग। दुर्ग नहीं तो और क्या कहेंगे? उन दिनों राइटर्स बिल्डिंग में घुसना इतना आसान नहीं था। खासतौर से १९३०-३५ में। बंगाली

जूजू के डर से अंग्रेज थर-थर कांपते थे ।

१२ बजे का समय था । अपने कमरे में बैठ कर कुछ ज़रूरी फाइलें उलट-पुलट रहे थे जेल के सबसे बड़े ऑफिसर कर्नल सिम्पसन । उनके सामने खड़े थे निजी सचिव ज्ञान गुहा ।

सहसा कुछ सुन कर सिम्पसन के दोनों कान खड़े हो गए ।

कोई इधर ही बढ़ता आ रहा है । पैरों की आवाज़ से लग रहा है, मानो आर्मी ऑफिसर है ।

'कौन ? कौन है ?' क्षण भर में सिम्पसन की आँखें ऊपर चढ़ गईं ।

दरवाज़े के सामने ये कौन खड़े हैं ? उनके हाथों में ये क्या है ?

सेनापति विनय बोस गरजे—'प्रे टू गॉड, कर्नल । मोर लास्ट ऑवर इज़ कमिंग ।'

कहते न कहते, एक के बाद एक छह गोलियाँ निकलीं तीन रिवाल्वरों से ।

बस—खत्म ! एक शब्द न निकाल सके कर्नल सिम्पसन ।

तुरन्त तीनों मुड़ कर खड़े हुए । यहाँ का काम खत्म । अगले लक्ष्य थे होम सेक्रेटरी एलवियन मार । अब उनके कमरे में चला जाए । वह रहा उनका कमरा ।

धाँय ! धाँय ! धाँय ! मिनटों में डिपार्टमेन्ट की काँच की खिड़कियाँ झनझना कर टूट गईं । कहाँ गया एलविमन मार ? शूट हिम !

यह सब देख कर रिवाल्वर लेकर भागे-भागे आए इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस मिस्टर क्रेग ।

दौड़े आए फोर्ड । दौड़े आए सहायक इन्स्पेक्टर जनरल मिस्टर जोन्स । इन्होंने भी कई राउन्ड गोलियाँ चलाईं । लेकिन सब बेकार था । दिनेश, बादल और विनय तीनों इतने वेपरवाह हो गए थे कि बराबर गोली का जवाब गोली से दे रहे थे । खून के बदले खून—इसके अलावा वे और कुछ नहीं जानते थे ।

अन्त में डर के मारे श्वेतांग वीरपुरुष छिपने लगे । माई गॉड—ये लड़के हैं या बिच्छू ? इनके सामने बेमौत मरने कौन जायेगा ?

पूरी राइटर्स बिल्डिंग में तांडव शुरू हो गया । चारो ओर भयभीत आतंकित भागते हुए महाप्रभुओं का दल । हो—हल्ला, चीख, पुकार—'भागो, भागो ! बचना हो तो अभी भागो !'

खबर सुन कर भागते हुए आ पहुँचे पुलिस कमिश्नर मिस्टर गार्डन । दौड़े हुए आये मिस्टर वर्ट । उनके साथ हज़ारों पुलिस ।

कुछ भी न हो सका । होता भी कैसे ? वेतन भोगी सैनिकों की मदद से स्वार्थ-सिद्ध करने में और मुक्ति-प्रेमी सैनिकों की लड़ाई में बहुत बड़ा अन्तर है । स्वाभाविक कारणों से हार मानने को बाध्य हुए अधिकारी ।

इधर द्रुतगति से घटनाएँ घट रही थीं और रचना होती चल रही थी इतिहास की ।

अगला लक्ष्य था पासपोर्ट आफिस। मिनटों में सारा आफिस तहस-नहस हो गया।

कैसा विचित्र दृश्य था! कोई घुटनों के बल चल कर भाग रहा था, कोई मेज़ के नीचे जान बचाए बैठा था। जिसे कुछ नहीं समझ में आ रहा था वह आँखें बन्द किए माता मेरी को याद कर रहा था।

मिशनरियों के पादरी मिस्टर जानसन तो घबड़ा कर हाथी जैसा शरीर लेकर ड्रेन पाइप से नीचे लटक गए। पहले जान, तब दूसरी बात। यहाँ रह कर बेमौत नहीं मरना है उन्हें।

—धाँय! धाँय! धाँय!

चक्कर खा कर गिरे जुडीशियल सेक्रेटरी नेलसन। गिरे मिस्टर टैनम और न जाने ऐसे कितने।

विनय, बादल, दिनेश उस समय तक साफ बचे हुए थे। एक खरोंच तक नहीं आई थी किसी को।

निरुपाय होकर अन्त में बुलाई गई गोरखा सेना। शुरू हुआ ऐतिहासिक युद्ध। संघर्ष नहीं—युद्ध। अंग्रेजों की पत्रिका 'स्टेट्समैन' तक ने इस भयंकर खूनी लड़ाई का नाम दिया—'बारामदा बैटेल।'

अविश्वसनीय! अभावनीय तथा अकाल्पनिक!

एक तरफ गोरखा फौज के सहस्रों सैनिकों ने घुटने मोड़ कर पोजीशन ली तो दूसरी तरफ लाइंग डाउन पोजीशन में विनय, बादल और दिनेश।

एक दल के हाथों में शक्तिशाली राइफलें तो दूसरों के हाथ में रिवाल्वर मात्र। एक तरफ बहुत सारे युद्धों की अभिज्ञता सम्पन्न श्वेतांग सेनापतिगण, दूसरी तरफ पराधीन देश के तीन स्वाधीनता प्रेमी सैनिक।

उम्र ही क्या है? अभी ही तो किशोर से युवा हुये हैं।

लेकिन किसमें हिम्मत थी उनके सामने पड़ने की? उनके रिवाल्वर से जलती हुई गोलियाँ झुण्ड के झुण्ड निकल कर आघात कर रही थीं। एक कदम बढ़े नहीं कि मरे।

देखते ही देखते धुएँ और बारूद की महक से हवा तक भारी हो गई। चारों ओर अंधेरा छा गया। सिर्फ गोली की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी।

हार कर महाप्रभुओं ने प्लान बदला। युद्धक्षेत्र और विस्तृत किया। कभी इस बरामदे पर, कभी उस बरामदे में जाने लगे। कभी इस कोने से कभी उस कोने से।

इन सब को भेदती, रह-रह कर बादल की गड़गड़ाहट सी सुनाई पड़ती आवाज —'बन्दे मातरम्।'

'बन्दे मातरम्', छोटा सा शब्द था। लेकिन इसी छोटे शब्द में तब जो शक्ति

थी उसकी कल्पना भी कहीं कर सकती हो तुम, मल्लिका।

इसी एक छोटे शब्द के कारण उस दिन बहुत रक्तपात हुआ था। फिर भी देशवन्दना के इस छोटे से शब्द को वे लोग बहुमूल्य ऐश्वर्य की तरह हृदय से लगाए थे।

इधर युद्ध की गति तेज होती जा रही थी। दोनों तरफ बराबर। कोई किसी से कम नहीं।

अचानक दिनेश की पीठ पर एक गोली आ कर लगी। कोई बात नहीं। पीठ पर लगी है, हाथ तो ठीक हैं। फिर फिकर किस बात की? डू और डाई। करेंगे और मरेंगे।

कुछ समय और बीता। उसके बाद फिर शान्ति छा गई। वही समस्या सामने थी। गोलियाँ खत्म। दिनेश और विनय के पास फिर भी एक-एक है, बादल के पास तो एक भी नहीं।

पलक झपकते वे एक खाली कमरे में घुस गए। तीनों ने अन्दर से कमरा बन्द कर लिया। कर्त्तव्य समाप्त। अब पृथ्वी से विदा लेना होगा।

अन्तिम बार कहो सब कोई—'बन्दे मातरम्।'

'बन्दे मातरम्,' एक साथ मिल कर वे इतनी जोर से बोले कि डलहौजी स्क्वायर का इलाका हिल उठा।

अब देर नहीं। रेडी प्लीज। क्षण भर में तीनों ने मुँह में भर लिया घातक साइनाइड। बस, दाँत से काट कर काँच का एम्पुल तोड़ना भर है।

दिनेश और विनय इतने से खुश नहीं हुये। एक-एक गोलियाँ बचाने से क्या फायदा। यह तय करके एक ही साथ दोनों ने माथे पर नली रख कर रिवाल्वर का घोड़ा दबा दिया।

धाँय! धाँय! अन्तिम बार रिवाल्वर गरज कर अचानक चुप हो गया और इसी के साथ तीनों का शरीर ज़मीन पर लुढ़क गया।

बहुत देर तक भीतर से किसी तरह की आहट न पाकर, अब अंग्रेज शासकों का दल, धीरे-धीरे दरवाज़े तक बढ़ आया। बड़ी सावधानी से। उन्हें पकड़ना है, कड़ी सजा देनी है। लेकिन वे लोग थे कहाँ?

बादल खत्म। दिनेश और विनय गम्भीररूप से घायल। दिनेश के गले में बाँई तरफ गोली घुसी थी। विनय के माथे के आर-पार हो गई थी। साइनाइड की पुड़िया अपना काम नहीं कर सकी थी। गोली लग कर बेहोश हो जाने के कारण वे एम्पुल तोड़ तक नहीं सके थे।

अब सरकार अपनी बहादुरी दिखाने बढ़ी।

बादल का मृत शरीर पुलिस की हिफाजत में कर दिया गया—तुरन्त इसका परिचय प्राप्त करो।

विनय और दिनेश को कड़े पहरे में भेजा गया मेड़िकल कालेज अस्पताल। इन्हें

स्वस्थ करना ज़रूरी है। इन्हें फाँसी पर लटकाना है।

सुन कर महानगरी स्तब्ध रह गई। पर उनके चेहरे पर खुशी व्याप्त थी। धन्य हो तुम लोग।

धन्य विनय बोस। सिर्फ तीन महीने में तुमने दो ऐसे असाध्य काम कर दिखाए हैं जिसे तुम्हारे अलावा और कोई कर भी नहीं सकता था। धन्य हो तुम। धन्य हैं तुम्हारे सुयोग्य सहयोगी दिनेश और बादल।

दूसरे दिन अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में यह खबर छपी। 'स्टेट्समैन' ने लिखा:—

'....Lt. Col. N. S. Simpson was shot dead.....Mr. J. W. Nelson, Judicial secretary, was wounded in the leg. Another bullet narrowly missed Mr. A Marr, Finance member, who on hearing the shots came to the door of his room.

Orderly of the D. P. I. was wounded in leg. Passerby were dumb founded to see in broad day light, in the heart of the business quarters of Calcutta an incident that had all the elements of a Chicago gunning affair [Statesman, 15 Dec. 1930]

'अमृत बाजार पत्रिका' में निकला—

Between I. G. of Prisons' room and Mr. Nelson's room, many Europeans had hair breadth and providential escapes. Mr. Towneu, Agricultural and Industrial secretary had the skirts of his coat and waist-coat shot through without any injury to his person. Mr Prentice Home member, escaped unhurt.

Mr. Marr, Finance member, had a providential escape. Mr. Stapleton D. P. I. along with his P. A. and another European official narrowly escaped.

Holes near the gate of Mr. Nelson's room and another at the ceiling of Mr. Prentice's room were found later on. Holes were of the size of Tennis ball.

They dashed into Passport Office and re-loaded their revolvers there. One American Missionary, Mr. E. S. Johnson, waiting in that office out of fear made his escape down with the help of a drain pipe. [A. B. 9th Dec. 1930]

'आनन्दबाजार पत्रिका' का विवरण—

गोली लगने से बंगाल के जेल विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल की मृत्यु

'कल १२ बजे, कलकत्ते की राइटर्स बिल्डिंग में भयंकर दुस्साहसिक हत्याकाण्ड हुआ है। ३ बंगाली युवकों ने बंगाल जेल विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल लेफ्टीनेन्ट कर्नल सिम्पसन को गोली मार कर हत्या कर दी है।

लगभग १२ बज कर १५ मिनट से लेकर १२ बज कर ३० मिनट के भीतर ३ बंगाली युवक जेल विभाग के इन्स्पेक्टर जनरल के ऑफिस (राइटर्स बिल्डिंग) में आ पहुँचे। कर्नल सिम्पसन उस समय अपने खास मुंशी (पर्सनल एसिस्टेन्ट) के साथ दफ्तर में बैठ कर बातें कर रहे थे। युवकों ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो चपरासी ने उपर्युक्त कारणवश उन्हें रुकने को कहा तथा एक कागज पर यह भी लिखने को कहा कि वे उनसे मिलने का कारण लिख दें। युवकों ने ऐसा करने से इंकार कर दिया और उसे एक तरफ धकेल कर स्प्रिंगवाला दरवाजा खोल कर चले गए और तेजी से उन्होंने कर्नल सिम्पसन पर ५-६ गोलियाँ चलाईं। गोली लगते ही कर्नल सिम्पसन की मृत्यु हो गई।

कर्नल सिम्पसन के कमरे से निकल कर आतंकवादी बरामदे में आ गए। भागते वक्त वे लोग ऑफिस की शीशे की खिड़कियों और सीलिंग पर गोली चलाते रहे। राजस्व सचिव मिस्टर धार के ऑफिस की खिड़कियों पर गोलियों के निशान मौजूद हैं।

इसके बाद वे पासपोर्ट ऑफिस में घुसे और एक अमेरिकन को गोली मारी, जो कि नहीं लगी। किसी भी चपरासी को गोली नहीं लगी। उसके बाद वे नेलसन साहब के कमरे में घुसे और उनकी जाँघ पर गोली मारी। उनकी चोट गंभीर नहीं है।

अन्तिम खबरों से ज्ञात हुआ है कि एक आतंकवादी ने आत्महत्या कर ली। दूसरे दोनों की हालत अत्यन्त चिन्ताजनक है। इनमें से एक विनयकृष्ण बोस है यह निश्चित रूप से पता चला है। इस सम्बन्ध में उसने मृत्युकालीन एक बयान में कहा है कि वही विनयकृष्ण बोस है और उसी ने लोमैन की हत्या की है। तीनों आतंकवादी यूरोपीय पोशाक पहने थे। बरामदे से गोली चलाते हुए बढ़ते समय वे 'बन्दे मातरम्' के नारे लगा रहे थे।'

[आनन्द बाजार, ६ दिसम्बर १६३०]

और भी विस्तृत समाचार प्राप्त हुआ ११ तारीख के अखबार से—

सिम्पसन हत्याकाण्ड का प्रभाव
राइटर्स बिल्डिंग पर कड़ा पहरा

'राइटर्स बिल्डिंग में आने-जाने के मामले में सतर्कता का ध्यान रखा जा रहा है। पश्चिम की ओर की सीढ़ी को छोड़ कर बाकी सभी सीढ़ियों पर यातायात सम्बन्धी विशेष सतर्कता बरती जा रही है। सीढ़ी और लिफ्टों पर सार्जन्ट का पहरा लगा दिया गया है ताकि प्रवेश पत्र दिखाए बगैर कोई ऊपर न जा सके। निचली मंजिल पर बाहरी लोगों के लिए टेबिल-चेयर की व्यवस्था की गई है। जो लोग हरदम राइटर्स बिल्डिंग में आते-जाते रहते हैं उन्हें प्रवेश-पत्र देने की व्यवस्था की गई है....

तीनों ने विष पान किया था

'ज्ञात हुआ है कि तीनों अपराधियों ने राइटर्स बिल्डिंग में ही विषपान किया

था। लेकिन विनय और दिनेश की पाकस्थली में विष प्रवेश करने से पहले ही उन्होंने अपने को गोली मार ली और बेहोश हो गए। अस्पताल लाते ही फौरन उनके शरीर से विष निकाल लिया गया है।'

विनय और दिनेश

'कल छानबीन करने पर ज्ञात हुआ है कि विनय की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही है। उनके दिमाग के घाव से लगातार खून बह रहा है। विनय बोस और दिनेश गुप्ता, दोनों का मंगलवार को एक्सरे परीक्षण किया गया है। एक्सरे रिपोर्ट अभी प्राप्त नहीं हो सकी है। ज्ञात हुआ कि दिनेश के सिर में जो गोली घुसी है वह निकालना संभव नहीं, क्योंकि ऑपरेशन बरदाश्त करने की क्षमता उनमें नहीं है। इसी आशंकावश गोली नहीं निकाली जा रही है।'

अस्पताल के अलग-बलग के बेडों पर विनय और दिनेश। उस समय तक किसी को होश नहीं आया था। आएगा भी, इस विषय में सन्देह था हालांकि चिकित्सकों की चेष्टा में कमी नहीं है। आशा बहुत कम है, फिर भी अन्त तक प्रयास करना होगा।

पर यह क्या? विनय के दाहिने हाथ की अँगुलियों में बैन्डेज क्यों? वहाँ तो गोली लगी नहीं थी? तो? क्यों इसका जिम्मेदार कौन है?

जिम्मेदार हैं स्वयं ट्रेगार्ट। विनय ने उनका गर्व चूर-चूर कर दिया है। विनय द्वारा वे दो-दो बार अपदस्थ हो चुके थे। इसीलिए बेहोश विनय की अँगुलियों को इस वीर कापुरुष ने अपने बूटों से कुचल कर तोड़ डाला था।

यह हुई वीरता।

ऐसी वीरता इन सिंहों ने पहली बार नहीं, बहुत बार प्रदर्शित की है।

चट्टगाँव के विप्लवी अधिनायक सूर्य सेन की बात ही लो न। एक बीमार अस्वस्थ आदमी मास्टरदा, उन पर हिंसक पशु की भाँति अत्याचार किया था। खास तौर से उनके अन्तिम समय पर जो कुछ किया था उसका दूसरा उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलेगा।

फाँसी के फंदे से लटकने से पहले किसी कैदी को निर्ममता से मारा जाता है कहीं? पर ब्रिटिश शासकों ने उस दिन यही किया था। मारते-मारते उन्होंने मास्टरदा के सारे दाँत तोड़ दिए थे। अन्त में जिसे फाँसी के फंदे से लटकाया था वह मास्टरदा को नहीं बल्कि खून से लथपथ क्षत-विक्षत उनके बेहोश शरीर को।

एक ही साथ फाँसी की सजा पाए तारकेश्वर दस्तिदार के भाग्य में भी वही लिखा था। फाँसी से पहले बूट की चोट लग कर उनकी एक आँख ही चली गई।

यह था असली रूप ब्रिटिश वासियों का। ऐसा अत्याचार करते थे वे भारतीयों पर। यह क्या सिर्फ भारतीयों के साथ होता था। बर्मा में क्या किया था, सुनोगी?

एक साथ उन्होंने बहत्तर मुक्ति-सैनिकों को फाँसी के फंदे से लटका दिया था।

उसके बाद उनके सिर काट लिए, उसकी तस्वीर खींची और सारे बर्मा में उन तस्वीरों को चिपका दिया, अर्थात् संभल जाओ, वरना तुम्हारे भाग्य में भी यही लिखा है।

इसके विपरीत एक दूसरी घटना देखो। इस घटना के नायक थे लोकनाथ बल। उन्हीं ने बताया था।

१६३० की १८ अप्रैल। चट्टगाँव रेलवे का अस्त्रागार।

रात के दस बजे थे। सहायकों के साथ लोकनाथ पहुँचे—'जो जहाँ है वहाँ से हट जाए। व्यर्थ में जान मत गँवाओ। अपना काम हम करेंगे ही।'

वहाँ खड़े बहत्तर सैनिक सुनते ही भाग खड़े हुए। ऐसे डाकू लड़कों के हाथ जान गँवाने से अच्छा है छिप जाना।

पर बाधा पहुँचाने आगे बढ़े सार्जेन्ट मेजर फेरेल। उसी के साथ सेनापति के आदेश पर गोली चली और वे लोट गए।

मिसेज़ फेरेल आकर लोकनाथ के कदमों में गिर पड़ीं—'तुम मुझे और मेरे शिशु को मत मारो।'

जानती हो मल्लिका, लोकनाथ ने क्या कहा ? बोले—'सिस्टर, मैं बहुत लज्जित हूँ, लेकिन इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं था। पर तुम निश्चिंत रहो। मैं या मेरे कोई आदमी तुम्हारी बेइज्जती नहीं करेंगे।'

सिस्टर ! जिन ब्रिटिशवासियों ने इस आन्दोलन को दमन करने में नारी की इज्जत की परवाह नहीं की थी, उसी देश की एक नारी को सिस्टर का सम्मान प्रदान किया गया था।

तो फिर तुम्हीं बताओ कि सभ्य कौन है ? ब्रिटिश शासक टेगार्ट या बंगाल के तथाकथित आतंकवादियों का दल ?

इस बीच, दोनों की हालत सुधरने लगी थी। लग रहा था इलाज के फलस्वरूप वे इस बार बच जाएँगे।

लेकिन यह क्या ? चिकित्सकों का दल कुछ देख कर अचानक चौंका।

सर्वनाश ! विनय बोस के सिर की पट्टी खुली क्यों है ? घाव के स्थान पर ऐसा गहरा छेद कैसे हो गया ?

किसने यह सब किया ? किसने ?

ब्रिटिश उनका शत्रु है। जीवन भर जिनसे उन्होंने घृणा की है, उन्हीं की देख-रेख में रहना, सेवा ग्रहण करना भी सम्मान हानि के बराबर है। इसीलिए इस भयंकर स्थिति से छुटकारा पाने के लिए उपाय ढूँढ़ निकाला उन्होंने।

स्वयं चिकित्सा विज्ञान के एक मेधावी छात्र थे। इस हालत में क्या करना चाहिये, वे भली-भाँति जानते थे। इसीलिए अपने को खत्म करने के लिए बेहोशी की हालत में ही उन्होंने अपूर्व दृढ़ता के साथ घाव के स्थान में अँगुली घुसा दी।

फलस्वरूप सेप्टिक हो गया। घाव पक गया। उसी के साथ-साथ बुखार और प्रलाप शुरू हुआ।

चिकित्सक गम्भीर हो गये। कब क्या हो जाये, कहना मुश्किल है।

गम्भीर रूप से चिन्तित चार्ल्स ट्रेगार्ट भी थे। अब क्या यह आदमी इस तरह से हाथों से निकल जायेगा? फिर तो अंग्रेजों का मान-सम्मान मिट्टी में मिल जायेगा।

पाँच दिन तक यम और मनुष्य के बीच रस्साकशी जारी रही। धीरे-धीरे जीवनदीप बुझता चला जा रहा था। इस बीच विनय के पिता-माता दोनों आ गये। सरकार ने उन्हें अन्तिम बार देखने की अनुमति दे दी थी। स्तब्ध खड़े थे वे मृत्युपथ-यात्री वीरपुत्र के सिरहाने।

अन्त में पादरी आये शांति-पाठ करने। इस समय यीशु की वाणी सुनेगा तो कम से कम इसका परलोक सुधर जायेगा।

सहसा कुछ सुन कर पादरी विनय के मुँह पर झुक गये। प्रलाप! बेहोशी की हालत में रोगी कुछ कह रहा था।

लेकिन यह क्या?

डर के मारे पादरी कूद कर एक किनारे जा खड़े हुए।

हे भगवान्! शांति की वाणी कौन सुनेगा? किसे सुनाएँगे?

मृत्यु-पथगामी रोगी उल्टे उन्हीं को शांति की वाणी सुना रहा था बेहोशी में। उसी संज्ञाहीन दशा में लगातार कह रहे थे विनय—'एटेन्शन प्लीज! फारवर्ड मार्च! लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट, लेफ्ट....चार्ज! गो फारवर्ड।'

बाइबिल बन्द करके पादरी तुरन्त विदा हो गये। ऐसे लड़के को शांति-वाणी सुनाने के लिए फिर न आना पड़े।

थोड़ी दूर पर खड़े थे पिता रेवती मोहन बोस। नहीं, उन्हें कोई दुःख न था। वे स्वयं मशहूर शिकारी थे, कभी गोली चूकी नहीं थी।

लड़का भी बाप का बेटा साबित हुआ था। उसकी भी एक गोली व्यर्थ नहीं गई थी। दस जनों के आगे ऐसे बेटे का परिचय देना भी गर्व की बात है।

माँ सिरहाने खड़ी थीं। धैर्य और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति। निश्चल पत्थर की मूर्ति सी कब से वहीं खड़ी थीं। एक शब्द भी नहीं बोली थीं।

बस, अन्तिम क्षणों में लड़के के सिर पर हाथ रख कर उस पर झुकीं। धीरे से बोलीं—'खोका, मैं आई हूँ। बेटा, एक बार आँख खोल कर देख। तुझे देखूँगी, इसीलिए इस तरह से भागी-भागी आई हूँ।'

आश्चर्य! पिछले कुछ दिनों से जो कोमा में था, माँ की आवाज सुन कर उसका शरीर कई बार हिल उठा। सारे चेहरे पर प्रसन्नता भरी हँसी बिखर गई। उसके बाद धीरे-धीरे सेल्यूट की मुद्रा में दाहिना हाथ माथे तक उठ गया।

वे थे स्वाधीनता सैनिक, इसीलिए अन्तिम समय में भी माँ को, जन्मभूमि को, लाखों दुःखी देशवासियों को सैनिकों की तरह सैल्यूट द्वारा नमस्कार कर गये।

मृत्यु पथगामी पुत्र से पिता-माता की अन्तिम भेंट का मर्मस्पर्शी विवरण दूसरे दिन विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ ।

मृत्युशय्या पर विनय बोस

माता-पिता से अन्तिम विदाई

'कल मेडिकल कालेज अस्पताल में पता करने पर मालूम हुआ है कि विनयकृष्ण बोस मरणासन्न हैं ।

प्रधान प्रेसीडेन्सी मेजिस्ट्रेट से अनुमति प्राप्त करके विनय के वृद्ध पिता श्रीयुक्त रेवती बोस, वृद्धा माता तथा बड़े भाई श्रीयुक्त विजयकृष्ण बोस अस्पताल में मिलने गये थे । वे कई बार 'विनय' 'विनय' पुकारते रहे और रोते रहे ।

विनय कुछ नहीं कह सके । बस, एक बार अपना दाहिना हाथ उठा कर माथे से छुलाने का प्रयास किया था । शायद माता-पिता को नमस्ते किया था । वृद्ध माता-पिता के लिए यह दृश्य असह्य था । वे रोते-रोते अस्पताल से चले गये ।

विनय ढाका जिला के मुंशीगंज महकमा के राउथभोग गाँव के श्रीयुक्त रेवती मोहन बोस के पुत्र थे । वे ढाका मेडिकल स्कूल के चतुर्थ वर्ष के छात्र थे । और ढाका मेडिकल बोर्डिंग में रहते थे । विनय के छह भाई हैं । विनय के माता-पिता और बड़े भाई जमशेदपुर में रहते हैं । कल विनय को देखने के लिए वे कलकत्ता आए हैं ।'

[आनन्द बाजार, १२ दिसम्बर १६३०]

उसके बाद ? उसके बाद आई वही कालरात्रि ।

विनय बोस परलोक सिधारे

'शनिवार प्रातः साढ़े छह बजे मेडिकल कालेज अस्पताल में विनयकृष्ण बोस को मृत पाया गया । रात को किस समय उनकी मृत्यु हुई, यह मालूम नहीं हो सका ।

डिप्टी कमिश्नर ने नौ बजे शव देने को कहा था, परन्तु देते-देते रात को एक बज गए ।

विनय के पिता श्रीयुक्त रेवती मोहन बोस और विनय के अन्य कुछ रिश्तेदार लाश-घर के सामने इन्तजारी कर रहे थे । शव मिलने पर उसे एक सुसज्जित खाट पर रखा गया । उसके बाद खाट ले कर वे नीमतल्ला घाट की ओर बढ़ चले । कुछ पुलिस कर्मचारी और अन्य लोग भी शव के साथ-साथ गए । रह-रह कर वे लोग 'बन्दे मातरम्' कह रहे थे ।

नीमतल्ला घाट में शव-दाह का समाचार शाम के अखबारों में निकल चुका था । भयंकर जाड़ा पड़ने पर भी बहुत लोग वहाँ इकट्ठा थे ।

शव वहाँ पहुँचने पर एकत्रित जनता 'बन्दे मातरम्' की जयध्वनि कर उठी और शव-देह पर पुष्पमालाएँ अर्पित कीं ।

सर्वपापहरण करने वाली गंगा में विनय के शरीर को नहलाया और यथानियम चिता पर रख कर अग्नि प्रदान की गयी। अस्थि-विसर्जन कर उसकी आत्मा की शान्ति की कामना करते हुए रिश्तेदार अपने घर वापस चले गए।'

[आनन्दबाजार, १५ दिसम्बर १६३०]

खबर सुन कर बंगालवासियों का सिर श्रद्धा से झुक गया। सारे भारतवासियों ने उनको श्रद्धाञ्जलि दी।

हजारों लोगों के कण्ठों से फूट पड़ी महाकवि की अमरवाणी—'जो बिना आशा लिए जीवन-दान करेगा, वह जीवन मिटता नहीं है, उसका नाश नहीं होता है।'

विप्लवी की मृत्यु नहीं होती है। वह अपने आत्मत्याग द्वारा सदा इतिहास में जीवित रहता है।

दूसरे दिन ट्रेगार्ट कुछ देख कर चौंक पड़े। शहर भर में बड़े-बड़े पोस्टर लग गए थे—'आज हमारे खून में सर्वनाश का नशा सवार है।' यह पोस्टर लगे थे पहले—इसी के बाद राइटर्स बिल्डिंग की घटना घटित हुई थी।

आज फिर पोस्टर लगे—हजारों-हजारों पोस्टर—'Benoy's Blood Beckons For More Blood.'

चिन्तित हो गए चार्ल्स ट्रेगार्ट। और खून? तब? तब क्या तूफान रुका नहीं है? विनय की घटना क्या इसकी सूचना-मात्र थी? कहाँ होगा इसका अन्त?

बादल को मरे तीन दिन हो चुके थे, लेकिन पुलिस उनकी मृत-देह देने को तैयार न थी। पहले परिचय चाहिए तब दूसरी बात।

हालांकि कुछ-कुछ पता चल चुका था। बादल की जेब से बी० एन० डे नामांकित एक कार्ड मिला था।

कौन है यह बी० एन० डे? क्या है उसका परिचय? कुछ दिनों बाद पर्दा उठा। अखबार का विवरण दे रहा हूँ—

सिम्पसन का खूनी सुधीर गुप्ता—अपराधी का असली नाम

राइटर्स बिल्डिंग में सिम्पसन साहब की हत्या के बाद जिस युवक ने विष खा कर आत्महत्या कर ली थी उसका नाम बी० एन० डे प्रकाशित हुआ था।

लेकिन अब ज्ञात हुआ है कि उसका नाम श्रीमान सुधीर गुप्ता था—उर्फ बादल। वह ५६ नम्बर गोरीबाड़ी लेन के भवानी इन्जीनियरिंग एण्ड ट्रेनिंग कम्पनी के श्रीयुक्त तारिणीकान्त गुप्ता के भाई श्रीयुक्त अवनीकान्त गुप्ता का पुत्र है। अवनी बाबू का घर था ढाका जिले के विदगाँव ग्राम में। पद्मा नदी की बाढ़ में घर नष्ट हो जाने पर अब वे ढाका जिले के टंगीबाड़ी थाना के अन्तर्गत सिमूलिया गाँव में रहते हैं।

तारिणी बाबू ने मृत-देह की शिनाख्त की है।

सुधीर के पितामह श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ गुप्त और धरणी गुप्त मुरारीपुकूर बम-मामले के कारण दण्डित हुए थे।

सुधीर के परिवार के लोगों ने पुलिस कमिश्नर से उसके मृत-देह के सत्कार की अनुमति चाही है। पुलिस कमिश्नर ने रात दस बजे के बाद शव-परीक्षा-घर से ले जाने की अनुमति प्रदान की है। इसलिए दस बजे के बाद मृत-देह नीमतल्ला घाट पर ले जाया गया। रास्ते के हर मोड़ पर पुलिस पहरेदार और सार्जेन्टों का पहरा लगाया गया था। शवाधार पुष्पमालाओं से सुसज्जित था। अन्त्येष्टि-क्रिया के वक्त अनेक महिलायें वहाँ उपस्थित थीं।

वहाँ रात के पौने बारह बजे 'बन्दे मातरम्' की ध्वनि के साथ चिता में आग लगाई गई।

सिम्पसन हत्याकाण्ड में लिप्त विनय कृष्ण बोस का घर ढाका जिले के राउथभोग ग्राम में, दिनेश का जशोलंग और सुधीर का सिमूलिया। यह तीनों ही गाँव पास-पास स्थित हैं।'

[आनन्दबाजार, १६ दिसम्बर १९३०]

दिनेश की हालत सुधर रही थी। लेटे-लेटे वह अपलक सब कुछ देख रहा था। बादल पहले ही चला गया था। आज विनय दा भी चले गए। पृथ्वी पर बस वही अकेला रह गया।

दुःख की कोई बात नहीं। एक-एक करके बहुत साथी जा चुके हैं। उन्हें भी इसी तरह जाना पड़ेगा एक न एक दिन। यह तो जानी बात है।

दुःखी हुई अंग्रेज सरकार। हाय हाय, हाथ में आकर भी इस तरह से दो-दो चिड़ियाँ उड़ गईं। खैर, अभी भी एक है। उस पर कड़ी नजर रखनी होगी। देखना होगा, कोई उसके पास फटक न सके। किसी से मिलने नहीं दिया जाएगा। सिर्फ डाक्टर और नर्स।

बड़ी मुश्किलों से मिलने की अनुमति मिली बड़े भाई ज्योतिष गुप्त को। नसू उनका बड़ा प्यारा भाई है। उसका यह हाल—वे कैसे दूर रह सकते हैं?

भाई को देखते ही दिनेश का चेहरा खुशी से खिल उठा।

'माँ कैसी हैं? और भाभी? खूकूदी का क्या हाल है? मेरे लिए चिन्ता करने को मना कर दीजिएगा। मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ।'

सचमुच धीरे-धीरे दिनेश स्वस्थ हो गए। इस मामले में डाक्टर और नर्स की असाधारण भूमिका थी। धैर्य, सहानुभूति, साहचर्य प्रदान कर उन्होंने दिनेश को स्वस्थ किया था।

इसी प्रसंग मे एक विदेशिनी नर्स की बात आज भी स्मरणीय है।

विदेशिनी है तो क्या हुआ, है तो नारी ही। इसीलिये शायद अनजाने में,

शरारती, दुस्साहसी इस लड़के के प्रति उसका हृदय स्नेह और ममता से भर उठा।

न कुछ उम्मीद करना, न कोई दावा। सिर्फ कैदी को दूर से एक नज़र देख लेना। इसके अलावा उसके मन में कोई कामना नहीं थी।

ऐसा देख कर दिनेश ने कौतुक किया एक दिन,—'Sorry Nurse, I am still breathing.'

'May God grant you long life,' इधर-उधर देख कर आगे बढ़ आई और दबी ज़ुबान से बोली—'Why did you take **poison** and shot yourself ?'

हँस कर दिनेश ने उत्तर दिया—'Just to finish myself after the completion of work.'

'Committing suicide is a crime. No. ?'

'It was nothing of a suicide, It was self emolation--a voluntary death—a death of fulfilment, and not a despair.'

एक मिनट के लिए झिझकी, उसके बाद ही व्याकुल होकर बोली—'Do you hate me ? Do you hate all the Britishers ?'

'No, I hate those who want to rule over us, directly or indirectly.'

'Wish you long life. Good night, brave boy.'

इतना कह कर विदेशिनी फुर्ती से हट गई। बाहर किसी के पैरों की आवाज़ आ रही थी। जैसे इधर ही कोई आ रहा है। उसे इस जीवन्त और सुन्दर राजद्रोही से सहानुभूति दिखाने का अधिकार कहाँ है ? वह भी तो शासक सम्प्रदाय में से एक है।

मेडिकल कालेज से अलिपुर जेल का कन्डेम्ड सेल। साधारणतया यहाँ फाँसी की सज़ा पाए कैदियों को रखा जाता है।

अन्त में एक दिन अलिपुर सेशन जज गार्लिक की अध्यक्षता में स्पेशल ट्राइबुनल में मुकद्दमा शुरू हुआ।

इस* मामले में दिनेश बिल्कुल ही उदासीन बने रहे। अपने शुभाकांक्षियों को उन्होंने बार-बार कह दिया—'मैं वह सब जान कर क्या करूँगा ? मैंने जो ठीक समझा —किया। अब उन्हें जो फैसला करना हो, करें।'

दिनेश भले ही उदासीन हों, परन्तु बंगला देश की हजारों सताई गई जनता चिन्तित थी।

फैसले के दिन, कचहरी के बरामदे में उपस्थित जनता बेहद उत्तेजित थी। चंचल थी। सभी स्वाधीनता के वीर विप्लवी दिनेश को एक नज़र देखना चाहते थे। अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित करना चाहते थे। न जाने बेचारे के भाग्य में क्या लिखा है ?

परन्तु दिनेश निर्विकार। कन्डेम्ड सेल के अन्दर एक-सा जीवन बीत रहा था। वहाँ एक ही रंग लेकर भोर का सूर्य आता। स्तब्ध दोपहर और शान्त शाम आती। उसके लिए सभी कुछ आकाररहित, स्वादरहित और वैचित्र्यहीन था।

शान्त नदी में सुभाष तूफान ले आये।

इससे पहले उन्हें नौ महीने की जेल हो चुकी थी। 'अखिल भारतीय लांछित राजनैतिक दिवस' के उपलक्ष में उन्होंने दक्षिण भारत में शोभायात्रा निकाली थी। इस बार आयें कानून भंग करने के अपराध में।

कानून भंग आन्दोलन के कारण दंडित कैदियों से अलिपुर जेल उस समय भर गया था। सुभाष से लेकर हेमचन्द्र घोष, हरिकुमार चक्रवर्ती, विपिन गांगुली, पूर्ण दास, निशी गांगुली, जीवनलाल चट्टोपाध्याय, कोई नहीं बचे थे।

जेल में सुभाष की उपस्थिति के अर्थ ही थे—आँधी। कहना बेकार है कि इस बार भी यही हुआ। देखते ही देखते फिर तूफान उठा। खबर पाते ही जेलर मिस्टर सोयान दौड़े आये। जाति के आइरिश होते हुये भी वे विप्लवी सुभाष पर असीमित श्रद्धा करते थे।

'कहिए, आपके लिये मैं क्या कर सकता हूँ?' पूछा जेलर मिस्टर सोयान ने।

'मैं जेल के भीतर सरस्वती पूजा करूँगा। शीघ्र ही व्यवस्था कीजिये।'

'ठीक है, यही होगा। मैं इन्तजाम करवा दे रहा हूँ।'

'यही कीजिये। और हाँ सुनिये, मैं सबको अपने साथ ले कर माँ को अंजली दूँगा। कोई भी बचेगा नहीं। दिनेश गुहा, रामकृष्ण विश्वास को भी चाहिए।'

सुन कर सिर पर हाथ धर कर मिस्टर सोयान बैठ गये। कह क्या रहे हैं सुभाष? कन्डेम्ड सेल के बाहर कैदियों को आने कैसे दिया जाये?

इससे पहले भी उन्होंने विप्लवी देखे थे, लेकिन ऐसी अद्भुत माँग इससे पहले उन्होंने कभी नहीं सुनी थी। यह तो बिल्कुल ही असम्भव है।

लेकिन माँग है सुभाष बोस की। यह तो कोई मामूली आदमी नहीं हैं। हो सकता है इसी बात पर कोई झंझट खड़ा कर दें। जरूरत क्या है इतने झमेले की? 'मैं तुम पर विश्वास करके सब छोड़ दूँगा। देखना भाई, मेरी नौकरी न चली जाये।'

शुरू हुआ पूजा का आयोजन।

लेकिन यह क्या? हाल देख कर पलक झपकना भूल गये श्वेतांग शासक सम्प्रदाय। अन्त में पूजा मण्डप में जातीय झण्डा फहराया जा रहा था। ब्रिटिश जेल में ऐसी बात की कल्पना तक कोई नहीं कर सकता है। जल्दी रोको उसे।

कौन रोकेगा उसे? कौन जायेगा जानबूझ कर आग के सामने खड़ा होने? आँधी उड़ा न देगी?

इतना ही नहीं। और भी कुछ रहस्य उपस्थित राजनैतिक बंदियों के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी देर में उस पर से पर्दा उठा।

पूजा समाप्त हो गई। अब अंजली देने की बारी थी। सुभाष ने, कन्डेम्ड सेल की तरफ से दोनों को पूजा पंडाल की तरफ ले जाते समय अचानक धक्का देकर दिनेश को एक नम्बर वार्ड में घुसा दिया और सिर्फ रामकृष्ण को ले कर पंडाल की तरफ बढ़ गये।

वहाँ उनके दल के सदस्य सुनील सेनगुप्ता हैं। ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। यही एकान्त है। जो कुछ कहना है अभी कह ले।

बहुत दिनों बाद परिचित सहयोगी को पाकर दिनेश की खुशी का ओर-छोर नहीं रहा।

मुक्ति! मुक्ति! थोड़ी ही देर के लिए सही, कन्डेम्ड सेल के बाहर आकर कभी प्रियजनों से मिल भी सकेंगे, दिनेश ने सपने में भी नहीं सोचा था।

खुशी के मारे सुनील बाबू से लिपट कर दिनेश एक ही बात बार-बार कहने लगे —'हेमदा से कहियेगा मैं अच्छी तरह से हूँ। मेरे जीवन के जीवन्त आदर्श थे विनयदा और बादल। उसे मैं अपने जीवन भर बनाये रखूंगा।'

अन्त में जज गार्लिक ने राय दी। मुकदमें का फैसला क्या होगा उसके बारे में किसी को कोई शक नहीं था, फिर भी उस दिन हर बंगाली, हर पराधीन आदमी ने यही कामना की थी कि दिनेश को कोई भयंकर सजा न दी जाये।

देशवासियों के व्याकुल आवेदन को अनसुनी कर अंग्रेज सरकार ने प्राणदण्ड दिये। अब केवल प्रिवी काउन्सिल से हुकुम आना बाकी था।

इसी के साथ बंगाल में भयंकर तूफान उठा। हम इस आदेश को नहीं मानेंगे। दिनेश हमारा जातीय वीर है। उसके प्रति यह अन्यायपूर्ण आदेश हम नहीं मानेंगे।

विप्लवियों की नायिका विमलप्रतिभा देवी ने तरुण समाज को इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए कहा। पार्कों, सभा समितियों, मन्यूमेन्ट के नीचे खड़े हो कर उन्होंने भाषण दिया—

'बंगाल के युवक, भारत के जवानों, साम्राज्यवादी अंग्रेजों के हाथों इस वीर साधक की मृत्यु-को तुम कापुरुषों की भाँति सहन मत करो। गरज कर कहो, दिनेश का मृत्युदण्ड हम सहन नहीं करेंगे। दिनेश दीर्घजीवी हो यही मेरी कामना है।'

सुन कर बंगाल जाग उठा। लाखों अत्याचार सहन करते लोगों ने आवाज उठाई। —'हम बरदाश्त नहीं करेंगे, दिनेश का मृत्युदण्ड हम नहीं सह सकते हैं।'

खासतौर से जाग उठा दिनेश के हाथों तैयार हुआ मेदिनीपुर। उनकी एक ही बात थी—'हम इसका बदला लेंगे।'

इधर दिनेश निश्चिन्त, बेखबर। सेल के एकान्त कक्ष में उनका अधिकांश समय

कटता गीता और रवीन्द्रनाथ की कविताओं को पढ़ कर। सिर्फ पढ़ते रहते। दो दिन बाद चले जाना है। उससे पहले जो भी ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

कभी-कभी थकने लगते। जान-बूझ कर बाहर देखने लगते। आकाश की ओर। अब कोई काम बाकी नहीं है। केवल प्रतीक्षा। अन्तिम विदा लेने के पहले यह दीर्घ प्रतीक्षा।

पृथ्वी कब किसी के कहने से अपनी धुरी पर घूमती है ? आ गई वह तारीख। ६ जुलाई १६३१।

अलिपुर जेल में उस दिन सुबह से ही तैयारी शुरू हो गई। प्रिवी काउन्सिल ने दिनेश के मृत्युदण्ड को बहाल रखा है। कल तड़के उन्हें फांसी दी जाएगी। ऊपर से आदेश आया है। 'देर नहीं। कल ही।'

तैयारी खत्म हो गई। मैनिला के रस्से में मोम लग गया। बालू से भरा बोरा लटका कर उसका परीक्षण भी हो चुका। अब प्रतीक्षा।

दिनेश वही निर्विकार। उन्होंने मृत्यु को सदा अपना मित्र समझा था, इसलिए इन तैयारियों को वह बचपना समझता था।

शाम होने वाली थी। पश्चिम की ओर आकाश में लाली छा गई थी। दीवाल की जालियों में से रोशनी आकर कन्डेम्ड सेल में फैल गई। उधर देखते-देखते अचानक दिनेश खुश हो उठे। अपनी तन्मयता में वे रवीन्द्रनाथ का एक गीत गाने लगे। जिसका सारमर्म यह था—

'जाने से पहले मुझे रंग कर जाना,
अपने रंग में, गुप्त रंग में,
तरुण हँसी के अरुण रंग में,
अश्रुजल के करुण रंग में,
जाने से पहले मुझे जगा कर जाना।'

देखते-देखते वह रोशनी भी गायब हो गई। वे भी चुप हो गये। परन्तु बहुत देर तक उसी में खोये रहे।

'हे अस्तगामी दिवाकर। तुम्हें मेरा अन्तिम प्रणाम। यहाँ जो जैसा था वैसा ही रहेगा। सभी कुछ अपरिवर्तित नियमों के अनुसार चलता रहेगा। केवल मैं नहीं रहूँगा।

इसका मुझे कोई दुःख नहीं, क्षोभ नहीं। माँगने को भी कुछ नहीं। केवल अपना यह प्रकाश मेरे सारे शरीर पर और फेर दो। जाने से पहले तुमसे मेरी यही अन्तिम प्रार्थना है।'

फिर कुछ क्षण बीते। सहसा कुछ ध्यान आते ही उन्होंने अपने सामने चिट्ठी लिखने का कागज खींच लिया। माँ को चिट्ठी लिखना है। भाभी को, मणीदी, खूकूदी ....सभी को। अब समय ही कितना है।

जेल से दिनेश की लिखी इन चिट्ठियों को आज भी कोई नहीं भूला है। उन दिनों की मासिक पत्रिका 'बेनू' में प्रकाशित इन चिट्ठियों को पढ़ कर बंगाल की विद्वान्-मण्डली विस्मय से स्तब्ध रह गई थी। एक बीस साल के लड़के ने कैसे ऐसी चिट्ठियाँ लिखीं ?

इतना ही नहीं। इन चिट्ठियों को पढ़ते-पढ़ते एक आदमी बहुत रोया था। पत्र पढ़ कर उनके मुंह से केवल इतना ही निकला—'पत्र तो नहीं है, यह तो बहुमुल्य जीवन-दर्शन है।'

कौन थे वे, जानती हो मल्लिका ? वे थे स्वयं सुभाषचन्द्र।

तुम भी इन पत्रों को मन लगा कर सुनो। फिर अपने से प्रश्न पूछो कि एक पराधीन देश के बीस वर्षीय लड़के की चिन्ताधारा कैसी थी और आज के स्वाधीन भारत के लड़कों में इसका रत्ती भर भी क्या असर है ? खैर, कुछ चिट्ठियाँ यहाँ हैं—पढ़ो।

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
२. २. ३१ (रविवार)

प्रिय भाई बेल्टू

कुछ दिनों पहले एक गीत सुना था। आज उसकी पंक्तियाँ बार-बार याद आ रही हैं—

'मेरे दिन समाप्त हुए व्याकुल बादलों
की शाम, गहन बादलों की धारा के बीच,
कोई दूर का आदमी आज पास आया
गहन अंधेरे में खामोश खड़ा है,
उसके हृदय पर विरह वेदना की माला है
गुप्त मिलन के अमृत गन्ध से भरी
लगता है मैं उसके चरणों की ध्वनि
पहचानता हूँ,
हार मानता हूँ उसकी अनजानी सज्जा के
आगे।'

मेरे भी दिन जाड़े के साथ-साथ खत्म हो रहे हैं। मुझे भूल मत जाना भाई। फिर जब जाड़ा आएगा मैं फिर तुम्हारे बीच लौट आऊँगा। जब ठंडी हवा तुम्हें छूयेगी तब समझ लेना, मैं आया हूँ तुम सब को बाँहों में भर लेने, तुम्हारा प्यार लूटने

—'दादा'

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
२१. ३. ३१ (रविवार)

श्रीचरणेषु भाभी,

कल तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज माँ और भइया आए थे। भइया से पता चला, हम लोगों की फाँसी की सजा बहाल है।

भाभी, इस जन्म के लिए मैं तुम लोगों से विदा माँग रहा हूँ। जानता हूँ, विदा देते

तुम सब का दिल टूटेगा, पर क्या करूँगा ? विदा तो लेना ही है।

बहुत सारी बातें याद आ रही हैं। उस दिन जब तुम्हें भाभी के रूप में पाया था—उस दिन से आज तक की सारी बातें मेरी आँखों के आगे नाच रही हैं। तुम्हें दस साल की उम्र से लेकर बीस साल की उम्र तक बहुत कष्ट दिया है मैंने। सारा अत्याचार तुमने हँसते हुए सहन किया था। कभी नाराज नहीं हुई, चिढ़ीं नहीं, मुँह भारी नहीं किया। हमेशा ही बीमार पड़ने पर तुम्हारे हाथ की बार्लो मुझे पसन्द थी। खाना तुम्हारा बनाया मुझे सबसे ज्यादा अच्छा लगता था, यह तो तुम जानती हो। मुझे ही नहीं, तुमने अपने आन्तरिक प्रेम-प्यार से हम सब को जीत लिया था। उस दिन तक मैं सोचा करता था कि मेरे पास कभी अगर बहुत सारा रुपया हुआ तो तुम्हें उपहार-स्वरूप क्या-क्या दूँगा। खैर, भगवान् मुझे जन्म-जन्मान्तर तक तुम जैसी भाभी ही देता रहे, यही प्रार्थना करता हूँ।

तुमने पूछा है, तुम लोगों के मन में शान्ति कैसे आएगी। मैं क्या बता सकता हूँ ? फिर भी मुझे लगता है, हम लोग मृत्यु से बहुत डरते हैं और इसीलिए मृत्यु से पराजित हो जाते हैं। इस डर पर विजय प्राप्त कर सकें तो मृत्यु हमारे लिए तुच्छ हो जाएगी। मृत्यु से न डर कर, निर्भीक और शान्त चित्त से उसका वरण करना चाहिए। मृत्यु से डरे तो हम धर्म की पहली सीढ़ी ही पार न कर सकेंगे। हम तो जानते हैं, मृत्यु हमारी नहीं; हमारे नश्वर शरीर की होती है। आत्मा तो अमर है। वही आत्मा मैं हूँ—और वही आत्मा भगवान् है। मनुष्य को जब यह उपलब्धि होती है तभी वह कहता है—'मैं वही हूँ। मुझे आग नहीं जला सकती है, जल से मैं सड़ता नहीं, वायु मुझे सुखा न सकेगी, मैं अजर-अमर और नष्ट न होने वाला हूँ।'

'गीता में है—'शस्त्र हर चीज़ को बेध नहीं सकता है, आग जला नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता है, हवा सुखा नहीं सकती है। आत्मा अभेद, दाहहीन, अशेष, नित्य और सर्वव्यापी है।'

तुम कहोगी यह सब मैं जानती हूँ। लेकिन मन यह सब मानना नहीं चाहता है। मन शान्त करने का एकमात्र उपाय है भगवान को आत्म-समर्पण कर दो। इसके अलावा कोई उपाय नहीं है। हम कितना ही जप-तप क्यों न करें, कितना ही तिलक-चन्दन माथे पर क्यों न लगायें, पर क्या वास्तव में भगवान् से प्यार करते हैं ? जो उन्हें प्यार करता है, मृत्यु उसके लिए एक खाली आवाज़ के अलावा और कुछ नहीं। उन्हें इसी तरह से चाहा था बंगाल के निमाई ने, प्रेमावतार ईशु क्राइस्ट ने—और हमारे देश के उन सभी लड़कों ने जिन्होंने हँसते हुए मृत्यु का वरण कर लिया था।

मन के आवेग में आकर बहुत सी बातें लिख गया। तुम लोगों के दुःख का कारण हूँ, यह सोच कर मैं कम दुःखी नहीं हूँ। तुम मुझे माफ करना।

मेरे साथी* अब मज़े में हैं। बीमारी ठीक हो गई है। मैं भी ठीक हूँ। प्यार

---

* (साथी थे बगल वाले सेल में बन्द, प्राणदण्डाज्ञा प्राप्त, चट्टगाँव युवा विद्रोह के नेता रामकृष्ण विश्वास)।

और प्रणाम स्वीकार करना।

तुम्हारा
प्यारा देवर

मणीदी,

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
कलकत्ता

वादा करके भी वादा निभा न सका। मैंने कहा था रविवार को आपकी चिट्ठी का जवाब दूँगा, लेकिन दो दिन पिछड़ गया। हालाँकि इसमें मेरा कोई कसूर नहीं।

नया वर्ष शुरू हुआ है। नए के आगे पुराना हार गया है। पुराने पत्तों ने गिर कर नई कोपलों के लिए स्थान त्याग दिया है। प्रकृति का यही नियम है। भगवान् का चिरनवीन सत्य रूप इसी में से प्रकट हो रहा है।

पर हमारे देश में हमारे सभी नियम-कानून उल्टे हैं। यहाँ समाज और राष्ट्र में, बूढ़ों ने अपने को बिल्कुल अचल, अडिग बना रखा है। गद्दी तो छोड़ेंगे ही नहीं, ऊपर से वक्त-बेवक्त आँख दिखायेंगे और फटी आवाज में चिल्ला कर जता देंगे कि, वृद्ध होकर आँख-कान, और आत्म-सम्मान का सिर चबाये बगैर कोई किसी काम के योग्य नहीं बन पाता है। हमारे देश के तरुणों ने भी, साँप की आँखों में धूल पड़ने की तरह, अपनी बल-बुद्धि गँवा दी है। यह बात वे लोग किसी हालत में समझने को तैयार नहीं हैं कि वृद्ध और तरुण की भाँति, वह रास्ता बिल्कुल भिन्न है। या तो तरुण वृद्ध बन जायें या वृद्ध तरुण। यहाँ, इस देश में तरुण ही वृद्ध बनेंगे। प्यार और स्नेह सहित।

—दिनेश

भाभी,

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
१८ जून, १९३१, कलकत्ता,

तुम्हारी लम्बी चिट्ठी मिली। असमय में किसी का जीवन खत्म नहीं होता है। जिसे जो काम करना है, वह खत्म होते ही भगवान् उसे अपने पास खींच लेता है। काम खत्म होने से पहले वह किसी को नहीं बुलाते हैं।

तुम्हें याद होगा, तुम्हारे बाल से मैं गुड़िया नचाया करता था। गुड़िया आकर गाना गाती थी। उस गुड़िया का पार्ट खत्म हो गया। उसे स्टेज पर कभी नहीं बुलाया गया। भगवान् भी हमें लेकर गुड़ियों का नाच करता है। हम लोग पृथ्वी के रंगमंच पर अपना-अपना पार्ट करने आए हैं। पार्ट खत्म होते ही आवश्यकता समाप्त हो जाएगी। वे हमें रंगमंच से हटा ले जायेंगे। इसमें अफसोस करने की क्या बात है?

पृथ्वी के किसी भी धार्मिक विचार को क्यों न मानो, तुम्हें आत्मा की नश्वरता पर विश्वास करना पड़ेगा। अर्थात्—'देह के मरने पर भी हमारा सब कुछ नहीं खत्म हो जाता है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। हम हिन्दू हैं, इस बारे में हिन्दू-धर्म क्या

कहता है, थोड़ा बहुत जानते हैं। मुसलमान धर्म भी कहता है कि मनुष्य जब मरता है उस वक्त खुदा के फरिश्ते उसे रुखसत करने आते हैं। वे मनुष्य की आत्मा को बुला कर कहते हैं—'ऐ रूह, निकल इस कालिब से, चल खुदा की जन्नत में।' अर्थात् तू शरीर छोड़ कर भगवान् के पास चल। इससे फिर यही समझ में आता है कि मनुष्य मर कर खत्म नहीं होता है, इस बात पर मुसलमानों को भी विश्वास है।

ईसाई धर्म कहता है—Very quickly there will be an end of the here, consider what will become of the next world.' अर्थात् दिन तो तुम्हारे खत्म हो आए, परलोक की बात सोचो। इससे स्पष्ट है कि ईसाई-धर्म भी मानता है कि मनुष्य के शरीर की मृत्यु होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती है।

इन तीनों धर्मों में से किसी एक को स्वीकार करने पर मुझे मानना होगा कि मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं अमर हूँ। मुझे मारे यह साहस किसी में नहीं है।

सुना है, हम भारतवासी बड़े धार्मिक विचारों वाले हैं। धर्म के नाम पर हमारे पंडितों की चुटिया खड़ी हो जाती है। तो फिर, हम मरने से इतना क्यों डरते हैं ? मैं पूछता हूँ, धर्म नाम की कोई चीज हमारे देश में है क्या ? जिस देश में दस साल की लड़की को, ५० लाल के बूढ़े से, धर्म के नाम पर शादी करनी पड़ती है उस देश में धर्म है कहाँ ? उस देश के धर्म को आग लगनी चाहिए।

जिस देश में मनुष्य को छूने से मनुष्य का धर्म नष्ट हो जाता है, उस देश में तो गंगा को ले जा कर धर्म को विसर्जित कर आना चाहिए। सबसे बड़ा धर्म है मनुष्य का विवेक। उसी विवेक की उपेक्षा कर धर्म के नाम पर हम अधर्म की दरिया में बहते चले जा रहे हैं। एक तुच्छ गाय के लिए, या फिर ढोलक बजने से हम भाई-भाई लड़ मरते हैं। इसके लिए क्या भगवान् ने वैकुण्ठ का दरवाजा खोल रखा है या कि खुदा जन्नत में हमें जगह देने वाला है ?

जिस देश को मैं इस जन्म के लिए छोड़ रहा हूँ, जिसकी धूल का एक-एक कण मेरे लिए परम पवित्र है, आज बड़े दुःख के साथ मैं उसी के बारे में यह सब कह रहा हूँ।

हम अच्छी तरह से हैं। प्यार और प्रणाम स्वीकार करना।

तुम्हारा प्यारा छोटा देवर

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
३० जून १९३१, कलकत्ता

माँ,

हालाँकि सोच रहा हूँ तुम कल भोर को आओगी फिर भी तुम्हें लिखे बगैर नहीं रह सका।

तुम शायद सोच रही हो कि भगवान् से इतनी प्रार्थना की फिर भी उन्होंने नहीं सुनी। वह अवश्य ही पत्थर का है, किसी के फटते हृदय की आर्तनाद तक नहीं सुन पाता है।

मैं नहीं जानता भगवान् क्या है, उसके स्वरूप की कल्पना करना मेरे लिए संभव नहीं, फिर भी एक बात जानता हूँ, उनकी दुनिया में अन्याय नहीं हो सकता है। उनका न्याय जारी है। उनके फैसले पर अविश्वास मत करना। सन्तुष्टभाव से उनके फैसले को सिर झुका कर ग्रहण करना। वे किससे क्या कराना चाहते हैं, यह हम कैसे समझेंगे ?

मृत्यु को हम इतना बड़ा समझते हैं तभी वह हमें डराती है। यह तो वैसा ही हुआ जैसे किसी बच्चे को जूजू से डराया जाए।

जिस मृत्यु को हम सभी वरण करेंगे वह अगर दो दिन पहले आ गई तो चंचलता कैसी ? कैसा क्षोभ ?

जो खबर दिए बगैर आता, वह खबर दे कर आ रहा है, इसीलिए क्या वह हमारा दुश्मन है ? गलत, गलत—मेरे लिए मृत्यु मित्र है। मेरा प्यार। प्रणाम ग्रहण करना।

तुम्हारा वसु

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
३०-६-३१

खूकूदी,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। मनुष्य तब तक कोई काम नहीं कर सकता जब तक कि खुशी से वह उस काम को करना न चाहे। एक गृहस्थ अपनी गृहस्थी के लिए दिन-रात परिश्रम नहीं करता है ? वह अपनी गृहस्थी से प्यार करता है, इसीलिए। संन्यासी क्यों दुख-दर्द सहता है ? वह सच्चाई से प्रेम करता है इसीलिए सच्चाई को पाने का वह प्रयास करता हैं।

प्यार पृथ्वी में सब से बड़ी चीज़ है।

जो जिसे प्यार करता है वह क्या उसके लिए प्राण त्यागने से झिझकता है ? मनुष्य द्वारा किए गए बड़े-बड़े काम देख कर हम चकित रह जाते हैं। सोचते हैं यह उसने किया कैसे ? लेकिन अगर जड़ तक पहुँचा जाए तो पाएँगे प्यार की प्रेरणा। उसी के रस में रंजित हो मनुष्य हँसते-हँसते आत्म-विसर्जन कर सकता है। कठिन काम भी आसान हो जाता है।

प्यार हिसाब-किताब नहीं समझता है। उसका स्वभाव ही है बेहिसाब उबल पड़ना। अपने को लुटा डालना चाहता है। बदले में एक कण तक पाने की दुर्बुद्धि उसमें नहीं है। इसीलिए वह सुन्दर है, अतुलनीय है। देता ही जाता है, कभी लेता नहीं है।

हमारी सबसे बड़ी कठिनाई क्या है, जानती हो ? हमारे प्यार का रास्ता बड़ा संकीर्ण है, बहुत कम चौड़ा। इसे बढ़ाना होगा। नहीं बढ़ा सकोगी ?

प्यार की साधना करनी होगी। उस साधना का पहला चरण है स्वार्थ-त्याग। हर जगह स्वार्थ आकर चिपक जाता है तभी हम कुछ कर नहीं पाते हैं।

कर सकते हैं, हम सब कर सकते हैं। जिनके पास जाने पर हमें प्यार मिलता

है, वही हमारे हृदय में प्यार देंगे। प्यार और प्रणाम।

—प्यारा नसु।

मणीदी,

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
३. ७. ३१

जिन्हें भगवान् का आशीष मिलता है उनके भाग्य में अनन्त दुःख भी मिलता है। उस दुःख की माला पहनने का सौभाग्य और शक्ति कितनों की होती है, नहीं जानता हूँ, लेकिन जिसे होता है, उसका जीवन सार्थकता से भर उठता है।

भगवान् जिसे असली काम के लिए चुन लेता है, उसकी सुख-सम्पदा सब धूल में मिला देते हैं। उसे रास्ते का भिखारी, रिक्त, कंगाल बना डालते हैं। यह क्या सहज है?

—'ये माला नहीं है, ये तो है तुम्हारी तलवार
आग सी जल उठे और वज्र सी भारी हो।'

इस जीवन में सुख पाना, बड़ी बात हो सकती है, लेकिन दुःख पाना उससे भी बड़ी। सुख का भोग तो सब कर सकते हैं पर स्वेच्छा से दुःख का बोझ कितने लोग उठा सकते हैं?

शक्ति के उत्पन्नदाता वही हैं। जिसे वे अपने काम की जिम्मेदारी देते हैं, उसको भार वहन करने की शक्ति भी वही देते हैं। वरना उसकी हिम्मत कहाँ है कि वह क्षण भर के लिए भी गुरुभार उठा सके?

जिसमें प्राण हैं, जो सत्य के प्रति श्रद्धा रखता है वह कभी महाशंख की ध्वनि सुन कर स्थिर रह सकता है? पृथ्वी में, मिथ्या मोह में, शक्ति कहाँ है कि उसे रोके?

उसके आह्वान में कौन सी शक्ति है नहीं जानता हूँ—

'सिर्फ जानता हूँ—जिसने कानों से सुना है
उसका आह्वान गीत, दौड़ा है वही निर्भीक प्राणों से
संकटों के बीच, विश्व विसर्जन कर
छाती बिछा कर अत्याचार सहे, मृत्यु की गरजना
संगीत समझ कर उसने सुना है।'

आज चलूँ दीदी। शायद यही अन्तिम प्रणाम है।

—तुम्हारा प्रिय दिनेश

१९३१ साल। ६ जुलाई।

अब जो दो चिट्ठियाँ दिनेश ने लिखी थीं, मल्लिका, उसकी बात बताता हूँ।

अलिपुर सेन्ट्रल जेल
५.३० मिनट (सन्ध्याकाल)
६. ७. ३१ कलकत्ता

प्रिय भाई,

तुमने मुझे पत्र लिखने कहा है, लेकिन मौका निकालते-निकालते जीवन की शाम आ गई।

चलते समय तुम्हें और क्या कहूँ ? तुम्हें इतना कह कर आशीर्वाद देता हूँ—तुम निस्वार्थ बनो। दूसरे के दुःख से तुम्हारे हृदय में करुणा की मन्दाकिनी बहे।

मैं आज तुम सबको छोड़ कर चला जा रहा हूँ, इसके लिए दुःखी मत होना। युगों से यह आना-जाना विश्व को सजीव बनाने में मदद करता रहा है। उसके प्राणों का स्पन्दन रुकने नहीं देता है। और कुछ लिखने को नहीं है। मेरा असीमित प्यार और आशीष।

तुम्हारा भाई

अलीपुर सेन्ट्रल जेल
५.३० मिनट
(सन्ध्याकाल)
६.७.३१

माँ,

तुमसे अब भेंट नहीं होगी। लेकिन परलोक में मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। तुम्हारे लिए कभी कुछ नहीं कर सका। वह न कर सकना, मुझे कितना दुःख पहुँचा चुका है, यह कोई नहीं समझेगा, समझाना चाहता भी नहीं हूँ।

मेरे जो भी दोष, जितने भी अपराध हों, दया करके क्षमा कर देना। मेरा प्यार और प्रणाम। —तुम्हारा नसु।

१९३१ साल। ६ जुलाई। धीरे-धीरे रात आगे बढ़ रही है। गहन रात।

एक और दो वार्ड के राजनैतिक बन्दियों के सेलों में कोई नहीं सोया था। सभी जगे हुए थे, हृदय में असहनीय जलन के साथ।

उनका सहकर्मी दिनेश। कवि, कलाकार लेखक, दार्शनिक दिनेश। साम्राज्य-वादियों की प्रतिहिंसा की बलि शुरू होते न होते उनका जीवन दीप बुझने को आ गया। इसी तरह से और कितने चले जाएँगे।

लेकिन इसके मतलब यह नहीं कि हम मुँह बन्द करके अन्याय सहेंगे। इन लोगों को अपने खून से इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। दिनेश की हत्या का बदला हम लेंगे ही।

पूर्व की ओर आकाश में लाली छाने लगी। धीरे-धीरे अंधेरा फीका पड़ने लगा।

दिनेश सो रहे थे। उनके चेहरे पर शान्ति छाई थी। कहीं जरा सी भी मलिनता नहीं।

अचानक कुछ सुन कर दिनेश जग गए।

इधर ही कोई कदम से कदम मिलाता बढ़ता आ रहा है। साफ-साफ आवाज सुनाई पड़ रही है—खट खट खट खट....

देखते ही देखते उनके चेहरे पर रहस्यमयी मुस्कुराहट नाचने लगी। इस समय इस तरह से कौन बढ़ते आ रहे हैं यह बात अनजानी नहीं। लग्न आ गयी है। अब जाना है।

'गुडमार्निंग सार्जेन्ट ।' आगे आए श्वेतांग सार्जेन्ट को शुभेच्छा जताते हुए दिनेश बोले—'वॅन मिनिट प्लीज़ । एक चिट्ठी आई है । उसका उत्तर देकर जाना चाहता हूँ ।'

जल्दी से एक कागज खींच कर दिनेश अपने जीवन की अन्तिम चिट्ठी लिखने बैठ गए—

अलीपुर सेन्ट्रल जेल
७.७.३१ (प्रातःकाल)
कलकत्ता

भाभी,

अभी तुम्हारी चिट्ठी मिली । अपनी जीवन कहानी सुनाने का मौका नहीं मिला । क्या सुनाता तुम्हीं बताओ ? मेरी हर बात तो तुम लोगों के हृदय में लिखी रहेगी । तुच्छ स्याही की यह लकीरें उसे और क्या उज्ज्वल करेंगी ? मेरे हर अपराध क्षमा कर देना । इस जन्म के लिए विदा । प्यार और प्रणाम ।

—तुम्हारा देवर

'यह लीजिए चिट्ठी ।' सार्जेन्ट को चिट्ठी देते हुए दिनेश बोले—'प्लीज़, इसे आप दफ्तर में जमा कर दीजिएगा । चलिए, अब मैं तैयार हूँ ।'

कुछ दूर जाते ही एक जगह पर गोल घेरे में सुरक्षावाहिनी के सैनिक खड़े थे । सामने नहाने की जगह कैदी को नहलाया जायेगा । यही नियम है ।

'नहाना होगा न ?' दिनेश हँसे—'अरे, नई पोशाक भी है ? ढोंग करना बहुत आता है । ठीक है, सार्जेन्ट, आप ज़रा मेरा चश्मा पकड़िए, मैं नहा लेता हूँ । नहीं, नहीं, किसी की मदद नहीं चाहिए । मैं अकेले ही कर लूंगा ।'

मन की मौज में नहाते-नहाते, अनजाने में मुंह से गीता का यह श्लोक निकलने लगा—

'ओं जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्....' आश्चर्य से देखते रहे श्वेतांग सार्जेन्ट । उन्होंने फाँसी के कैदी कुछ कम नहीं देखे थे, लेकिन यह आदमी तो हर तरह से बिरला ही है । जिस कन्डेम्ड सेल का नाम सुनते ही कैदी डर के मारे आधे हो जाते है, वहीं इतने दिनों से रह कर भी यह आदमी इतना निश्चिन्त है ? बल्कि इन कुछ ही महीनों में उसके शरीर का वजन भी पहले से बहुत ज्यादा बढ़ा है । यह तो विश्वास करना भी मुश्किल है । इस उम्र में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की शक्ति इसमें आई कहाँ से ?

'तुम्हें डर नहीं लगता है यंगमैन ?' कोमल अनुभूति थी सार्जेन्ट के चेहरे पर ।

'डर ?' ठहाका मार कर हँसने लगे दिनेश—'कैसा डर ? हमारी गीता में क्या कहा है जानते हैं ? कहा है जैसे मनुष्य पुराने कपड़ों को त्याग कर नए वस्त्र धारण करता है, इसी तरह से आत्मा भी जीर्ण शरीर को त्याग कर नए शरीर में प्रवेश करती है ।—तब डर कैसा ? इस शरीर को छोड़ कर मैं फिर नया शरीर धारण करके आऊँगा । आपसे फिर मुलाकात होगी ।'

'मुझसे मुलाकात होगी ?' सार्जेन्ट आश्चर्य से बोले—'कहाँ मुलाकात होगी ?'

'शायद यहीं। कौन कह सकता है उस दिन भी ऐसा ही अप्रिय कार्य तुम्हें फिर करना पड़ जाए।' कह कर हँसने लगे दिनेश। निश्चिन्त, खुली हँसी।—'खैर, मैं तैयार हूँ।' नहाने के बाद कपड़े पहन कर हँसते हुए बोले दिनेश—'अब चला जा सकता है। मैं तैयार हूँ। लेट अस हैव आवर पार्टिंग किसेज़ सार्जेन्ट।'

धीर बलिष्ठ कदमों से वे फाँसी के तख्त पर जा कर खड़े हो गए। कोई क्षोभ नहीं, कोई शंका नहीं, कोई डर नहीं। कैसा डर ? शहीद गोपीनाथ, प्रमोद चौधरी, अनन्तहरि मित्र के पदस्पर्श से यह फाँसी का मंच उनके लिए तीर्थ-स्थान के बराबर है। तो फिर डर कैसा ?

'कैदी, तुम्हें कुछ कहना है ?'

'प्लीज स्टॉप ! हमारे कहने का अधिकार किसने छीन लिया है यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो। तब फिर क्या फायदा है ऐसी फार्मेलिटी दिखाने की ? डू इयोर ड्यूटी। आई एम रेडी।' यह उत्तर दे कर ही गम्भीर और उच्च स्वरों में अचानक दिनेश बोले—'बन्दे मातरम्।'

मानो एक आँधी का जबरदस्त झोंका जेल के ऊपर से निकल गया। इसी के साथ ही सैकड़ों-हज़ारों पकड़े गए राजनैतिक कैदी बोल उठे—'बन्दे मातरम् ! बन्दे मातरम्। शहीद दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद।'

उनके स्वर में स्वर मिलाया साधारण कैदियों ने—'दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद ! दिनेश गुप्ता जिन्दावाद।'

यही ध्वनि निकली गेट के बाहर खड़े हजारों जनता के मुँह से—'दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद।'

वह आवाज़ फैल गई दूर-दूर तक। हर जगह से आवाज़ आई—'दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद।'

देखते ही देखते कोर्ट कचहरी, आफिस अदालत, ट्राम-बस, स्कूल-कालेज, दुकानें बन्द हो गईं। उनके मुँह में भी यही एक बात—'दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद।'

शाम को मैन्यूमेन्ट के नीचे लाखों लोग एकत्रित हुए। इनका भी यही कहना था, 'दिनेश गुप्ता को हम कभी नहीं भूलेंगे। दिनेश गुप्ता जिन्दाबाद।'

लाखों लोगों की वाणी को रूप दिया 'डेली एडवान्स' अखबार ने। बड़े-बड़े अक्षरों में शीर्षक छपा—'डेन्टलेस दिनेश डाइज़ एट डॉन।'

एक कदम और आगे थी मासिक पत्रिका 'वेनू'। पलक झपकते हजारों की तादाद में उनकी 'दिनेश-संख्या' कपूर की तरह उड़ गई। फलस्वरूप अंग्रेज नाराज़ हुए। 'दिनेश-संख्या' नहीं प्रकाशित होगी। यह गैर कानूनी है। इसे फौरन बन्द करो।

कलकत्ता कॉरपोरेशन ने नया दृष्टान्त स्थापित किया। सरकार की भृकुटि की परवाह न करके एक प्रस्ताव पास किया और दिनेश गुप्ता के प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित की। अखबार में निकला विवरण नीचे दे रहा हूँ—

दिनेश गुप्ता के प्रति श्रद्धाञ्जलि
कॉरपोरेशन की सभा स्थगित

'अपने आदर्शों के लिए जीवन उत्सर्गकारी दिनेशचंद्र गुप्ता की फाँसी होने पर दुःख प्रकट करते हुए, कल बुधवार को—कलकत्ता कॉरपोरेशन ने एक प्रस्ताव पास किया और उनकी स्मृति के प्रति श्रद्धा प्रदर्शनार्थ कॉरपोरेशन की सभा अगले शुक्रवार तक स्थगित कर दी है।'

प्रस्ताव के बारे में 'मेयर डाक्टर विधान राय ने कहा है—'हाईकोर्ट के जज मिस्टर बैकलैण्ड ने फैसला देते हुए कहा है कि उनके जैसे इस युवक ने आत्मत्याग और प्रतिहिंसा के लिए यह काम नहीं किया है। असल में जज बैकलैण्ड ने इतिहास के लिए राय दी है। इतिहास में हमने अनेकों ऐसी कहानियाँ पढ़ी हैं, जो कभी ऐसे कार्यों के लिए दण्डित होने पर भी, आगे चल कर अपने आत्मोत्सर्ग के लिए वीर के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इसीलिए इस युवक ने अपने आदर्शों का अनुसरण करते हुए अविचल साहस का परिचय दिया है। आइए, हम सब उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करें।'

सभी ने खड़े होकर प्रस्ताव पारित किया।—'This Corporation records its sense of grief at the execution of Dinesh Chandra Gupta who sacrificed his life in the pursuit of his ideal.'

[The Corporation of Calcutta, 8th, July 1931]

'आनन्दबाजार पत्रिका' में एक मार्मिक रचना सम्पादकीय में प्रकाशित हुई—

'बीस साल के युवक दिनेश ने फाँसी के फंदे से लटक कर जान दे दी। जिस तरह से कौतूहलवश एक छोटा बच्चा खिलौना पाने के लिए लालायित होता है उसी तरह से, असीम रहस्यमयी मृत्यु का सामना करने की इच्छा उसमें जाग उठी थी।

माता-पिता, स्नेहमयी भ्रातृवधु, सभी को वह यह कह कर ढाढस बँधाता रहा कि मृत्यु भयंकर नहीं है, वह हार है। उसी मरणमाला को गले में पहन कर वह हँसता हुआ चला गया।....

बहुतों ने सोचा था कि कम से कम प्राण दान करके सरकार जनता के प्रति थोड़ी सी श्रद्धा प्रकट करेगी। हाईकोर्ट के विचारपति बैकलैण्ड के वक्तव्य से यह आशा दृढ़ हुई थी।

लेकिन चरम दण्ड में परिवर्तन करने पर सरकार राजी न हुई। माता की आँसुओं से भीगी अर्जी व्यर्थ हो गई।

दिनेश न बच सका....उसे मृत्यु के मुख से न बचाया जा सका।....'

अब मेदिनीपुर का नम्बर है। उनके मुँह में एक ही बात थी, हम बदला लेंगे। बारामदा युद्ध के वीर सेनानी दिनेश गुप्त की मृत्युदण्ड का हम भयंकर बदला लेंगे।

मल्लिका। सचमुच बदला लिया था उन्होंने। शासकों के खून से मेदिनीपुर की जमीन रंग दी थी। लेकिन वे दिनेश की फांसी होने तक इन्तजारी नहीं कर सके थे। उससे पहले ही वे आंधी की तरह कूद पड़े थे।

पहला टारगेट—पेडी। ब्रिटिश गर्व का प्रतीक कुख्यात जिलाधीश जेम्स पेडी। उस दिन इस पेडी ने क्या नहीं किया था?

कानून भंग आन्दोलन में पकड़े गए पुरुषों को बेतों से मारते-मारते अधमरा कर डालना, महिलाओं को नग्न कर उन पर थूकना, जब-तब जेल में घुस कर कैदियों को बेहद मारना, उन पर लाठी चार्ज करना—क्या चीज बाकी रखी थी।

उस दिन के पैशाचिक अत्याचार की कहानी सुन कर तुम घृणा से सिहर उठोगी। मैं जानता हूँ इस बात को तुम विश्वास करना नहीं चाहोगी क्योंकि तुमने इतिहास में पढ़ा है, अंग्रेज वीर होते हैं। उस पर वे नारी जाति का बड़ा सम्मान करते हैं। यह भी पढ़ा था तुमने कि विप्लवी वीर बाघा जतीन के प्रति टोपी उतार कर स्वयं पुलिस कमिश्नर चार्ल्स ट्रेगार्ट ने श्रद्धा प्रदर्शित की थी।

लेकिन मल्लिका, यह सब दिखावा था। अंग्रेज और कुछ जाने या न जाने पब्लिसिटी करने का ढोंग भली भांति जानता है। इसीलिए क्षुब्ध देशवासियों की वाह-वाही लूटने के लिए यह सब करना जरूरी था उस दिन।

वरना जिस चार्ल्स ट्रेगार्ट ने उस दिन टोपी उतार कर मृत बाघा जतीन के प्रति श्रद्धा प्रकट की थी, उसी ने चट्टगांव के वीर विप्लवियों को आश्रय देने के अपराध में श्रद्धेया सुहासिनी गांगुली को चांटे मार-मार कर घायल कर दिया था। इस सच्चाई को अस्वीकार करोगी?

और भी उदाहरण हैं। बंगाल की पहली स्टेट प्रिजनर ननीबाला देवी। इसी सभ्यता के प्रतीक अंग्रेज सरकार की पुलिस ने, इसी निष्ठावती विधवा महिला को नग्न करके उनके शरीर के भीतरी भागों में कुटा हुआ मिर्चा भर दिया था।

अपराध? भयंकर अपराध किया था उन्होंने? अचानक विप्लवी रामचन्द्र मजुमदार गिरफ्तार हो गए। परन्तु उनका रिवाल्वर? कहां छिपा गए हैं वे अपना रिवाल्वर? अभी चाहिए।

ननीबाला देवी ने बहुत बड़ा काम कर डाला। रामबाबू की पत्नी बन कर उन्होंने रामबाबू से जाकर जेल में भेंट की। मौका पाते ही सब कुछ पता कर वही रिवाल्वर उन्होंने उनके साथियों को सौंप दिया।

अन्त में एक दिन ननीबाला पकड़ी गई। उसके बाद ही यह अत्याचार शुरू हुआ।

अब तुम ही बताओ, संसार भर में ऐसी पाशविकता का कहीं, कोई उदाहरण पाया गया है? जिस दक्षिणी अफ्रीका, पुर्तगाली या रोडेशिया की सरकार के कार्यों को तुम घृणित समझती हो, उन्होंने क्या कभी ऐसा अत्याचार किया है?

लेकिन अंग्रेजों ने यही किया। वीरों की औलाद हैं न?

खैर, पेडी की बात सुनो। अत्याचार, उत्पीड़न, आघात, अपमान द्वारा उसने जेल को श्मशान में बदल डाला। उसके बाद भी उसने कहना शुरू किया—'ऐसी शिक्षा दूँगा मेदिनीपुर को, कि कभी नहीं भूलेगा।'

—'अच्छा ?' सुन कर गरजे दिनेश के अपने हाथों से बनाए गये मेदिनीपुर के बी० वी० शाखा के विप्लवी वीर तरुण दल।—'हमें शिक्षा दोगे ? देखना है कौन किसे शिक्षा देता है ! स्वीकार करते हैं यह चैलेन्ज। सारे देश को देखने दो कि हम, मेदिनीपुर के लड़के, अपने दिनेशदा के प्रति चरमदण्डादेश का बदला ले सकते हैं या नहीं। देख लें कि हम गुरुदक्षिणा देना जानते हैं या नहीं।

'हमारा हिसाब तो सीधा-साधा है। लाइफ फॉर लाइफ। ब्लड फॉर ब्लड।'

लाइफ फॉर लाइफ का प्रमाण मिला ७ अप्रैल १९३१ को। दिनेश की फाँसी के तीन महीने पहले।

उस दिन पेडी आए थे मेदिनीपुर के जिला विद्यालय की एक शिक्षा प्रदर्शनी में।

शाम हो गई थी। एक के बाद एक चित्र देखते चल रहे थे पेडी लालटेन की मद्धिम रौशनी में। उनके साथ और भी दो अंग्रेज अफसर थे।

अचानक गोली की आवाज—धाँय धाँय, धाँय धाँय धाँय, धाँय। एक के बाद एक—छह बार।

शुरू हो गया हो-हल्ला, चिल्लाना-चीखना। आश्चर्य की बात है, इतने सशस्त्र पहरेदार, इतने आदमी, उनके रहते यह दुर्घटना। पकड़ो, जल्दी पकड़ो उन्हें।

किसे पकड़ेंगे ? कहाँ हैं वे ? कोई नहीं था। काम खत्म करके कब मेदिनीपुर के दो वीर तरुण बिमल दास गुप्ता और ज्योतिजीवन घोष, गायब हो गये, कोई न जान सका।

दूसरे दिन अखबारों में सुर्खियों के साथ यह खबर छपी—

मेदिनीपुर के जिला मजिस्ट्रेट पर गोली चली
स्कूल भवन में मिस्टर पेडी आहत

मेदिनीपुर, ७ अप्रैल। मेदिनीपुर के जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर जेम्स पेडी, सी० आई० ई० पर आज मेदिनीपुर स्कूल भवन में, छह बार गोलियाँ चलाई गईं।

मिस्टर पेडी शिकार से आज शाम को शहर लौटे थे। वे शाम के सात बजे शिक्षा-प्रदर्शनी देखने स्कूल भवन में पधारे। इसी समय प्रदर्शनी कक्ष में उन पर गोली बरसाई गई।

तीन गोलियाँ उनकी पीठ में लगी हैं, दो उनकी बाँहों में। एक गोली उनके पेट के निचले हिस्से में।' [आनन्दबाजार, ८ अप्रैल १९३१]

मेदिनीपुर जिला मेजिस्ट्रेट की मृत्यु

'मेदिनीपुर, ८ अप्रैल ! जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर जेम्स पेडी की आज दोपहर

के बाद, ५ बज कर १० मिनट पर मृत्यु हो गई। कल शाम को वे गोली की चोट से जख्मी हुए थे।

आज दोपहर के बाद उनका दोबारा ऑपरेशन हुआ था तथा और दो गोलियाँ निकाली गई थीं लेकिन बाद में उनकी हालत अत्यन्त संकटजनक हो गई और मृत्यु के हाथों से वे बच न सके।

इस सम्बन्ध में कुछ घरों की तलाशी ली गई है और कुछ लोगों को गिरफ्तार भी किया गया है।' [आनन्दबाजार, ८ अप्रैल, १९३१]

ज्योतिजीवन और बिमल दास गुप्ता, तब तक पकड़ के बाहर थे। लेकिन ज्यादा दिन नहीं। खोजबीन के फलस्वरूप बिमल का नाम पुलिस को मालूम हो गया।

ऐसा हुआ कैसे ? अखबार में निकला विवरण—

बिमल दास ने साहब को मारा है

'पेडी साहब के हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में गुप्तचर विभाग ने एक महत्त्वपूर्ण खबर प्राप्त की है।

कालेज स्कूल के निकट के एक घर की नौकरानी का कम उम्र का लड़का—उसने स्थानीय लोगों को बताया है कि बिमल दास साहब को मार कर भाग गए हैं।

इस लड़के का पता करके तलाशी लेने पर उसके पास से कुछ भी बरामद नहीं हुआ है।

बिमल दास गुप्ता के पिता का नाम अक्षय कुमार दासगुप्ता है। वे बरिशाल के रहने वाले हैं। वे पिछले ३० वर्षों से वहाँ वैद्य हैं। वैद्य अक्षय कुमार दासगुप्ता के पुत्र हैं बिमल उर्फ मक्खन।'

पकड़ो अब बिमल दासगुप्ता को। जैसे भी सम्भव हो, उसका सिर ले आओ।

लेकिन बिमल ? शहर के सुपरिचित रघु ग्वाले के साथ, उसका लड़का बन कर तब तक वे मटियाबुर्ज के राजेन गुहा के घर पहुँच चुके थे, जहाँ विनय बोस ने अपने जीवन की कुछ खुशियों की घड़ियाँ बिताई थीं।

माँ का प्यार, पिता का स्नेह भले ही और किसी के भाग्य में लिखा हो, विप्लवियों के भाग्य में तो लिखा नहीं होता है। खास तौर से जिनकी इन्तजारी फाँसी का फंदा कर रहा हो।

आश्चर्य की बात थी कि हर बार हृदय की धनी सरयू देवी और राजेन बाबू बच जाते थे। अग्नियुग के न जाने कितने घर से भागे विप्लवियों ने उनकी छत्रछाया में आश्रय लिया था, उसकी गिनती नहीं हो सकती है।

खैर, मैं जो बता रहा था। बिमलदास गुप्ता का नाम जरा ठीक से याद रखना मल्लिका, क्योंकि आगे चल कर इस नाम को लेकर कई मजेदार घटनाएँ घटित हुईं।

पहले लोमैन, फिर सिम्पसन और अन्त में पेडी। यहीं अन्त हुआ क्या ?

कत्तई नहीं। सर्वनाशी खेल तो अब शुरू हुआ है। इसका अन्त तो देखना ही पड़ेगा।

पर कब किसका नम्बर लगाया जाए ?

किसे पकड़ा जाए ?

प्रेसीडेन्सी जेल के अन्दर से आदेश आया—गार्लिक को पकड़ो। उसी ने दिनेश को फांसी की सज़ा दी थी। इससे पहले उसने ऐसा ही आदेश दिया था, चट्टगांव के युवा विद्रोही कर्मी रामकृष्ण विश्वास के लिए। इसीलिए उसे मत छोड़ना। किसी भी तरह से वह बचने न पाए।

बच न सका। २७ जुलाई, १६३१। दिनेश गुप्ता की फांसी के ठीक बीस दिन बाद।

अलीपुर डिस्ट्रिक्ट एंड सेशन जज मिस्टर आर० आर० गार्लिक आई० सी० एस० की अदालत।

चारो ओर सशस्त्र पहरेदार। पहरेदार पहले भी थे, लेकिन इन दिनों और बढ़ा दिये गए थे। क्योंकि हाल ही में गार्लिक को कई एक धमकी भरी चिट्ठियाँ मिली थीं, विप्लवियों की ओर से। उनमें स्पष्ट रूप से बता दिया गया था कि तुम्हारी मृत्यु निकट है। इसीलिये यह अतिरिक्त सतर्कता बरती गई थी।

अदालत का काम चल रहा था। जज गार्लिक अपनी कुर्सी पर बैठे थे। खूब ध्यान से कोई मुकद्दमा सुन रहे थे।

अचानक मानो सिर पर आसमान टूट पड़ा। इसी के साथ उनका सिर सामने की मेज़ पर जा टिका।

पहरेदार कूद पड़े। झपट पड़े सार्जेन्ट, कान्स्टेबिल और गुप्तचर विभाग के एक दारोगा। दोनों तरफ से गोलियाँ बरसने लगीं। कोई किसी को छोड़ेगा नहीं।

पूरी अदालत में तहलका मच गया। चारो ओर दौड़-धूप, उछल-कूद और चिल्ल-पों। इस भयंकर उथल-पुथल में यह समझना मुश्किल हो गया कि कौन शत्रु है, कौन मित्र। उसी में एक सशस्त्र पहरेदार जमीन पर लोटता नज़र आया।

संख्या की अधिकता के कारण धीरे-धीरे मुक्ति सैनिक घिरने लग गये। तब गोली मारना छोड़, मारना और उठा कर पटकना शुरू किया। चारो तरफ पुलिस का घेरा। किसी हालत में उन्हें भेद कर निकलना सम्भव नहीं था। इधर आत्मसमर्पण का भी कोई प्रश्न नहीं उठता था। अन्त में मुंह में भर लिया साइनायड की पुड़िया। उसके बाद धीरे-धीरे लुढ़क गये पृथ्वी पर।

मरने के बाद उनकी जेब से क्या मिला था, जानती हो ? एक छोटी सी चिट्ठी। जिसमें लिखा था—'ध्वंस हो जाओ। अन्यायपूर्वक दिनेश गुप्ता को फांसी पर लटकाने का बदला लो। इति...'

किसका नाम लिखा था बता सकती हो मल्लिका ?

बिमल दास गुप्ता ! पेडी का हत्याकारी, वही बिमल दास गुप्ता। समझ गईं न,

मैंने क्यों तुमसे कहा था कि इस नाम को याद रखना ? लेकिन क्या वे वास्तव में बिमल दास गुप्ता थे ?

नहीं ! बिल्कुल नहीं ! मृतदेह देख कर उनके पिता, माँ, बड़े भाई ने एक स्वर में इन्कार कर दिया। इनका परिचय वे नहीं जानते। ये बिमल नहीं हैं।

अब पुलिस परेशान ? अब ? तो फिर ये कौन हैं ? इनका क्या परिचय हो सकता है ?

अन्त में चार महीने तक लगातार विभिन्न अखबारों में विज्ञापन निकाला गया।

'A reward is hereby declared, worth Rupees five hundred to be given to one who can identify the murderer of Mr. Garlik.'

सब कुछ व्यर्थ। हजारों कोशिशों के बावजूद मृतदेह की शिनाख्त न हो सकी। रहस्य बना ही रह गया।

तो फिर ये थे कौन ?

क्यों इन्होंने अपना नाम-पता गुप्त रख कर आत्मोत्सर्ग कर दिया ?

नाम था कानाई भट्टाचार्य। विप्लवी नेता सातकौड़ी बन्दोपाध्याय के हाथों तैयार मृत्युञ्जयी शहीद कानाई भट्टाचार्य। सातकौड़ी बाबू ने ही उन्हें जेल के भीतर से इस काम के लिए आदेश दिया था।

लेकिन कानाई भट्टाचार्य की जेब से बिमल दास गुप्ता का नामांकित पत्र क्यों मिला ?

इसका कारण क्या था ?

इसकी जरूरत क्या थी ?

ज़रूरत थी। इसका एकमात्र कारण था बिमल दास गुप्ता को पुलिस की नज़रों से बचाना।

बिमल दास गुप्ता फरार थे। पुलिस पागलों की तरह उन्हें ढूँढ़ रही थी। अब उन्हें पता चलेगा कि बिमल दास गुप्ता जीवित नहीं हैं। अब उन्हें ढूँढ़ना बेकार है।

लोमैन, सिम्पसन और पेडी पहले ही जा चुके थे। अब चले गये गार्लिक। यह सब देख कर ब्रिटिश सिंह कहीं खामोश बैठा रह सकता है ?

नहीं। वह और भी खूंखार हो उठा। खासतौर से गार्लिक की हत्या के बाद उनका आक्रोश मेदिनीपुर पर सहस्रधारा की तरह फूट पड़ा।

मेदिनीपुर जिले के खड़गपुर से लगभग दो मील दूर था हिजली जेलखाना। करीब दो सौ राजनैतिक कैदी वहाँ बिना मुकदमें के बन्द थे।

उस दिन १६ सितम्बर का दिन था।

रात को करीब साढ़े आठ बजे थे। कुछ कैदी खाना खा रहे थे, कुछ बातचीत कर रहे थे और कोई-कोई इस बीच लेट भी चुके थे।

ठीक उसी वक्त अंग्रेज अफसर ने हिंसक पहरेदारों को उन पर हमला करने का हुक्म दिया। यही मौका है। ये तैयार नहीं हैं। इसी समय जो करना है कर लो।

शुरू हुआ नारकीय हत्याकाण्ड। एकतरफा निर्मम आक्रमण। दाएँ-बाएँ जिधर भी चाहे गोली मारो। किसी को मत छोड़ना। उस दिन गार्लिक के मरने की खबर सुन कर इन्होंने खुशियां मनाई थीं। आज उसका बदला ले लो।

सचमुच ही बदला ले लिया उन्होंने। गोली लगने से मारे गये तारकेश्वर सेनगुप्ता और मां-बाप के एकलौते प्यारे बेटे, सुभाष के सहपाठी मित्र—सन्तोष मित्र। और आहत हुए सौ से भी अधिक लोग।

यह सुन कर सारा संसार स्तब्ध रह गया। किस सभ्य गवर्नमेन्ट ने, जेलखाने के अन्दर, बिना किसी फैसले के निरीह, निरस्त्र कैदियों पर इस तरह से हमला किया है ?

अंग्रेज सरकार की बात ही और है। अपनी साम्राज्य लिप्सा को बनाये रखने के लिए उस दिन उनके लिए कुछ भी करना असम्भव न था।

चारों ओर से लोग धिक्कारने लगे।—'धिक्कार है तुम लोगों को। तुम लोग मनुष्य नहीं, पशु से भी ज्यादा गिरे हुए हो। मनुष्य कभी भी निरस्त्र कैदियों पर हमला नहीं करता है।'

मल्लिका, इन्हीं अंग्रेजों के प्रचार की महिमा थी कि हमने विश्वयुद्ध के दौरान हिटलर द्वारा किये गये अत्याचारों के अनेकों किस्से सुने थे। यहाँ तक कि कैदियों की हत्या के किस्से भी सुने हैं।

लेकिन क्या अंग्रेजों ने ही यह रास्ता नहीं दिखाया था ?

खबर सुनते ही सुभाष, अध्यापक नृपेन बनर्जी, यतीन्द्र मोहन सेनगुप्ता जैसे नेतागण दौड़े हुए हिजली पहुँचे। दूसरे दिन शहीदों की मृतदेह लेकर वापस लौट आये। हावड़ा स्टेशन से चल कर केवड़ातला श्मशान घाट तक पहुँचने का दृश्य इतना मार्मिक था कि क्या कहूँ ? ऐसा हृदय को छूता, अनुशासित और संगठित जुलूस इससे पहले कलकत्तावासियों ने नहीं देखा था।

बंगाल का नेतृत्व करने के मसले को ले कर सुभाष और सेनगुप्ता के समर्थकों में कम संघर्ष नहीं छिड़ा था। सब कुछ भूल कर, बी० पी० सी० सी० के पद से त्यागपत्र दे कर, सुभाष ने उसी रात देशवासियों से निवेदन किया—

'मैं खड़गपुर से अवर्णनीय वेदना लेकर वापस आया हूँ। हमारे दोस्तों को जेल के भीतर कुत्ते-बिल्ली की तरह गोली मार कर भूनेंगे और हम यहाँ अभी भी वाद-विवाद में उलझे रहें ? सारे भेद-भाव भूल कर आज हमें एक-दूसरे के साथ मिल कर, शत्रु के विरुद्ध एकताबद्ध होकर खड़ा होना होगा।'

दूसरे दिन १९ सितम्बर को मोन्यूमेन्ट के नीचे कल्पनातीत दृश्य देखने में आया। एक ही सभामंच पर हाथ में हाथ डाले, बगल-बगल खड़े थे यतीन्द्र मोहन और सुभाष। सभी रास्ते स्वाधीनता के रास्ते हैं। सभी का एक ही लक्ष्य है, इसलिए कोई विरोध नहीं।

उसके बाद सभा बुलाई गई। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद उस विशाल सभा में खड़े हो कर इस नारकीय हत्याकाण्ड के विरुद्ध तीव्र स्वरों में अपनी आवाज़ उठाई।

किसने ? विश्ववन्दनीय कवि रवीन्द्रनाथ थे वे। उस दिन स्पष्ट स्वरों में उन्होंने सभा में कहा था—'इतनी बड़ी जनसभा में भाग लेना मेरे शरीर के लिए अहितकर है, मन के लिए और भी नुकसानदायक। लेकिन बुलाये जाने पर, आये बिना न रह सका। बुलाया मुझे उन पीड़ितों ने, जिनके कण्ठस्वरों को रक्षक नामधारी नरभक्षियों ने निष्ठुरतापूर्वक सदा-सदा के लिए खामोश कर दिया है।

जब देखा जाये, जनमत की अवज्ञापूर्वक अवहेलना करके इतनी आसानी से विभीषिका का विस्तार करना संभव है, तब यह समझ लेना होगा कि ब्रिटिश शासन का चरित्र विकृत हो गया है और अब आगे से हमारे भाग्य में दुर्दमनीय अत्याचार का सिलसिला बढ़ता ही जायेगा।

....इस सभा में मेरे आने का और कोई कारण नहीं है। मैं अपने देशवासियों की तरफ से इन शासकों को यह कह कर सचेत करना चाहता हूँ कि विदेशी राजा कितना ही पराक्रमी क्यों न हो, आत्म-सम्मान गँवा देना उनके लिए सबसे बड़ी कमजोरी होगी। इस आत्म-सम्मान की भीत है न्यायपरायणता में। क्षुब्ध होने का कितना ही कारण क्यों न हो उसे सत्यनिष्ठ होना चाहिये।

प्रजा को उत्पीड़ित करना शासक के लिए कठिन काम न होगा, परन्तु जब वही प्रजा कानूनी ढंग से, अधिकारों के बल से राजा के बारे में सोचती है तब उसे कौन सी शक्ति रोक सकती है?

यह भूलना ठीक नहीं होगा कि प्रजा जब अनुकूल रांय देगी और दिल से समर्थन करेगी तभी विदेशी शासन स्थायी हो सकता है।

....मैं आज उत्तेजनावश हृदयावेगों को वाक्यों में पिरो-पिरो कर, व्यर्थ का आडम्बर दिखाना नहीं चाहता हूँ। मेरा, इस सभा के अन्य वक्ताओं से अनुरोध है कि वे इस बात को याद रखें कि यह घटना स्वयं ही अपनी कलंकित कहानी का झण्डा इतनी ऊँचाई पर फहरा रही है कि उतनी ऊँचाई तक हमारी धिक्कार वाणी नहीं पहुँच सकेगी।'

धिक्कारा था वीरेन्द्र शसमल ने भी। उस मेदिनीपुर के गौरव, उस सिंह ने उस दिन वज्रकण्ठ से प्रश्न उठाया था—

'....what would have happened to His Excellency Sir Stanly Jackson, if he were the premier of England and such an occurrence had taken place in a British jail and he was coolly moving about Downing Street or Westminister ? I believe he would have **been** torn to pieces by the English mob.'

[मैं पूछता हूँ, आज अगर गवर्नर **स्टेनली** जैकसन इंगलैंड के **प्रधानमंत्री** होते और वहाँ के किसी जेल में ऐसी कोई घटना **घटित** हो जाती, तो क्या **वे निश्चिन्त** होकर डाउनिंग स्ट्रीट या वेस्ट मिनिस्टर के आस-पास दिखाई पड़ते ? मेरा विश्वास है, इंगलैंड की जनता उन्हें वहीं टुकड़े-टुकड़े कर डालती। [History of Midnapore, cht II-P. 181]

सुभाष ने देशव्यापी आन्दोलन की रचना ही कर डाली। उन्होंने कहा :

....So, on this day only cry that rings out of the heart is, let on the blood of the martyrs be built up the edifice of Freedom....'

यथासमय हिजली मामले की छानबीन के लिए कमिटी की बैठक शुरू हुई। कमिटी के चेयरमैन बनाये गये जस्टिस ए० सी० मल्लिक।

शहीद तारकेश्वर का आदि निवास स्थान था बरिशाल जिले के गोइला में। निश्चित तिथि पर सुभाष वहाँ गये। उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने। अखबार में निकला विवरण इस प्रकार था—'गोइला, २४ अक्टूबर। आत्मत्यागी तारकेश्वर के चिता की भस्म लाये जाने के उपलक्ष में आयोजित उत्सव में, तारकेश्वर द्वारा निर्मित गोइला सेवाश्रम में २४ अक्टूबर की शाम को विशाल जन समागम हुआ। श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस दल-बल सहित साढ़े चार बजे शाम को आकर उपस्थित हो गये। उत्सव शुरू हुआ श्रीयुक्त रजनी चट्टोपाध्याय की प्रार्थना से। सभी ने खड़े होकर उस प्रार्थना में भाग लिया।

श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र ने भाषण देते हुए कहा—'हम जानते हैं, आत्मत्याग के रक्त के बदले में ही स्वाधीनता क्रय करना संभव होता है। हर युग से, हर समय ही, हमने यह अभिज्ञता अर्जित की है। हमारे लिए भी उस नियम की अवज्ञा करना संभव नहीं।

हिजली की गोली-वर्षा के इस सत्य ने ही मेरे दिल को ढाढ़स बँधाया है। हिजली या चट्टगाँव की घटनाओं को बंगाल कभी भी चुपचाप सहन नहीं करेगा। एक स्वर में इसके प्रतिकार के लिए आवाज उठाएँगे।'

[आनन्दबाजार : २८-१०-३१]

हिजली गोली वर्षा का कोई कारण न था
सरकारी जाँच कमिटी की रिपोर्ट

'हिजली गोलीकाण्ड के मामले की जाँच करने के लिए सरकार की ओर से जस्टिस मि० एस० सी० मल्लिक (चेयरमैन) और मि० जे० जे० ड्रमन्ड की जो कमिटी बनी थी उसने आज अपनी रिपोर्ट दी है।

....हमारे मतानुसार सिपाहियों ने जिस कैदखाने पर बेफिक्री से गोली चला कर (२९ बार गोली चली थी) दो राजबन्दियों को निहत और बाकी लोगों को जख्मी किया था, उसका कोई संगत कारण नहीं था। कैदियों के रहने की जगह में घुस कर कुछ सिपाहियों ने कुछ राजबन्दियों को हर तरह से जख्मी किया था, उसका कोई उचित कारण नहीं था।'

[आनन्दबाजार : ३०-१०-३१]

सरकारी अखबारों में लेकिन कुछ और ही निकला। न! गोली चला कर सिपाहियों ने कोई गलत काम नहीं किया था। उन्होंने अपना कर्त्तव्य किया था, इसमें गलती क्या की थी?

इस बार फिर रवीन्द्रनाथ ने विरोध किया। अत्यन्त क्षुब्ध होकर दार्जिलिंग से २ नवम्बर को उन्होंने विज्ञप्ति निकाली—

'हिजली बन्दीशाला के बन्दियों के वार्डरों के प्रति ईसाई मनोभाव द्वारा बराबर सहानुभूति प्रकाशित की जा रही है। हाल ही में एक एंग्लोइण्डियन समाचार-पत्र में मैंने यह देखा है। ये वही वार्डर हैं जिन्होंने अपने रक्षाधीन बन्दियों की हत्या की थी। इस अपराध के अनुष्ठाताओं के प्रति यह कह कर अनुकम्पा प्रदर्शित की जा रही है कि उन पर कठिन कर्त्तव्य भार था।

ऐसे पदगर्वित व्यक्ति सुख और चैन से बैरेकों में रह कर स्वाधीनता और आत्म-मर्यादा का आनन्द उठाते हैं। इन्हीं लोगों ने दलबद्ध होकर, अत्यन्त बर्बरों की प्रथानुसार, जेल में बन्द और अनिश्चित नियति के शिकार, असहाय कैदियों को, रात के अँधेरे में मारा था। उनके इस कार्य के लिए, पैराग्राफ पर पैराग्राफ भर कर सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हें सान्त्वना दी जा रही है।

लोभ, यंत्रणा और क्रोध की अदम्य ताड़ना जब ऐसी चरम अवस्था पर पहुँचती है तब सामाजिक उत्तरदायित्व या परिणाम की समझ आदमी खो बैठता है। अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता है। इसी तरह के किसी क्षोभ से ही ज्यादातर अपराधों का जन्म होता है। इस तरह के अपराध यद्यपि इन्द्रियों के उत्तेजित होने पर और मानसिक तनाव की दशा में सम्पन्न होते हैं फिर भी कानून उन्हें माफ नहीं करता। और इसीलिए डर और आत्म-संयम अपराधजनित प्रवृत्तियों को बढ़ने से रोकता है।

लेकिन कर्मचारियों द्वारा किए गये खून के लिए दया का भण्डार यत्नपूर्वक पूरा भर कर रखा जाता है और जो लोग मन ही मन सजा से बचने की आशा रखते हैं, जो लोग कानून में अनुशासन और क्रमबद्धता बनाए रखने के जिम्मेदार होने पर कानून हाथों में पाने की खुशी में उसी को भंग करते हैं, उनके लिए यदि न्यायिक विचार की एक विशेष धारा को सफलतापूर्वक समर्थन मिल जाए तो उसके द्वारा सभी सभ्य देशों में प्रचलित कानूनों में घोषित न्यायपरायणता की नीति का अपमान करना होगा। इस बात की प्रतिक्रिया जन साधारण के हृदय पर ऐसी होगी जैसी कि एक राजद्रोही तक नहीं कर सकता है।' [आनन्दबाजार : ४-११-१३]

हिजली घटना के जिम्मेदार स्वयं राजबन्दिगण

'पिछले दिन, ५ दिसम्बर को, कलकत्ता गजेट की एक अतिरिक्त संख्या में निम्न-लिखित सरकारी विज्ञापन-प्रकाशित हुआ है।

पिछले १६ सितम्बर १९३१ को हिजली कैदघर में जो घटना घटित हुई है और उसके लिए जाँच कमिटी ने पता करके जो रिपार्ट दाखिल की है, उस पर लाट साहब ने, अपने कर्मचारियों के साथ विचार-विमर्श किया और जिस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं वह साधारण जनता के लिए निम्नांकित है—

१५ तारीख की बात है, कैदियों और सिपाहियों के बीच अनबन हुई थी। और उन्होंने (लाट साहब ने) अपने वक्तव्य में कहा है कि हर मामले में राजनैतिक कैदियों ने ही उपद्रव की शुरुआत की थी।' [आनन्दबाजार : ६-१२-३१]

बस झमेला मिट गया। जांच कमिटी कोई भी रिपोर्ट दे, 'उन्होंने' तो बता ही दिया कि दोषी राजद्रोही ही थे। इसलिए अब कोई कुछ नहीं कह सकता।

'स्टेट्समैन', 'इंगलिशमैन' और 'यूरोपियन एसोसियेशन' इत्यादि के वक्तव्य और भी स्पष्ट थे। नहीं, इन्हें किसी भी तरह की छूट नहीं मिलनी चाहिए। सरकार को चाहिए—जिस पर भी विप्लवी होने का शक हो, उसे ही दीवाल से टिका कर गोली मार देना चाहिए।

अब मेदिनीपुर क्या करेगा? हिजली तो मेदिनीपुर ही में है। इतना बड़ा अन्याय हो जाए और वे खामोश बैठे रहें? दिनेश के अपने हाथों निर्मित मेदिनीपुर के तरुण क्या इसका बदला नहीं लेंगे? असहनीय उत्तेजना से फट कर बिखर नहीं जायेंगे? खून ही खून से मेदिनीपुर की मिट्टी नहीं भिगो देंगे?

दिया था मल्लिका। दिया था इसी घटना के एक महीने बाद ही—२९ अक्टूबर को।

दोपहर। क्लाइव स्ट्रीट के गिलेन्डर हाउस में यूरोपियन एसोसिएशन का अधिवेशन चल रहा था। सभापति थे मिस्टर ई० विलियर्स।

अचानक किसी के हाथों की रिवाल्वर ने वहाँ आग बरसा दी धाँय! धाँय! धाँय!

इसी के साथ लुढ़क पड़े विलियर्स घायल होकर। खून। और खून। हेल्प। प्लीज हेल्प।

दूर से एक कुर्सी आ लगी अचानक और तरुण विप्लवी घायल हो गया। चारों ओर से घेर कर उसे क़ैद कर लिया गया।

फलस्वरूप जो होना था वही हुआ। आई पुलिस। आए सैनिक। आ गये पुलिस विभाग के बड़े-बड़े अफसर। अपराधी पकड़ा गया है। अब भाग कर कहाँ जाएगा?

इस कैदी का नाम क्या था, जानती हो मल्लिका? चौंको मत। नाम—बिमल दास गुप्ता। पेडी का असली हत्यारा बिमल दास गुप्ता।

गिरफ्तारी के बाद उन पर अकथनीय अत्याचार किया गया, लेकिन सब व्यर्थ था। उनके मुंह से एक बात भी नहीं निकाल सके। इस बात का विवरण अखबार से पढ़ो—

स्पेशल ट्रैबुनल में विमल दास गुप्ता

'बुधवार के दिन अलीपुर में मिस्टर वैटली (प्रेसीडेन्ट), राय बहादुर नलिनीकान्त बसु और बाबू प्रफुल्लचन्द्र घोष द्वारा बनी स्पेशल ट्राइब्रुनल में बिमल दास गुप्ता का मुक़दमा शुरू हुआ है।

अभियोग का विवरण इस प्रकार से है, पिछले २६ अक्टूबर को दिन के ११ बज कर ३० मिनट पर अपराधी ने यूरोपियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर विलियर्स के क्लाइव स्ट्रीट के दफ्तर में जाकर, उन्हें लक्ष्य कर लगातार तीन गोलियाँ चलाईं।

दो गोलियाँ नहीं लगीं। एक गोली उनकी पीठ पर लगी। रॉयलिस्ट लीग के तीन सदस्यों ने तुरन्त अपराधी को पकड़ लिया और आग्नेयास्त्र तथा गोलियों सहित उसे पुलिस के हवाले कर दिया।' [आनन्दबाजार १२. ११. ३१.]

मुकदमें के वक्त दृढ़स्वरों में बिमल दास गुप्ता ने कहा—'हाँ, मैंने मारा है।'

'The savage repressions in Midnapore, Chittagong and Hijly Camp were always inspired by the European Association. So I came to settle accounts with its President.' [मेदिनीपुर-चट्टगाँव और हिजली कैदखानों में निर्मम अत्याचार के पीछे हाथ है इन अंग्रेज व्यापारियों का। इसलिए मैं आया था उनके सभापति के साथ अन्तिम बार हिसाब-किताब करने]

सजा मिली, दस साल क़ैद। सिर्फ दस साल।

लेकिन यहीं इसका अन्त नहीं हुआ। जाएगा कहाँ ? पेडी हत्याकाण्ड की सजा नहीं पाएगा क्या ? फांसी का फन्दा तो उसी के लिए लटक रहा है। लेकिन साक्षी ? गवाह कहाँ है ? नहीं, मेदिनीपुर निवासी उनके विरुद्ध गवाही देने को तैयार नहीं। हजारों तरह की लालच दिखाने पर भी नहीं। इसलिए पेडी हत्या का मुकद्दमा डिसमिस हो गया।

अखबारों में निकला—

बिमल दास गुप्ता

पेडी हत्या का अभियोग उठाया गया

'पिछले ७ अप्रैल को मेदिनीपुर के जिला मेजिस्ट्रेट मिस्टर जेम्स पेडी की हत्या के मामले में अभियुक्त बिमल दास गुप्ता के मुकदमें को कल कलकत्ता हाईकोर्ट द्वारा बड़ी नाटकीयता से समाप्त कर दिया गया।

एडवोकेट जनरल ने, उनके ऊपर पेडी हत्या का अभियोग लगाये जाने पर, उसका खण्डन किया और उन्हें मुक्त किया गया है।' [आनन्दबाजार १३. १. ३२]

पर मेदिनीपुर वालों का मन प्रसन्न न हो सका। घायल होकर विलियर्स जिन्दा रह गया, और इसी बात के लिए बिमल जैसे लड़के से मेदिनीपुर को हाथ धोना पड़ गया।

न ! यह हिसाब तो मिल नहीं रहा है। ऐसा जवाब देना है कि दो बार का खर्च एक ही बार में निकल आए, लेकिन इसके लिए समय चाहिए।

मेदिनीपुर को तैयारी करने का मौका देकर हम जरा बाहर घूम आते, मल्लिका। क्योंकि विद्युत्गति से बंगाल के विप्लवी इतिहास में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हो गईं जिनका उल्लेख अवश्य होना चाहिए।

इस बीच एक-दो घटनाएँ सुना कर मैं फिर मेदिनीपुर वापस आ जाऊँगा।

इस बीच ढाका के कमिश्नर मिस्टर ए० कैसेल २१ अगस्त को घायल हुए, टांगाइल शहर के सेन्ट्रल कोआपरेटिव कार्यालय में। फैसला हुआ। ललित राहा को कुल पाँच साल की सज़ा हुई।

अब आया चौंकाने वाला दिन।

१४ दिसम्बर।

सुनने में आया, कुमिल्ला के जिला मेजिस्ट्रेट मिस्टर स्टीवेन्स मारे गए हैं। घटनास्थल पर जो पकड़े गए हैं वे पुरुष नहीं-लड़कियाँ हैं। फेजुन्निसा बालिका विद्यालय की आठवें दर्जे की छात्राएँ, शान्ति सुधा घोष और सुनीति चौधरी।

दूसरे दिन ही यह समाचार प्रकाशित हुआ अखबारों में—

कुमिल्ला में बंगाली रमणी की गोली से मेजिस्ट्रेट निहत

'ज्ञात हुआ है कि आज प्रातःकाल करीब नौ बजे दो बालिकायें स्टीवेन्स के बंगले में उनसे मिलने गई थीं। इन्हीं ने रिवाल्वर द्वारा गोली मार कर मिस्टर स्टीवेन्स की हत्या की है।

घटनास्थल पर सदर मुहकमा के मेजिस्ट्रेट भी उपस्थित थे। उन्हीं ने तुरन्त इन बालिकाओं को गिरफ्तार कर लिया। इन्हें जेल भेज दिया गया है।

ज्ञात हुआ है, मिस्टर स्टीवेन्स को मारने वाली इन बालिकाओं का नाम कुमारी शान्ति घोष और कुमारी सुनीति चौधरी है। ये दोनों ही कुमिल्ला के फैजुन्निसा गवर्नमेन्ट हाईस्कूल की आठवें दर्जे की छात्राएँ हैं।' [आनन्दबाजार १५. १२. ३१]

इस समाचार ने सारे देश को स्तब्ध कर दिया। कहते क्या हैं? सुन कर सारा शरीर रोमांचित हो उठा। इन लड़कियों को डर नहीं लगता है क्या?

इन मामलों में साधारणतया जो हुआ करता है, शुरू हुई धर-पकड़। बहुत लोग एक के बाद एक गिरफ्तार हुए। सुनीति के बड़े भाई शिशिर चौधरी। गिरफ्तार हुए अपूर्व कंचन दत्तराय, विभूति वसु, शिशिर सोम, अनन्त दे, सन्तोष चटर्जी जैसे अनेकों।

पकड़े गए भुवनवर्धन। फोर्थ इयर के छात्र। इम्तहान चल रहे थे, फिर भी छोड़ा नहीं गया। उन्हें परीक्षा हॉल से पकड़ कर लोहे की छड़ों के पीछे क़ैद कर दिया गया।

ब्राह्मणबाड़िया से गिरफ्तार हुए फनीन्द्र गुहा, विनय नन्दी, समरेन्द्र नन्दी, अमरेन्द्र पाल जैसे और भी कुछ लोग।

लड़कियों में पकड़ी गईं चट्टगाँव के अनन्त सिंह की दीदी कुमारी इन्दुमती सिंह और कुमारी नीलिमा नन्दी। और पकड़ी गई कुमारी प्रफुल्ल ब्रह्म।

प्रफुल्ल ब्रह्म-सी परिश्रमी कार्यकर्त्ता किसी ने देखा न होगा। खासतौर से, उनका कुमिल्ला की नारियों को संगठित करने के मामले में उल्लेखनीय योगदान रहा है।

सारे लोग दुबारा चौंक पड़े जब उन्होंने अदालत में शान्ति और सुनीति को

देखा। अरे ! कितने आश्चर्य की बात है। ये तो बिल्कुल ही बच्ची है। इन्होंने साहब को मारा है ? यह तो विश्वास ही नहीं होता है।

जिन्हें केन्द्रित कर इतनी चिन्ता, वे गा-हँस कर करीब-करीब सारी अदालत को सिर पर उठाए हुए थीं।

बच्ची थीं तो क्या हुआ ? थीं बिच्छू ही।

जानती हो, एक दिन क्या किया ? बैठने के लिए कुर्सी न दी जाने पर हंगामा कर दिया—'कुर्सी नहीं दोगे ? ठहरो, मज़ा दिखाते हैं।'

और वाकई में मज़ा दिखाया उन्होंने। कोर्ट की कार्यवाही खत्म न होने तक उस दिन, दोनों जज की तरफ पीठ फेर कर, खड़ी रहीं। अर्थात्—'या तो बैठने के लिए कुर्सी दो और नहीं तो हमें पीछे से देखो।'

जज साहब का लाल चेहरा और लाल हो गया। इन बिच्छू लड़कियों की वजह से मान-सम्मान सब चला जाएगा। 'सिपाही, फौरन कुर्सी लाओ।'

मज़ा तो तब आया जब प्रत्यक्षदर्शी के रूप में एस० डी० ओ० नेपाल सेन गवाह के कटघरे में आकर खड़े हुए।

प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कुछ कहा ही था कि दोनों एक साथ चिल्ला उठीं—'ग्रेट लायर ! ग्रेट लायर ! ग्रेट लायर।'

जीवन्त, हँसती-खेलती लड़कियाँ। उनकी हँसी देख कर विपक्ष के वकील तक आश्चर्य से देखते रह गये। अनजाने में उनका हृदय वेदना से भर आया। हाय-हाय, इकदम नादान लड़कियाँ हैं। कौन जाने उनके भाग्य में क्या लिखा है। उनकी यह हँसी कभी न मिटे।

फिर भी मिट ही गई। किस दिन, जानती हो मल्लिका ?

जिस दिन उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। किस क़दर दुःखी हुईं। अभिमान से टूट गईं। बड़ी इच्छा थी कि हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा अपने हाथों से गले में डालेंगी और इस साहब ने दुश्मनी दिखा कर सब मिट्टी में मिला दिया।

लेकिन सिर्फ क्षण भर के लिए। उसके बाद शुरू हुई फिर हँसी। हँसते-हँसते दोनों जेल की कैदियों की गाड़ी पर जा बैठीं। वहाँ भी वही हँसी। यहाँ तक कि बाद में भी, जेल-जीवन में, वह हँसी उनकी हमेशा बनी रही।

किस्सा नहीं सुना रहा हूँ मल्लिका, अखबार इसके गवाह हैं। देखो, अखबार में क्या निकला था—

शान्ति, सुनीति को आजीवन कारावास

'पिछले १४ दिसम्बर को कुमिल्ला के जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर स्टीवेन्स अपने निजी बँगले पर गोली लगने से मारे गए थे। पुलिस ने इस केस में शान्ति सुधा घोष और सुनीति चौधरी नामक दो बालिकाओं को पकड़ा था। वे दोनों ही स्थानीय फेजुन्निसा बालिका विद्यालय की छात्राएँ हैं।

उनके मुकद्दमे के लिए कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस मिस्टर पियर्सन, जस्टिस पी० मल्लिक और जस्टिस मिस्टर एस० के० घोष को लेकर एक विशेष अदालत बनाई गई है।

कल बुधवार को विशेष अदालत ने अपना फैसला सुनाया है। फैसले में शान्ति तथा सुनीति दोनों को आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया है।

तीनों जजों ने दोनों अपराधिनियों को स्वेच्छा से तथा मिल कर मिस्टर स्टीवेन्स को मारने के लिए दोषी ठहराया है।

अदालत में दोनों बालिकाओं का प्रवेश

'शान्ति और सुनीति, लाल किनारीदार साड़ी और उसी के अनुरूप जैकेट पहन कर, हाथों में फूलों का गुलदस्ता लेकर कटघरे में खड़ी थीं और बड़े शान्त भाव से उन्होंने फैसले की राय सुनी।

कटघरे से ले जाते वक्त वे दोनों धीरे-धीरे फुसफुसा कर कुछ कह रही थीं। सिर्फ इतना ही सुनने में आया—'मृत्यु ही अच्छी रहती'—और कुछ सुनाई नहीं दिया।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि नीचे, कैदखाने की गाड़ी में इन्तजारी करते समय वे दोनों गाना गा रही थीं।'

[आनन्दबाजार २८-१-३२]

मल्लिका, ये थीं तब की शान्ति और सुनीति। और आज ?

राह चलते आजकल कितनी लड़कियाँ दिखाई पड़ती हैं, लेकिन शान्ति, सुनीति की तरह जीवन्त, दुःसाहसी लड़कियाँ इतिहास में कहीं मिलेंगी ? अब तो उन जैसी लड़कियाँ इतिहास में किंवदन्ती बन कर रह गई हैं।

अब नए विस्मय की रचना की दो अन्य नारियों ने—बीना दास तथा कमला दास गुप्ता ने। एक ने प्रकट रूप में, दूसरे ने पर्दे के पीछे रह कर।

घटना जितनी तो कल्पनाहीन है उतनी ही आश्चर्यजनक। इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा। क्योंकि अब तक जो कुछ होता रहा है वह पार्टी या दल के आदेशों पर। यहाँ यह बात ही नहीं उठी। यहाँ तो मौके का फायदा उठाना ही लक्ष्य था।

बीनादास दृढ़ संकल्प थी। गवर्नर स्टैनली जैकसन को हाथ की मुट्ठी में पाया है। यह मौका नहीं चूकेगी।

लेकिन रिवाल्वर ? एक गोली भरा रिवाल्वर चाहिए न ! हालाँकि दीदी कल्याणी दास बाहर होतीं तब तो कोई चिन्ता ही नहीं थी, लेकिन वह भी इस समय जेल में हैं।

अन्त में जा पकड़ा दीदी की सखी कमला दासगुप्ता को, जिनकी मदद से डलहौजी स्क्वायर में बम-विस्फोट हो सका था।

झट से उत्तर देते न बना कमला दासगुप्ता से। दे पाना संभव भी न था। स्वयं वह युगान्तर पार्टी की सक्रिय सदस्या थीं, लेकिन बीना दास दूसरी संस्था से जुड़ी थी।

उसे वह किस दावे के भरोसे रिवाल्वर दे देतीं ! किस तर्क के आधार पर ?

तब क्या ऐसा स्वर्ण अवसर हाथ से निकल जाने दिया जाए ? ऐसा भी कैसे हो सकता है ?

अब क्या किया जाए ?

पहले कोई बात होती तो चिन्ता न करती लेकिन इस समय दल के हर सहकर्मी तो जेल में बन्द थे । यहाँ तक कि ऐसा कोई नहीं था जिससे राय-मशविरा कर सकती । जो भी फैसला लेना है स्वयं लेना है और फैसला भी ऐसा कि दल का सम्मान नष्ट न हो सके ।

अपने से ही प्रश्न पूछना शुरू किया कमला दासगुप्ता ने । अच्छा, अगर भूपेन बाबू (दत्त) इस समय होते तो क्या करते ? क्या तय करते गुरु-स्थानीय दिनेश मजुमदार ? रसिक बाबू (दास) और मॉनादा (मनोरंजन गुप्ता) ही वीना के इस अनुरोध का क्या उत्तर देते ?

प्रश्नों का उत्तर मिला १६३२ साल की ६ फरवरी को ।

सेनेट हॉल : कलकत्ता विश्वविद्यालय का दीक्षान्त समारोह । चॉन्सलर थे गवर्नर स्टैनली जैकसन ।

अचानक अपनी कुर्सी से झटके के साथ उठ खड़ी हुई बीना दास । और इसी के साथ उसके हाथ का रिवाल्वर गर्जन उठा—धाँय ! धाँय ! धाँय !

तुरन्त लाट साहब मेज के नीचे जा घुसे । बाप रे बाप ! आग की चिन्गारी के हाथ में रिवाल्वर । इस रिवाल्वर से लाट साहब को मरने में देर कितनी लगती ।

अखबार में खबर निकली—

कलकत्ता विश्वविद्यालय कन्वोकेशन सभा में बंगाल के लाट साहब पर गोली चली

कल शनिवार को दोपहर में सेनेट हॉल में भयंकर घटना घटित हुई है । साढ़े चार बजे बंगाल के गवर्नर जब कलकत्ता विश्वविद्यालय के सालाना दीक्षान्त समारोह में भाषण दे रहे थे, उसी समय डायोसेशन कालेज की बीना दास नामक महिला ग्रेजुएट ने गवर्नर पर भयंकर हमला किया । सौभाग्यवश गवर्नर साहब की जान बच गई है । इस खबर से घबड़ाई हुई जनता आश्वस्त हुई है ।....'

घटना से पूर्व की अवस्था

'३ बज कर १५ मिनट से दीक्षान्त समारोह का कार्य ४ बज कर २५ मिनट तक निर्विघ्न चलता रहा । उसी समय एक भारतीय महिला ग्रेजुएट की एकेडेमिक गाउन की खसखसाहट ने सबका ध्यान आकर्षित किया । यह ग्रेजुएट महिला कुछ आगे बढ़ आई और एक के बाद एक चार गोलियाँ उसने गवर्नर को निशाना बना कर मारी ।

सौभाग्यवश गवर्नर साहब कुछ कदम पीछे हटते ही दाहिनी तरफ झुक कर गिर

गए। इससे सारी उपस्थित जनता चिन्तातुर हो उठी।

धुएँ के बीच ही पुलिस ने दौड़ कर लड़की को पकड़ लिया। वाइस चान्सलर और मंच पर उपस्थित सभी लोग गवर्नर की ओर भागे। पाँच मिनट के लिए सभा में खलबली सी मच गई।

घटना के बाद

लेडी जैकसन मंच के नीचे, पहली कतार में बैठी थीं। वह बहुत ही घबड़ा गईं और भाग कर गवर्नर के पास गईं। इस बीच हाथा-पाई करने के बाद पुलिस ने युवती पर काबू पा लिया था।'

[आनन्दबाजार, ७-२-१६३२]

जैकसन की तत्परता के कारण बीना दास असफल हुई। इसी के साथ पकड़ी भी गई। उसके बाद वही नाटक फिर से दोहराया गया।—बताओ, रिवाल्वर कहाँ से पाया? किसने दिया? बताना ही पड़ेगा।

लेकिन जवाब कौन देगा? जिस लड़की ने पराधीनता से मुक्त होने के लिए, जीवन की हर कामना-वासना को तुच्छ जान कर हाथों में रिवाल्वर पकड़ लिया था, उसे कहीं उसके आदर्शों से हटाया जा सकता है? इसीलिए वह भी शान्ति, सुनीति की तरह हर समय निरुत्तर ही रही।

पुलिस भी छोड़ने वाली न थी। वह तुरन्त उसके पिता, उस समय के विशिष्ट शिक्षाशास्त्री और सुभाष के गुरु आचार्य वेणीमाधव दास को ले आई।—'आप ज़रा समझा कर कहिए लड़की को। आपके समझाने से अगर मुँह खोलती है तो झंझट ही मिट जाएगा।'

इस पर बीनादास ने क्या कहा था, जानती हो? पुलिस अफसर की तरफ देख कर हँसी थीं—'आप बेकार ही में पिता जी को यहाँ तक ले आए हैं। मेरे पिता जी ने कभी भी अपनी लड़की को विश्वासघातकता नहीं सिखाई है।'

अदालत ने फैसला सुनाया और नौ साल की कैद का दण्ड हँसते-हँसते सुन कर जेलखाने की दीवालों के पीछे पहुँच गई बीनादास।

पीछे रह गए अनगिनत मुग्ध, विस्मित, गर्वित देशवासी। लड़कियाँ भी पीछे नहीं हैं। आज तक ये लोग पीछे रह कर ही विप्लवियों की सहायता करती रही थीं। अब इस कठिन कठोर संग्राम में खुल कर भाग लेने के लिए बाहर आ गई हैं। शाबाश बंगाल की बालाएँ—तुम्हारा स्वागत है।

कहना व्यर्थ होगा कि कमलादास गुप्ता को भी छुटकारा नहीं मिला। प्रत्यक्षरूप से मामले के साथ जुड़े न होने पर भी उन्हें साल-दर-साल बिना किसी अपराध के कैद रखा गया। उन पर कोई केस नहीं चला। ऐसी डेन्जरस लड़की है, इसका क्या भरोसा? कब क्या कर बैठे?

डेन्जरस लड़की—

हाँ, उन दिनों पुलिस की डायरी में ऐसी लड़कियाँ इसी नाम से चिन्हित होती थीं। और आज ? अपने से यह सवाल पूछो कि पराधीन देश की लड़कियों ने शिक्षा, दीक्षा, त्याग और चरित्र का जैसा उज्ज्वल उदाहरण रखा था, उसका एक कतरा भी है, आज के स्वाधीन देश की लड़कियों में ?

इसके लिए जिम्मेदार और कोई नहीं। जिम्मेदार हैं देश की वर्त्तमान परिस्थितियाँ।

आज जीवन असह्य है। असहनीय है प्राण धारण करने की ग्लानि। हर रोज की कठिन कठोर निर्मम जीवन यात्रा के बीच मनुष्य न्याय, नीति, निष्ठा और आदर्श जैसी कोमल प्रवृत्तियों को गँवाता जा रहा है। आज का इन्सान क्या करे ?

फिर मेदिनीपुर। फिर वही बी० बी०। आर० के० डग्लस.... अब तुम्हारा नम्बर है। पेडी के बाद तुम यहाँ के जिला मेजिस्ट्रेट बन कर आए हो। तुम तो जानते हो कि मेदिनीपुर में किसी भी श्वेतांग शासक को हम बरदाश्त नहीं कर सकते हैं। फिर क्यों आए हो ? इसका बदला तो तुम्हें झेलना ही पड़ेगा।

इसके अलावा तुमने भयंकर अपराध भी किया है। हिजली हत्याकाण्ड की जो जाँच कमिटी तैयार हुई थी वहाँ तुम्हीं ने असली अपराधियों को आड़ में कर रखा था और झूठी-मूठी दलीलें सामने रखते जा रहे थे। खून का ऋण तो तुम्हें खून ही से चुकाना पड़ेगा।

१६३२ साल। ३० अप्रैल। ऋण चुकाने का दिन। शाम होने ही वाली थी। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऑफिस में काम हो रहा था। मीटिंग हो रही थी, सभापति थे डग्लस। चारों तरफ हजारों सिपाही। उनकी सतर्क दृष्टि से बच कर कोई आगे नहीं बढ़ सकता था।

इसके अलावा डग्लस स्वयं गोली भरा रिवाल्वर लिए बैठे थे। मेदिनीपुर का कोई भरोसा नहीं है। यहाँ के लोग सब कर सकते हैं। इसलिए होशियार रहना चाहिए।

लेकिन सब व्यर्थ हुआ। जिसके सिरहाने मौत खड़ी हो वह उसकी गति कैसे रोक सकता है ?

सहसा दो स्वस्थ युवक, प्रद्योत भट्टाचार्य और प्रभांशु पाल न जाने कहाँ से कूद पड़े वहाँ। हाथों में गोलियों में भरे रिवाल्वर। आते ही गोली चलाने लगे—धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय !

डग्लस पहले तो मुँह के बल गिरे मेज पर, उसके बाद ही जमीन पर।

वहाँ मौजूद जो भी था, विस्मित हो उठा। शायद मिनट भर के लिए। उसके बाद ही शुरू हुआ हल्ला—'पकड़ो, पकड़ो। वह भाग रहे हैं।'

भाग चलो। काम खतम हो गया है भागो। और जोर से—और।

पीछे हिंसक शिकारी आ रहे हैं। दौड़े आ रहे हैं तमलुक मोहकमे के मैजिस्ट्रेट मिस्टर जॉर्ज, झाड़गांव के नृपेन मित्र जैसे प्रमुख राजभक्त। उनके हाथों में रिवाल्वर थे—'वह रहे। ज़ोर से चलो। उन्हें पकड़ना है।'

पकड़ोगे ? ठीक है, कम इन। फिर से रिवाल्वर में गोली भर कर ट्रिगर दबाया प्रभांशु ने—धाँय ! धाँय ! धाँय !

और अचानक ही वे गायब हो गए—'अमर लॉज' के बगलवाले रास्ते से। कोई उन्हें ढूंढ़ न सका।

प्रद्योत भागते रहे राजपथ से हट कर दक्षिण वाली सड़क पर। पीछे वही राजभक्त और सिपाहियों का दल। दूरी घटती आ रही थी लगातार। और भी पास आ गए थे वे लोग—अब ज्यादा दूर न थे।

अचानक प्रद्योत उनकी तरफ मुँह करके खड़े हो गए और ट्रिगर दबाया। अपने शरीर की सारी शक्ति लगा कर—लेकिन यह क्या ? गोली तो नहीं निकली। फिर दबाया—वही नतीजा निकला। मामला क्या है ? कोई गड़बड़ी है क्या, वरना ऐसा होना तो नहीं चाहिए।

प्रद्योत अंग्रेजों के खैरख्वाहों के हाथ पकड़े गए। उनकी जेब से क्या निकला था, जानती हो ? एक फटे से कागज के टुकड़े पर खून से लिखा था—'हिजली अत्याचार का यह एक क्षीण सा प्रतिवाद है।'

प्रहरीगण वीरदर्प से कैदी को लेकर थाने पर पहुँचे। विजय-उल्लास से दमकता चेहरा। एक भाग गया तो क्या हुआ ? गया है तो जाये।

प्रद्योत ने थाने में घुसते ही दारोगा से क्या कहा था सुनोगी ? कहा—'सर, बड़ी गरमी लग रही है। ज़रा नहाना चाहता हूँ। काइन्डली ज़रा इन्तज़ाम करवा दीजिये न।'

कड़े पहरे में नहा कर लौटते ही बोले—'अब मैं सोऊँगा, बड़ी नींद आ रही है। देखियेगा, मुझे कोई डिस्टर्ब न करे।'

देखते ही देखते, थाने में बड़े-बड़े पुलिस अफसर इकट्ठा हो गये।—'बुलाओ कैदी को। जिरह करके सारी बातें पता की जाएँ।'

लेकिन कैदी तो उस समय गहरी नींद में बेखबर पड़ा सो रहा था। उसके सारे चेहरे पर शान्ति छाई थी। देख कर कौन कह सकता था कि यही किशोर बालक इतनी बड़ी घटना का नायक है। विश्वास करना मुश्किल था।

'बताओ, तुम्हारे साथ और कौन था ?' यथासमय प्रद्योत से पूछा गया।

प्रद्योत ने उत्तर दिया—'प्रश्न पूछने से कोई फायदा नहीं होगा। हजारों प्रश्न पूछने पर भी हमारी तरफ से आप सही जवाब नहीं पा सकेंगे....यह तो अच्छी तरह से जानते ही होंगे।'

'तुम अपने सहयोगी का नाम नहीं बताओगे ?'

'नहीं।' प्रद्योत का छोटा सा उत्तर था।

श्वेतांग अफसरगण गरज उठे—'इसका परिणाम क्या होगा जानते हो ?'

'जानता हूँ।' प्रद्योत के चेहरे पर हँसी फैल गई—'अत्याचार करेंगे, यही न ? कीजिये। आप लोग जितना सताएँगे, देशवासी उतना ही जाग उठेंगे। वे भी देख समझ लेंगे कि यह है अंग्रेज शासकों का असली रूप।'

बड़ी-बड़ी नीली आँखें फाड़ कर श्वेतांग अफसर उसे देखते ही रह गये। शासक के मुँह पर ऐसी बात कितने आदमी कह सकते हैं। यह तो बड़ा ही अदभुत लड़का है।

सचमुच ही अदभुत लड़का था। जैसा स्वास्थ्य, सुन्दर प्यारा सा चेहरा था वैसा ही था उसका व्यवहार, उसकी बातचीत। इसके अलावा बड़ा मेधावी छात्र था वह। कुछ ही दिनों पहले प्रवेशिका की परीक्षा में, हिन्दू स्कूल के छात्रों में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण हुआ था।

सिर्फ स्कूल की पढ़ाई में ही नहीं। इतिहास, भूगोल, दर्शन, अर्थनीति कोई चीज़ बची नहीं। दिन भर पढ़ता था। नाड़ाजोल राज्य पुस्तकालय की शायद ही कोई किताब ऐसी थी जो उसने पढ़ी नहीं थी।

दिनेश गुप्ता के प्रशिक्षण में धीरे-धीरे इस बीच सीखी थी कुश्ती, छुराबाजी, लाठी चलाना भी आ गया था। वे थे मेदिनीपुर की आँखों के तारे।

इतिहास के पृष्ठ उल्टोगी तो मल्लिका, प्रद्योत ही क्यों ऐसे और भी अनेकों मेधावी छात्र-छात्राओं को पाओगी।

विनय, दिनेश, प्रीतिलता, कल्पना, कल्याणी, बीना दास, कमला दासगुप्ता, दिनेश मजुमदार, शान्ति, सुनीति कोई भी इससे बचा न था। स्कूल कालेज में ही नहीं, जेल जा कर भी पढ़ने का इनका शौक मुरझाया नहीं। कैदी जीवन में नियमित रूप से पढ़ाई पूरी करके इसी तरह से कितनों ने विश्वविद्यालय की सर्वोच्च परीक्षाएँ पास की थीं।

शुरू हुआ अमानुषिक अत्याचार। बताओ, कौन था तुम्हारे साथ ? उसका नाम बताओ ? तुम्हारे दल में और कौन-कौन है ? यह रिवाल्वर कहाँ से मिला ?

प्रद्योत चुप....एक शब्द नहीं....उसे इसके बारे में कुछ कहना ही नहीं था।

'छि. प्रद्योत', मजाक किया भूपेन दारोगा ने—'तुम्हारे जैसा बुद्धिमान लड़का एक ऐसी रिवाल्वर ले आया जिसने जरूरत पर काम ही नहीं किया—क्यों ?'

जानती हो, प्रद्योत ने क्या कहा था ? दोनों जंजीरों से जकड़े हाथों को माथे से छुला कर कहा था—

Irony of fate Bhupen Babu ! Had my revolver spoken out I would not have been here in this condition, the story would have been otherwise.

[भाग्य का परिहास है भूपेनबाबू, मेरी रिवाल्वर ने ठीक से मदद की होती तो क्या आप मुझे यहाँ पाते ? तब तो इतिहास कुछ और होता।]

अब प्रद्योत के भाई शर्वरी भूषण को ले आया गया। बड़े भाई थे। उन पर

ऐसा अत्याचार किया गया, इतनी मार पड़ी कि अन्त में वे पागल हो गये। फिर भी नहीं छोड़ा। सब बताओ।

प्रद्योत के मित्र फणीदास, क्षिति सेन और नरेनदास भी नहीं बचे। अत्याचार करने के जितने हथकंडे इन्हें मालूम थे, सब आज़मा डाले गये, लेकिन सफलता नहीं मिली।

विप्लवी चरित्र की दृढ़ता ही तो इसकी विशेषता थी। और इसीलिए प्रभांशु पाल का नाम पुलिस जान ही न सकी।

मुकदमा शुरू हुआ। साधारणतया जो होता है—वही हुआ—प्राणदण्ड।

परन्तु ट्राइबुनल के एक जज आई० सी० एस० ज्ञानांकुर दे एकमत न हो सके।

'असम्भव। फांसी नहीं हो सकती है। कैदी की उम्र कम है। इसके अलावा गवाहों के बयान से प्रमाणित हो चुका है कि मौके पर उसकी रिवाल्वर नहीं चल सकी थी। दूसरे व्यक्ति ने गोली मारी है। इस हालत में फांसी की सजा देना संविधान के खिलाफ है।'

अंग्रेज शासक बिगड़े। 'तुम कौन होते हो जी? अगर संविधान में नहीं है तो ठीक कर लो। ऐसे सिंह-शावक को मुट्ठी में पाकर छोड़ना कहाँ की अक्लमंदी है?'

अन्त में मुकदमा हाईकोर्ट पहुँचा। हुक्म अडिग रहा—फांसी की सजा बहाल रही। देखने में आया है कि विप्लवियों को फांसी देने के मामले में वे संविधान के नियमों में ढील डाल देते थे। कहने का मतलब यह कि फांसी पर चढ़ना ही है।

मल्लिका! उन दिनों शासकों के विरुद्ध राय देने के कारण ज्ञानांकुर दे की कभी तरक्की नहीं हुई। ऐसे निर्भीक और दक्ष जज, उन दिनों बंगाल में बहुत कम ही थे। उन पर से विदेशियों का विश्वास हट गया। पता नहीं, कहीं कैदी को बेकसूर माफ न कर दे।

इधर फांसी की सजा सुन कर भी प्रद्योत में कोई भाव-परिवर्तन नहीं हुआ। वे भी अपने आदर्श गुरु दिनेश की भांति निर्जन काराकक्ष में हर तरह की किताबें पढ़ कर, धर्म ग्रन्थ पढ़ कर, समय बिताने लगे।

गीता और रवीन्द्रनाथ। पृथ्वी से विदा लेने के पूर्व जितना भी ज्ञानार्जन हो सके।

फिर भी रह-रह कर मन उदास हो जाता। विधवा माँ की बात सोच कर। पता नहीं माँ कितना सोच रही होंगी। माँ से बढ़ कर इस संसार में है ही कौन?

न केवल प्रद्योत, हर विप्लवी के हृदय में माँ के लिए अन्तहीन श्रद्धा थी। शायद देश जननी और गर्भधारिणी उनकी दृष्टि में एक थीं।

यहाँ प्रद्योत की लिखी एक चिट्ठी छाप रहा हूँ। छत्तीस साल पहले कन्डेम्ड सेल से मृत्युपथ के यात्री प्रद्योत ने गुप्त रूप से अपनी माँ पंकजिनी देवी को जो पत्र भेजा था, उसकी तुलना नहीं हो सकती है।

चिट्ठी तुम ध्यान से पढ़ना। एक बार नहीं, कई बार। इसे समझने की कोशिश

करना। उसके बाद अपने आप से प्रश्न पूछना कि इससे पहले ऐसी सुचिन्तित विप्लव की संज्ञा कहीं पढ़ी है। याद रखना, उनकी उम्र केवल १८ वर्ष थी। चिट्ठी सुनो—

जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरियसी मेरी प्यारी माँ,

मैंने आज मृत्युपथ की यात्रा आरम्भ की है, इसके लिए तुम चिन्ता मत करना। मेरे भाइयों से कहना कि अपने असमाप्त कामों के बीच मैं अपना हृदय छोड़ कर जा रहा हूँ। मेरे लिए दो दिन रोने के बाद मुझे भूल जाने से कहीं ज्यादा अच्छा होगा कि मेरे अधूरे कामों को पूरा करें। इसी से मेरी आत्मा तृप्त होगी।

आज अगर मैं किसी रोग से मरता, तब सबको कितना अफसोस होता। लेकिन आज मैं एक आदर्श के लिए प्राण विसर्जित कर रहा हूँ, इसीलिए मेरा मन खुशी से भर उठा है, परिपूर्ण हो गया है। फाँसी का फंदा मेरे लिए अंग्रेजों का मजाक भर है। मेरी यह मन की बात तुम्हारी ही मन की बात है।

माँ, तुम मुझसे मेरे काम की कैफियत नहीं माँग सकोगी। तुम शायद नहीं जानती हो कि तुमने अपनी ही जरूरत के लिए हमें रचा है। पर मैं तुम्हें बता रहा हूँ कि हजारों सालों से हम लोग, तुम लोगों के अर्थात् बंगाल की माताओं के मन में रचते चले आ रहे हैं। आज धीरे-धीरे हम प्रकट हो रहे हैं।

मैं तो हमेशा से जानता हूँ, मैं बंगाली हूँ, तुम बंगाल हो, एक ही पदार्थ, जिसे मैं अलग कर के सोच ही नहीं सकता हूँ। और इसीलिए किसी तरह की मुसीबत की आशंका मुझे रोक नहीं सकती है।

युगों से तुम अपमान, लांछना और अत्याचार सह रही हो, गूंगी गाय की तरह जमीन पर मुंह के बल गिर पड़ी हो, मार खा रही हो, उसी के विरुद्ध जो तुम्हारे हृदय में विद्रोह की ज्वाला धधक रही है वही विद्रोह मैं हूँ।

वही विप्लव अगर आज प्रकट होता है तो इसके लिए आँसू क्यों बहाया जाए ?

तुम मेरी इस बात को बिल्कुल सच समझ लो। अगर तुम्हें कोई खूनी की माँ या डाकू की माँ कहे और अवज्ञापूर्वक हँसे तो अपनी ज्ञान, बुद्धि और अनुपम सौन्दर्य-बोध द्वारा, करुण नेत्रों से देखते हुए, उनकी अज्ञानता को क्षमा करना।

'मनुष्य का हम खून नहीं करते हैं, मनुष्य को हम जिन्दा रखते हैं।'

यह बात बंगाल के लोग अभी जानते नहीं हैं। बंगाल-विप्लव की उम्र ही क्या है अभी, इसीलिए हमारे आदर्श अभी जनसाधारण में प्रचलित नहीं हुए हैं। इसीलिए हो सकता है, वे हमें गलत समझते है और या तो समझ कर भी समझना नहीं चाहते हैं।

हमें गालियाँ देने वाले तो हर कदम पर हैं। अंग्रेज हमें काले अक्षरों में अंकित करते हैं, लेकिन दुःख तो तब होता है जब अहिंसावादी भी हमारी हिंसक कह कर निंदा करते हैं। तब लगता है, पराधीन देश पर यही सबसे बड़ा अभिशाप है।

हम आज जिस आदर्श की तलाश में चले है उसकी कल्पना तक अहिंसावादी नहीं कर सकते हैं। मानव की हिंसात्मक प्रवृत्ति से मानव की रक्षा करने के लिए ही

हमारा यह प्रयास है।

बंगाल के विप्लव का इतिहास सिर्फ पचीस साल का बच्चा है। अभी भी ठीक से बात करना नहीं सीखा है इसने। इसीलिए इतनी गाली-गलौज के आगे उसकी आवाज़ दब जाती है।

लेकिन इसी शिशु-कण्ठ से जो शंखध्वनि बज रही है वह जल्द ही दुनिया को विस्मय से स्तब्ध कर देगी।

लोग हमें भावुक कहते हैं। पर मैं यही नहीं समझ पाता हूँ कि इसी बंगाल देश के हजारों-हजारों लड़के, जो निहायत बच्चे नहीं थे, जिन्होंने लिखना-पढ़ना सीखा था, ज्ञानार्जन किया और काफी अभिज्ञता भी संचित किया है, ये सभी एक साथ कैसे भावुक हो उठे हैं ?

बूढ़े लोग अक्सर हमें कहा करते हैं, 'बहके हुए युवक' और करुणा से विगलित हो उनमें से बहुत लोग हमें इस बहके रास्ते से लौटाने की कोशिश कर रहे हैं। सुना है कि कमिटी वगैरह भी बनाई है।

समझीं माँ, इसमें कुछ नहीं है। सिर्फ है चालाकी। असल में जानती हो माँ, जो हमें जी-जान से वापस लाना चाह रहे हैं वे या तो कापुरुष हैं या लाचार।

मैं किसी को दुःखी करना नहीं चाहता हूँ पर यह चीज दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है।

विप्लव कोई खुशी या आमोद-प्रमोद की चीज़ नहीं है, लेकिन मानव जाति को ध्वंस के हाथों से बचाने के लिए, युगों से इसकी आवश्यकता पड़ती रही है।

जो वृद्ध हैं उन्हें नमस्कार है। वे हमारे पूज्य हैं, पर उनका जराग्रस्त शरीर और मन, हिल-डुलकर बैठने जैसे सामयिक कार्य को भी बड़ा भारी कुछ समझते हैं और इसकी अलग व्याख्या करते हैं, और नये पानी में बह कर आ गये पौधों की तरह हमारा पीछा नहीं छोड़ना चाहते हैं। उस पर बड़ा गुस्सा लगता है।

क्या करूं ? मजबूर होकर इन अनुभवी वृद्धों को बच्चों की श्रेणी में गिनना पड़ता है। जिनका हर रक्त-कण दासता के कलंक से कलंकित हो गया है, उनकी बात नहीं सोचता हूँ। प्रकृति के नियम के अनुसार अपने ही घाव से सड़ कर मर जायेंगे, साक्षात् डूब मरेंगे।

परन्तु जो लोग मध्यमार्ग अर्थात् बातचीत द्वारा फैसला करना चाहते हैं, उनके लिए दुःख होता है, तकलीफ होती है। ये शिक्षित हैं, अनुभवी हैं परन्तु इनमें आत्म-सम्मान-ज्ञान की कमी है। यह वह चीज़ है जिसे जबरदस्ती किसी को सिखाई या समझाई नहीं जा सकती है। यह तो यौवन का धर्म है।

मेरी आँखों के सामने तुम पर कोई अत्याचार करे और मैं पागलों की तरह उस पर झपट पड़ने के बजाय सोचने बैठ जाऊँ—कि इससे कोई फायदा होगा या नहीं, इसमें मुसीबत कितनी आ सकती है, अकेला इतनों से जूझ सकूंगा या नहीं या फिर पास के थाने में जाकर खबर करूँ, उसके बाद भागे हुए अपराधी को पकड़वा कर

जेल पहुँचाऊँ या न जाने यह समझौता सम्मानजनक होगा कि नहीं, अगर अपराधी पकड़ा न जा सका तब किस अखबार में उसकी तीव्र आलोचना करते हुए लेख निकाला जा सकता है....इत्यादि बातें सोच कर अपनी बुद्धिमत्ता और धैर्य का भले ही परिचय दूँ, लेकिन इसी के साथ-साथ तुम्हारा मातृ-हृदय यह कह कर धिक्कारेगा नहीं कि बचपन में ही दूध के साथ जहर क्यों नहीं खिला दिया था मैंने ?

यह बात बेहद सच है कि जितना अधिक सोचा-विचारा जायेगा, युक्तियाँ लगाई जायेंगी, उतनी ही जटिलता आ जाएगी निर्णय लेने में। खैर, तुम्हारा बहुत अपमान हो चुका है, अब और आँसू बहा कर तुम्हारे अपमान का बोझ नहीं बढ़ाऊँगा।

किस अमृत के स्पर्श से मरने से पहले हम लोगों का वजन बढ़ जाता है, इसे साधारण लोग समझ नहीं सकते हैं और इसीलिए विस्मित होते हैं। वरना यह एक मामूली सी बात है।

ज्यादा क्या कहूँ ? जीवन में अनेक आशायें थीं। सोचा था देश भर में अपने आदर्श को कण-कण में फैला दूँगा, नवयुग में कुसंस्कारों से मुक्त होकर जाति और समाज को नया रूप दूँगा। बिल्कुल ही एक नई जाति का गठन करूँगा, सारी ग्लानि, सारी गन्दगी धो-पोंछ कर साफ कर जाऊँगा।

लेकिन मनुष्य का जीवन भी खूब है ! एक बुलावा आया है और मुझे जाना ही पड़ेगा।

लेकिन माँ, तुम इस बात को मन में लाना तक नहीं कि मेरे साथ-साथ मेरी सारी चितायें और आशायें भी लुप्त हो जायेंगी। सब कुछ रहेगा, बंगाल के लड़के-लड़कियों के मन में और मेरी बंगाल की माताओं के अन्तर में।

बंगाल की भूमि इतनी उपजाऊ है कि फसल समा नहीं रही है। इस साल अगहन में जो फसल अंकुरित होते न होते सूख गई, वही अगले जाड़े में दुगनी उगेगी। उसके बाद वाली देश में सोना ही सोना पैदा कर फैला देगी।

तुमसे विदा लेने की कोई बात नहीं है—सिर्फ इतना ही कहूँगा। बड़ा होता तो और भी अच्छी तरह से कहता, और कोई कह सकता है—'छोटे मुंह' की बात, पर तुम समझोगी क्योंकि यह तुम्हारे मन की बात है।

माँ, तुम्हारा प्रद्योत क्या कभी मर सकता है ? तुम चारों तरफ नजरें घुमा कर देखो, कितने प्रद्योत तुम्हें देख कर हँस रहे हैं। मैं जीवित और अमर रहूँगा माँ। बन्दे मातरम्।'

१९३३ साल। १२ जनवरी। पृथ्वी से प्रद्योत के चिर विदा लेने का दिन।

सुबह के पाँच बजे थे। रक्षक दल बुलाने आए तो चकित रह गए। ताज्जुब है। स्नान समाप्त कर पूजा सम्पन्न हो चुकी थी। माथे पर चन्दन का टीका लगा कर प्रद्योत तैयार था। चेहरे पर वही शान्त, स्निग्ध मुस्कराहट। मानो प्राचीन भारत का

कोई ऋषितनय हो। अभी-अभी यज्ञ समाप्त करके उठा हो।

प्रहरियों को देखते ही प्रद्योत उठ कर खड़ा हो गया। उसके बाद स्वयं ही दृढ़, बलिष्ठ कदमों से चल कर फाँसी के तख्ते पर खड़ा हो गया। चेहरे पर वही शान्ति मानो कोई खेल हो रहा है।

'आर यू रेडी प्रद्योत ?'

'अवश्य', हँस कर प्रद्योत ने उत्तर दिया—'मैं मृत्यु से नहीं डरता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि खून की एक-एक बूंद, बंगाल के हर घर में, सैकड़ों की संख्या में प्रद्योतों की रचना करेगी। बन्दे मातरम्।'

प्रद्योत चला गया। पर यह मृत्यु मृत्यु नहीं, यह तो है जीवन के आदर्शों का चरम आत्मोत्सर्ग। जिनका उद्देश्य ही मनुष्य का कल्याण करना है, वे इसी तरह जीवन दे देते हैं।

लेकिन मेदिनीपुर ? मेदिनीपुर तो सदा ही शक्ति का उपासक रहा है। इस भयंकर आघात को क्या वह चुपचाप बरदाश्त कर लेगा ?

'मची है छीना झपटी,
पहले कौन देगा प्राण, इसी की मची थी जल्दी।'

सचमुच मल्लिका, कौन पहले प्राणों की बाजी लगाएगा, इसी का झगड़ा मचा था। सच, मृत्यु की इस तरह से आज तक किसी ने हँसी नहीं उड़ाई थी।

१९३० से १९३४ तक—इन पाँच सालों में कितने विप्लवी तरुणों ने मृत्यु-यज्ञ में स्वेच्छा से अपने को उत्सर्ग कर दिया था, इसकी कोई गिनती नहीं।

अंग्रेज भी चुप नहीं बैठे थे। सभ्यता का मुखौटा चेहरे पर लगा कर उसे भी निकाल फेंक कर वे हायना की तरह खूंखार हो उठे। बंगाल का यौवन मिटा डालने के लिए अत्याचार, उत्पीड़न, आघात, अपमान—कुछ भी करने से बाज नहीं आए।

इसके प्रमाण थे—श्रीसंघ के सदस्य, छात्रनेता अनिल दास। नीलखेत लेवेल क्रॉसिंग की डकैती के मामले में उन पर सन्देह कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लालबाग थाने के भीतर ले जाकर उस दिन उन पर निर्मम अत्याचार हुआ था।

एक दिन नहीं, रोज़-रोज़। और उसी के फलस्वरूप लोगों के अनजाने ही उनकी मृत्यु हो गई। क्या हुआ था कोई जान भी नहीं सका।

सन्तानहीन माँ ने एक साधारण सी इच्छा प्रकट की। 'कम से कम पोस्टमार्टम के समय, मेरा निर्वाचित एक सर्जन वहाँ रहे।'

मान ली गई यह बात सरकार द्वारा। इसी के साथ समय भी बता दिया गया।

लेकिन निश्चित समय पर पहुँच कर सर्जन चकित रह गये। नहीं, कुछ करता

बाकी नहीं था। वह सब पहले ही हो चुका था। पर रिपोर्ट! वह नहीं दी जायेगी। किसी दिन नहीं दी गई।

इसी तरह से खो गए एक दिन मयमनसिंह के धीरेन दे। उन्होंने भी एक दिन विदा ली! आई० बी० के दारोगा मफ़ीजुद्दीन साहब और उनके प्रियपात्र कुख्यात गैंदा गुंडे के अकथनीय अत्याचारों के फलस्वरूप।

उसके बाद जो हुआ वह और भी मार्मिक था। पुलिस चीफ टेलर ने आदेश दिया—'गला काट कर लाश को जंगल में फेंक दो और इसी के साथ रटा दो कि स्पाई शक करके उसके पार्टी वालों ने ही उसकी हत्या कर दी है।'

यही किया मफ़ीजुद्दीन साहब ने। इसी के साथ शुरू कर दीं गिरफ्तारियाँ। कुछ भी कहो, उनके इलाके में एक खून हो गया है। उनका भी तो कर्त्तव्य है खूनी को पकड़ना।

बी० वी० की मेदिनीपुर शाखा के दो तरुण सन्तोष बेरा और नवजीवन घोष भी इसी तरह एक दिन गायब हो गये। पुलिस के आक्रमणों के कारण उनका दीप ... बुझ गया। यह बात मैं बाद में बताऊँगा।

यही था उन दिनों अंग्रेज शासकों का असली रूप। लेकिन एक बात है; अंग्रेजों ने अत्याचार किया था अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए, लेकिन उनके दलबलों ने? मालिक की स्नेहभरी छाया तले पलने वाले इन कर्मचारियों ने कम अत्याचार नहीं किया था। बल्कि मालिक को खुश करने के लिए उनसे चार कदम आगे बढ़ गये इस क्षेत्र में। इसके पीछे यह भावना निहित थी कि जब क्षमता मिली है तो कर लो देश-वासियों पर मनमाना अत्याचार। नौकरी में उन्नति प्राप्त करने के लिए यही सबसे सहज और सीधा रास्ता था।

आज ये लोग पहचान में नहीं आते हैं। पहचाने जा सकते थे, अगर भारत के स्वाधीन होते ही पुलिस बिभाग से कुछ गुप्त कागजात गायब न हो गये होते। वह कागजात रहते तो आज किसी न किसी देश सेवक या मशहूर पत्रिका के मशहूर सम्पादक का मुखौटा खुल गया होता देशवासियों के सामने।

क्योंकि देश सेवक की पोशाक पहनने पर भी असल में यही लोग थे उन दिनों सरकार बहादुर के सबसे बड़े सहायक। ये ही लोग विप्लव-आन्दोलन के अनेकों मूल्यवान तथ्य अंग्रेजों को समय-समय पर बताया करते थे, यह तो ऐतिहासिक सत्य है।

ऐसे ही एक महापुरुष की बात तुम्हें बताता हूँ, मल्लिका। ढाका-निवासियों के लिए तो वे प्रातःस्मरणीय होंगे....कम से कम उन दिनों तो जरूर थे। यह आदमी थे ढाका के मुन्शीगंज के स्पेशल मोहकमा के शासक कामाख्या सेन।

यह महाशय कितने दाँवपेंच जानते थे। आड़ धुलाई, बस्ता धुलाई, कचुआ धुलाई, अंगुली में सूई चुभोना, मलद्वार में रूलर घुसाना वगैरह ही इनके हथकन्डे थे। खासतौर से अगर वह व्यक्ति कोई महिला हुई तब तो कहना ही नहीं है। और

भी नए-नए कायदे चालू हो जाते ।

सच तो यह था कि उनकी यह नई-नई करतूतें देख कर अंग्रेज तक मुग्ध हो जाते और कहते—'चियर अॅप माई बॉय । चालू रहो ।'

जनसाधारण उसके अत्याचारों से तंग आ गया ।

एक तो १९३२ का साल । उस पर दिनेश, विनय, बादल का विक्रमपुर । सारे देश में उस समय देशप्रेम की बाढ़ आई थी ।

अगर इस घर का लड़का जेल जा रहा था तो उस घर का फांसी पर चढ़ रहा था । देखा जाए तो विक्रमपुर में एक भी ऐसा घर नहीं था जिसका कि इस आन्दोलन से नाम नहीं जुड़ा था ।

ऐसे विक्रमपुर में क्या लड़के नहीं थे ? ऐसे लड़के जिन्हें शासक लोग 'डेन्जरस लड़के' कहा करते थे । और इनके आँख-कान बन्द नहीं थे ।

फिर भी एक हिचक थी । कैसा भी है, है तो देशवासी ही । क्या फायदा होगा उस पर एक बुलेट नष्ट करके ? लेकिन अति करने लगा है । इस बात का इन्तजाम तो करना ही होगा ।

उसे सावधान करने के लिए पहले, उसकी पत्नी के लिए, विधवाओं के पहनने-वाली थान धोती भेजी गई । अर्थात् अब भी संभलो, वरना पृथ्वी के दूसरे छोर पर भाग कर भी हमसे न बच सकोगे । तब थान धोती की जरूर जरूरत होगी । इसीलिए यह कपड़ा पहले से उपहार-स्वरूप दिए दे रहे हैं ।

कामाख्या सेन ने इसकी परवाह नहीं की । करते क्यों भला ? उनके पास पुलिस है । सिपाही हैं । उस पर अंग्रेज बहादुर का सिर पर हाथ है । उन्हें किस बात की चिन्ता ? इसीलिये जिस तरह डंडा चल रहा है चलने दो । क्या कर लेंगे वह लोग ?

जिनके बल-बूते पर यह सब हो रहा था, अबकी बार वे ही घबड़ा गए ।—'तुम अत्याचार कर रहे हो माई बॉय ! अब यहाँ से फौरन भाग जाओ । जहाँ भी हो सके, कुछ दिनों के लिए चले जाओ । कुइक ।'

लेकिन कामाख्या सेन कहाँ जाएँ भाग कर ?

नहीं, अब तो कोई उपाय नहीं रहा । अपने ही अत्याचारों के कारण तुमने अपनी मौत को खुद-ब-खुद दावत देकर बुला लिया है । इसीलिये कहीं क्यों न छिपो जाकर, नियति का आदेश सिर झुका कर ग्रहण करना ही पड़ेगा । स्वदेशी होते हुये भी तुम स्वाधीनता के शत्रु हो । क्षमा तुम्हें नहीं मिलेगी ।

मुंशीगंज से ढाका । आश्रय लिया जाकर उयाड़ी रैंकिन स्ट्रीट के सदर मोहकमा के हाकिम सचिन चैटर्जी के बंगले में । चलो, जान बची । एक चिड़िया तक को यहाँ आने की खबर नहीं लगी है, इसलिए निश्चिन्त ।

परन्तु गृहस्वामी सचिन चैटर्जी निश्चिन्त न हो सके । इनकी प्रसिद्धि छिपी न थी । कौन जाने कब क्या हो जाये ? इसीलिये बार-बार सतर्क किया कि 'रात को सोने से पहले खिड़कियाँ अपने हाथों से बन्द करना न भूलियेगा । मैं आपसे अनुरोध करता हूँ ।'

'ठीक है। ठीक है।' अवज्ञापूर्वक हँसे कामाख्या सेन—'इतनी डरने की क्या बात है? बाहर फाटक पर सशस्त्र पहरा है, फिर भी डरते हैं? डरने की कोई बात नहीं है। इसके अलावा इतनी दूर आ कर यहाँ उनका पता पाने कौन जा रहा है?'

१९३२ साल। २७ जून।

काफी रात हो गई थी। सारी दुनिया गहरी नींद में सोई पड़ी थी।

अगर नींद न थी तो कामाख्या सेन की आँखों में। बेहद गरमी थी। ज़रा सी खिड़की खोलने में बुराई क्या है? निचली मंजिल है तो क्या हुआ, चारों तरफ पहरा तो है ही। यहाँ तक उनके बूट की आवाज़ आ रही है। फिर कैसा डर!

धीरे-धीरे कामाख्या सेन ने खिड़की खोल दी। आः, बाहर कितनी बढ़िया हवा चल रही है? जी खुश हो गया।

लेकिन यह क्या? कौन खड़ा है खिड़की के उधर? उसके हाथ में क्या है?

इतनी-सी आवाज़ तक न निकल सकी। उससे पहले ही रिवाल्वर गरज उठा—धांय! धांय! धांय!

अचानक गृहस्वामी सचिन चैटर्जी की नींद खुल गई। किसी चीज़ की आवाज़ हुई न? वे फौरन भाग कर कामाख्या सेन के कमरे की तरफ पहुँचे। बंगले का हर प्राणी उधर दौड़ा।

लेकिन कहाँ कामाख्या सेन? अचूक गोली के आघात से तब तक खत्म हो चुके थे।

पुलिस के सिपाही दौड़ आये। आया शासक सम्प्रदाय। लेकिन सब बेकार हुआ। अपराधी का कहीं नामोनिशान नहीं था। मानो हवा में अदृश्य हो गया हो।

सारा विक्रमपुर उस दिन कामाख्या सेन की हत्या का समाचार सुन कर धन्य-धन्य कर उठा। हजारों, लाखों लोगों ने चैन की साँस ली। असहाय नारियों ने धन्यवाद दिया। मुक्ति! मुक्ति! मुक्ति! अत्याचारी कामाख्या सेन पृथ्वी पर से विदा हो गया है।

सिर्फ कामाख्या सेन ही क्यों, जालियांवाला बाग के हत्याकाण्ड के नायक माइकेल ओ डायर ही क्या बच पाये थे?

नहीं—कभी नहीं। जिस पंच नदी की मिट्टी पर हजारों आदमियों का खून बहा था, वहीं के ऊधम सिंह ने इंगलैण्ड की जमीन पर खड़े होकर इसका बदला लिया था।

जालियांवाला बाग....

सैकड़ों हजारों नर-नारियों के खून से उस दिन रंग गई थी ऐतिहासिक जालियांवाला बाग की मिट्टी। वृद्ध, युवक, शिशु कोई नहीं बचा था। यहाँ तक कि गर्भवती नारियों को भी उस दिन छुटकारा नहीं मिला था। कोई नहीं बच पाया था पंजाब के

कुख्यात गवर्नर माइकेल ओ' डायर और उसके उपयुक्त साथी सेनाध्यक्ष ब्रिगेडियर जनरल हैरी डायर के पाशविक अत्याचारों से ।

अस्त्रहीन, लाचार निर्दोष नर-नारियों को बुलेट की चोट से धराशायी करके ही वह शान्त हो गया हो, ऐसा नहीं । शहर के प्रसिद्ध या परिचित नागरिकों तक को घर से खींच लाया था और छाती के बल चलने को बाध्य किया था । नाक रगड़वाना, युवकों को मारते-मारते बेहोश कर देना, स्त्रियों को बेआबरू करके थूकना—सभ्यता के मुखौटे पहने इन नर-पशुओं के लिए यह सब खेल था ।

सुन कर सारा देश स्तब्ध रह गया । उसके बाद ही हिमालय की चोटी से लेकर, कन्याकुमारी तक प्रतिवाद की तीव्र ज्वाला में जल उठा ।

'धिक्कार है तुम्हें ! हज़ार बार धिक्कार है । यही है तुम्हारी सभ्यता का नमूना ? तुम तो पशुओं से भी ज्यादा गये गुजरे हो ।'

करोड़ों लोगों का क्षोभ और उनकी वेदना, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के कण्ठ से सुनने को मिली । अपनी 'नाइट' की उपाधि का त्याग करते हुए उन्होंने बड़े लाट लार्ड चेम्सफोर्ड को लिखा—

'न्याय के नाम पर जो लोग हमारे देश के नर-नारियों को इस तरह अकथनीय ढंग से, अन्यायपूर्वक मारते हैं, उनके दिये सम्मान का बोझ ढो सकना मेरे लिए असम्भव है ।'

न केवल रवीन्द्रनाथ, सर शंकर नारायण जैसे ब्रिटिश भक्त नागरिक तक ने क्षुब्ध होकर बड़े लाट साहब की काउन्सिल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया ।—'आप लोग जिस तरह से हमारे असहाय देशवासियों की हत्या कर रहे हैं, उसके बाद शासन कार्य के किसी क़ाम से जुड़े रहना मेरे लिए संभव नहीं रह गया है । दया करके मुझे छुट्टी दीजिए ।'

उसके जवाब में ब्रिगेडियर जनरल की दम्भोक्ति और अट्टहास देखने लायक था ।—'मेरा दुर्भाग्य है कि उस दिन एक हजार दो सौ पचास राउन्ड गोली में से एक भी गोली नहीं बची । बचती तो उसका सद्व्यवहार मैं करता । रास्ता सँकरा था इसीलिये उसके अन्दर दोनों मशीनगनें नहीं ले जा सका । अगर ले जा सकता तो मुझसे ज्यादा खुश और कोई नहीं होता ।'

यही बात कही पंजाब के गवर्नर माइकेल ओ' डायर ने ।—'ठीक है ब्रिगेडियर जनरल ! नेटिवों को उचित सजा ही मिली है ।'

इंगलैण्ड के हाउस ऑफ लार्ड्स ने भी यही कहा । उन्होंने तो ब्रिगेडियर जनरल ओ' डायर का अभिनन्दन किया । इससे भी आगे बढ़ गए अभिजात्य वर्ग के नर-नारी । उन्होंने अभिनन्दन के साथ-साथ छब्बीस हजार पाउन्ड ब्रिगेडियर जनरल को पुरस्कार-स्वरूप भेजा । कारण, ऐसी असाधारण वीरता ।

वीरता के अलावा और क्या था ? इसीलिए यह वीर पुरुष यहीं शान्त नहीं हुए । कुछ ही दिनों में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया एक पुस्तक द्वारा—

'India as I knew it,' जिसमें उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि भारतवासी मनुष्य कहलाने तक के योग्य नहीं। बोझा ढोने वाले पशु से उनकी मर्यादा ऊँची नहीं है। हो नहीं सकती है। होना उचित भी नहीं है।

कितनी उम्र रही होगी तब ऊधम सिंह की? चौदह-पन्द्रह साल का किशोर ही तो था। उस किशोर के मन में विचित्र एक अनुभूति ने जन्म लिया। विचित्र चेतना जागी।

'मैं इसका बदला लूंगा।'

'जिन्होंने अकारण ही मेरे देश के सहस्रों भाई-बहनों की हत्या की है, एक दिन उनकी मैं अपने हाथों से हत्या करूँगा। उनके खून से होली खेलूंगा।'

उसके बाद ११ साल बीत गए। लेकिन ऊधम सिंह अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूले। वे वैसे ही अचल और स्थिर थे—'बदला मैं लेकर रहूँगा।'

लेकिन ब्रिगेडियर जनरल अब नहीं मिलेंगे। उन्हें महाकाल ने छीन लिया है। बाकी बचे हैं कुख्यात गवर्नर ओ' डायर। उसी की मैं हत्या करूँगा।

ओ' डायर तब थे कहाँ? नौकरी से रिटायर होकर खुशी से विलायत में रह रहे थे।

'मैं विलायत जाऊँगा।'

ऊधम सिंह अडिग थे। 'एक आदमी हाथों से बच कर चला गया है, दूसरे को किसी हालत में नहीं जाने दूँगा। मुझे उसकी ज़रूरत है। इसके लिए दुनिया के दूसरे छोर तक जाने को तैयार हूँ।'

पहुँचे विलायत। उसके बाद शुरू हुई इन्तजारी। कहाँ है वह शैतान? बस, एक मौका चाहिये। उसके सामने पहुँचने का एक मौका—बस।

अन्त में उस ऐतिहासिक साल १९४० की १३ मार्च की तारीख आ ही गई।

विलायत के कैक्सटन हॉल के ट्यूडर रूम में उस दिन भयंकर भीड़ थी। रॉयल सेन्ट्रल एशियन सोसाइटी और ईस्ट इण्डिया एशोसिएशन के प्रयास से एक सभा का आयोजन किया गया था। विषय-वस्तु थी—'अफगानिस्तान की राजनैतिक परिस्थिति।' सभापति थे लार्ड जेटलैण्ड।

सभा में तिल धरने को जगह न थी। निमन्त्रित अतिथियों में से बहुत लोग आ चुके थे। उनमें ऊधम सिंह भी मौजूद थे।

तीन बजे होंगे। केसिंग्टन गृह से निकलते समय ओ' डायर ने घर वालों को बताया—'Good bye. I shall be back in time for tea at 5'0 clock.'

शुरू हुई सभा की कार्यवाही। पहले उठ कर खड़े हुए लार्ड जेटलैण्ड। 'लेडीज एंड जेन्टिलमैन....

सहसा कुछ देख कर ऊधम सिंह की आँखें धक् से जल उठीं। कौन? कौन है? अभी-अभी कौन आया ट्यूडर रूम में? कौन है यह आदमी?

माइकेल ओ' डायर है न?

हाँ, वही है। जिसे अपने हाथों से मारने की इच्छा इतने दिनों से दिल में सँजोये फिर रहे हैं, वही नररक्त-पिपासु माइकेल ओ' डायर आकर उनके सामने खड़ा हो गया।

ऊधम सिंह का हाथ जेब में चला गया। आज कहाँ भाग कर जाएगा शैतान?

फिर भी अभी नहीं। काफी दूर है। भीड़ पार कर के आगे पास पहुँचना ज़रूरी है, वरना बच सकता है। नहीं, यह मौका चूकना नहीं है।

सभा समाप्त हो गई। अब लोग जाएँगे। विदा लेंगे।

विदा ही लेंगे। इस बीच ऊधम सिंह भीड़ धकेल कर आगे आ गए थे और दिवाल से पीठ टेक कर पोजीशन ले चुके थे। अब देर नहीं—समय हो गया है। वह रहे ओ' डायर। धीरे-धीरे इधर ही आ रहे हैं। और पास, और ज़रा। बस....यह ठीक है। सहसा ऊधम सिंह के खून में आग लग गई।

'इतनी इन्तजारी के बाद आज तुम मिले हो। अब देखो कि भारतवासी अपमान का बदला लेना जानते हैं या नहीं?'

पलक झपकने भर की बात थी। ऊधम सिंह के हाथ की रिवाल्वर गरज उठी—धाँय! धाँय! धाँय।

एक ही गोली में खतम हो गया, फिर भी सभी गोलियाँ चलाईं उन्होंने। शत्रु के अन्त का शक नहीं रखना चाहिए। बिल्कुल निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

शुरू हुआ हो-हल्ला। चिल्लाहट—'भागो, बचना है तो फौरन भागो। सर्वनाश हो गया है।'

ऊधम सिंह धीरे-धीरे आगे बढ़े और स्वयं जाकर श्वेतांग पुलिस के आगे आत्मसमर्पण किया। जीवन की एकमात्र इच्छा आज पूरी हो गई। आज वे खुश हैं। सुखी और सार्थक हैं।

इस समाचार ने भारत में तहलका मचा दिया। शाबाश ऊधम सिंह, शाबाश! तुमने कर दिखाया। तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती।

सचमुच उनकी तुलना नहीं हो सकती है। क्योंकि एक भी गोली व्यर्थ नहीं गई थी—सभी का सदुपयोग हुआ था। एक पीठ से घुस कर शरीर के बाँएँ हिस्से से बाहर निकल गई थी। दूसरी पेट में घुसी थी। दोनों का घाव गहरा था।

दूसरे ही दिन उन्हें मेजिस्ट्रेट के सामने ले जाया गया। उसके बाद जिरह शुरू हुई।

'तुम्हारा नाम क्या है?'

ऊधम सिंह भला उत्तर देने वाले थे? सभी कुछ की उपेक्षा कर दूसरी तरफ मुँह फेर कर खड़े रहे।

'तुम्हारे पास से पाये गये कागजों से पता चला है तुम्हारा नाम राम मुहम्मद सिंह आजाद है। पेशे से इंजीनियर हो। ठीक है न?'

चुप। जैसे कुछ सुना ही नहीं।

शुरू हुआ पता करने का काम। कौन है यह राम मुहम्मद सिंह आज़ाद ? इसका परिचय क्या है ?

कुछ दिनों बाद उसका परिचय ज्ञात हुआ। अपराधी पंजाब का रहने वाला है। नाम है—ऊधम सिंह। लेकिन ज्यादातर राम मुहम्मद सिंह आजाद के नाम से ही जाना जाता है। आज से नहीं, बहुत पहले से। और यह काम उसने सामयिक उत्तेजना-वश नहीं किया था, बल्कि स्पष्ट है कि बहुत दिनों से इसके लिये अपने को तैयार कर रहा था। सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता के नाते इस बीच जेल जा चुका था। क्योंकि राज्य की नीति के विरुद्ध भाषण दिया था। लेकिन यहाँ नहीं, भारत में।

फिर अप्रैल माह की दो तारीख को ऊधम सिंह कोर्ट में ले लाया गया। फिर प्रश्न पूछे गए।

'ऊधम सिंह, तुमसे एक बात पूछना चाहते हैं।'

'कौन ऊधम सिंह है ? मेरा नाम है राम मोहम्मद सिंह आज़ाद।'

'लेकिन हम जानते हैं तुम्हारा असली नाम ऊधम सिंह ही है। तो फिर हर जगह तुम अपना परिचय राम मोहम्मद सिंह आजाद के नाम से क्यों देते हो ?'

'मेरी मर्जी।'

'फिर भी—हर बात के पीछे कोई तर्क होता है।'

'तर्क मेरे पास भी है।'

'क्या तर्क है ?'

'ऊधम सिंह सुनने पर केवल पंजाबी ही समझ में आता है, लेकिन मैं अपने को इस छोटे से दायरे में सीमाबद्ध रखना नहीं चाहता हूँ। भारत में अलग-अलग धर्म के, जाति के लोग रहते हैं। कोई हिन्दू है, कोई मुसलमान है, कोई सिख, कोई ईसाई और कोई दूसरे धर्म पर विश्वास करता है। राम मोहम्मद सिंह आजाद नाम में सर्वभारतीय समन्वय का भाव निहित है। इसीलिये मैं इसी नाम से अपना परिचय देता हूँ।'

'तुम दोषी हो या निर्दोष ?'

'क्यों ? इसमें कोई सन्देह है क्या ?' हँस कर पूछा ऊधम सिंह ने।

'अपने अपराध के लिए तुम अनुतप्त तो नहीं हो ?'

'नेवर।' गरज उठे ऊधम सिंह—'कभी नहीं। बिल्कुल नहीं।'

'तुम जो कुछ कह रहे हो, सोच-समझ कर कह रहे हो न ?'

'बिल्कुल। मैं अपने काम के लिये बिल्कुल ही दुःखी नहीं हूँ। इस आदमी के विरुद्ध बहुत दिनों से मेरे मन में आक्रोश था। उस तरफ से मैंने बिल्कुल ठीक किया है।'

'तुम्हारी इस स्वीकृति का अर्थ क्या है, समझते हो न ?'

'खूब जानता हूँ। मैं मौत की परवाह नहीं करता। बुढ़ापे तक जीने से फायदा

भी क्या है ? ये लार्ड जेटलेण्ड को देखिये । बूढ़े होने पर भी जिन्दा हैं । क्या फायदा हो रहा है ? सोचा था लगे हाथ उन्हें भी मुक्त कर दूँगा । मैंने उनके पेट को लक्ष्य करके एक गोली चलाई भी थी, पर दुर्भाग्य से वे बच गए ।'

२१ अप्रैल को बो स्ट्रीट पुलिस कोर्ट द्वारा उन पर चार्ज लगाया गया । अपराध—इच्छाकृत नरहत्या ।

ऊधम सिंह खामोश रहे । जितना चाहें मुकदमा चला लें—मैंने जो ठीक समझा वह किया । बस—खत्म ।

यह देश भारत नहीं—विलायत था । इसलिये हत्याकाण्ड के लिए दण्डित होने पर भी एक श्रेणी के अंग्रेज थे जो असाधारण वीरता के लिए मन ही मन श्रद्धा करते थे उनकी । उन्हीं में से एक ने जेल में बन्द ऊधम सिंह से पूछा—

'कांग्रेचुलेशन माई डियर बॉय ! जिस तरह से तुमने अपनी जाति के अपमान का बदला लिया है, उसके लिए मैं मन ही मन तुम्हें सचमुच श्रद्धा करता हूँ ।'

'धन्यवाद ।' हँसे ऊधम सिंह ।

'लगता है तुम्हारा मुकदमा खत्म होते बहुत वक्त लग जायेगा ।'

'क्यों ? देर की क्या बात है ? बातें तो सब साफ हैं ।'

'अपने जीवन के लिए तुम्हें जरा भी दुःख नहीं होता ?'

'बिल्कुल नहीं । दुःख किस बात का ? मैंने तो अपने देश के आदमी को ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के विरोध में उपवास करके खत्म हो जाते देखा है । नहीं, मुझे कोई दुःख नहीं । मैंने जो कुछ किया है, ठीक किया है । यह तो मेरा महान् कर्तव्य था । देश की रक्षा करने के लिये प्राण देना तो मेरा सौभाग्य है ।'

हुआ भी वही । अन्त में ओल्ड बेइली सेन्ट्रल क्रिमिनल कोर्ट ने राय दी—प्राण-दण्ड । आदेश सुन कर ऊधम सिंह ने सिर तक नहीं झुकाया । कुछ कहा भी नहीं—उनका तो काम खत्म हो चुका था—अब जा कर छुट्टी मिली ।

१९४० साल । १ली जून को वे बहादुरों की तरह सीना ताने पेन्टनवेली जेल के फाँसी के तख्ते पर जा खड़े हुए ।

उनके होठों पर सिर्फ एक ही बात थी—'मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है, और इसका मुझे गर्व है ।'

अपना कर्तव्य पूरा कर ऊधम सिंह चले गये ।

श्रद्धा से सारे पंचनद ने सिर झुकाया । सिर झुकाया बंगाल ने । झुकाया भारतवर्ष ने ।

श्रद्धा प्रकट की हजारों अत्याचार सहे लोगों ने ।

'ऊधम सिंह, तुम धन्य हो । हम तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे ।'

सचमुच उन्हें आज भी कोई नहीं भूला है । उनके नाम पर आज भी लाखों लोग

श्रद्धा से शीश नवाते हैं।

लोग अमर शहीद मदनलाल धींगड़ा को भी नहीं भूले हैं। धींगड़ा ही पहले शहीद थे जिन्होंने विदेशी कारागार में फाँसी की सजा पाई।

अग्नियुग का पहला पर्व था।

कर्जन ऊली उन दिनों ब्रिटिश भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स के राजनैतिक ए० डी० सी० थे। सरकारी आदेशानुसार उनका काम था, विलायत में आए हुए नेटिव छात्रों की देख-भाल करना। वास्तव में उसका काम था जासूसी करना।

भारत में अग्नि-उत्सव शुरू हो गया था। इसी बीच तीन भाई दामोदर, बालकृष्ण और वासुदेव को फाँसी की सज़ा मिल चुकी थी। प्राण दे चुके थे विनायक रानडे, प्रफुल्ल चक्रवर्ती, प्रफुल्ल चाकी, खुदीराम, कानाई, सत्येन, चारु जैसे और भी कुछ प्रमुख लोग। इसका अन्त कहाँ है, कौन जाने। इसीलिए भारतीय छात्रों पर कड़ी निगरानी रखना ज़रूरी था।

हज़ारों तरह की बाधायें। यह न करो, वह न करो। कानूनी तौर से मनाही। देखते-देखते क्रमशः धींगड़ा तंग आ गए। उन्होंने एक दिन रक्त से लिख कर शपथ ली कि 'भारतवासियों के इस जातीय अपमान का मैं बदला ले कर रहूँगा।'

१६०६ साल। १ली जुलाई।

नेशनल एसोसिएशन के सालाना जलसे के उपलक्ष में लंदन के जहाँगीर हॉल में उस दिन हर तरह के नर-नारियों की भीड़ लगी थी। उन्हीं में कर्जन ऊली भी थे।

गाना खत्म हुआ। अब दूसरा प्रोग्राम शुरू होगा। परन्तु ऐसा होने से पहले ही धींगड़ा के हाथ का रिवाल्वर गरज उठा—धाँय! धाँय! धाँय!

बाधा देने आगे आए लालकाका नामक एक स्थानीय राजभक्त पारसी। फलस्वरूप उन्हें भी ऊली का रास्ता पकड़ना पड़ा।

१० जुलाई। धींगड़ा की पेशी हुई मेजिस्ट्रेट की अदालत में।

पूछने पर अदालत में खड़े होकर धींगड़ा ने जो निर्भीक युक्ति पेश की थी वह अग्नियुग के इतिहास में अमर रहेगी। कहा था—

'जिस प्रकार से जर्मनों को ब्रिटेन पर कब्जा करने का अधिकार नहीं है, उसी तरह से ब्रिटेन को भारतवर्ष पर दखल जमाने का कोई हक नहीं है। जो अंग्रेज मेरी जन्मभूमि भारतवर्ष को अपवित्र करना चाहता है, उसकी हत्या करना हमारे लिए न्याय के निर्देश के समान है। अंग्रेजों की कपटता, अशोभनीय मिथ्याचार और व्यंगात्मक व्यवहार देख कर मैं स्तब्ध रह गया हूँ।'

धींगड़ा यहीं नहीं रुके। ओल्ड बेइली के कोर्ट में खड़े हो कर तेजस्वी स्वरों में कहा था—I believe that a nation held down by foreign beyonets is in at perpetual State of war, since open battle is rendered impossible to a disarmed race, I attacked by surprise, since guns were denied to me, I drew forth my pistol and fired." मैं विश्वास करता हूँ कि विदेशी

बैनेट के दबाव से जहाँ एक जाति को दबाया जाता है वहीं उसे निरन्तर लड़ते रहने को बाध्य किया जाता है। लेकिन खुल कर युद्ध करने का मौका नहीं है क्योंकि कानून बना कर हमसे अस्त्र छीन लिए गए हैं। इसीलिए मैंने अचानक अपने शत्रु पर आक्रमण किया है। मुझे बन्दूक का लाइसेन्स नहीं दिया गया, इसीलिए यहाँ गरज उठी मेरी पिस्तौल।]

धींगड़ा और भी बोले—'The only lesson required in India at present is to learn how to die and the only way to teach it is by dying ourselves, therefore I die and glory is my martyrdom.' [वर्तमान काल में भारत को केवल यही शिक्षा प्राप्त करना है कि कैसे मरना चाहिए और इस शिक्षा को देने का एक ही तरीक़ा है कि स्वयं मृत्यु का वरण करो। इसीलिए मैं स्वयं मृत्यु का वरण कर रहा हूँ और यह आत्मनिवेदन सफल हो।']

अन्त में उन्होंने भगवान् से अन्तिम प्रार्थना की—'My only prayer to God is that I may be reborn of the same Mother and I may redie for the same sacred cause till the cause is successful and stands free for the good of Humanity.' [मेरी एकमात्र प्रार्थना है भगवान् से कि मैं इसी माता की कोख में बार-बार जन्म लूँ और बार-बार मृत्यु का वरण करूँ जब तक कि मेरी भारतभूमि स्वतन्त्र नहीं हो जाती है और संसार के सामने सम्मान और गौरव से प्रतिष्ठित नहीं हो जाती है।]

समय की गति सब कुछ बहा ले जाती है। आज अंग्रेज कहाँ हैं? कहाँ गया उनका संसार-व्यापी साम्राज्य—कुछ भी नहीं बचा है।

भले ही फाँसी के फंदे ने धींगड़ा की आवाज को बन्द कर दिया हो, इतिहास के पन्नों में वे अक्षय और अमर हैं। न केवल स्वदेश में, विदेशों में भी।

इतिहासकार डब्लू० एस० ब्लन्ट तक ने खुल कर प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है अपनी पुस्तक 'माई डायरीज़' में कि—'कोई ईसाई शहीद तक धींगड़ा से अधिक निःसंशयता और बड़प्पन की भावना लेकर जज के सामने खड़ा नहीं हो सकता है। धींगड़ा का 'मृत्यु दिवस' भारत में अवश्य ही शहीदों के तर्पण का दिन होगा।'

विश्वप्रसिद्ध राजनैतिक नेता लायेड जार्ज तक ने उस दिन चर्चिल से कहा था—'कोर्ट में कही गई धींगड़ा की बातें, देशप्रेम का सबसे उज्ज्वल और श्रेष्ठ प्रमाण हैं। इसकी तुलना हो सकती है सिर्फ प्लूटार्क जैसे मृत्युन्जयी वीरों के साथ।'

[My Diary : Part III, P. 288]

खैर-चलो, कामाख्या सेन के प्रसंग पर लौट चला जाए। उस दिन अपराधी का कोई पता नहीं चल सका। दूसरे दिन पता चला।

आश्चर्य की बात थी कि शुरू से आखीर तक बुद्धिमानी का परिचय देने के बाद, इस घटना के नायक कालीपद मुखर्जी दूसरे दिन एक तार करते समय पकड़ गए। उनकी भाषा सन्देहजनक थी। उसमें लिखा था—

'कामाख्या अपरेशन सक्सेसफुल। चिन्ता मत करना।'

तुरन्त पकड़े गए कालीपद मुखर्जी। इस ज़रा-सी भूल का ऋण चुकाया फाँसी के फंदे से लटक कर।

और भी एक किशोर विप्लवी ने इसी समय प्राण दिए बरिशाल जेल में। फाँसी से लटक कर। ये थे चरमुगरिया एक्शन केस में प्राणदण्ड आज्ञा प्राप्त—मनोरंजन भट्टाचार्य। तारीख थी १६३२ की २३ अगस्त।

२८ अगस्त को आक्रमण किया गया ढाका के एडीशनल एस० पी० मिस्टर ग्रैस्बी पर। परन्तु उनके बॉडीगार्ड की फुर्ती के कारण ग्रैस्बी के साथ-साथ हमलाकारी तरुण विनय राय भी घायल हो गए और तुरन्त पकड़ लिए गए।

उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला और वे भेज दिए गए अण्डमान। उनके दो साथी हरिपद और केशव राय हमेशा के लिए पुलिस की नज़रों से बच गए।

२८ सितम्बर को स्टैन्ड रोड पर हमला हुआ 'स्टेट्समैन' के सम्पादक मिस्टर वॉटसन पर।

लेकिन इसी को कहते हैं किस्मत। इससे पहले भी ऑफिस के फाटक के सामने एक बार उन पर हमला हो चुका था। कुछ ही दिन पहले, पर बच गए। बदले में युगान्तर पार्टी के निष्ठावान कार्यकर्ता अतुल सेन को उस दिन पोटासियम सायनाइड खा कर घटना-स्थल पर ही प्राण त्यागना पड़ा था।

मामूली-सी चोट लगी और वॉटसन बच गए। बिल्कुल ट्रेगार्ट की तरह। इस बीच पुलिस कमिश्नर चार्ल्स ट्रेगार्ट पर भी कम हमले नहीं हुए थे, पर ताज्जुब तो इस बात का था कि वह हर बार बच जाते थे। लगता है इस मामले में दोनों का भाग्य एक ही तार से जुड़ा है।

इस बार इस आक्रमण का अधिक मूल्य देना पड़ा। दल के दो कर्मी अनिल भादुड़ी और मोनी लाहिड़ी को जान देनी पड़ी। बहुतों को सजा भी मिली। लेकिन इसके बाद वॉटसन ने भारत में रहना उचित नहीं समझा। वे सीधे भागे बिलायत।

१८ नवम्बर को घायल हुए राजशाही के पुलिस चीफ मिस्टर ल्यूक। वे जेल के फाटक पर ही घायल हुए और इसके फलस्वरूप भोला राय को सात साल की सजा मिली।

फिर मेदिनीपुर। फिर वही बी० वी०। फिर वही संग्राम।

इस बीच दल में काफ़ी हेर-फेर हो चुका था। पहले, किसे, कब, कहाँ मारना होगा जैसी बातों का निर्देश दिया करते थे मँझले भइया हरिदास दत्त, रसमय सूर, निकुंज सेन, श्रीपति राय और प्रफुल्ल दत्त जैसे एक्शन स्क्वायड के सदस्यगण। ये लोग पीछे से हर काम का संचालन करते थे।

अब हेर-फेर होने का कारण था। हरिदास दत्त पकड़ गए थे। इतने दिनों तक गेरुआ वस्त्र धारण कर, गले में कंठी लटकाए, विशुद्ध गोविन्ददास बाबाजी बने बैठे थे। लेकिन अन्त में पुलिस को धोखा न दे सके। उन लोगों ने गोविन्ददास बाबा को पकड़ ही लिया।

उसके बाद नम्बर आया रसमय सूर का। वे भी अचानक पकड़ गए। उनकी गिरफ्तारी ने पार्टी की भीत हिला दी।

हेमचन्द्र घोष, मेजर सत्य गुप्ता, भूपेन्द्र किशोर, रक्षित राय जैसे नेता पहले ही से बक्सा दुर्ग में बन्द थे।

अब बुलावा आया सत्य बक्शी का। उसके बाद प्रफुल्ल दत्त, सुपति राय, निकुंज सेन, वीरेन गुहाराय, नीरद दत्त गुप्ता, कामाख्या घोष—एक के बाद एक। किसी को भी जेल के बाहर रहने देना ठीक नहीं। अंग्रेजों ने इन्हें खूब पहचान लिया था।

अब तक मेदिनीपुर केन्द्र का संचालन कर रहे थे प्रफुल्ल दत्त। उनकी जगह पर आए जतीश गुहा। ये वही जतीश गुहा हैं जो कि बाद में सुभाष के अन्तर्ध्यान होने के मामले से सम्बन्धित होने के कारण दिल्ली फोर्ट में ले जाए गए थे और मिलिट्री वालों के निर्मम अत्याचारों के कारण मर गए थे।

१९३३ साल। सभी नेता जेल में थे। फिर भी मेदिनीपुर पहले की तरह बेफिक्र था अंग्रेजों की ओर से। और भी कड़ा जवाब देना होगा।

लेकिन जवाब दें तो किसे दें? सच मानो मल्लिका, उस समय शासक वर्ग की हालत खराब थी। कोई मेदिनीपुर जाने को ही तैयार न था। सभी एक ही बात कहते —'कहाँ जाना है? मेदिनीपुर? माई गॉड। जानते तो हो उनकी प्रतिज्ञा—वहाँ जाकर बेमौके गोली खाकर कौन मरेगा? जरूरत नहीं है वीरता का प्रदर्शन करने की।'

अब क्या किया जाए? यह तो प्रेस्टिज का सवाल है? पता करो। और कोई श्वेतांग मेजिस्ट्रेट मिल सकता है या नहीं। परन्तु व्यर्थ ही हो रहा था खोजना। No young whiteman volunteered to come down to Midnapore to take charge of this district.

बहुत कोशिश और हाथ-पाँव जोड़ने के बाद अन्त में जो सज्जन तैयार हुए वे थे मिस्टर बर्ज।

'ठीक है मिस्टर बर्ज, अब तुम्हारा नम्बर है। जानते हैं, अब यह काम उतना आसान नहीं होगा, क्योंकि दो-दो बार दो लोगों के चले जाने से तुम लोग सतर्क हो गए हो। सशस्त्र पहरे का व्यापक प्रबन्ध किया है तुमने। पर हम कहाँ मृत्यु से डरे हैं? इसका प्रमाण दुबारा देने को तैयार हैं। हमने खून से लिख कर जो संकल्प किया है वह व्यर्थ नहीं जा सकता है।'

१९३३ साल की २ सितम्बर को इसका प्रमाण दिया।

पुलिस ग्राउन्ड। मोहम्डन क्लब वरसेज टाउन क्लब का मैच। इस मैच में कुछ श्वेतांग भी भाग लेने वाले थे, इसीलिए मैदान के चारों तरफ पहरे का कड़ा प्रबन्ध था।

इसके अलावा मैदान के एक ओर था जेलखाना, दूसरी तरफ थी पुलिस आर्मरी, कौन इस बेड़े को लाँघने का साहस कर सकता है ?

विप्लवियों के लिए भला कभी कोई चीज असाध्य रही है ? न जाने कब और कैसे दो किशोर बालक जनता की भीड़ में घुस कर अन्दर पहुँच गए, पुलिस जान भी न सकी।

जोन्स, लिन्टन, स्मिथ, जंगी कप्तान जैसे लोग पहले आ चुके थे। अब आए बर्ज। कुछ हो, मजिस्ट्रेट साहब है। इसलिए देखते ही देखते उनकी गाड़ी के चारों ओर भीड़ लग गई।

तुरन्त इसके साथ पोजीशन ले ली बी० वी० के दो किशोरों ने—अनाथ पाँजा और मृगेन दत्त। अनाथ ने पश्चिम की ओर से और मृगेन ने उत्तर की ओर से।

बर्ज तब तक गाड़ी से उतरे तक न थे। हाँ, उतरने की तैयारी कर रहे थे।—उतरने के लिए एक पाँव जमीन पर रखा ही था कि पश्चिम की ओर से अनाथ की पिस्तौल गरज उठी—धाँय ! धाँय ! धाँय !

इसी के जवाब में मृगेन ने उत्तर की ओर से गोली चलाई—धाँय ! धाँय ! धाँय !

दौड़ और दौड़। शुरू हुई दौड़ की प्रतियोगिता। सबसे आगे था वही जंगी कप्तान। उनके पीछे स्मिथ, लिन्टन, जोन्स वगैरह। लेकिन यह क्या ? ये लोग तो अपनी-अपनी मोटरों में चढ़ कर भाग लिए। कहावत है न, जान बची लाखों पाया।

धाँय ! धाँय ! नहीं, भाग नहीं सके जोन्स साहब। गोली लगने से पाँव टूट गया और वे मैदान के बीचोबीच बैठ गए।

और अनाथ ? अनाथ ने क्या किया, तुम सोच सकती हो मल्लिका ?

नहीं, भागती हुई जनता में घुस कर जान बचाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि बर्ज की जमीन पर लोटती काया पर चढ़ बैठे। उसके बाद एक-एक गोली उन पर खत्म कर दी। शत्रु को छोड़ो मत अन्त तक।

इधर रक्षक दल चौकन्ना हुआ। उनके हाथों में बन्दूकें, पर उधर ध्यान किसका है। मृगेन और अनाथ की इच्छा पूर्ण हो चुकी है—कर लें ये लोग जो कुछ करना चाहते हैं। अब तो इन्तजारी चल देने की है।

धाँय ! धाँय ! इसी के साथ वीर किशोरों का शरीर जमीन पर लोट गया। सारे चेहरे पर व्याप्त विजय भरी मुस्कान—कहीं कोई दु:ख नहीं, क्षोभ नहीं। और ऐसा हो ही क्यों ? मृत्यु तो उनके लिए एक खेल भर है। 'मरण रे तुँहू मम श्याम समान'—कवि का यह कथन तो इन्हीं के मुख से सुनना अच्छा लगता है।

खून से नहाया मेदिनीपुर। पास-पास लेटी तीन लाशें। सभी का लाल खून—यहाँ शासक और शासित का भेदभाव नहीं था।

अब अपनी असफलता पर पागल हो उठा शासक सम्प्रदाय। पहले पेडी, फिर डगलस और अब बर्ज। अब और नहीं। जला कर राख कर दो मेदिनीपुर को।

यही किया था उन लोगों ने मल्लिका। यातना, अत्याचार, उत्पीड़न द्वारा पैशाचिक प्रतिहिंसा का जो भयंकर ताण्डव सारे मेदनीपुर में शुरू हुआ वह मध्ययुगीय बर्बरता को भी मात देता है।

न केवल दैहिक अत्याचार। निरपराध जनता के घर-द्वार सब जला कर राख कर दिए उन्होंने।

अत्याचार से तंग आ कर न जाने कितने लोग मेदनीपुर छोड़ कर अन्यत्र चले गए थे।

'बताओ, ये लोग कहाँ हैं ? बताओगे तो इनाम मिलेगा। ढाई हज़ार, पाँच हज़ार, दस हज़ार—जितना कहोगे उतना। सिर्फ उनका ठिकाना दिखा दो। क्या—क्या कह रहे हो ? जानते नहीं हो। बेकार बात है। भला चाहते हो तो अभी बताओ वरना....'

वरना क्या करेंगे, इसका एक नमूना देखोगी मल्लिका ?

प्रमाण है सन्तोष बेरा। पुलिस के निर्मम अत्याचार के फलस्वरूप सन्तोष बेरा की मृत्यु हो गई। फिर भी उनके मुँह से एक शब्द नहीं निकला। ऐसा देश के लिए त्याग का नमूना कहीं मिलेगा ?

और ठीक इसी तरह से गए बी० वी० के एक और तरुण सदस्य—नवजीवन घोष। गोपाल नगर की जेल में वे कैद थे और उसी दशा में पुलिस के अमानुषिक अत्याचारों के कारण चल बसे।

इतना ही नहीं। १० सितम्बर को कर्फ्यू आर्डर जारी हुआ और इसी के साथ शुरू हुआ शहर के विशिष्ट नागरिकों को रातोरात नोटिस दे कर जिले से बहिष्कार करना।

श्रद्धेय मन्मथ दास, चारुचन्द्र दास, यतीन्द्रनाथ दास, जवाहरलाल अधिकारी, सतीश गुप्ता, चित्तरंजन दास, राममोहन सिंह, विनयजीवन घोष, नारायण मुखर्जी, प्रमथ बनर्जी, नरेन्द्रनाथ दास, अम्बिका प्रसन्न सेन, सचिन सेन, सत्येन्द्रनाथ सेन, किशोरीपति राय, सातकौड़ीपति राय जैसे किसी को भी छोड़ा नहीं गया। देशप्रेम का कर्ज चुकाने के लिए उस दिन इन सभी को अपना पैतृक घर छोड़ कर रास्ते पर आ कर खड़ा होना पड़ा।

मेदिनीपुर के ऊपर से जो आँधी चली थी वर्ज हत्याकाण्ड से, उसका कुछ प्रमाण देने के लिए मैं 'History of Midnapore' नामक पुस्तक से यह पैरा उतार रहा हूँ :—

The authorities [Midnapore] at the instigation of the European Association became mad with vengeance. 'Midnapore should be taught a lesson', was the cry of the white people in India. Through out the length and breadth of the country the White Press publicly demanded persecution of the people of Midnapore. The Anglo Indian Press, particularly the 'Statesman' and the 'Englishman' publicly

asked the Government to bring the leaders of the movement and shoot them down publicly without any trial. (मेदिनीपुर के सरकारी अफसरों पर यूरोपियन एसोसिएशन की ओर से दबाव पड़ा कि अत्याचार जारी रखो ।....मेदिनी-पुर को सबक सिखाओ, उन्हें पीस डालो । सरकार से 'स्टेटस्मैन' और 'इंगलिशमैन' जैसे अखबारों ने खुल्लमखुल्ला कहा कि बिना किसी मुकदमे के इन्हें गोली से भून डालो ।)

घटना के दिन ही गिरफ्तार हुए निर्मल जीवन घोष, रामकृष्ण राय, बृजकिशोर चक्रवर्ती, सनातन राय, सुकुमार सेन, कामाख्या घोष, नन्द लाल सिंह जैसे शहर के आदर्शवान युवा ।

इन पर मुकदमा शुरू हुआ । कुछ-कुछ गवाह जुटाए गए । यहाँ तक कि सरकारी गवाह भी कम न मिले । मीरजाफर तो सभी देश में हैं । इस बार सरकारी गवाह के रूप में जो मीरजाफर सामने आए उनका नाम था—शैलेशचन्द्र घोष ।

परन्तु उस समय के एक से एक मशहूर वकील—वीरेन्द्र शासमल, जे० सी गुप्ता, निशीथ सेन वगैरह की जिरह के आगे ये रेडीमेड गवाह कब तक ठहर सकते थे ? एक-एक करके सब भाग गए । पता चला पूरा मुकदमा ही बना कर तैयार किया गया था । यहाँ तक कि सरकारी गवाह शैलेश घोष की हर कही बात, अपनी ही बात को काटता था । किसी का किसी से मेल नहीं ।

अनुभवी वकील हँसे । बेकार का मुकदमा था । इसकी तो भीत ही कच्ची थी । हमारे लोगों को बेकसूर छोड़ने के अलावा कोई चारा नहीं ।

यह भी प्रमाणित नहीं होता है कि यह अपराधीगण बर्ज हत्या से सम्बन्धित थे । इनके पास से कोई गैरकानूनी हथियार बरामद नहीं हुआ । अदालत को ऐसी हालत में बेकसूर छोड़ना ही पड़ेगा ।

निश्चित समय पर ट्राइबुनल के चेयरमैन मिस्टर एच० जी० वेट ने राय दी ।

लेकिन यह क्या ? निर्मल जीवन घोष, रामकृष्ण राय और बृजकिशोर चक्रवर्ती को फाँसी की सजा दी गई है । सनातन राय, कामाख्या घोष, सुकुमार सेन और नन्द-लाल सिंह को सजा मिली है आजीवन कारावास की । नए एक मुकदमे की रचना करके शान्तिगोपाल सेन को भी आजीवन कैद की सजा दी गई थी ।

धिक्कार उठे बंगाल के सारे वकील ।

यह कोई कानून है ? यह कैसा न्याय ? इसने तो काजी के फैसले को भी मात कर दिया । जूरी द्वारा फैसला किया गया होता तो हरगिज ऐसा न होता ।

कौन उनकी बात सुनता, और सुनता ही क्यों ? शासकों की इज्जत भी तो रखनी है । अगर असली अपराधी नहीं मिलता है तो जो हाथ आए उसी को लटका दो ।

१९३४ साल । २५ अक्टूबर । भोर साढ़े पाँच बजे का समय ।

दर्पभरे कदमों से चल कर दो शिशु सिंह, रामकृष्ण राय और बृजकिशोर चक्रवर्ती जा कर फाँसी के तख्तों पर खड़े हो गए। कैसा डर ? कैसा आतंक ? यह जगह तो शहीद प्रद्योत भट्टाचार्य के स्पर्श से धन्य हो चुकी है।

दूसरे दिन निर्मल जीवन घोष।

इनके बड़े भाई नवजीवन घोष जेल में बन्दी थे, तभी पुलिस की मार के कारण शहीद हो चुके थे। आज छोटे भाई भी चले।

इसके लिए दुःख कौन करता है ? कहीं हाथ फैलाते ही स्वाधीनता मिलती है ? मूल्य तो चुकाना ही पड़ता है। इसी तरह कितनों ने मूल्य चुकाया है।

और शैलेश घोष ? मेदिनीपुर के इतने तरुणों की मृत्यु के लिए जो उत्तरदायी थे उनका क्या हुआ ?

अंग्रेज सरकार बेईमान नहीं है। कम से कम जितनों ने मीरजाफर का रोल अदा किया था, उनके साथ बेईमानी नहीं की। उन्हें तुरन्त सरकारी खर्च से विलायत भेज दिया कि और पढ़ कर आओ।

समय हुआ तो वे वापस भी आए। आते क्यों नहीं ? ऐसे ही लोगों की तो समाज सराहना करता है।

१९३४ साल की २ जुलाई को एक और विप्लवी तरुण ने प्राण गँवाए श्रीहट्ट जेल में। ये कुमिल्ला के विक्टोरिया कालेज के विज्ञान के छात्र असित भट्टाचार्य थे।

इनकी मृत-देह आवेदन पर आवेदन पत्र देने पर भी माता-पिता को नहीं दी गयी।

इस एक ही मुकदमे के फैसले के अनुसार विराज देव, विद्याधर और गौरांग दास को आजीवन कारावास का दण्ड मिला।

अंग्रेज डरने पर भी घबड़ाए नहीं। अब वे बंगाल की गद्दी पर बैठाने के लिए ले आये सर जॉन एन्डरसन को।

ये कोई मामूली आदमी नहीं थे। आयरलैण्ड के सिनफिन आन्दोलन का मुकाबला करने के लिए उन्होंने जो नीति अपनाई थी उसके लिए साम्राज्यवादी राज्य आज भी जय-जयकार कर रहे हैं।

हाँ, ऐसा ही शासक चाहिए। बंगाल जैसे देश के लोगों को सबसे पहले शिक्षा मिलनी चाहिए। देखना है किसमें कितनी ताक़त है।

इस चैलेंज को बी० वी० के नेताओं ने भी स्वीकार किया। यही सही। यही प्रमाणित हो जाए कि मेदिनीपुर के पास कितनी शक्ति है और भारत के पास साहस कितना है।

हम कम संख्या में हैं, हमारे पास मामूली-सा अस्त्र है। लेकिन शत्रु पर विजय पाने के लिए अस्त्र-शस्त्र और संख्या की नहीं, बल्कि ज़रूरत है प्राण-शक्ति की। वही

प्राण-शक्ति और साहस है या नहीं देख लो।

शासक के रूप में एन्डरसन को पाते ही बंगाल चेम्बर ऑफ कामर्स, यूरोपियन एसोसिएशन, स्टेट्समैन, इंगलिशमैन वगैरह प्रसन्न होने लगे।

'No track with the terrorists. Give the dog a bad name to hang him. If another European was murdered, detenues should be shot.'

इस सुर में सुर मिलाया कुछ खैरख्वाहों और राजभक्तों ने। यहां तक कि बंगला देश के तथाकथित जातीयतावादी संवादपत्र भी। देश के ज्ञानी-गुणी व्यक्ति भी पीछे न रहे। उन्होंने भी कहना शुरू किया कि एन्डरसन के आगे हमें कुछ जाना चाहिए। इन्होंने कहना शुरू किया कि—'ये लोग अराजकता फैला रहे हैं। यही इनका काम है। ये आतंकवादी हैं। इनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं।'

इसी को अभिशाप कहते हैं मल्लिका। वरना जिन लोगों ने देश की मुक्ति के लिए प्राण दे दिए, सबसे ज्यादा कष्ट सहे, यातना सही—उन्हीं को सरकार तो सरकार, देशवासी तक आतंकवादी कह रहे हैं! कह रहे हैं कि इनका लक्ष्य स्वाधीनता नहीं बल्कि देश में अराजकता फैलाना है!

खैर, एन्डरसन प्रसंग पर वापस चला जाए। बड़े जबरदस्त शासक थे। कुर्सी पर बैठते ही उन्होंने काम में हाथ लगाया। जैसे भी हो सकेगा, विप्लवियों का नामो-निशान मिटाना होगा। सिर्फ चोट और अत्याचार से काम नहीं चलेगा। विप्लवियों का नाश करने के लिए देश की युवा शक्ति का नैतिक पतन आवश्यक है, जिससे कि वह हमेशा, हमेशा के लिए पंगु हो जाएं।

अंग्रेजी शासन की मूलनीति ही है—डिवाइड एंड रूल। अर्थात् एक पक्ष को ठीक करने के लिए दूसरे पक्ष को बढ़ावा देना। यहां भी यही हुआ। विशेषरूप से मुसलमान सम्प्रदाय के जितने भी समाज विरोधी तत्व थे उन्हें घूस देकर वश में किया गया और पहले गांव-गांव में तैयार हुई विलेज गार्ड सेना। अर्थात् आज से तुम हुए गांव के रक्षक। अब इन पर अच्छी तरह से नजर रखो। सन्देह हो तो फौरन पकड़ा दो। बस तुरन्त पुरस्कार मिलेगा।

विलेज गार्ड। अच्छा खासा नाम था, लेकिन इसके असली रूप से देशवासी अनभिज्ञ न थे, मल्लिका। इसी विलेज गार्ड के प्रसंग पर विख्यात इतिहासकार डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार ने कहा था—'Sir John Anderson, the Governor of Bengal, set up a number of village guards to keep watch over the revolutionaries' [History of Freedom Movement, Vol III, P 511]

यह विलेज गार्ड दारोगा के भी बाप साबित हुए।

सरकार के आदेश से हिन्दू लड़कों पर नजर रखने के नाम पर धमकियां देने लगे। हर समय 'यह करो' 'यह न करो' जैसी हिदायतें शुरू हुईं। फलस्वरूप एक दिन जबरदस्त संघर्ष शुरू हुआ नारायणगंज शहर के पास देवभोग गांव में।

१६३४—१० अप्रेल। काफ़ी रात हो रही थी। चारों तरफ अंधेरा।

बड़ी सावधानी से गाँव के रास्ते से चले जा रहे थे बी० वी० के नेता तुल्य सदस्य सुकुमार घोष, मधु बनर्जी और गाँव के अत्यन्त विश्वासी आदमी मोती मल्लिक। बातचीत खत्म हो चुकी थी। अब सुकुमार और मोती बनर्जी अपने नारायणगंज के ठिकाने पर लौट जाएँगे।

अचानक कहीं से निकल आए विलेज गार्ड के बड़े मालिक रमजान मिर्जा। आते ही अपनी पल्टन के साथ कूद पड़े। न, कोई नहीं बच सकता। मैं हवलदार रमजान मिर्जा हूँ। मेरे हुकुम से तुम सब को गिरफ्तार किया जाता है।

एन्डरसन के शासनकाल में किसी के पास अस्त्र पाना भयंकर अपराध माना जाता था। इस की सजा मौत थी। आत्म-समर्पण का प्रश्न ही नहीं उठता था। इसलिए शुरू हुई भंयकर लड़ाई। दोनों पक्ष शक्तिशाली थे।

धाय! धांय! धांय! सहसा रिवाल्वर गरज उठी। इसी के साथ हवलदार साहब का प्राणहीन शरीर जमीन पर लोट गया। उसी मौके पर सुकुमार और मधु बनर्जी कहाँ गायब हो गए कोई जान भी न पाया।

मोती मल्लिक बच न सके। शत्रु के साथ उठा-पटक करते-करते वे बड़े रास्ते के किनारे जा गिरे और वहाँ से लुढ़कते हुए वे नीचे एक नाले में जा गिरे। इस बात का पता सुकुमार और मधु को भी नहीं लगा। जब पता चला तब तक वे कैद हो चुके थे।

खबर सुन कर शासक वर्ग में हलचल मच उठी। यह क्या एन्डरसन का ही पालतू रमजान हवलदार मारा गया? यह तो बहुत बड़ी बात है। अब?

अन्त में मोती मल्लिक के पिता राजकुमार मल्लिक से कहा कि 'अपने लड़के को आप समझाइए और सरकारी गवाह बन जाने को कहिए। हम वादा करते हैं उसे पढ़ने-लिखने के लिए विलायत भेज देंगे। इसी के साथ आपको १० हजार रुपये भी देंगे।'

'अरे, ये लोग कहते क्या हैं? राजकुमार मल्लिक के आश्चर्य का अन्त न रहा। मैं बाप होकर बेटे को बेईमानी करने के लिए कहूँ? माफ़ कीजिएगा। यह काम मुझसे नहीं होगा।'

'तो फिर लड़के को फाँसी की सजा मिलेगी।'

'सब तो उन्हीं की इच्छा से होता है।' कह कर सहसा राजकुमार मल्लिक ने ऊपर हाथ उठा कर जोड़े—'उनके मन में क्या है यह तो वही जानें लेकिन जान-बूझ कर अधर्म का समर्थन करूँ, यह मेरे लिए असम्भव है। बल्कि आज से सोचूँगा कि अपने लड़के को मैंने देश के लिए बलि पर चढ़ा दिया है।'

न तो किस्सा है न कहानी, पर यह सच है मल्लिका। वे एक साधारण व्यापारी थे। मामूली शिक्षा प्राप्त की थी। फिर भी यह जानते हुए कि लड़के की मृत्यु निश्चित है, उन्होंने अन्याय के साथ समझौता नहीं किया। यह थी उस समय के लोगों की विशेषता।

और आज ?

जिधर देखो उधर ही लोभ और स्वार्थपरता। अन्याय, अविचार, नीचता, हीनता सर्वत्र विराज रही है। आज लोभ और स्वार्थवश लोग बेझिझक जो कुछ करते रहते हैं, उस समय पराधीन देश के लोग इन बातों की कल्पना तक नहीं करते थे।

खैर, मोती मल्लिक के प्रसंग पर लौटा जाये। जैसा कि अभी तक होता आया है, वह भी उससे बच न सका। उसे फाँसी की सजा मिली। १५ दिसम्बर को प्रातःकाल यह कार्य भी सम्पन्न हुआ।

१६३४ साल। बंगाल का यौवन उस समय कारागार में बन्द था। नेताओं में से कोई भी बाहर न था। एक-एक करके सभी को पकड़ कर जेलों में भर दिया गया था। बंगाल की प्राणशक्ति गतिहीन हो गई।

बचे थे दो-चार भागे हुए बी० वी० के कर्मचारी। बी० वी० के यतीश गुहा और देवभोग घटना के सुकुमार घोष और मधु बनर्जी—जिन्हें पुलिस हजारों कोशिश के बाद भी नहीं पकड़ सकी थी।

अब यतीश गुहा सक्रिय हो उठे। अब देर करना ठीक नहीं होगा। शायद ज्यादा समय न मिल पाये। एन्डरसन की चुनौती का जवाब देना ही होगा।

अब की बार आई० जी० या जिला मेजिस्ट्रेट नहीं, बल्कि स्वयं बड़े साहब की ही डोर खींचनी होगी। समझा देना है कि हजार कोशिश क्यों न करो बंगाली अभी मरा नहीं है। वे मुँह बन्द करके मार नहीं खाते हैं, जरूरत समझते हैं तो मारते भी हैं।

कलकत्ते या उसके आस-पास वह कहाँ मिलेंगे ? इसीलिए चले जाओ दार्जिलिंग। वहाँ इन दिनों गर्मी की छुट्टियाँ बिता रहे हैं। अविलम्ब वहाँ पहुँच कर उन्हें पकड़ो। इस चुनौती का जवाब दो।

दल का निर्देश पाते ही ढाका से कलकत्ता होकर दार्जिलिंग की ओर चल दिये मनोरंजन बनर्जी और उज्ज्वला मजुमदार। ढाका के जयदेवपुर से सीधे जा पहुँचे निडर बालक भवानी भट्टाचार्य और रवि बनर्जी।

रवि और भवानी ठहरे जाकर जुबिली सैनीटोरियम में। उज्ज्वला और मनोरंजन का आश्रय-स्थल हुआ स्नो-वियू होटल।

उज्ज्वला मजुमदार और मनोरंजन बनर्जी देखने से लगते मानो भ्रमणप्रेमी भाई-बहन हों। इसके अलावा संगीत-प्रेमी भी। क्योंकि इनके साथ एक सुन्दर हारमोनियम भी था।

लेकिन इस हारमोनियम की उज्ज्वला इतनी हिफाजत क्यों करती है ? उसके भीतर क्या है ?

तुम्हारा अनुमान ठीक ही है, मल्लिका। वाकई में इसी के अन्दर छिपा कर रखा गया है विप्लवियों का वह अस्त्र, जिससे मारना है। पहला प्रयास किया गया फ्लावर-

गो एग्जिबीशन में। परन्तु सुविधा नहीं हो पाई। सशस्त्र ब्रिटिश सैनिकों से घिरे लाट साहब हाथ न लग पाये। पास पहुँचना संभव ही नहीं हुआ।

यह मौका मिला ८ मई को लेबंग के घुड़दौड़ के मैदान में। पता चला, उस दिन एन्डरसन वहाँ उपस्थित रहेंगे और विजयी घुड़सवार को पुरस्कार प्रदान करेंगे।

रवि और भवानी दर्शकों में टिकट लेकर जा बैठे। उन्हें सीट पर बैठा देख कर मनोरंजन और उज्ज्वला, दल के आदेशानुसार सिलीगुड़ी स्टेशन वापस चले गए। इनका काम खत्म। इन्हें सीधे कलकत्ता पहुँचना था।

गवर्नर की कुर्सी के दाहिनी तरफ दर्शकों के बैठने का प्रबन्ध था। बीच में एक नीची सी दीवाल थी। अधिकांश दर्शक अंग्रेज थे। कुछ जी हजूरी करने वाले राजा-महाराजा भी थे।

इसके अलावा सैकड़ों पुलिस सार्जेन्ट, एडीकंग और गुप्तचर। कुछ भी कहिए—गवर्नर थे—इसीलिए सतर्क रहना तो जरूरी था ही।

इधर किशोर रवि और भवानी भी थे दृढ़प्रतिज्ञ। उनके हृदय में साहस की लहरें हिचकोले मार रही थीं। वह रहा शैतान अपने कर्मचारियों से घिरा। उस दिन मौका नहीं मिला था, लेकिन आज बच कर कहाँ जाएगा?

पर दूरी बहुत थी। रिवाल्वर के रेन्ज में नहीं आ रहा था वह। थोड़ी सी कोशिश करनी होगी। क्योंकि ऐसा मौका शायद ही फिर कभी मिले।

ठीक समय पर लाट साहब कुर्सी से उठे। घुड़दौड़ खत्म हो चुकी थी। अब पुरस्कार वितरण करना था।

तुरन्त भवानी भी उठ खड़ा हुआ। चेहरे पर दृढ़संकल्प के भाव। यही मौका है।

फिर भी दूरी बहुत है। और आगे जाना चाहिए, पर जाएँ कैसे? चारो तरफ तो पहरेदार, गुप्तचर, मुसाहिबों की भीड़ लगी है। आगे बढ़ेंगे तो लोग शक कर सकते हैं। तब तो सारा किया-धरा मिट्टी में मिल जाएगा। इसलिए यहीं से निशाना साधना होगा।

बस, क्षण भर बीते होंगे। उसके बाद ही कान के पर्दे फाड़ती आवाज गूँज उठी—धाँय! धाँय!

हर आदमी विस्मित—ताज्जुब की बात है। इतना कड़ा पहरा, इतने आदमी, फिर भी? बस उसके बाद ही चिल्लाहट, चीख-पुकार शुरू हुई।

'पकड़ो, जल्दी पकड़ो।'

एक तो १६३४ साल, उस पर एन्डरसन—सतर्कता की कोई कमी नहीं थी।

तुरन्त गवर्नर के एडिकंग साहब ने एक के बाद एक चार गोलियाँ चलाईं भवानी पर निशाना तान कर। भवानी गम्भीर रूप से घायल होकर वहीं गिर गए। इधर रवि की पिस्तौल गरज उठी—धाँय! धाँय!

'माई गॉड', गवर्नर साहब अपनी स्टेनो मिस थर्टन के पीछे जा छिपे। दोनों

हाथों में मुँह दबा रखा था। गोली उनके होठों को चीरती निकल गई थी।

कहना व्यर्थ होगा कि थर्टन को भी अपने मालिक का अनुसरण करना पड़ा। गोली लगने से वह भी वहीं बैठ गईं। बैठे एक और व्यक्ति। वे थे अंगरक्षक एक श्वेतांग सार्जेन्ट। रवि की गोली के वे तीसरे शिकार थे।

तभी स्टूयडस् अपनी कुर्सी से उठे और अचानक रवि पर झपटे। तुरन्त कर्त्तव्य-परायण अंगरक्षक भी मदद के लिए पहुँच गए।

अब तो अपराधी फँस गया है—अब वीरता प्रदर्शित करने में कौन सी कठिनाई आएगी? उन्हें मारते-मारते अधमरा कर देना क्या मुश्किल काम है?

इधर भवानी को अस्पताल ले जाया गया था। सिपाही घेर कर खड़े थे। बेहोश है तो क्या हुआ, है तो बंगाली ही। इनका कोई भरोसा नहीं।

होश में आते ही भवानी ने क्या पूछा जानती हो मल्लिका? नहीं, बाप-माँ, भाई-बहन किसी की कोई बात नहीं। पूछा छोटा सा एक प्रश्न—'Is Anderson still alive?'

खबर सुनते ही सारे देश में तहलका मच गया। अंग्रेज सरकार की गर्वभरी चुनौती का उत्तर दिया है बंगाल के दो दुधमुँहे किशोरों ने? शाबाश।

एन्डरसन मरा नहीं। मरा नहीं तो क्या हुआ—एक एन्डरसन जाएगा तो दूसरा आएगा। यहाँ तो सब एक हैं। असली चीज़ है अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाना। हिंसक और पाशविक व्यवहार पर चोट करना। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो बंगाल के इन दो किशोरों ने जिस तरह साम्राज्यवादियों का घमण्ड चकनाचूर कर दिया था, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।

मनोरंजन और उज्ज्वला कहाँ गए?

सिलीगुड़ी स्टेशन। शाम होने ही वाली है। कलकत्ते के लिए ट्रेन बस छूटने वाली है। अचानक विशाल सेनावाहिनी आ पहुँची। जरूरी मैसेज आया है। एक लड़की को गिरफ्तार करना है। बड़ी खतरनाक किस्म की लड़की है। पिंक रंग की साड़ी पहन रखी है उसने। आँखों में हाईपावर का चश्मा है। रंग खूब गोरा है। नाम है कुमारी उज्ज्वला मजुमदार।

'हर कमरे की बारीक़ी से जाँच करो। देखते ही पकड़ लो।'

यह रही एक लड़की। चुपचाप एक कोने में बैठी है। रंग भी खूब साफ है। लेकिन चश्मा कहाँ पहने है? न ही पिंक रंग की साड़ी। मामूली सी एक सफेद साड़ी पहन रखी है इसने तो।

नहीं, नहीं, यह लड़की नहीं है। चलो, अगले कमरे की तलाशी लेने।

उस समय बच जरूर गए, लेकिन अन्त तक बचना मुश्किल हो गया। एक दिन एक पिंक रंग की साड़ी मिली ख्यातनामा कांग्रेस सदस्या शोभारानी दत्त के यहाँ से। तुरन्त गिरफ्तार। एक नहीं, दोनों।

गिरफ्तार हुए ढाका और कलकत्ते में बहुत लोग।

देवभोग घटना के नायक सुकुमार, मधु बनर्जी, और उज्ज्वला मजुमदार तथा मनोरंजन बनर्जी, सुशील चक्रवर्ती वगैरह, कोई नहीं बच पाए।

सुकुमार घोष को पकड़ा मटियाबुर्ज के राजेन गुहा के घर से। राजेन बाबू को भी नहीं छोड़ा गया। इन्हीं ने तो विनय बोस, बिमल दासगुप्ता को आश्रय दिया था। इस बार वे अपने पुत्र गिरीन्द्र गुहा के साथ पकड़ लिए गए। अपराध था—भागे हुए अपराधियों को आश्रय प्रदान करना।

छोड़ दिए गए जतीश गुहा। पर पुलिस की नजर उन पर लगी रही। क्योंकि ऊपर से देखने में जितने सीधे-साधे लगते हैं, उतने शायद ही हों। खैर, जाल तो बिछा ही है—भाग कर कहां जाएँगे ?

बाकी सबको छोड़ कर भवानी भट्टाचार्य, रवि बनर्जी, मनोरंजन बनर्जी, उज्ज्वला मजुमदार, सुकुमार घोष, मधु बनर्जी और सुशील चक्रवर्ती पर मुकदमा चला।

रवि को डान्डी में लाया गया। पुलिस की मार ने उन्हें हमेशा के लिए पंगु बना दिया था। कचहरी में एन्डरसन के घमण्ड को फिर एक बार चूर-चूर करते हुए तरुण विप्लवी भवानी भट्टाचार्य ने तीव्र स्वरों में घोषित किया—'I came to assassinate the Governor. My object was to murder him. I have nothing more to say. None but myself and Rabi took part in the action connected in this conspiracy.' [Amrita Bazar Patrika, 26. 8. 34]

(मैं गवर्नर की हत्या करने आया था। मेरा उद्देश्य था उनकी हत्या करना। इससे ज्यादा मुझे कुछ कहना नहीं है। मेरे और रवि के अलावा इस काम में और कोई नहीं जुड़ा था।)

१२ सितम्बर को फैसला सुनाया गया। जिस बात की आशंका थी वही हुआ। रवि और भवानी को मृत्युदण्ड। लेकिन एक बार नहीं—दो-दो बार। एन्डरसन के शासनकाल में किसी के पास से आग्नेयास्त्र निकलने की सजा थी, मृत्युदण्ड। इनका दूसरा अपराध था हत्या करने का प्रयास। इसीलिए इन दो अलग-अलग अपराधों की सजा अलग-अलग मिले, इसके लिए दो बार उन्हें फांसी के फंदे से लटकाया जाएगा।

बड़ी करुणा दिखाई मनोरंजन बनर्जी पर। उन्हें एक ही बार फांसी लगेगी। उज्ज्वला पर और भी अधिक कृपा की गई। उन्हें बीस वर्ष का आजीवन कारावास और १४ वर्ष का सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया।

सुकुमार घोष और मधु बनर्जी को १४ साल का आजीवन कारादण्ड। सुकुमार का यह दण्ड दोहराया भी जाएगा। सुशील चक्रवर्ती को १२ वर्ष का आजीवन कारादण्ड।

हाईकोर्ट ने इसमें कुछ रद्दोबदल किया। मनोरंजन को फांसी की जगह आजीवन कारावास की सजा हुई। उज्ज्वला और सुकुमार को केवल १४, १४ वर्ष की सजा हुई। बाकी का जैसा था वैसा ही रहा।

अब झंझट खड़ा किया पादरियों ने। खासतौर से मिसेज फ्लिंन्च ने—'रवि

हमारे ढाका बैप्टिस्ट मिशन का अत्यन्त मेधावी छात्र है। मिशन के लड़के को फांसी की सजा नहीं दी जा सकती है।'

एन्डरसन ने दबाव में आकर बिरादरी वालों की बात मान ली। 'फांसी की जगह पर आजीवन कारावास का दण्ड दे कर मैं उसे अन्डमान भेजने का आदेश दे रहा हूँ।'

फिर भी मिशनरी वाले खुश न हो सके—'इस राय को भी रद्द करना ही होगा।'

साल भर तक इधर-उधर करते रहे पर अन्त में उन्हें झुकना पड़ा। एन्डरसन बोले—'ठीक है, मैं उन्हें अन्डमान से लौटा लाने की व्यवस्था करवाता हूँ। पर मेरी दो शर्तें हैं। एक—जेल के गेट से सीधे जा कर चढ़ना पड़ेगा विलायत जाते जहाज पर। दूसरा—जब तक हुक्म न दिया जाए अपने देश वापस नहीं आएगा।'

१६३५ साल। ३ फरवरी। राजसाही सेन्ट्रल जेल में भवानी की वह अन्तिम रात थी।

उज्ज्वला मजुमदार उन दिनों मेदिनीपुर के सेन्ट्रल जेल में थी। सहयोगी भवानी के जीवन की अन्तिम घड़ी का ध्यान कर उनके हृदय पर क्या बीती थी, यह उन्होंने लिखा था—

'....उसके बाद ? उसके बाद राजसाही जेल की एक असह्य रात। बहुत दूर, दूसरे एक जेल में बैठी-बैठी मैं मन ही मन सुनती रही—गहरी रात को विदेशी शासकों ने भवानी के गले में फंदा डाल दिया। क्षण भर में उसका सोने सा बहुमूल्य शरीर धूल में लोट गया। उस रात का इतिहास गौरवमय है, सुन्दर है, अश्रुजल सा धुला और स्वच्छ है। उस रात मैंने रवीन्द्रनाथ के इस गीत की कड़ियों को समझना चाहा था जिसे भवानी अक्सर गाया करता था—

> 'थके हुए हाथ थरथराएँगे नहीं
> न टूटेगी वीणा,
> नवीन प्रभात की प्रतीक्षा में
> जागूंगा सारी रात
> दीप नहीं बुझेंगे।'

फिर भी दीप बुझ गया। कठिन फांसी के फंदे ने भवानी के कण्ठ की वीणा को खामोश कर दिया। लेकिन अदृश्य रूप से अदृश्य प्रकाश का जो दीप उस दिन जल उठा था, उसके मधुरकण्ठ से जो विप्लववाणी निकली थी, उसे रोकने की क्षमता किसी युग की किसी शक्ति के वश में नहीं।'

अब मैं तुम्हें विप्लवी संस्था अनुशासन समिति के बारे में कुछ बताऊँगा, मल्लिका।

तुम देख रही होगी कि इन दलों के कार्य की तुलना में अनुशीलन समिति का कार्य कोई खास महत्त्वपूर्ण नहीं था।

इसका कारण क्या था ?

कारण कुछ और नहीं, बल्कि इनका आजकल लक्ष्य था, छुटपुट आक्रमण न करके इसे सर्वव्यापी आन्दोलन का रूप प्रदान करना। सशस्त्र सैनिक विद्रोह होना चाहिए, जिस तरह एक बार रासबिहारी बोस के नेतृत्व में हो चुका था।

१६३१ साल से ही इसकी तैयारी होने लगी थी, जब कि सभी नेतागण जेल में बन्द थे।

इस तरह से बन्दी जीवन से समझौता नहीं किया जा सकता है। परिकल्पना को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिए जेल की चहरदीवारी से बाहर निकलना होगा। उसके बाद ही लक्ष्य की ओर बढ़ना है।

योजना के अनुसार विप्लवी पूर्णानन्द दासगुप्ता का आदेश पा कर सबसे पहले बक्सा कैम्प से भागे कृष्णपद चक्रवर्ती और जीतेन गुप्त।

फिर भागे प्रभात चक्रवर्ती और परेश गुप्ता। और अन्त में नम्बर आया पूर्णानन्द का। जैसे भी हो, जेल से भागना ही है।

अलिपुर जेल में रहते समय यह योजना सफल हुई। भयंकर पानी बरस रहा था। उसी में एक-एक के कन्धों पर पाँव रख-रख कर खड़े होना और अपने साथी निरंजन, हरिपद तथा सीतानाथ दे को ले कर भाग जाना, किसी डिटेक्टिव कहानी से कुछ कम नहीं।

उधर पगली घंटी बजने लगी। होशियार। कैदी भाग रहे हैं। वह रहे, दीवाल पर चढ़ रहे हैं। तैयार हो जाओ।

घंटी सुनते ही सिपाहियों का जत्था दौड़ा-दौड़ा आ पहुँचा। लेकिन किसमें हिम्मत है कि एक भी कदम आगे बढ़े। गेट पर सीना ताने दल के कर्त्तव्यनिष्ठ कर्मचारी अमूल्य सेन खड़े थे। जान रहते वहाँ से वह नहीं हटेंगे।

मार खाते-खाते उनका सारा शरीर चिथड़े-चिथड़े हो गया, फिर भी अन्त तक वे वहाँ से हिले नहीं।

एक बड़े काम के लिए सहयोगी पूर्णानन्द, निरंजन, हरिपद और सीतानाथ दे का बाहर जाना बहुत जरूरी है। कितना भी अत्याचार करना चाहें कर लें, इन लोगों को निकल भागने का मौका तो देना ही होगा।

अमूल्य सेन की दृढ़ता व्यर्थ नहीं गई मल्लिका। पूर्णानन्द इन सभी के साथ अपने जगहल केन्द्र में पहुँचने में सफल हो गए। बस, जा न सके थे हरिपद। वे बालीगंज स्टेशन के पास एक रास्ते पर पकड़ लिए गए।

बाकी लोग भी ज्यादा दिनों तक छिपे नहीं रह सके। टीटागढ़ से पलट कर चोट आई १६३६, २० जनवरी को। पूर्णानन्द वगैरह फिर पकड़े गए।

पकड़ गई कुमिल्ला की भागी हुई विप्लवकन्या कुमारी पारुल मुखर्जी। पकड़े जाने पर भी उन्होंने कुछ गुप्त कागजात नष्ट कर दिये थे पहले ही।

दो मुकदमे शुरू हुए।

एक तो अन्तर्प्रादेशिक षड्यन्त्र का मामला था, जिसके लिए अभियुक्त घोषित हुए पूर्णानन्द दासगुप्ता, सीतानाथ दे, प्रभात चक्रवर्ती, परेश गुहा, जीतेन गुप्त, हरिपद दे, धीरेन भट्टाचार्य जैसे ४० लोग।

दूसरा था टीटागढ़ षड्यन्त्र का मुकदमा। इसमें अपराधी थे उनतीस लोग।—ये पूर्णानन्द दासगुप्ता, प्रीतिरंजन दास पुरकायस्थ, देवप्रसाद सेनगुप्ता, शान्तिरंजन सेन, प्रफुल्ल कुमार सेन, पारुल मुखर्जी, श्याम विनोद पाल चौधरी, प्रनव कुमार राय, कालीपद भट्टाचार्य, हरेन्द्रनाथ मुन्शी, विभूति दत्त, निरंजन घोषाल, धनेश भट्टाचार्य जैसे प्रमुख विप्लवीगण।

किसी को नहीं छोड़ा गया। छोड़ देने का प्रश्न भी नहीं उठता था। सभी को लम्बी अवधि की सजा दी गई। यद्यपि यह प्रमाणित न हो सका कि इन्होंने कुछ किया था।

परिस्थिति पलटी १६३७ के अन्तिम भाग में। जब देशव्यापी आन्दोलन शुरू हुआ। शासन के नाम पर इस तरह से युवकों को बन्द करना अन्याय है।

हजारों युवक-युवतियां क़ैद थीं। बिना मुकदमे के क़ैदियों की तादाद भी कुछ कम न थी। इसके अलावा कितने तरुण तो तहखानों में बंद थे, जिनकी कोई गिनती न थी। उस पर अन्डमान का आजीवन कारावास भी भरा पड़ा था।

यही एक बात सुनने को मिली लंदन के पार्लियामेन्ट के लेबर पार्टी के सदस्यों के मुख से।

'यह कैसा नमूना है अंग्रेज शासन का? देश की युवाशक्ति को इस तरह से कैद रखोगे तो अंग्रेजी शासन की व्यर्थता ही सिद्ध होगी संसार की नजरों में?'

सरकार और कैदियों के बीच समझौता कराने के लिए गांधीजी आगे आए।

'इस तरह से हजारों युवकों को कैद रखने के अर्थ हुए देश की श्रेष्ठशक्ति का दमन करना और उनसे कांग्रेस को वंचित करना। जैसे भी हो उन्हें मुक्त करना ही होगा।'

अंग्रेज शासकों की शर्त थी—'ठीक है, पर एक शर्त पर। इन लोगों को कहना पड़ेगा कि भविष्य में वे लोग ऐसा नहीं करेंगे।'

आलोचना की सुविधा को नजर में रखते हुए सुरेन घोष, ज्योतिष घोष, रमेश आचार्य, रवि सेन, मनोरंजन गुप्त, भूपेन्द्र किशोर, रक्षित राय, जीवन चटर्जी, मेजर सत्य गुप्ता, भूपति मजुमदार, त्रैलोक्य चक्रवर्ती, पूर्णदास, अरुण गुहा, भूपेन दत्त, प्रतुल भट्टाचार्य जैसे समस्त State Prisoners को (Regulation III के अनुसार कैद) बंगाल के बाहर स्थित जेलों से लाया गया। हिजली बन्दी-गृह में।

लेकिन व्यर्थ हुआ यह प्रयास। कोई भी गांधीजी के इस प्रस्ताव के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं हुए।

उन्होंने स्पष्ट रूप से बता दिया कि 'किसी शर्त के आधीन हम मुक्ति नहीं चाहते हैं। भविष्य में क्या करेंगे, न करेंगे इसका उत्तरदायित्व हमारा है। हम किसी तरह का वचन नहीं दे सकते।'

दूसरे ही दिन अखबारों में छप गया—'The Revolutionary Leaders refused Conditional Release.'

फिर एक बार प्रेसीडेन्सी जेल लाए थे लेकिन एक ही नतीजा निकला। अर्थात् 'कोई शर्त नहीं, कोई वादा नहीं। पहले मुक्ति चाहिए फिर दूसरी बात करेंगे।'

अन्त में सरकार बहादुर को ही झुकना पड़ा। वे ही कैदियों को छोड़ने के लिए तैयार हो गए। फलस्वरूप क़ैदियों को छोड़ा जाने लगा। लेकिन एक साथ नहीं—थोड़ी-थोड़ी संख्या में।

सिर्फ छोड़े नहीं गए, जिन्हें लम्बी क़ैद की सजा मिली थी। क्योंकि इस बीच विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। इस हालत में ऐसे खतरनाक युवकों को मुक्त करने का खतरा उठाने को सरकार तैयार नहीं थी।

यहीं समाप्त करता हूँ अग्नियुग की कहानी। दूसरे खण्ड में फिर सुनना। आज बार-बार बुजुर्ग विप्लवी वीर निकुंज सेन का वह लेख याद आ रहा है जिसे उन्होंने मासिक पत्रिका 'उल्टोरथ' के 'अग्नि अंक' के लिए लिखा था—

'स्वाधीनता संग्राम के लिए जिन लोगों ने जान की बाज़ी लगा दी थी, दुःख पर विजय प्राप्त कर, दुःख से परे मुक्ति की खोज में चले दिए थे....उन्हीं से तो भारत-वर्ष की रचना हुई है। भारतवर्ष के इतिहास में अगर भारतवर्ष ही नहीं रहा तो वह कैसा इतिहास, किसका इतिहास ?

बंगाल के विप्लव यज्ञ के सीने में होम की अग्नि प्रज्वलित कर रखी है इन्हीं विप्लवी शहीदों ने। उनमें से कितनों के बारे में हम जानते हैं ? जिनका नाम सुना है, उन्हीं के वैचित्र्यपूर्ण जीवन का कितना ज्ञान है हमको ? जिनका नाम नहीं सुना है उनकी संख्या का अनुमान तक नहीं लगाया जा सकता है। पर क्या कभी देश और जाति उन्हें भूल सकेगी ? उन्हें अस्वीकार करेगी ?'

अस्वीकार नहीं किया था ? दुःख के साथ लड़ते हुए, मृत्यु को तुच्छ मान उस दिन जितनों ने विजय-यात्रा का पथ प्रशस्त किया था, उनमें से कितनों को स्वाधीन भारत के लोगों ने स्वीकृति दी है ?

सरकार की प्रचेष्टा से प्रचुर अर्थ व्यय करके, भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम का जो इतिहास लिखा गया है, उसमें कहाँ जगह मिली है बंगला देश के अगणित मृत्युञ्जयी शहीदों को ?

एक पृष्ठ भी क्या उन पर नष्ट किया गया है ? कहाँ दी गई है उन्हें स्वीकृति या मर्यादा ?

हँसते-हँसते उन्होंने मृत्यु को वरण कर लिया था। भयभीत, आतंकित भारत-वर्ष को उस दिन साफ-सुथरा पथ दिखाने का रास्ता क्यों न दिखाया हो, आज स्वाधीन भारत के भाग्य-विधाताओं की नजरों में उसकी कोई क़ीमत नहीं।

ऐसी हीन भावना क्यों ? इसका कारण क्या है ?

'मिस-गाइडेड' नेता सुभाष और उनके अनुयायी बंगला देश के तथा-कथित 'भ्रष्ट' और 'बहके' विप्लवी समाज ने, और जो भी किया हो कम से कम हिसाब जोड़-तोड़ कर उन्होंने देशसेवा नहीं की थी। क्या यही उनका अपराध था ?

'मृत्युञ्जय जिनके प्राण हैं,
सब तुच्छता से ऊपर, जिन्होंने अमर दीप जलाया है,
उन्हीं के बीच उन्हीं से,
तुम्हारा नित्य परिचय हो।
उन्हें नीचा अगर समझोगे,
इसी अपमान के कारण आजीवन बन्दी रह जाओगे।'

—रवीन्द्रनाथ

'कम्यूनिस्टों को आप लोग पहचान लीजिए। याद रखिएगा, इन्हीं लोगों ने उस दिन नेता जी को जापानियों का दलाल कह कर व्यंग कसा था।'

मल्लिका, तुमने भी इस तरह की शिकायतें यहाँ-वहाँ सुनी होंगी। खास-तौर से निर्वाचन के दिनों में। उस वक्त एक किस्म के वक्ता इसी को हथियार बना लेते हैं।

वैसे यह अभियोग सच है। न सिर्फ सच है, कटु-सत्य है। सुभाष का विरोध करने के लिए, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने उस समय जो भूमिका निभाई थी, इतिहास उसका साक्षी है।

इस मामले में क्या अभियोग लगाने वालों की भूमिका का समर्थन किया जाना चाहिए था ?

'सुभाष बोस के लौटते ही मैं खुली तलवार ले कर उनका रास्ता रोकूंगा ?' किसने कहा था ? पंडित जवाहर लाल नेहरू ने नहीं कहा था ?

'कुछ भी हो, सुभाष बाबू देश के शत्रु नहीं हैं।' ऐसा किसने कहा था ? निर्वाचन में हार जाने के बाद स्वयं गांधीजी ने यह वक्रोक्ति नहीं की थी ?

तब ? तब फिर एकतरफा दोष क्यों ? क्या फर्क है ? कौन सा, कैसा विरोध ? उस दिन सुभाष को कांग्रेस से क्यों वहिष्कृत क़िया गया था ?

निर्वाचित सभापति के विरुद्ध उस दिन, अहिंसात्मक नीति के समर्थक, दक्षिण-पंथी कांग्रेस के नेतागणों ने हिंसात्मक रूप धारण किया था, वह क्या गणतन्त्र शासन के अनुरूप था ?

इसके अलावा कसूर क्या है ?

देखने में तो यही आ रहा है कि कांग्रेस के हाई-कमाण्ड गांधी जी की राय न मान कर सुभाष के निर्वाचन के लिए खड़े हुए थे।

निर्वाचन के लिए प्रतिद्वन्द्विता अपराध है क्या ?

क्यों, अभी कुछ दिनों पहले जब हाई-कमाण्ड की राय की उपेक्षा कर मोरारजी देसाई प्रधान मंत्री के पद के लिए प्रतिद्वन्द्वी बने, तब ? तब उनका वहिष्कार तो नहीं किया गया ?

तो फिर सुभाष के वक्त ऐसा क्यों ? सुभाष और उनके समर्थक वामपन्थी दलों को छल-बल और कौशल से क्षमताहीन करना ही इनका उद्देश्य था क्या ?

सुभाष का रास्ता आसान न था। इनका कर्मक्षेत्र बहुत दूर तक विस्तृत था। उसमें आता है उनका छात्र जीवन, आई॰ सी॰ एस॰ की पदवी का त्याग, देशबन्धु का शिष्य बनना, और अन्त में तीन कानून के क़ैदी के रूप में दीर्घकाल तक माण्डले जेल में रहने की बातें तुम लोग जानती होगी। इसीलिए उन बातों की चर्चा न करके मैं विरोध-पर्व की मुख्य-मुख्य घटनाओं का ही यहाँ जिक्र करूँगा। याद रखना, यह मनगढ़न्त

किस्सा नहीं, इतिहास प्रमाणित है। एक वेदनादायक और अप्रिय प्रसंग होते हुए भी सच्चा इतिहास।

शुरू हुआ था १९२८ साल में कलकत्ता कांग्रेस के दिनों में जब जी० ओ० सी० की सज्जा में सुभाष और उनके बहुत परिश्रम से तैयार वालेन्टियर्स वाहिनी को देख कर गांधीजी ने व्यंगोक्ति की थी—'पार्क सर्कस का सर्कस।'

जिधर का पलड़ा भारी हो उधर झुक जाने में ही बुद्धिमानी मानी जाती है, इसीलिए सभी सुविधावादी जनसेवक यही कहने लगे—'सर्कस ! सर्कस ! पार्क सर्कस का सर्कस।'

उन दिनों सुभाष के विरुद्ध व्यंग, कटूक्ति से मुखरित हो उठे थे कुछ अखबार भी। नीचे उसके नमूने देखो मल्लिका—

'सलाम नेहरू को,
खिसक लो बेटा,
सलाम वृद्ध गांधी को।
हॉफ पैन्ट में नहीं है कच्छा
फिर भी कमर-बन्ध है
सीने में शक्ति है तो आओ
साथ, स्वाधीनता ही काम्य है।'

(शनिवार की चिट्ठी)

× × ×

'शोभित, झिलमिलाती जरी पोशाक
खड़ी बाए अंग पे,
सिक्ख मराठे हुए अवाक्
मिलिट्री देख बंग में।'

(शनिवार की चिट्ठी)

× × ×

'सिंह चर्म से शोभित वृषभ,
चारों ओर जयजयकार इसी की,
भेड़ें हलचल मचा रही हैं
हाथी को हाथी न मान कर।'

(शनिवार की चिट्ठी)

× × ×

यहाँ जातीय समर में युवा सैनिक
मानो पहाड़ी तोता हो,
किसी की कमर टूटी,
किसी का सम्बल यक्ष्मा हो।'

(शनिवार की चिट्ठी)

यहीं इसका अन्त नहीं हुआ, मल्लिका। किसी के रोग-शोक पर व्यंग करना सभ्यता की निशानी नहीं है। इन तथाकथित देशसेवकों ने शालीनता विसर्जित कर वह भी कर डाला। माण्डले जेल में रहते समय डाक्टरों को शक हुआ था कि सुभाष को तपेदिक हो गई है। यह बात तो तुम भी जानती हो। उसी पर कटाक्ष कर लिखा गया था—

'इस बीच कलकत्ता कांग्रेस का काम आ गया। विशाल आयोजन, बेहद हो-हल्ला। बंगला माँ के प्यार में डूबा बेटा सुभाष चन्द्र। उसके नेतृत्व में नव जागृत तरुण संघों के दो या उससे अधिक दल एकत्रित हुए। खाली जगह ढूंढ़ कर लेफ्ट-राइट करके पाँव पटकने लगे।

'सुविख्यात 'देशबन्धु दास' तरुणी वॉलेन्टियरों को लेकर हर मोहल्ले में पहुँचने लगे।

'नेशनल सैनिक दल के लिए आठ हजार जोड़े बूट और हजारों खद्दर की मिलिट्री हॉफ पैन्टों के कमीजों का आर्डर दे दिया गया। खद्दर की टोपियाँ और पिस्तौल रखने के बैग तैयार होने लगे। चारों तरफ बिगुल और बाँसुरी की धुन सुनाई देने लगी। हर जगह, रास्ते पर नया राष्ट्रीय संगीत सुनाई देता था।

'सेनाध्यक्ष सुभाष चन्द्र ने, अपने हृदय की गड़बड़ी को भुला कर, डाक्टर की मदद से, वॉलेन्टियर सैनिकों का चुनाव किया। जिनकी ऊँचाई पाँच फुट ६ इंच से कम थी और जिनके सीने का नाप ३४ इंच से ज्यादा न था उन्हें नहीं लिया गया। इस पर ये लोग रोने लगे।

'सुभाष की भाभी श्रीमती लतिका के नेतृत्व में तरुणी सेनादल, हर छत पर कवायद करने लगा।

'स्वयं सुभाषचन्द्र एक अच्छा सा घोड़ा चुन कर उसके लिए कामदार जीन और अपने लिए जरी की कामदार तीन सौ रुपए क़ीमत का एक सूट तैयार करवा कर, आदमक़द शीशे के सामने खड़े होकर नेतृत्व करने का अभ्यास कर रहे हैं।....

'उसके बाद प्रेसीडेन्ट आए। वह भी देखने लायक दृश्य था। इसके आगे मल्लिक लोगों के घर की शादी भी फीकी पड़ जाए। १०१ तोपें, ३४ घोड़े, १००० घुड़सवार, २००० मोटर सवार, २०,००० पैदल पुरुष सैनिक, २ हजार नारी वाहिनी, तीन फुल ट्रेन्ड बैण्ड पार्टियाँ, २५ तोरण द्वार, कम से कम पाँच लाख दर्शक, बिगुल, बैण्ड, बाँसुरी, घोड़ों की हिनहिनाहट, लोगों का 'बन्देमातरम' चिल्लाना, जातीय संगीत, फोटोग्रैफिक कैमरा की खट-खट आवाज़, फूलों की मालाएँ, कागज की मालाएँ, बतासे, लाई।

याद आया, शताब्दियों पहले केवल सात सौ अश्वारोही जिस दिन बंगाल में आए थे उस दिन तो ऐसा आयोजन नहीं किया गया था।

प्लासी की लड़ाई के बाद विजयी दल इस तरह से कलकत्ते में कहाँ घुसा था?'

[शनिवार की चिट्ठी]

इसी कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी ने प्रस्ताव रखा—'हम डोमिनियन एस्टेटस या स्व-शासन चाहते हैं। पूर्ण स्वाधीनता नहीं, स्वाधीनता भी नहीं। अंग्रेजों के साथ रह कर इतना मिलने से भी हम खुश हैं।'

'मैं इसका विरोध करता हूँ।' विप्लवी बंगाल के प्रतिनिधि के रूप में सुभाष बोले—'इस तरह की आधी स्वाधीनता हमें नहीं चाहिए। चाहिए पूर्ण स्वाधीनता, जिसमें कोई मिलावट न हो, कोई शर्त न हो।'

सांस लेना तक भूल गए विभिन्न प्रान्तों से आए हुए कांग्रेसी नेतागण। गांधी जी ठहरे भारत के मुकुटहीन सम्राट्। किसमें इतनी हिम्मत है कि उनकी बात का विरोध करे? कौन है यह विद्रोही युवक?

सुभाष। बंगाल और बंगालियों का सुभाष। देशबंधु का मन्त्र-शिष्य सुभाष। यही है 'खोका भगवान' सुभाष। स्वेच्छासेवक वाहिनी का 'गॉक', सदा-सदा का विप्लवी सुभाष।

भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में पंडित जवाहरलाल नेहरू का नाम निःस्संदेह उल्लेखनीय है। शिक्षा-दीक्षा, साहस, स्वतन्त्र व्यक्तित्व और चिन्ताधारा की दृष्टि से उनकी तुलना नहीं होती है।

लेकिन काम के मामले में इसके बिल्कुल विपरीत हैं। यहाँ जितने तो दुर्बल हैं, उतने ही असहाय।

सच पूछा जाए तो बीसवीं शताब्दी के पिछले तीन दशकों में से कुल कितनी बार उन्होंने कहा है 'मैं सोशलिस्ट हूँ', कभी 'मैं कम्युनिस्ट हूँ' कि इसका हिसाब नहीं। इस तरह के विरोधी-वक्तव्य देने से वे कभी हिचके नहीं।

यहाँ भी वही बात हुई।

तेज आवाज में उन्होंने सुभाष का समर्थन किया। हाँ, यही चाहिए। यही होना चाहिए। हमारा एकमात्र दावा है—पूर्ण स्वाधीनता। पूर्ण स्वाधीनता के अलावा हम कोई शर्त नहीं मानेंगे।

लेकिन बस यहीं तक। वोट देते वक्त उनके बोल बदल गए। तब वे गांधीवादी बन गए।

१३५०-६७३ वोटों से सुभाष हार गए। हार नीति की दृष्टि से नहीं, हार हुई गांधी जी के प्रभाव के कारण। कांग्रेस के साथ सम्बन्ध विच्छेद करना गांधी जी के लिए कोई नई बात नहीं थी। वोट प्राप्त करने से पहले इस बार भी उन्होंने इसी बात का भय सब के मन में जगा दिया। अगर वोट उनके पक्ष में नहीं आया तो वे कांग्रेस का त्याग करेंगे। इसलिए वही हुआ जो होना था।

[इन्डियन स्ट्रगल, सुभाषचन्द्र बोस]

सत्य बख्शी ने प्रतिवाद किया। २री जनवरी को, फारवर्ड पत्रिका में Mudd-

led शीर्षक से उनका यह लेख प्रकाशित हुआ—

'It will be a grievous blunder on the part of the older leaders of Congress if they run away with the idea that the numerical voting strength in favour of Gandhiji's resolution is any index of its popularity....He who runs must take note of the determined and articulate rebellion against authority; he who runs must take note of the rebellion against popery, political or otherwise. No one is content today to take things as accepted, or trim one's convictions to the conveniences of fancies of men however reputed.

....It is no doubt true that persons and personalities do count, and the older order does not change in a day. A course of action that has to secure the approval of the ballot-box by marshalling on its sides all sorts of distinguished names of the country—revered Pandits and Maulanas and above all, the mysterious spell of Sabarmati, does not seem to show intrinsic strength. It is a losing cause, and principles do not take long to defeat personalities.

There is nothing so dissipating and so demoralising as the confusion of thoughts and ideas..... A programme of "muddling on" does not encourage or inspire...It was hoped that the mental weaknesses or the intellectual hypocrisies involved in impossible compromises would be got over....The older leaders have again sought refuge in reservations and subterfuges.

Sjt. Subhas Chandra Bose's amendment made the issue both clear and straight....That is the beginning of the struggle. The next few months will show whether subterfuges and mental reservations win or a bold idea boldly conceived grips the heart, the intellect and the imagination of the country.'

हारने पर भी सुभाष हताश नहीं हुए। युवा-सम्मेलन की अभ्यर्थना समिति के सभापति के पद से भाषण देते हुए उन्होंने गांधीजी के साबरमती आश्रम की विचारधारा की तीव्र आलोचना करते हुए कहा—'भारत के युवक अब और प्रवीण, सफेद केश होते नेताओं के कन्धों पर बोझ डाल कर, हाथ जोड़ मौन मेमनों की तरह अनुसरण करने को प्रस्तुत नहीं हैं। इन लोगों ने समझ लिया है कि स्वाधीन, महान् शक्तिशाली भारत की रचना वे स्वयं करेंगे। इसका उत्तरदायित्व वे ही ग्रहण करेंगे।'

'साबरमती की विचारधारा, प्रचार करते समय इस धारणा को भरने की कोशिश कर रही है कि आधुनिकता बुरी चीज है, कल-कारखानों में पर्याप्त मात्रा में

द्रवों का बनना अन्याय है, अभाव की वृद्धि अनुचित है, रोजमर्रे की जरूरतों को और बढ़ावा नहीं देना चाहिए। प्रचुरता वर्जित है। हर तरह से बैलगाड़ी के युग में वापस चले जाना ही ठीक होगा। शारीरिक उन्नति या फ़ौजी शिक्षा को अवहेलित कर केवल आत्मा की उन्नति ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।'

'भारत में आज हमें कर्मयोगी का दर्शनशास्त्र समझना है, जिससे कि हम वर्त्तमान युग के साथ सामञ्जस्य बनाए रख सकें। हम सारे बन्द दरवाजों वाले संसार में नहीं रहेंगे। जब भारत स्वाधीन होगा तब उसे आधुनिक शत्रुओं के साथ आधुनिक ढंग से ही युद्ध करना पड़ेगा—चाहे वह अर्थनीति हो चाहे राजनीति।'

'बैलगाड़ी का ज़माना जा चुका है। हमेशा-हमेशा के लिए चला गया है। स्वाधीन भारत को हर समय अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहना पड़ेगा। उस समय की प्रतीक्षा में तैयार रहना पड़ेगा जब संसार में अस्त्र-शस्त्र का बहिष्कार करने का संकल्प कार्यरूप में परिणत होगा।' [आनन्दबाजार पत्रिका, २६.१२.२८]

वही हमेशा का युवक और वृद्धों का युद्ध। प्रवीणों का कहना था, हिंसा नहीं, द्वेष नहीं, सिर्फ प्यार करो। इसी प्यार से मैं अंग्रेजों का हृदय परिवर्तित कर स्वाधीनता ले आऊँगा।

युवक इस पर विश्वास करने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था—साँप मारने के लिए लाठी की ज़रूरत है। मनसा देवी की पूजा करने से कभी साँप नहीं मरते हैं।

बड़े लोग चाहते थे कि आपसी वार्ता के माध्यम से सावधानीपूर्वक बढ़ो—धीरे-धीरे।

नया खून कहता, यह तो कोई युक्ति नहीं। भिक्षा माँगने से स्वाधीनता नहीं आएगी। आपसी आलोचना या क़ीमत लगाने से भी नहीं। इसके लिए लड़ना होगा। बेकार समय नष्ट न करके अभी लड़ाई का रास्ता अपनाना चाहिए।

एक व्यक्ति का पहला और अन्तिम शब्द ही था 'अहिंसा'। यहाँ तक कि स्वाधीनता से भी कहीं ज्यादा पवित्र और मूल्यवान थी उनकी अहिंसात्मक नीति।

दूसरे व्यक्ति ने सारी उम्र बस एक ही स्वप्न देखा था—स्वाधीनता। उस स्वाधीनता को पाने के लिए वह सब कुछ देने को तैयार था। सब कुछ करने को तैयार था। उनका कहना था, छल-बल-कौशल कैसे भी हो, स्वाधीनता चाहिए ही चाहिए।

लक्ष्य एक ही था, पर राय एक न थी।

इस बात को गांधीजी भी जानते थे। उन्होंने भी सुभाष के खिलाफ बहुत बातें सुनी थीं। बहुत शिकायतें, अनेकों आरोप।

न केवल मौखिक, बल्कि लिखित भी। 'सुभाष विद्रोही हैं। आतंकवादी हैं। उनका विप्लवियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्हें माण्डले जेल में यूँ ही क़ैद नहीं रखा गया है। इसी कारण से वे वहाँ क़ैद हैं। छोटी सी बात तो यह है कि उन्हें अहिंसा की नीति पर पूर्ण विश्वास नहीं है।'

गांधीजी ने एक दिन साफ़-साफ़ पूछ ही लिया—'विप्लवियों का साथ छोड़ना क्या बिल्कुल ही सम्भव नहीं ?'

'नहीं ।' सुभाष ने कहा ।

'कारण ?' उलट कर प्रश्न पूछा गांधीजी ने ।

'कारण, विप्लव का अर्थ केवल नष्ट करना ही नहीं रचना करना भी है। उसके एक हाथ में रणभेरी है और दूसरे में सृजनकारी बाँसुरी । इसीलिए एक ही साथ उसके कण्ठ से ध्वंस और सृष्टि की पुकार निकलती है। संक्षेप में विप्लव का अर्थ है—अन्याय-राष्ट्रव्यवस्था का आमूल परिवर्तन । आप भी यही नहीं चाहते हैं क्या ? उधर से देखा जाए तो आप ही भारत के सबसे बड़े विप्लवी हैं।'

इस उत्तर की गांधीजी को आशा न थी । वे चुप हो गए । आश्चर्य की बात है, जैसा गुरु वैसा ही चेला । देशबंधु भी बिल्कुल यही बात कहते थे । विप्लवियों का नाम आता तो स्पष्ट रूप से कहते—'उनकी निष्ठा और आत्मत्याग की बात सोचता हूँ तो मेरा सारा घमंड चूर-चूर हो जाता है ।'

सुभाष भी आज वही कह रहा है । न जाने इस व्याकुलता का अन्त कहाँ होगा ?

लक्ष्य एक, फिर भी दो मन्त्र दो अलग सुरों में बँधे थे । इसीलिए एक साथ दो कदम नहीं चल पाते । फिर वही एक दूसरे को गलत समझने लगते ।

डोमिनियन-एस्टेटस की रूपरेखा तैयार हो गई । अब बड़े लाट साहब को देना था । लो, अब सब कोई इस पर हस्ताक्षर करो । वर्किंग कमिटी के सदस्यों का हस्ताक्षर इस पर होना चाहिए ।

सभी ने एक के बाद एक हस्ताक्षर कर दिए । यहाँ तक कि जवाहरलाल ने भी । बिगड़ बैठे सिर्फ सुभाष—'मैं हस्ताक्षर नहीं करूँगा ।'

'क्यों ?' गांधीजी ने पूछा ।

'यह बात तो मैं पहले ही बता चुका हूँ,' सुभाष ने गम्भीर स्वर में कहा—'मेरा दावा आधी स्वाधीनता पर नहीं है । मैं पूर्ण स्वाधीनता चाहता हूँ । इस मामले में किसी तरह का समझौता करने को मैं तैयार नहीं हूँ ।'

गांधीजी स्थिर, अपलक देखते रह गए । चिरपरिचित जगत् में सुभाष ही एक-मात्र ऐसे थे जो पहेली थे—उन्हें पहचानना कठिन था । समझना भी मुश्किल था । परन्तु अस्वीकार भी नहीं कर सकते थे उनकी सत्ता को । बल्कि जवाहरलाल को समझना आसान है । अलग व्यक्तित्व और असीमित यौवनशक्ति के कारण कभी-कभी जवाहरलाल सिर भले ही उठाएँ, आवश्यकता पड़ने पर आत्मसमर्पण भी करते हैं । वश में आ जाते हैं ।

लेकिन सुभाष ? किसकी हिम्मत है कि उन्हें रत्ती भर भी उनके आदर्शों और विश्वास के रास्ते से हटाए ? इस मामले में वे अडिग, अटल और क्षमाहीन हैं ।

विरोध १९२९ में और भी बढ़ा । जब लाहौर में कांग्रेस की सभा हुई । सभा-

पति हुए जवाहरलाल। गांधीजी ने गलती नहीं की थी। वे जानते थे कि वश में लाने के लिए जंगली चिड़िया को सोने की जंजीर में जकड़ दो। इसीलिए जवाहर थे शान्त, स्थिर।

बाकी बचते हैं सुभाष। उन्हें भी इसी तरह वश में करना होगा। वश में नहीं आएगा तो जाएगा कहाँ ?

कलकत्ता कांग्रेस में न मानते पर भी इस बार गांधीजी स्वयं पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव ले आए। यह भी कहा कि अगले ३१ दिसम्बर तक सरकार को यह प्रस्ताव मानना ही होगा, अन्यथा अवज्ञा आन्दोलन शुरू होगा।

गड़बड़ी मची गांधीजी के एक विवरण से। देखा गया—मुँह से वे भले ही पूर्ण स्वाधीनता की बात कर रहे हों, वास्तव में वे डोमिनियन एस्टेटस के अलावा और कुछ नहीं चाहते हैं।

सुभाष ने तीव्र प्रतिवाद किया—'फिर वही पुरानी घिसी-पिटी बात। वही पुराना दावा। सिर्फ समय नष्ट किया जा रहा है, प्रस्ताव पेश कर-कर के। स्वाधीनता बच्चों का खिलौना नहीं है। माँगते ही नहीं मिलती है—इसके लिए क़ीमत चुकानी है। लड़ना पड़ेगा। उसकी तैयारी कहाँ है ?'

सभी के चेहरे पर जिज्ञासा झलक उठी। यह विद्रोही सुभाष कहना क्या चाहता है ?

'हम बगल-बगल जातीय सरकार की रचना करेंगे जिस तरह से बनाया था आयरलेण्ड के विद्रोहियों ने।'

'नहीं, हमारे देश में यह सम्भव नहीं।'

'कौन कहता है नहीं है ?' बिगड़ गए सुभाष—'ज़रा सा आयरलेण्ड जो कर सका वह हम नहीं कर सकते हैं ? बिल्कुल सम्भव है।'

नतीजा हाथों-हाथ मिल गया। वर्किंग कमिटी की सदस्यता की लिस्ट से सुभाष का नाम काट दिया गया। गांधीजी के शब्दों में—'जिनकी एकराय है सिर्फ उन्हें ही वर्किंग कमिटी में रहना चाहिए।'

सुभाष एकमत नहीं—इसलिए वर्किंग कमिटी में रहने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

और सुभाष ? फौरन अपने बासठ समर्थकों के साथ अधिवेशन के बीच में से उठ कर चले आए। अनुरोध करने से स्वाधीनता नहीं मिलेगी, इस सच्चाई को ये लोग कब समझेंगे ? कब समझेंगे कि प्यार और प्रेम बाँटने से साम्राज्यवादियों का हृदय परिवर्तन नहीं होगा।

३१ दिसम्बर बीत गया, पर कहाँ स्वाधीनता ? कोई जवाब नहीं दिया बड़े लाट साहब ने।

गांधीजी ने बड़े लाट से अन्तिम बार अनुरोध किया—'मैंने घुटने टेक कर रोटी माँगी थी—बदले में मिले पत्थर। इसलिए मेरे सामने केवल एक ही रास्ता खुला है, वह है कानून-अवज्ञा-आन्दोलन। समुद्र के पानी से अनायस ही नमक बनाया जा सकता है, जबकि हमारे गरीब देशवासियों को इसके लिए कितना टैक्स देना पड़ता है। ऐसा नियम क्यों ? मैं इस कानून को नहीं मानता हूँ। नहीं मानूँगा।'

'इसीलिए अगले ११ मार्च को, मैं अपने आश्रमवासियों के साथ, समुद्र के किनारे जाकर नमक कानून भंग करूँगा। जब तक एक भी अहिंसा का पुजारी योद्धा जीवित रहेगा, आन्दोलन जारी रहेगा।'

'मैं जानता हूँ कि मुझे गिरफ्तार करके आप लोग मेरी इस योजना को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं, लेकिन याद रखिएगा कि मेरे पीछे हजारों की तादाद में लोग बढ़ते चले आएँगे। हँसते-हँसते वे लोग जेल भी चले जाएँगे।'

सुभाष उन दिनों जेल में थे। उनका अपराध था पिछले साल अगस्त के महीने में उन्होंने 'अखिल भारतीय लांछित राजनैतिक दिवस' के उपलक्ष में गैर कानूनी ढंग से जुलूस निकाला था। उसका फैसला २३ जनवरी को हुआ और उन्हें नौ महीने का सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। तारीख देख रही हो, मल्लिका ? उसी दिन सुभाष का जन्म हुआ था।

उधर १२ मार्च को ७६ आश्रमवासियों को साथ ले कर गांधीजी, साबरमती आश्रम से पदयात्रा के लिए निकल पड़े। उनका लक्ष्य था, २०० मील दूर समुद्रतट पर बसे गाँव डांडी पहुँचना। पैदल चल कर इतना लम्बा रास्ता तय करके वे कानून भंग करेंगे।

इस बात को सुन कर अंग्रेजों का हँसते-हँसते बुरा हाल हुआ। खासतौर से 'स्टेट्समैन' जैसे पत्रों ने खूब हँसी उड़ाई। यह है गांधी जी का कानून भंग करने का तरीका ? देखा जाए क्या होता है।

लेकिन यह क्या ? यह तो अविश्वसनीय है। किस चीज़ की प्रेरणा ने सोते हुए भारतीयों को जगा दिया है ? एक अधनंगा फकीर—उसमें इतनी शक्ति है ?

गांधीजी बढ़ते जा रहे थे। चेहरे पर शिशु-सुलभ हँसी। या तो गिरफ्तार करो या नमक कानून खत्म करो। या तो हम मनचाही चीज़ लेकर घर लौटेंगे, नहीं तो हमारा मृत शरीर समुद्र में बहता रहेगा। हम हँसते हुए तुम्हारी गोली के आगे जान दे देंगे, फिर भी अन्याय का समर्थन नहीं करेंगे।

रास्ते के दोनों तरफ हजारों की संख्या में लोग खड़े थे। वृद्ध, युवक, बालक—कोई बाक़ी नहीं था—'चलो भई, डांडी चलो। हम भी हमारे बापू के साथ चलेंगे। बन्दे मातरम्। भारतमाता की जय। महात्मा गांधी की जय। चलो सब—आगे बढ़ो।'

मल्लिका, तुम लोग इस युग की हो। वास्तव में कानून भंग करने के लिए

आन्दोलन किसे कहते हैं, समझ ही नहीं सकती हो। यह भी एक निराला ही दृश्य था। जिधर देखो उधर ही कानून भंग करने का महोत्सव लगा था। बन्दे मातरम्। तुम्हारा कानून हम नहीं मानेंगे।

अंग्रेज सरकार हक्का-बक्का रह गई। इस जलतरंग को कौन रोकेगा? इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। जैसे भी हो इस आन्दोलन का मुँह बन्द करना ही होगा।

शुरू हुए। लाठी चार्ज, गिरफ्तारी, गोली, टियर गैस कुछ भी करने से बाज न आए। लेकिन सब बेकार था। एक को पकड़ते तो दूसरा आ धमकता। झुण्ड के झुण्ड आते—यूँ लग रहा था, इस आने-जाने के जुलूस का कहीं अन्त नहीं।

खासतौर से लड़कियों का। आज तो खैर, लड़कियाँ बहुत आगे बढ़ चुकी हैं, लेकिन तब? तब तो लड़कियों के लिए घर के बाहर पाँव निकाल पाना संभव नहीं था। पर इन लोगों ने भी अपूर्व देशप्रेम की मिसाल हमारे आगे रखी है।

५ मई को गांधी जी गिरफ्तार हुए। उसके बाद देखते-देखते साठ हजार आदमी, एक के बाद एक गिरफ्तार हो गए। नया जेलखाना तैयार हुआ। वह भी भर गया। अब क्या होगा? हमें कहाँ रखोगे? मारोगे? लाठी से पिटाई करोगे? गोली मारोगे? ठीक है, मार लो।

इस पर बंगाल के विप्लवी भड़क उठे। इनका कहना था, 'वैराग्य साधना द्वारा मुक्ति पाने पर हम आस्था नहीं रखते हैं। हमारी तो सीधी बात है—एक थप्पड़ मारोगे तो दस थप्पड़ खाओगे इसका प्रमाण हम देंगे।'

फिर शुरू हुई चट्टगाँव, ढाका, कुमिल्ला, कलकत्ता, मेदिनीपुर और अनेकों ऐसी जगहों में खून की होली। चरम आत्मोत्सर्ग द्वारा उन्होंने इतिहास के पन्ने भर दिए। बंगाल के युवक मरने से नहीं डरते हैं। वे स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए प्राण देना जानते हैं।

इधर कानून भंग आन्दोलन, उधर विप्लवियों द्वारा अस्त्राघात...दोमुखी आक्रमण से अंग्रेज तंग आ गए। क्या करें? किसे छोड़ दें, किसे पकड़ें?

सुभाष को मुक्त किया २३ सितम्बर को। वह फिर जुट गए काम में। आज यहाँ, कल वहाँ, परसों उधर। कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहा।

१९३१ साल आ गया। जनवरी का महीना। उन दिनों सुभाष उत्तरी भारत का दौरा कर रहे थे। संगठन को और अधिक मजबूत बनाना है। और भी शक्तिशाली।

बाधा दी मालदा के जिला मेजिस्ट्रेट ने। 'नहीं, मेरा हुक्म है, इस जिले में तुम नहीं घुस सकते हो।'

'यह हुक्म गैरकानूनी है।' गरज उठे सुभाष—'एक आत्मसम्मानित नागरिक व भारतवासी के नाते मैं इस हुक्म को मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।'

फिर गिरफ्तार कर लिए गए। प्रथम श्रेणी के विश्रामागार में ले जाते ही मुकदमा शुरू हो गया। जिले के सर्व-सम्पन्न मजिस्ट्रेट साहब का हुक्म नहीं माना है—यह क्या कोई साधारण अपराध है? इसलिए सात दिन का कारादण्ड प्रदान किया गया।

उसी रात नाटोर से होते हुए सुभाष को अलिपुर सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया। कुछ भी कहो, सुभाष बोस हैं। इसी बात पर जुलूस निकलना न शुरू हो जाए। हर तरह का नियम भंग करने से वे कहाँ झिझकते हैं? इसलिए छोटे शहर माल्दह से हटा देना ही निरापद होगा।

२६ जनवरी।

कांग्रेस को गैर-कानूनी घोषित किया गया। सभा, समिति, जुलूस—हर चीज़ की मनाही हो गई। पर कौन मानता है सरकार की बात को?

२६ जनवरी—स्वाधीनता की शपथ लेने का दिन था। पराधीन लोगों के लिए इससे अधिक पवित्र दिन और क्या होगा? इसीलिए हर बात की अवहेलना कर मन्यूमेन्ट की बेदी पर देश का झंडा फहराया जाएगा। जुलूस निकाला जाएगा। उस जुलूस में सबसे आगे रहेंगे सुभाष।

इधर, सुबह से ही मन्यूमेन्ट के चारों ओर पुलिस लगी थी। उसी के साथ अंग्रेज सार्जेन्ट और हजारों घुड़सवार—किसी को पास फटकने तक नहीं दे रहे थे।

हर बात की उपेक्षा कर ठीक समय पर बड़ा भारी जुलूस लेकर सुभाष आगे बढ़े। उनके हाथों में राष्ट्रीय झण्डा था। और मुँह से ध्वनि निकल रही थी—'बन्दे-मातरम्।'

इशारा पाते ही कूद पड़े सिपाही। शुरू हुआ लाठी चार्ज। हर तरफ लाठी मारो—दाएँ, बाएँ, आगे, पीछे।

'किसे मार रहे हैं आप लोग? जानते हैं ये कौन हैं? कलकत्ते के मेयर हैं।' बाधा देने आगे बढ़ आईं ज्योतिर्मयी देवी।

पर यहाँ सुनने वाला कौन था? बरसात के पानी की धार सी लाठी बरस रही थी। किसे मार रहे हैं, किसे नहीं, कौन देख रहा था?

खून से रंग गए सुभाष, फिर भी आगे बढ़ते रहे। हिमालय से अडिग निर्विकार। उसी तरह सिर उठाए हुए। अन्त में चोट खाते-खाते बेहोश हो कर गिर गए।

फिर मुकदमा। फिर कारादण्ड। इस बार सिर्फ छह माह की सजा हुई।

अचानक एक खबर सुन कर सारा भारतवर्ष चौंक पड़ा। सुनने में आया कि कुछ शर्तों पर गांधीजी अंग्रेजों के साथ समझौता करने जा रहे हैं। जैसे—जितने भी कैदी हैं उन्हें छोड़ देना पड़ेगा। उनसे लिया गया जुरमाना—वह भी लौटाना पड़ेगा।

और नमक तैयार करने के मामले में समुद्र के किनारे रहने वालों को कुछ सुविधायें देनी ही पड़ेंगी। बस—इतना ही चाहिए।

सुन कर दुःख और क्षोभ से सुभाष कैदखाने में टूट से गए। फिर वही हीला-हवाला। वही भाव लगाना। वही चौरीचौरा के किस्सें की पुनरावृत्ति।

१९२२ साल में भी इसी तरह से मामूली सी एक घटना पर आन्दोलन रद्द कर दिया था। उस दिन भी उन्होंने लार्ड रेडिंग को लिख कर अपना इरादा बता दिया था।

'मैं आपको सात दिन का समय देता हूँ। उससे पहले ही अखबारों पर से अपनी पाबन्दी खत्म कर दीजिए। और जिन लोगों ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था और इसी वजह से जेल में हैं उन्हें छोड़ दिया जाए। अगर सात दिन में ऐसा करेंगे तो मैं बरदौला आन्दोलन समाप्त कर दूँगा। वरना हम अपना आन्दोलन जारी रखेंगे।'

सारा देश आशा भरी नजरों से देखने लगा। आज १ली फरवरी है। बीच में सात दिन। ९ फरवरी से ऐतिहासिक बरदौला आन्दोलन शुरू होगा।

कहाँ आन्दोलन, कहाँ कुछ ?

सारा कुछ अस्तव्यस्त हो गया गोरखपुर के पास चौरीचौरा गाँव में घटी एक साधारण सी घटना को ले कर।

उस दिन चौरीचौरा गाँव के रास्ते से सत्याग्रहियों का एक जुलूस जा रहा था। अचानक पुलिस ने आकर रास्ता रोका। नहीं, इस रास्ते से जुलूस नहीं जाएगा—यह गैर-कानूनी है।

बात बढ़ी। झगड़ा शुरू हुआ। उसके बाद लड़ाई। अन्त में उत्तेजित जनता ने थाने में आग लगा दी, जिससे आग से जल कर एक सब-इन्स्पेक्टर और कुछ कान्स्टेबिल मारे गए।

तुरन्त गांधीजी ने आन्दोलन रोक दिया। भारतवासी अहिंसात्मक नीति का पालन ठीक से करना नहीं सीखे हैं, इसलिए अभी आन्दोलन नहीं होगा।

देशबन्धु, सुभाष, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय सभी जेल में थे। इन सभी ने गांधीजी के इस सिद्धान्त का तीव्र विरोध किया।

चौरीचौरा की घटना का आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं। उसकी वजह से आन्दोलन क्यों रोका जाए ?

भारत तो विशाल देश है। यहाँ कब, कहाँ, कौन अहिंसक नहीं रह सका है सोच कर क्या स्वाधीनता आन्दोलन स्थगित कर दिया जाएगा!?

क्षोभ, दुःख से कातर लाला लाजपतराय ने गांधीजी को सत्तर पन्ने की एक चिट्ठी लिखी। 'इसके क्या अर्थ हुए ? इसमें ऐसी क्या बात थी कि स्वाधीनता आन्दोलन रोक दिया जाए ?'

और देशबन्धु ? यहाँ सुभाष के शब्दों में इसका विवरण पढ़ो—'I was with

the Deshbandhu at the time and I could see that he was beside himself with anger and sorrow at the way Mahatma Gandhi was repeatedly bungling. [The Indian struggle, Pt II, pp 108]

कांग्रेस की अगली वर्किंग कमेटी की बैठक में गांधीजी को तीव्र आलोचना का सामना करना पड़ा। खासतौर से बंगाल और महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों के प्रश्नों के सामने।

'क्यों संग्राम स्थगित किया गया ?'

'क्यों इस तरह से रोक दिया गया ? क्यों ? क्यों ?'

और भी बढ़ गए ख्यातिप्राप्त नेता मुन्जे। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया कि गान्धी जी की भर्त्सना की जाए। खैर, इस प्रस्ताव को माना नहीं गया।

१९२२ के बाद १९३१—उसी एक ही घटना की पुनरावृत्ति हुई।

इस बीच गांधीजी को बड़े लाट साहब ने भरोसा दिलाया है, इसलिए वे दृढ़ निश्चय कर चुके हैं कि आन्दोलन रोक कर समझौता करेंगे।

लेकिन देश ? लम्बी प्रतीक्षा के बाद आज देश की सोई हुई जनता जाग उठी थी। बार-बार इस तरह से आन्दोलन रोकने से वे निराश हुए।

'इन्कलाब जिन्दाबाद।'

जानती हो, सबसे पहले किसके मुँह से यह नारा निकला था। भगतसिंह के। महान् विप्लवी भगतसिंह। वे ही इस महान् मंत्र के जन्मदाता थे।

भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु। अग्नियुग के इतिहास के तीन उल्लेखनीय नाम। तीनों लाहौर सेन्ट्रल जेल में अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा में दिन गिन रहे थे।

स्वभावत: भारतवासी तब क्षुब्ध और चंचल हो रहे थे। मन समर्थन नहीं करता था; लेकिन उपाय भी नहीं था। साम्राज्यवादी शक्ति की प्रतिहिंसा की आग से उन लोगों की रक्षा करने का कोई उपाय न था।

आँखों के सामने लगा बिजली चमक उठी। गांधी-अरविन समझौते पर हस्ताक्षर होने पर सब से पहले कैदी छोड़ दिए जाएँगे। यह घोषणा सुन कर लोगों के दिल में उम्मीदें बँधी—तो फिर भगतसिंह लोग छोड़ दिए जाएँगे।

अगर छोड़े नहीं गए तो कम-से-कम प्राणदण्ड की सजा रद्द हो जाएगी। गांधी जी जब हैं तो चिन्ता कैसी ?

देखते-देखते सारे भारत में इस बात की आवाज उठी—भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु को प्राणदण्ड न दिया जाय, यही गांधी-अरविन्द समझौते की शर्त होनी चाहिए।

बंगाल तथा भारत के अन्य सभी क़ैदखानों में भी इसी बात की चंचलता दिखाई पड़ी। भगतसिंह की फाँसी रोकना है, वरना इस समझौते के कोई माने नहीं हैं।

'यही बात कही चट्टगाँव के जेल में बन्द गनेश घोष, अनन्त सिंह, लोकनाथ बॅल, अम्बिका चक्रवर्ती जैसे युवा विद्रोहियों ने ।

उन्होंने गांधीजी को गुप्तरूप से एक पत्र भेजा—'हम सब फाँसी की प्रतीक्षा में बैठे दिन गिन रहे हैं । इसके लिए हमारे मन में कोई दुःख नहीं है, पर आप उन लोगों को बचा लीजिए, बापू जी । आप ही एकमात्र आदमी हैं जो उनकी जान बचा पाने में सक्षम होंगे ।'

इससे भी ज्यादा जोरदार पत्र लिखा बक्सा दुर्ग में क़ैद विभिन्न दलों के विप्लवी नेताओं ने । उन सबने मिल कर सलाह की और एक साथ तीन पत्र भेजे गांधीजी को, जवाहरलाल और सर तेजबहादुर सप्रू को। उन्होंने सारी बातें इन लोगों को खुल्लमखुल्ला लिखीं।

'किसी को फांसी नहीं दी जाएगी । दी गई तो यह शर्तनामा हम मानेंगे नहीं । उस वक्त अगर किसी तरह की अशान्ति हुई तो उसके लिए जिम्मेदार होंगे समझौता करने वाले दोनों पक्षों के नेता ।'

तेजबहादुर सप्रू ने यह पत्र बड़े लाट लार्ड अरविन को दिया । पत्र में ऐसा अनुरोध किया गया था ।

अरविन ने पत्र को बड़े ध्यान से पढ़ा, उसके बाद प्रश्न पूछा—'विचार करने को मैं तैयार हूँ लेकिन इस बारे में किसके साथ बातचीत करूँगा मैं ? उनके प्रतिनिधि कौन हैं ?'

'सुभाष बोस ।'

'सुभाष बोस ।' सुनते ही कांप उठे अरविन ।

'नहीं-नहीं । इस सम्बन्ध में मैं सुभाष बोस से बातचीत करने को तैयार नहीं हूँ । और कोई है ?'

'हैं, लेकिन वे इस समय फरार हैं । उनके साथ बात करना है तो उन्हें आने-जाने की बिल्कुल स्वतन्त्रता देनी होगी । इस बात का वचन देना होगा कि इस मौके पर आप उन्हें क़ैद नहीं करेंगे ।'

'कौन है वह आदमी ?' आश्चर्य से अरविन ने पूछा ।

'सूर्य सेन ।'

'माई गॉड !' कानों के पास वज्राघात होता तो भी शायद इतनी जोर से अरविन नहीं चौंकते—'सूर्य सेन ! दी ग्रेट सूर्य सेन ?'

और भी आश्चर्य ! तुरन्त बक्सा कैम्प में एक सरकारी चिट्ठी आ गई । बड़ा ही नरम स्वर था—'तुम अपना प्रस्ताव विस्तृत रूप से व्याख्या करके लिखो ।'

लिखा गया । पर पत्र का उत्तर कुछ ज्यादा ही देर से आया और स्वर भी पहले सा नरम नहीं था । इसका कारण था क्योंकि स्टेट्समैन, यूरोपियन एसोसिएशन, बंगाल चेम्बर ऑफ कामर्स जैसी श्वेतांग संस्थाएँ शोर मचाने लगी थीं 'No track with the terrorists. ।' नतीजा यह हुआ कि आलोचना यहीं समाप्त हो गई ।

लेकिन मल्लिका, मामला यहीं ख़त्म नहीं हुआ। इसी के साथ विप्लवी नेता फिर नई योजना बनाने लगे। वह योजना जितनी अभूतपूर्व थी उतनी ही अविश्वसनीय।

अगर हमारी शर्त न मान कर उन्हें फाँसी की सज़ा दी तो हम इसका बदला लेंगे। १५ दिन के अन्दर ही अन्दर लेंगे। जनजीवन से बहुत दूर, पहाड़ों से घिरे बक्सा कैम्प में हम क़ैद हैं। इसी क़ैदखाने में रह कर हम समझा देंगे कि बंगाल की प्राणशक्ति खत्म नहीं हो गई है।'

समझौते पर ५ मार्च को हस्ताक्षर हुए। उसके बाद क़ैदी छोड़े जाने लगे। सभी छोड़ दिए गए।

सिर्फ नहीं छूटे बंगाल के विप्लवी। स्पष्ट था, न गांधी जी और न अरविन, किसी की नज़रों में विप्लवी कैदियों की श्रेणी में नहीं आते थे। क्योंकि वे गांधीजी की अहिंसा नीति पर भरोसा नहीं करते थे। इसलिए वे थे समाज से बहिष्कृत। उनका हुक्का-पानी बन्द।

८ मार्च को सुभाष छोड़ दिए गए। १४ मार्च को वे बी० वी० के नेता हेमचन्द्र घोष को साथ लेकर गांधीजी से मिलने गए। उनके साथ सारी बातें स्पष्ट हो जानी चाहिए।

इससे भी बड़ी बात थी कि भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु का क्या होगा? इन तीन तरुण युवकों को फाँसी की जगह अगर आजीवन कारावास का दण्ड दे दिया जाएगा तो अंग्रेजों का कुछ नहीं बिगड़ेगा। बल्कि उनकी इस उदारता पर देशवासी प्रसन्न होंगे। अब तो सारी जिम्मेदारी गांधीजी की है। वह ही बड़े लाट साहब को बाध्य कर सकते हैं इस काम के लिए।

सारी बातें सुनने के बाद गांधीजी बोले—'लेकिन अगर बड़े लाट साहब मेरी बात मानने को तैयार नहीं हुए तो....?'

'तो आप भी तुरन्त समझौता भंग कर दीजिए।' सुभाष ने स्पष्ट रूप से कहा—'समझौते के फलस्वरूप अगर जनसाधारण का न्यूनतम दावा भी नहीं माना जा सकता है तो ऐसे समझौते की जरूरत क्या है? फिर जनसाधारण इसे स्वीकार करेगा क्यों?'

सुभाष यहीं नहीं रुके। गांधीजी के साथ ट्रेन द्वारा दिल्ली पहुँचे। जैसे भी सम्भव हो, गांधीजी की मदद से उनकी फाँसी की सज़ा रद्द करवानी है।

फिर देश के लाखों लोगों की व्याकुल प्रतीक्षा का क्या हुआ? उन्हें क्या उत्तर मिला?

देश का कितना फायदा हुआ गांधी-अरविन-समझौते से?

भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु का क्या हुआ?

वह कहानी जितनी तो मार्मिक है, उतनी ही वेदनादायक। तुम यह कहानी श्रद्धेय अनन्त सिंह ही से सुनो।

'१९३१ साल की ५ मार्च को गांधी-अरविन पैक्ट या सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए। गांधीजी की शर्त के अनुसार कानून अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में पकड़े गए

सभी कांग्रेस कार्यकर्ता छूट गए। गांधीजी ने बड़े लाट अरविन से हिंसात्मक कार्यों के लिए दंडित कैदियों की मुक्ति के लिए अनुरोध नहीं किया था। यहाँ तक कि देशवासियों के इतना आग्रह करने पर भी भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु की प्राण-दण्ड को रद्द करने का अनुरोध तक करने की जरूरत नहीं समझी। १९३१ साल के २३ मार्च को उन्हें फांसी हो गई। ब्रिटिश शासकों की Divide and Rule [विवाद की रचना करके शासन करना] नीति सफल हो गई—'कांग्रेस के साथ समझौता करो और विप्लवियों का कठोरता से दमन करो।' [अग्नियुग का एक अध्याय; साप्ताहिक वसुमती; १८ अप्रैल १९६८]

शिकायत करने को कुछ था नहीं, क्योंकि विप्लवियों के प्रति अपना मनोभाव गांधीजी ने कभी गुप्त नहीं रखा था। १९३० साल की २ मार्च को यह बात उन्होंने बड़े लाट को लिखे एक पत्र में स्पष्ट कर दी थी—'मेरा उद्देश्य है, क्रमबद्ध अहिंसक संग्रामियों की संगठित शक्ति के विरुद्ध मेरी आन्तरिक शक्ति को परिचालित करना।'

फिर भी भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु को केन्द्रित कर उस दिन जिस परिस्थिति की सृष्टि हुई थी उसका परिणाम अच्छा नहीं निकला। युगान्तर दल के नेता श्रद्धेय भूपेन्द्र कुमार दत्त ने लिखा था—

'समझौते पर हस्ताक्षर कर के शिमला छोड़ने से पहले गांधीजी ने संदेश देते हुए कहा, यह सन्धि अगर देश में सर्वसम्मति से स्वीकृत हो जाए तो वे आशा करते हैं कि हिंसात्मक काम करने वाले भी, जिन्हें फांसी की सजा मिली है, मुक्त हो जाएँगे।'

संदेश देकर उनके करांची पहुँचने से पहले ही भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी पर लटका दिया गया। फलस्वरूप युगान्तर और नवजवान सभा के नेतृत्व में देश की जाग्रत जनता ने क्षोभ प्रकट किया। इससे गांधी-नेतृत्व वाले लोगों की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा।' [ऐतिहासिक उपादान, मासिक वसुमती; १ सितम्बर १९६९]

यह अतिशयोक्ति नहीं है, मल्लिका। सचमुच गांधीजी को बड़ी कठोर परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। करांची में पाँव रखते न रखते पंजाब, बंगाल और अन्य प्रदेशों के क्षुब्ध तरुणों ने उन्हें अभ्यर्थना करते समय काले कागज के फूलों की मालाएँ दीं और काले झंडे दिखाए।

उनका कहना था कि भगतसिंह वगैरह की फांसी के लिए गांधीजी पूरी तरह से जिम्मेदार हैं। उन्होंने समझौते का कागज तैयार करवाते वक्त क्यों नहीं उनकी मुक्ति की शर्त उसमें शामिल करवाई थी? यह समझौता कोई समझौता नहीं। हम इस समझौते को नहीं मानेंगे।

निन्दा या प्रशंसा से विचलित हो जाएँ ऐसे व्यक्ति गांधीजी नहीं थे। इसीलिए बिना किसी तरह का प्रतिवाद किए उन्होंने वह माला गले में डाल ली। चेहरे पर वही प्रसन्न मुस्कान—वे ठहरे सम्पूर्ण भारत के बापू....वे क्या इतनी आसानी से विचलित हो सकते हैं?

गहरी रात । करांची कांग्रेस सोई हुई थी—निद्रामग्न । केवल गांधीजी की आँखों में नींद न थी । तूफान आने वाला था । भयंकर आंधी । वह कहाँ और कब खत्म होगी, कहना कठिन था ।

जैसे भी हो सके, यह आंधी रोकनी होगी । हाल ही में गोलमेज कांफ्रेंस की बैठक होने वाली है । उस बैठक में शामिल होने के लिए उन्हें जाना होगा विलायत । कांग्रेस सर्वभारतीय सभा है । भगतसिंह को केन्द्रित कर कांग्रेस दो हिस्सों में बँट जाए, यह वे नहीं चाहते हैं ।

'कौन इस आंधी को रोकने में सफल हो सकता है ? बल्लभ भाई ! आज़ाद ! राजेन्द्रप्रसाद ! राजागोपालाचारी ! अब्दुल गफ्फार खाँ ?

नहीं, इनमें से कोई नहीं रोक सकता है । क्षुब्ध तरुण इनकी बात नहीं सुनेंगे । परवाह ही नहीं करेंगे । तब कौन कर सकेगा यह काम ? जवाहरलाल ! असम्भव—वे तो और भी ज्यादा भाव प्रबल हैं । अस्थिर चित्त भी । अधिकतर सीमा लाँघ जाते हैं । इसीलिए इन्हें सफलता नहीं मिल सकती ।

कर सकता है तो सिर्फ एक आदमी । वह है सुभाष । चिर विद्रोही सुभाष । एकमात्र सुभाष ही इस क्षुब्ध जनता को शान्त कर सकता है ।

बड़ी रात गए गांधी जी के आश्रम में सुभाष बुलाए गए । 'परिस्थिति अत्यन्त जटिल हैं, सुभाष को हर बात समझा कर कहना है ।'

सुभाष ने यह तर्क स्वीकार कर लिया । सबके सामने अधिवेशन में इस बात को ले कर वे कोई विरोध नहीं करेंगे । क्योंकि अगर कांग्रेस में फूट पड़ेगी तो सबसे ज्यादा फायदा होगा अंग्रेजों का । यह मौका तो उन्हें देना ही नहीं है ।

पर एक बात है । प्रकट रूप से विरोध न करने पर भी अधिवेशन के बाहर प्रतिवाद करने का उन्हें पूरा हक होगा । बाहर उनका कोई मुँह बन्द नहीं कर सकेगा ।

उन्होंने बाहर प्रकट रूप से कोई विरोध नहीं किया, लेकिन उत्तेजना से उबल पड़े नवजवान सम्मेलन में जहाँ वे सभापति पद से भाषण दे रहे थे ।

'क्यों कानून-अवज्ञा-आन्दोलन रोक दिया गया ?'

'सन्धि-पत्र तैयार करते समय भगतसिंह की मुक्ति की बात उसमें क्यों नहीं रखी गई ?'

'इस गांधी-अरविन पैक्ट से भारतवासियों का क्या फायदा हुआ ?'

'शताब्दी भर सोने के बाद भारतवासी जाग कर संग्राममुखी हुए थे, लेकिन उनकी यौवन-शक्ति का गला घोंटने के अलावा और कुछ हुआ है क्या ?'

'क्या यही है गांधीवाद ?'

भगतसिंह का मामला यहीं खत्म हो गया हो, यह नहीं ।

एक दिन अधिवेशन में एक प्रस्ताव पेश किया गया । पेश किया स्वयं गांधीजी ने । स्वयं ही वे भगतसिंह, शुकदेव और राजगुरु के प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित करने का

प्रस्ताव ले आए। उनके साहस और त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह प्रस्ताव तुरन्त मान लिया गया। इतना ही नहीं, उस दिन से भगतसिंह को सरदार भगतसिंह कहा जाने लगा। यह गांधी जी के ही शब्द थे।

यह प्रस्ताव निःसन्देह अच्छा था, लेकिन १९२४ में कांग्रेस की बैठक जब बेलगांव में हुई थी तब क्या हुआ था? सभी की इच्छा थी कि विश्व के महान् विप्लवी लेनिन की मृत्यु पर कांग्रेस की ओर से एक शोक-प्रस्ताव पास किया जाए, पर गांधी जी ने मना किया था।

'नहीं, कभी नहीं।' बाधा पहुँचाई थी स्वयं सभापति गांधी जी ने। प्रस्ताव पास करना तो दूर, प्रस्ताव पेश तक करने नहीं दिया उन्होंने कांग्रेस के इस अधिवेशन में। क्योंकि उनका विचार था लेनिन उपद्रवकारी के अलावा और कुछ न थे।

और भी उदाहरण हैं। मृत्युञ्जयी शहीद जतीन दास को ही ले लो, जिन्होंने १९२८ में सुभाष को बंगाल वॉलेन्टियर्स बनाने में बड़ी मदद की थी।

लाहौर षड्यन्त्र के मामले में पकड़े जाने पर तिरसठ दिन अनशन करके उन्होंने प्राण त्याग दिए थे। इस खबर ने समस्त भारत तो क्या, सारी पृथ्वी को हिला कर रख दिया। सभी ने एक स्वर में अंग्रेजों को धिक्कारा था।

सिर्फ गांधी जी ने कुछ नहीं कहा। उन्होंने एक शब्द नहीं कहा जतीन दास के लिए। सुभाष के बार-बार अनुरोध करने पर भी।

बाद में एक दिन सुभाष के पूछने पर कहा, 'मेरे हिसाब से जतीन दास की मृत्यु उनकी ऐच्छिक आत्महत्या (diabolical suicide) के अलावा और कुछ नहीं है। इसीलिए इतने दिनों तक जान-बूझ कर मैं कुछ नहीं बोला था। क्योंकि अगर बोलता तो बात अप्रिय लगती।'

जवाब सुन कर सारा बंगाल दुःख और आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। देश और राष्ट्र के लिए जिस आदमी ने दधीचि की तरह तिल-तिल करके अपने को समाप्त कर दिया, उस पुण्यात्मा शहीद जतीन दास के सम्बन्ध में गांधी जी की ऐसी युक्ति?

लेकिन ऐसा क्यों? महात्मा गांधी ने स्वयं भी तो अनशन को ही अपना सबसे बड़ा हथियार बना रखा है। ऐसे कितने अनशन उन्होंने राष्ट्र की जरूरत के लिए किए हैं। तब फिर जतीन दास के वक्त ऐसी रूढ़ता क्यों?

सुभाष ने, नोआखोली जिला युवक सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा था—'बंगाल के युवक समाज में से सैकड़ों की संख्या में जतीन दास, हम चाहते हैं जो उनके आत्मोत्सर्ग को चरितार्थ करेंगे। तीक्ष्ण राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न नया एक युवक-दल हमें जरूर चाहिए क्योंकि वह ही भावी भारतवर्ष का निर्माण करेगा जिस भारत में कृषक, मजदूर सभी नरनारी स्वाधीनता के आशीर्वाद का उपभोग करेंगे।'

'मैं आपका आह्वान करता हूं। आप निकट भविष्य में कैसी गौरवमयी भूमिका ग्रहण करेंगे, उसे अनुभव कीजिए। उसके बाद केवल एकमात्र उद्देश्य ले कर आगे बढ़िए कि मातृभूमि की मुक्ति का व्रत ही हमारा एकमात्र कर्त्तव्य है।'

एक बार नहीं, सहस्रों बार सुभाष ने शहीद जतीन दास के प्रति श्रद्धा अर्पित की थी। अपनी लिखी पुस्तक में, यहाँ तक कि आजाद हिन्द सरकार के सेनापति के रूप में भी जतीन दास को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना नहीं भूले।

क्या सिर्फ जतीन दास ही? क्या हुआ था शहीद गोपीनाथ के वक्त?

गांधीजी बहुत बड़े थे। उनसे भी बड़ी थी उनकी नीति। इतनी बड़ी कि साधारण लोगों के पहुँच के बाहर थी। यहाँ तक कि आगे चल कर यह बात उनके स्नेह-पात्र जवाहरलाल तक ने स्वीकार की थी। उन्होंने लिखा था—

'राष्ट्रीय नेता गांधी और अतिमानव गांधी के बीच बराबर ही एक बड़ी खाई थी। इसलिए गांधीजी और हमारी राजनीति के बीच मतभेद का अन्त न था। अति-मानव गांधी न केवल भारत के बल्कि सारे विश्व के थे।' [डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ ४७१]

यह बात अक्षरशः सच थी, मल्लिका। साधारण मनुष्यों के नेता गांधीजी को बल्कि समझना आसान था लेकिन अतिमानव गांधी दुर्बोध थे।

ऐसे ही दुर्बोध लगे थे वे गोपीनाथ साहा के मामले में।

१६२८ साल। १२ जनवरी। गोपीनाथ साहा का रिवाल्वर उस दिन सहसा ही गरज उठा था, आन्दोलन के पहले नम्बर के शत्रु चार्ल्स ट्रेगार्ट पर।

लेकिन यह क्या? यह तो ट्रेगार्ट नहीं साधारण नागरिक आर्नेस्ट डे हैं।

अदालत में निर्भीक भाव से गोपीनाथ ने कहा—'गलती से मैंने एक निरपराध व्यक्ति को मार दिया है, इसके लिए दुःखी हूँ। उससे भी ज्यादा दुःखी यह सोच कर हो रहा हूँ कि मैं ट्रेगार्ट को नहीं मार सका। मृत्यु का मुझे कोई दुःख नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे एक-एक खून की बूंद से, घर-घर में सैकड़ों गोपीनाथ जन्म लेंगे।'

निश्चित समय पर गोपीनाथ को फाँसी हो गई।

सुभाष उस दिन बहुत चंचल हो उठे थे। जेल के गेट से लौट कर आए तो ध्यान लगा कर बैठ गए। भारत के विशाल मानचित्र को एकटक निहारते रहे।

तुम्हारी बात कब सच होगी गोपीनाथ? कब भारतभूमि पर तुम्हारी तरह सैकड़ों लड़के जन्म लेंगे? और कितनी देर है?

ध्यान भंग हुआ सहयोगियों के पदचाप को सुन कर। आश्चर्य! सुभाष की आँखों में अश्रुधारा?

थोड़ी देर चुप रहने के बाद सुभाष बोले—'गोपीनाथ को फाँसी हो गई। फाँसी के बाद ही एक अंग्रेज सार्जेन्ट ने आकर क्या कहा, जानते हो?

'He played like fawn
And at the dawn
Was slain on the lawn.'

मई के महीने में प्रादेशिक कांग्रेस की बैठक शुरू हुई सिराजगंज में। सभापति थे मौलाना अकरम खाँ।

गोपीनाथ की याद में उस दिन श्रद्धाञ्जलि देने के बाद एक प्रस्ताव पेश किया गया। उसमें कहा गया—'यद्यपि कांग्रेस अहिंसा की नीति की समर्थक है, फिर भी गोपीनाथ का यह बलिदान क्रान्तिकारी होते हुए भी अभिनन्दन योग्य है।'

सुन कर गांधीजी बहुत नाराज हुए। कांग्रेस की मीटिंग में यह सब क्यों? उन लोगों के लिए हमारा सिर-दर्द क्यों हो?

फलस्वरूप इसके विपरीत प्रस्ताव पेश हुआ अहमदबाद के अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के अधिवेशन में। वहाँ मृत आर्नेस्ट डे की असामयिक मृत्यु के लिए बेहद शोक प्रकट किया गया। शोक-सन्तप्त परिवार को भी बाकायदा समवेदना पत्र भेजा गया। उस दिन गोपीनाथ के भाग्य में निन्दा ही लिखी थी।

इस बार बंगाल के देशबंधु ने प्रतिवाद किया। शहीद गोपीनाथ अच्छी-बुरी निन्दा-प्रशंसा के आज परे हैं। देश के लिए जो जान दे-दे उस शहीद के लिए अगर प्रशंसा के दो शब्द नहीं कहे जा सकते हैं तो मानव धर्म के अनुसार जरा सी सहानुभूति तो दिखाई ही जा सकती है।

क्यों नहीं दिखाई जा सकती है? जरूर दिखाई जा सकती है। पर बंगाल के लिए नहीं, पंजाब के लिए।

क्योंकि गरज बड़ी भारी चीज है। देशबन्धु और सुभाष की शह पाकर बंगाल तो पहले ही हाथों से निकल चुका है, अब कहीं भगतसिंह के चक्कर में पंजाब भी न चला जाए, फिर बचेगा क्या?

वरना गोपीनाथ और भगतसिंह दोनों ही आदर्श विप्लवी थे। दोनों ने फाँसी के तख्त पर चढ़ कर देश के लिए प्राण दिए थे। फिर ऐसा भेद-भाव क्यों? दिल इतना छोटा क्यों?

भगतसिंह ने जिस रिवाल्वर से सॉन्डर्स को मारा था वह क्या अहिंसक रिवाल्वर था? जिस बम को उन्होंने दिल्ली के एसेम्बली हॉल में फेंका था, उस पर क्या अहिंसा की वाणी लिखी थी? इन प्रश्नों का उत्तर कौन देगा?

उत्तर आया बक्सा दुर्ग के भीतर से। वे लोग नहीं भूले थे कि १५ दिन का समय दिया गया था—उसके बाद बदला। उसी कल्पनाहीन सिद्धान्त को वास्तविक रूप देने का समय आ गया था।

भूटान सीमाप्रान्त पर स्थित अभेद बक्सा दुर्ग जिसके चारों ओर सदा सतर्क पहरेदार, जिनकी नजर बचा कर एक मच्छर या मक्खी तक अन्दर नहीं जा सकती थी।

इतनी होशियारी, सजगता के बावजूद एक दिन सभी दलों के आदेश से बी० वी० के नेता भूपेन रक्षित राय द्वारा भेजा गुप्त संकेत कलकत्ते के अन्य सदस्यों के पास पहुँच गया।

धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय ! धाँय ! एक के बाद एक, छह गोलियाँ खा कर कौन गिरा ?

पेडी ! मेदिनीपुर का बदमाश जिला मेजिस्ट्रेट जेम्स पेडी । दूसरों की गलती का महसूल उन्हें अपने खून से चुकाना पड़ा था उस दिन ।

भगतसिंह को फाँसी हुई २३ मार्च को और पेडी मारे गए ७ अप्रैल को । ठीक पन्द्रह दिन में यह प्रमाणित हो गया कि विप्लवियों की शपथ महत्व रखती है ।

गांधीजी और सुभाष । स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के सबसे उज्ज्वल दो सितारे । एक बुजुर्ग, एक युवक । एक वर्तमान, दूसरा भविष्य । कोई किसी से कम नहीं । किसी की देन तुच्छ नहीं । फिर भी फर्क था दोनों के विचारों में । नीति और कर्मधारा के मतभेद के कारण बार-बार दोनों में ठन जाती ।

गांधीजी असाधारण थे । खासतौर से राष्ट्रीय जन-जागरण के मामले में उनका योगदान आलोचना के परे था । इस जगह पर वे भारत के मुकुटविहीन सम्राट थे ; पर दूसरी तरफ उतने ही उदासीन और निर्लिप्त थे । इस बीच आधुनिक विचारधारा, राजनैतिक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिल्पकला, शिक्षा सभी कुछ बहुत आगे बढ़ चुकी है यह जान कर भी वे मौन थे ।

यहीं थी सुभाष की विशेषता । वे हर तरह से भिन्न थे । पृथ्वी की राजनीति, वैज्ञानिक विचारधारा को उन्होंने समझ लिया था ।

गोलमेज की बैठक के बारे में उनका कहना था कि अंग्रेज दिखावा कर रहे हैं । असल में वह सारे संसार को बताना चाहते हैं कि भारत स्वाधीनता पाने के योग्य नहीं है । उन्होंने कहा कि गांधीजी को गोलमेज की बैठक में भाग लेने की कोई जरूरत नहीं है । गांधीजी इस बात को नहीं मानना चाहते थे । वे संसार के किसी प्राणी पर अविश्वास नहीं करते थे । न द्वेष, न घृणा । अंग्रेजों से भी नहीं, अतएव उनकी सदइच्छा पर उन्हें किसी तरह का सन्देह नहीं था ।

लेकिन इस विश्वास का फल क्या मिला ?

गांधी-अरविन समझौते के अनुसार क़ैदी छूटे ?

क्या हुआ बंगाल के हिजली बन्दी निवास में ?

निरस्त्र कैदियों को मार डालने का अन्य कहीं उदाहरण देखा है ?

फिर भी गांधीजी आशावादी बने रहे । उन्होंने किसी पर भी विश्वास नहीं खोया । गोलमेज की बैठक में पूर्ण स्वाधीनता न सही, स्वशासन तो मिल ही सकता है ।

२९ अगस्त को गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए विलायत रवाना हुए । शायद वहाँ बातचीत के माध्यम से कुछ मिल जाए ।

इधर विप्लवी तत्पर थे। लोमैन, हडसन, सिम्पसन, गार्लिक, पेडी....एक के बाद एक विदा ले चुके थे।

उसके बाद नम्बर आया ढाका के जिला मेजिस्ट्रेट डूर्नो का। डूर्नो १९३१ की २८ अक्टूबर को घायल हुए थे। अपराधी सरोज गुहा और रमेन भौमिक फरार थे। पुलिस उन्हें पकड़ ही नहीं पा रही थी।

इसका परिणाम भयंकर हुआ। अपराधी न पकड़े जा सके तो उन्होंने सारा गुस्सा ढाकावासियों पर उतारा। हर किसी को मारो। अच्छा सबक सिखा दो। हर चीज जला कर रख दो।

खबर सुनते ही सुभाष भागे-भागे गए। इन अंग्रेजों ने सोचा क्या है ? इन्हें किस बात का अधिकार है ढाकावासियों पर अत्याचार करने का ? इस अत्याचार को रोकना होगा।

परन्तु सुभाष नारायणगंज के रेल स्टेशन पर रोक लिए गए—'तुम ढाका में नहीं घुस सकते हो। साहब का हुक्म है, तुम लौट जाओ।'

[illegible] सुभाष [illegible] पहचानते थे ? सुभाष कभी ऐसी बातें मान सकते हैं ? अखबारों में क्या निकला था—पढ़ो।

नारायणगंज में श्रीयुक्त सुभाष बोस गिरफ्तार

'नारायणगंज, ७ नवम्बर !

श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस को नारायणगंज में गिरफ्तार कर लिया गया है। श्रीयुक्त जे० सी० गुप्ता और जाँच कमेटी के दूसरे सदस्य ढाका रवाना हो गए हैं।

आज दोपहर बाद कलकत्ते से स्टीमर नारायणगंज पहुँचने पर फौजदारी की धारा १४४ के मुताबिक श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस को ढाका जिले में प्रवेश करने से रोकने की एक नोटिस जारी की गई। मिस्टर एल० जी० डूर्नो को जान से मारने के सिलसिले में जो गिरफ्तारियाँ ढाका में हुईं और उससे जिस परिस्थिति का जन्म हुआ है, उसी के कारण श्रीयुक्त बसु ढाका जा रहे थे।

उन्हें एक स्टीमर पर चाँदपुर भेज दिया गया है। एक जने के अलावा इस पार्टी के अन्य सभी को ढाका जाने दिया गया है।' [आनन्दबाजार : ८. ११. ३१]

जाओ, अब तुम चाँदपुर से कलकत्ता लौट जाओ। झमेला मत बढ़ाओ।

लेकिन कौन सुनता है ? शरीफ आदमी की एक जुबान होती है। मैं तो ढाका जाऊँगा ही। हाँ, इस रास्ते से नहीं, इस बार दूसरे रास्ते से जाऊँगा।

चाँदपुर से कुमिल्ला। रात को आखाउड़ा और भैरव होकर ढाका की तरफ चले।

ढाका के रास्ते पर श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस गिरफ्तार

'ढाका, ११ नवम्बर। ढाका से ४ मील दूर तेजगाँव स्टेशन पर श्रीयुक्त सुभाष-

चन्द्र बोस गिरफ्तार कर लिए गए हैं। मिस्टर डुर्नों के ऊपर हमले के बाद ढाका में पुलिस के अत्याचारों की जाँच कमेटी के काम में भाग लेने के लिए वे ढाका में प्रवेश की कोशिश करते समय गिरफ्तार किए गए हैं।

महकमा हाकिम ने श्रीसुभाष बाबू को लौट जाने को कहा लेकिन वे राजी नहीं हुए। तब उन्हें शर्त के अनुसार जमानत लेकर मुकदमें के दिन आने के लिए कहा गया। सुभाष बाबू जमानत के लिए तैयार नहीं हुए तो उन्हें मोटर द्वारा ढाका सेन्ट्रल जेल भेज दिया गया।' [आनन्दबाजार, १२. ११. ३१]

ढाका जेल में सुभाषचन्द्र बोस

साक्षात्कार सम्बन्धी लड़ाई

ढाका, १२ नवम्बर! आज श्री नरेन्द्र नारायण चक्रवर्ती, अविनाश भट्टाचार्य, सुरेन सेनगुप्ता और वकील श्री रजनीदास और योगेन गुहठाकुरता ने ढाका जेल में जाकर सुभाषचन्द्र बोस से मिलने के लिए प्रार्थनापत्र दिया था। उन्हें इस शर्त पर अनुमति दी गई कि सुभाष बाबू आकर लोहे की छड़ों के पीछे खड़े होंगे और साक्षात्-प्रार्थीगण बाहर से बातचीत करेंगे।

इस प्रबन्ध की बात सुनते ही सुभाषचन्द्र बोस ने प्रबन्धकारियों से कहा— 'साधारण कैदियों की तरह इस अपमानजनक स्थिति में मैं किसी से मिलने को तैयार नहीं हूँ।' इतना कह कर वे वहाँ से चले गए। इसीलिए उनसे बातचीत नहीं हो सकी है।' [आनन्दबाजार १३. ११. ३१]

श्रीयुक्त सुभाष बोस जमानत पर रिहा

ढाका, १४ नवम्बर। श्रीयुक्त सुभाषचन्द्र बोस को सदर महकमा हाकिम मिस्टर एस० एन० चटर्जी ने आज सुबह शर्तबद्ध जमानत के आदेश को रद्द कर के ५०० रुपया व्यक्तिगत जमानत का आदेश दिया है। उन पर जिला मेजिस्ट्रेट ने १४४ धारा जारी की थी वह भी हटा ली गई है।

दोपहर एक बजे सुभाष बाबू को छोड़ दिया गया। वहाँ से उनके साथ कुछ खास-खास लोग बार-लाइब्रेरी में गए और कुछ देर तक देश की स्थिति पर बातचीत होती रही।' [आनन्दबाजार, १५. ११. ३१]

ढाका में श्रीसुभाषचन्द्र बोस

ढाका, १५ नवम्बर। पिछले २८ अक्टूबर को पुलिस ने जिन-जिन घरों पर हमला किया था, उन सभी घरों में श्री बोस गए। उन्होंने हर घर के लोगों से बातचीत की और जिन-जिन चीजों का नुकसान हुआ था उसे भी देखा।

जिन पर पुलिस ने अत्याचार किया था श्री बोस ने उन्हें समवेदना दर्शाते हुए कहा कि सारा देश उनका ही पक्ष लेगा।' [आनन्दबाजार : १६. ११. ३१]

१४४ धारा न मानने का अभियोग हटाया गया

'शान्ति भंग की आशंका है, यह कह कर जिला मेजिस्ट्रेट ने श्रीयुक्त सुभाष बोस को ढाका जिले में घुसने के लिए मना किया था। इस आदेश की अवमानना करने के लिए सुभाष बाबू के नाम पर भारतीय दण्डविधि नियम १४४ धारा के अनुसार एक मुकदमा तैयार किया गया था। २३ नवम्बर को उस मुकदमें की सुनवाई होनी थी।

इस बीच सुभाष बाबू के पक्ष के वकील श्री योगेन गुहठाकुरता को सूचित किया गया है कि गवर्नमेन्ट ने यह मामला हटा लिया है। इसलिए फौजदारी कार्यविधि की २४८ धारा के अनुसार सुभाष बाबू को निरपराध होने के कारण छोड़ दिया जाता है।'
[आनन्दबाजार २०. ११. ३१]

यूरोपीय राजनीति के बारे में सुभाष बाबू कितनी जानकारी रखते हैं, इसका प्रमाण शीघ्र ही मिल गया। २८ दिसम्बर को सारी आशाओं पर पानी फेर कर गांधी जी गोलमेज की बैठक से लौट आए।

परन्तु खाली हाथ नहीं। अपने साथ लाए प्रचुर अपयश, निन्दा और चर्चिल का दिया नया परिचय पत्र—'हॉफ नेकेड फकीर।'

अंग्रेजों की इच्छा पूरी हुई। देश-विदेश में काफी प्रचार किया गया कि 'हम तो उन्हें स्वाधीनता देना चाहते हैं पर ये लोग स्वयं ही आपस में एकमत नहीं हो पा रहे हैं। हम इसके लिए क्या कर सकते हैं।'

तुलना रहित चरित्र के अधिकारी गांधी जी उस दिन अंग्रेजों की नजर में क्या स्थान रखते थे, नीचे के इस पत्र से अनुमान लगा सकती हो। इस पत्र के लेखक हैं एडवर्ड टॉमसन। न केवल जवाहरलाल के परममित्र बल्कि भारत के वास्तविक शुभेच्छु मित्र। मित्र जवाहरलाल को लिखा था—

'गोलमेज की बैठक के पहले मैंने कभी गांधीजी में कोई कमी नहीं पाई थी। अब उस पर मेरी नजर पड़ी है। गांधीजी न केवल अहंकारी हैं, बल्कि असंलग्न भी हैं। वे इंग्लेण्ड न आते तो अच्छा होता।'

[बंच आफ ओल्ड लेटर्स, पृ० २०८]

अंग्रेजों की कुछ भी धारणा रही हो, पर गांधीजी सहज ही में हार मानने वाले नहीं थे। अन्तिम प्रयास के रूप में उन्होंने गोलमेज की बैठक में जो आवेदन प्रस्तुत किया वह वास्तव में मार्मिक है। किसी हद तक करुण भी। उसमें उन्होंने लिखा था—

'ईश्वर के नाम पर मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि इस कमजोर, बासठ वर्ष के वृद्ध को अन्तिम बार मौका दो। तुम्हारे हृदय के एक कोने में उसे और उसकी संस्था को थोड़ी सी जगह दे दो।'

इतना ही नहीं। अंग्रेज शासकों को एक इशारा भी किया उन्होंने—'तुम्हें क्या सचमुच भविष्य दिखाई नहीं देता है ? मेरा यह दावा उपेक्षित होने पर इतिहास तुम्हारे

लिए बैठा नहीं रहेगा। और वह इतिहास लिखा जाएगा आतंकवादियों की रक्तरंजित लेखनी से।' [कांग्रेस का इतिहास, डा० पट्टाभि, पृष्ठ ४६८]

आतंकवादी! यह बात सिर्फ अंग्रेजों की नहीं थी, गांधीवादियों की भी थी। इस मामले में दोनों पक्षों में अद्भुत मेल था। दोनों का कहना था कि विप्लवियों में देशप्रेम की भावना नहीं होती है। वे आतंकवादी होते हैं। इतने लोग फांसी पर लटके, इतने मारे गए, कितनों ने आजीवन कारावास भोगे और क्या यह सब अर्थहीन, मूल्य-हीन था? क्योंकि वे आतंकवादी थे! वे देश के शत्रु थे!

'देश के शत्रु।' स्वयं गांधीजी का कहना था। यह बात उन्होंने एक दिन स्पष्ट रूप से बंगाल के साहित्यकार लेखक शरतचन्द्र से कही थी।

चरखा चला कर किसी दिन स्वराज्य आएगा—शरतचन्द्र कभी विश्वास नहीं करते थे। कई पत्र-पत्रिकाओं में इस बात पर उन्होंने व्यंग किया था। इसीलिए गांधी जी ने स्पष्ट रूप से पूछा शरतचन्द्र से—

'But why don't you believe that the attainment of Swaraj will be helped by spinning ?'

बेझिझक शरतचन्द्र ने तुरन्त उत्तर दिया—'I think attainment of Swaraj can only be helped by soldiers and not by spiders.' शरतचन्द्र यहीं नहीं रुके। उसके बाद ही पलट कर पूछा था, 'आप के हिसाब से तो फिर अहिंसा ही एकमात्र अस्त्र है?'

उत्तेजित होकर ज़ोर देते हुए गांधीजी ने उत्तर दिया था—'इस विषय में मैं दो राय नहीं हूँ। जो लोग सशस्त्र विप्लव में विश्वास करते हैं वे बहक गए हैं और जो आतंकवादी हैं वे देश के शत्रु हैं।'

सारा देश जानता है कि शरतचन्द्र के हृदय में बंगाल के मृत्युभय-विहीन विप्लवियों के लिए कितनी ममता है। और इसीलिए सरकारी आदेश पर उनका बन्दूक और पिस्तौल का लाइसेन्स छीन लिया गया था। गांधी जी के मुँह से ऐसी बात सुन कर उन्होंने भयंकर विरोध किया—

'शत्रु शब्द का अर्थ क्या है? मत विरोध से अगर आदमी शत्रु बन जाता है तो कोई भी आपको शत्रु कह सकता है।—इसमें आपको व्यक्तिगत आपत्ति होनी चाहिए, है न? विप्लवियों के नाम पर इन आतंकवादियों को मैं श्रद्धा करता हूँ, क्योंकि ये लोग देश को प्यार करते हैं। प्यार करते हैं इसीलिए जीवन में जो सब चीजें प्रिय थीं उन सभी को बुलेट के आगे न्योछावर कर दिया। इनका यह त्याग, यह आदर्श, आपकी नज़र में बहकना हो सकता है, लेकिन ये देश के शत्रु कैसे हुए ये बताइए ज़रा?'

इस बात का उत्तर गांधी जी नहीं दे सके थे, बल्कि अपनी बात वापस ले ली थी। [अध्यापक दिलीप घोष राय रचित 'गांधीवाद क्या सचल है?' निबन्ध से संकलित : साप्ताहिक बसुमति : १५ अगस्त, १९६८]

गोलमेज् की बैठक में गांधी जी ने जो भविष्यवाणी की थी वह झूठी नहीं थी, मल्लिका। कांग्रेस का आन्दोलन स्थगित हो जाने पर भी, तथाकथित आतंकवादियों ने अपना काम नहीं रोका।

उन्हें आवेदन-निवेदन पर विश्वास न था। घुटने टेक कर करुणा की भिक्षा माँगना उनका धर्म नहीं था। इसलिए सबके पिछड़ जाने पर भी ये लोग हिले तक नहीं। फांसी, आजीवन कारावास, अत्याचार, यातना की उपेक्षा कर वे आगे बढ़ते गए। जयगान गाते रहे। बाद में भले ही विप्लवियों की कर्म प्रचेष्टा को जनसाधारण की दृष्टि में छोटा बना दिया गया हो, हँसते-हँसते जान देना-लेना, इतिहास कैसे अस्वीकार कर सकता है !

'अंग्रेजों का कोई भरोसा नहीं है। वे सब कर सकते हैं। धोखाधड़ी, कपटता, विशेष रूप से उनकी वादा खिलाफी की तुलना दुनिया में और कहीं नहीं हो सकती है।'

यह सुभाष का कहना था। न केवल एक बार, गांधी जी व भारतवासियों को यह बात उन्होंने बार-बार समझाने की कोशिश की थी। अनेक जगहों पर, अनेक तरह से, कई दिनों तक।

यहाँ तक कि बाद में (१६४३ की जून में) टोकियो से प्रसारित एक भाषण में भी उन्होंने कई बार यह बात कही थी।

'चिड़ियों में कौआ, पशुओं में सियार और मनुष्यों में ब्रिटिश साम्राज्यवादी सबसे अधिक धूर्त और निष्ठुर होते हैं।'

गांधीजी ने विश्वास नहीं किया। जवाहरलाल ने तो नहीं ही, क्योंकि गांधी जी के शब्दों में 'ये आदमी (जवाहरलाल) जितना न भारतवासी है उससे कहीं ज्यादा अंग्रेज है।'

लेकिन इतिहास का क्या कहना है ?

पहले महायुद्ध के बाद भारतवासियों को क्या मिला ?

गांधी-अरविन समझौते के बदले क्या पाया ?

बाजे-गाजे के साथ गोलमेज की बैठक में जाने का फायदा ही क्या हुआ ?

एकमात्र व्यर्थता और बेकार का समय बरबाद हुआ न ?

न केवल यही। अरविन के बाद बड़े लाट बन कर आए पक्के ब्यूरोक्रेट लार्ड वेलिंगडन। उसके बाद कहाँ का समझौता और कहाँ अंग्रेजों का वादा ?

शुरू हुई दमन नीति और व्यापक धर-पकड़। खास तौर से बंगाल में। ये लोग मरना ही नहीं जानते हैं बल्कि मारते भी हैं, इसलिए इन्हें जेल में भरो। एक भी आदमी बाहर नहीं रहेगा।

कांग्रेसी नेतागण अवाक् रह गए। यह कैसी बात है ? समझौते की शर्तों के

अनुसार तुमने विप्लवियों को नहीं छोड़ा, हमने मान लिया। भगत सिंह, शुकदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी, हमने सह लिया। उसके बाद बंगाल के हिजली बन्दी-गृह में अनर्थक गोली चला कर निहत्थे क़ैदियों की हत्या कर दी। इस बात पर सुभाष ने काफी शोर मचाया पर हमने 'उफ' तक नहीं किया। गोलमेज की बैठक से गांधीजी को खाली हाथ लौटा दिया, उसे भी हमने मान लिया। उस पर भी अब तुम अगर इस तरह से गांधी-अरविन सन्धि को भंग करो तो...

'सन्धि ! कैसी सन्धि ? वेलिंगडन अटल-अडिग। इन सन्धि-वन्धि की बातें करना है तो जाकर अरविन से करो।

१६३२ में १ली जनवरी को बम्बई में वर्किंग कमेटी की बैठक बुलाई गई। वहाँ प्रस्ताव में कहा गया—'सरकार से सात दिनों में हम उत्तर चाहते हैं। अन्यथा हम फिर अवज्ञा आन्दोलन शुरू करेंगे।'

ये बात है ? वेलिंगडन ने भी अब अपना असली रूप धारण किया। आन्दोलन शुरू करोगे ? ठहरो, हम तुम्हें मजा चखाते हैं।

उन्होंने गिरफ्तारी शुरू की। जवाहरलाल तो पहले से गिरफ्तार थे ही, अब गांधी जी को कर लिया। उसके बाद सीमान्त गांधी, सरदार बल्लभभाई पटेल जैसे लोग पकड़े गए। सिर्फ दो ही महीने के भीतर गिरफ्तार होने वालों की संख्या जा पहुँची बत्तीस हजार से भी ज्यादा। यह तो सिर्फ उनकी सन्धि और वादे का नमूना था।

सुभाष को भी नहीं छोड़ा। वर्किंग कमेटी के सदस्य न होने पर भी उन्हें विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था बम्बई के अधिवेशन में भाग लेने के लिए। घर लौटने वाले थे। लेकिन बम्बई से तीस मील दूर कल्याण में अचानक डाकगाड़ी रोक दी गई। आगे बढ़ आई विशाल पुलिस सेना। '१८६८ के तीन-कानून के अन्तर्गत तुम्हें कैद किया जाता है। अब हमारे साथ चलो। अपराध वगैरह हम क्या जानें....तुम्हें पकड़ा जाता है, बस।'

वहाँ से ले जाए गए मध्यप्रदेश के सिउनी सब-जेल में। उसके बाद जबलपुर सेन्ट्रल जेल। पर इस बार स्वास्थ्य ने साथ न दिया। उन्हें भुवाली सैनिटोरियम भेज दिया गया। परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। दिन पर दिन स्वास्थ्य गिरता ही गया। हर रोज बुखार रहने लगा। पेट में असहनीय जलन बनी रहती। हाजमा भी बिगड़ गया था। अंत में डाक्टर की परीक्षा के लिए उन्हें लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में ले जाया गया।

अंग्रेज डाक्टर कर्नल बॉकली का माथा ठनका। अब देर करना ठीक नहीं। अगर जीवित रखना है तो फौरन यूरोप भेज देना चाहिए।

सरकार तैयार हो गई। 'लेकिन एक शर्त है। अपने खर्चे से जाना पड़ेगा और कलकत्ते नहीं जा सकेंगे। सीधे यहीं से जाना पड़ेगा।' १६३३ साल की २३ फरवरी को वे वियना के लिए रवाना हुए।

दो-एक विशेष व्यक्तियों के अलावा उस दिन सुभाष को किसी से मिलने नहीं दिया गया। बम्बई के जहाज की जेटी पर भी नहीं। बन्द एम्बुलेन्स कार से उन्हें जेटी लाया गया और वहीं से स्ट्रेचर द्वारा सीधे चढ़ा दिया गया इटैलियन जहाज 'गंगा' में।

सभी दुःखी थे। सब का हृदय भरा था। सुभाष अस्वस्थ। न जाने अब कब लौटेंगे।

सहसा, एक छोटी-सी घटना को केन्द्रित कर परिस्थिति जटिल हो गई।

कुछ दिनों पहले ही सुभाष ने एक विशेष अनुरोध करते हुए दो चिट्ठियाँ भेजी थीं। एक गांधी जी को और एक रवीन्द्रनाथ को। वे यूरोप में जब तक रहेंगे उस बीच वहाँ के विशिष्ट राजनीतिज्ञों से परिचित होना चाहते थे। इसी के लिए दो परिचय-पत्र चाहिये थे।

रवीन्द्रनाथ की चिट्ठी इस बीच आ गई। नहीं आई गांधीजी की चिट्ठी, पर आ जाएगी। जरूर आएगी। इस मामूली सी बात को वे इन्कार नहीं करेंगे।

प्रहर बीत गए प्रतीक्षा करते-करते। सुभाष अस्थिर हो उठे। चंचल। जहाज का लंगर उठने ही वाला था, लेकिन कहाँ आई गांधीजी की चिट्ठी ?

सहसा महादेव देसाई, गांधीजी के सेक्रेटरी को आते देख उनका चेहरा खिल उठा। वे जानते थे, चिट्ठी आएगी। लाइए, चिट्ठी दीजिए !

कहाँ की चिट्ठी ? कैसी चिट्ठी ? गांधीजी ने साफ-साफ कह दिया है कि वे सुभाष को कोई परिचय-पत्र नहीं दे सकते हैं।

सुन कर सुभाष स्तब्ध रह गए। फिर धीरे-धीरे उन्होंने रवीन्द्रनाथ द्वारा भेजा गया परिचय-पत्र भी फाड़ डाला। इसकी भी जरूरत नहीं है। आज से वे अपने ही परिचय से खड़े होने की कोशिश करेंगे हर जगह।

तुम तो जानती हो, मल्लिका। वे साधारण आदमी नहीं थे। न जाने क्यों सुभाष के बारे में सब कुछ जानते हुए भी गांधीजी ने उन्हें इस तरह से इंकार कर दिया ! तो क्या वे शुरू से ही उन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उनके विरुद्ध थे ? इस प्रश्न का उत्तर गांधीजी के अलावा कोई दे भी नहीं सकता था।

८ मार्च को वियना पहुँच कर डाक्टर फूर्थ के स्वास्थ्य-निवास में ठहरे। कुछ स्वस्थ हुए तो स्विटज़रलैण्ड। उसके बाद धीरे-धीरे अनेकों देशों में गए। पहले चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, बुलगेरिया, पोलैण्ड जैसे अनेक देशों में गए।

पोलैण्ड में कृषि विद्यालय में वैज्ञानिक ढंग से कैसे कृषि होती है, और कृषकों का जीवन बदलना कैसे सम्भव है, इस बात को देखा और समझा।

सेन्ट्रल लेजिस्लेचर के सभापति और स्पीकर विट्ठलभाई पटेल इन दिनों वियना में इलाज के लिए आए हुए थे। देखते ही देखते दोनों में गहरी मित्रता हो गई। एक नवीन, एक प्राचीन। फिर भी चिन्ताधारा की दृष्टि से दोनों एकमत थे। दोनों ही वाम-

पन्थी। दोनों प्रगतिवादी होने के कारण, उम्र का अन्तर होते हुए भी एक दूसरे को पहचान गये।

सहसा एक अप्रत्याशित खबर देश से मिली। वही इतिहास की पुनरावृत्ति, वही पराजय की कहानी। जेल से छूटते ही (७ अप्रैल) दूसरे दिन गांधीजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया था। उसी के साथ सरकार के पास एक आवेदन-पत्र भेजा था कि सत्याग्रहियों को छोड़ दिया जाय। और आर्डीनेन्स उठा लिए जाएँ।

बड़े लाट लार्ड वेलिंगडन ने उनके आवेदन की परवाह तक न की। यहाँ तक कि गांधीजी से मिलने तक को तैयार नहीं हुए। वे कोई बात नहीं करेंगे। कोई शर्त नहीं मानेंगे। पराजित दल शर्त रखने का हक़दार ही कहाँ है?

इस समाचार से सुभाष और विट्ठलभाई बहुत नाराज़ हुए।

'इसके क्या मतलब हुए? आन्दोलन रोका क्यों गया? यही अगर करना था तो आन्दोलन करने का नाटक क्यों?'

९ मई १९३३ को दोनों ने मिल कर एक संयुक्त विज्ञप्ति भेजी भारतवासियों के लिए, जिसमें कहा गया था—'कानून-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द रख कर गांधीजी ने अन्त में यह जो काण्ड किया है इससे मान लेना पड़ेगा कि कांग्रेस की वर्त्तमान पद्धति व्यर्थ है। हम लोग स्पष्ट रूप से समझते हैं कि राष्ट्रनेता के रूप में गांधीजी असफल है। अब जरूरत है कांग्रेस को नई नीति और नई पद्धति से फिर से सजाया जाए। कांग्रेस को पुनर्गठित करने के लिए नेता भी बदल देना जरूरी है।'

भारत के राजनीति के क्षेत्र में नेहरू जी हमेशा ही बड़ी भारी जिज्ञासा के चिह्न रहे हैं। कब किस तरफ झुक जाएँ कहना कठिन था। इस प्रकार के अस्थिर चित्त के व्यक्ति ने भी उस दिन आन्दोलन रोकने के लिए गांधीजी की आलोचना की थी। जेल से छूटते ही उन्होंने गांधीजी को लिखा—

'आपने अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया है, यह खबर सुन कर मैं बहुत ही दुःखी हुआ हूँ।....इसके पक्ष में आपने जो कारण दर्शाए हैं और भविष्य के काम के लिए जो सारे प्रस्ताव पेश किए हैं, उससे मुझे बड़ा अचम्भा हुआ है। आपकी विज्ञप्ति ने मुझे जीवन का सबसे बड़ा आघात पहुँचाया है। आज कांग्रेस 'कंकाल' के अलावा कुछ नहीं है। सुविधावादियों की आज जयजयकार है।' [बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृष्ठ ११२]

सबसे कठोर समालोचना की बम्बई प्रादेशिक कांग्रेस के सभापति और वर्किंग कमेटी के सदस्य मिस्टर नरीमैन ने। उन्होंने तीव्र शब्दों में आलोचना करते हुए कहा:

'गांधीजी के इस असंशोधनीय मनोभाव का प्रतिकार क्या है? राजनीति और धर्म की यह खिचड़ी, और उनकी भूलों और भ्रमों की अन्तहीन परिक्रमा—इनसे राष्ट्र को छुटकारा कब मिलेगा ?....उपाय है। गांधीजी के चारों ओर कुछ स्वाधीन सत्ता-विहीन मशीन की पुतलियाँ इकट्ठा हो गई हैं जो गांधीजी को देख कर सिर हिलाती हैं, बात करती हैं, समर्थन करती हैं। उनकी जगह अगर कोई ऐसा आदमी मिल जाता

जिसमें व्यक्तित्व हो, जो आसानी से साफ और सीधी बात कर सकता हो, और जिसके पास हो राजनैतिक दिमाग़।'

गणतन्त्र शासन में सभी समालोचना करने का अधिकार रखते हैं। नरीमैन भी इससे नहीं बचे। इसके बावजूद अहिंसावादी गांधीदल भी उस दिन नरीमैन के वक्तव्य से अप्रसन्न हो गया। उन्हें हाथों-हाथ बदला मिल गया।

'अभागा नरीमैन। कांग्रेस के मालिकों के फैसले ने उन्हें धराशायी कर दिया। नरीमैन के देश-सेवा के रास्ते पर काला पर्दा आ गिरा।'

[इण्डिया विन्स फ्रीडम : मौलाना आज़ाद : पृष्ठ १६]

नरीमैन का कण्ठ भले ही स्तब्ध हो गया हो, इतिहास का गला कहाँ दबा सकते थे वे लोग ? बल्कि नरीमैन की बात ही उस पर लिखी रह गई। बार-बार बीच ही में आन्दोलन रोक देने के कारण इतिहासकार डाक्टर रमेशचन्द्र मजुमदार ने लिखा है—

'Gandhi, the politician, hopelessly blundered. He sounded the order of retreat just when the public enthusiasm had reached the heating point..'

सुनो, देशबन्धु ने क्या कहा—'The Mahatma opens campaign in brilliant fashian, he works it up with unerring skill, he moves from success till reaches the zenith of his campaign, but after that he loses his nerve and begins to falter.'

और जवाहरलाल। इस बारे में बाद में उन्होंने जो बात कहीं, वह सुनो—'I felt annoyed with him for choosing a side issue for the final sacrifice....After so much sacrifice and brave endeavour was our movement to tail off into something insignificant ?

I felt angry with him at his religious and sentimental approach to a political question and his frequent references to God in connection with it....' [Nehru on Gandhi, P. 72; Towards Freedom, 236,9]

यह सब ठीक है। लेकिन यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि गांधीजी ने अपने जीवन और अपनी साधना के बल पर बीसवीं शताब्दी में, भारत में जागृति ला दी। अपने देश को विश्व की नजरों में परिचित कराने का श्रेय उन्हें ही जाता है। जवाहरलाल और अन्य नेताओं को गांधीजी के सामने सिर झुकाना ही पड़ा था।

इसके अलावा उनके पास दो अचूक अस्त्र थे, जिनसे डरना ही पड़ता था। उसमें से एक था, रह-रह कर कांग्रेस छोड़ देने का संकल्प और दूसरा था अनशन।

सुभाष के शब्दों में—Whenever any opposition raised outside his cabinet, he could always coerce the public by threatening to retire from the Congress or to fast unto death.' [The Indian struggle, Subhash Chandra Bose, P. 245]

देशबन्धु और विट्ठलभाई पटेल। स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के दो उल्लेखनीय नाम।

इन दोनों ने पहली ही बार में सुभाष को पहचानने में जरा भी गलती नहीं की थी, मल्लिका। गलती नहीं की थी कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने भी।

देशबन्धु की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। अब पटेलजी। उनका जीवन दीप धीरे-धीरे बुझ रहा था। केवल प्रतीक्षा थी।

सिरहाने सुभाष बैठे थे। रात्रि जागरण की क्लान्ति-भरी कालिमा चेहरे पर। स्वाधीनता संग्राम के योद्धा पटेल जी आज देश से दूर धीरे-धीरे महाप्रस्थान के पथ की ओर बढ़ रहे थे। कितने दुःख की बात थी?

असीम स्नेह से पटेलजी तरुण सुभाष का चेहरा निहार रहे थे। अचानक उनके चेहरे में चमक आ गई।

गीता का श्लोक झूठ नहीं हो सकता है। वह क्षण आ गया है। अन्याय और पाप के हाथों से पृथ्वी को भारमुक्त करने के लिए इस बीच वह आ गया है। दानव के हाथों से मातृभूमि के मुक्त होने के दिन आ गए हैं। संग्राम शुरू होने ही वाला है।

'सुनो सुभाष।' स्नेह-भरी वाणी थी पटेल जी की, 'जिस काम में हाथ डाला है उसे अन्त तक पूरा करना। मैं जानता हूँ, तुम ही वह व्यक्ति हो जो भारत की पतवार-रहित नाव को ठीक रास्ते से ले जा सकोगे। अपनी विल में मैंने तुम्हारे लिए एक लाख रुपया रखा है। विदेशों में प्रचार-कार्य के लिए तुम अपनी इच्छानुसार खर्च करना।' कहते-कहते उनकी आँखें बन्द हो गईं। परम शान्ति, निश्चिन्तता और निर्भरता....वे आराम से ऐसा सोए कि फिर नहीं जागे।

सुभाष का सूना हृदय हाहाकार कर उठा। विदेश में पाए श्रेष्ठ मित्र को उन्होंने आज खो दिया। फिर वे अकेले हो गए।

लेकिन वह एक लाख रुपए? उन रुपयों का क्या हुआ? सुभाष को सचमुच ही वह रुपए मिले थे? नहीं—नहीं मिले वह रुपये। बाधा डाली वल्लभभाई पटेल ने। नाना प्रकार की कानूनी चालें चल कर उन्होंने विल की इस शर्त को गलत साबित करवा दिया।

परन्तु सुभाष की जगह अगर जवाहरलाल होते? तब भी क्या बड़े भाई के आदेश को रद्द करवाने के लिए सरदार पटेल जी-जान से जुट जाते? शायद नहीं।

पटेल जी की मृत्यु के बाद सुभाष की परिक्रमा फिर शुरू हुई। फ्रांस, रोम...,और अन्य जगहों में। एकाकी निर्वासित जीवन। परिवार से दूर, बंधन रहित, एकाकी।

इंगलैंड से बुलावा आया। वहाँ भारतीयों के सर्वदलीय राजनैतिक सम्मेलन में सुभाष को सभापति बन कर जाना है। लेकिन अंग्रेज सरकार ने उन्हें जाने नहीं दिया। वे सुभाष को खूब पहचानते थे, इसीलिए किसी तरह का रिस्क लेने को तैयार न थे।

जवाहरलाल होते तो कोई बात न थी। क्योंकि स्वयं गांधी जी के शब्दों में—He is more English than Indian in his thoughts and make-up. He is often more at home with Englishman than with his countryman'. अर्थात् जवाहरलाल जितने तो भारतीय नहीं उससे कहीं ज्यादा अंग्रेज हैं, इसीलिए देशवासियों की जगह अंग्रेजों के साहचर्य से ज्यादा खुश होते हैं।

[कांग्रेस का इतिहास : डॉ० पट्टाभि : भाग २ : पृष्ठ १३२]

इसीलिए जवाहरलाल के लिए यह प्रश्न नहीं उठता था। उन लोगों ने कभी आपत्ति नहीं की थी। बल्कि बुलाया तो उन्हें काफी सम्मानित भी किया गया था। पर सुभाष और जवाहरलाल तो एक नहीं। सुभाष ठहरे महाविद्रोही। उस पर आयरलैंड के सिनफिन विद्रोहियों के मामले में वे बड़ा उत्साह दिखा रहे थे। इस बात को उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था। ऐसे आदमी को इंगलैंड में घुसने देना, मुसीबत मोल लेना था।

लाचार होकर सुभाष ने डाक द्वारा अपना भाषण लिख कर भेज दिया। भाषण क्या था, आग का अंगार था। साम्राज्यवादी यूरोप की जमीन पर खड़े होकर ऐसा आग बरसाता भाषण दे सके, इतना साहस सुभाष के अलावा और किसी में था भी नहीं।

'अंग्रेजों का यह मनोभाव और उसका अस्तित्व शायद और ज्यादा दिनों तक इसी तरह अटूट रहेगा, अगर हम अस्त्र-शस्त्र की मदद से या आर्थिक अवरोध द्वारा अंग्रेजों का जीवन भीतिकर और कष्टकर न कर दें। कानून अवज्ञा आन्दोलन ऐसा नहीं कर सका है।'

१० जून, १९३३ को लन्दन के फियर्स हॉल में डाक्टर किरण भट्टाचार्य द्वारा सुभाष का भेजा हुआ भाषण पढ़ा गया तो टोरी दल नाराज हुआ।

स्वर में स्वर मिलाया पत्र-पत्रिकाओं ने। शुरू हुई अंग्रेजों की सिद्ध औषधि, कुप्रचार—सुभाष बोस कम्युनिस्ट है। वह फासिस्ट है। यूरोप के दूसरे राष्ट्रों को चाहिए कि ऐसे खतरनाक आदमी से सावधान रहें। वरना पछताना पड़ जाएगा।

सुभाष ने इसका मुंहतोड़ जवाब दिया। वियना से। उन्होंने संक्षिप्त एक विज्ञप्ति में अपने मन की बात साफ-साफ प्रकट कर दी—'सारी पृथ्वी में इस समय विभिन्न प्रकार के मतवादों पर विचार-विमर्श हो रहा है। उनमें से अन्त तक कौन सा स्थाई होगा कहना कठिन है। ठीक से देख-सुन कर उनमें से जो सत्य है, जो भारत के लिए कल्याणकारी है, हम लोग उसी को ग्रहण करेंगे। शुरू से किसी अनिश्चित मतवाद के पास मस्तिष्क बन्धक रखें, इसके लिए मैं तैयार नहीं हूँ।'

फिर देश-परिक्रमा शुरू हुई। निर्वासित जीवन के एकाकी दिनों को बरबाद नहीं किया जा सकता है। बहुत कुछ जानना है। जानना है वर्तमान यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति की कहानी। परिचित होना है नए देश के नए लोगों से।

जिनेवा से फ्रांस। उसके बाद बुडापेस्ट, सोफिया, बुखारेस्ट और बेलग्रेड।

इसी के साथ चलती रही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की रचना।

अचानक छन्दपतन हुआ। खबर आई, पिता मृत्युशय्या पर हैं। अवस्था चिन्ता-जनक है। क्या होगा-कहना मुश्किल है। सुभाष चंचल हो उठे। कानूनी तौर पर मना होने पर भी उनके पास लौट आना जरूरी है।

३ दिसम्बर को वे हवाई जहाज से करांची पहुँचे। वहाँ से सीधे दमदम। लेकिन कहाँ थे तब स्नेही पिता जानकी बोस? दो दिन पहले उनकी मृत्यु हो चुकी थी। पर क्या इसके लिए उनकी अभ्यर्थना नहीं हुई?

लम्बे अरसे बाद देश की धरती पर पाँव रखते न रखते एक विशाल पुलिस-वाहिनी ने उनकी अभ्यर्थना की। उन्होंने हाल ही में पितृवियोग से पीड़ित सुभाष के हाथ में एक निर्देशन पत्र पकड़ा दिया।

'हवाई अड्डे से सीधे एलगिन रोड वाले घर जाओ। घर के बाहर मत निकलना। घर के लोगों के अलावा बाहरी किसी से बात नहीं कर सकते हो। डाक से आई हर तरह की चिट्ठी पुलिस के पास देना होगा। इनमें से एक भी आदेश नहीं माना गया तो सात साल का सश्रम कारावास।'

अंग्रेज सरकार इतने से ही नहीं मानी। कुछ दिन बीते नहीं कि नया आदेश। 'अविलम्ब यूरोप लौट जाना होगा। तुम्हारे जैसे आदमी को देश में रहने देना सुरक्षित नहीं।'

१९३५ साल; ८ जनवरी को सरकारी आदेश पर सुभाष फिर यूरोप वापस चले गए। फिर निर्वासित जीवन।

पहले वे निपल्स गए। वहाँ से रोम। उनकी मुसोलिनी से भेंट हुई। वहाँ से वियना लौट गए। फिर जिनेवा और फ्रांस।

इस बीच १७ जनवरी को सुभाष की लिखी पुस्तक 'इण्डियन स्ट्रगल' प्रकाशित होते ही सारे यूरोप में तहलका मच गया। सारे संसार के सामने इस तरह से आज तक किसी ने भारतवासियों की बात नहीं रखी थी। इससे पहले इस तरह से किसी ने भी अंग्रेजों का मुखोटा नहीं उतार फेंका था।

'बन्द करो। इस पुस्तक को बन्द कर दो।' भेद खुलते ही सुसभ्य अंग्रेज सरकार गरज उठी। 'किसी हालत में ये किताबें भारत में न जाने पाए।' इसलिए एक हफ्ते बाद ही, २३ तारीख को सुभाष की लिखी यह पुस्तक जब्त कर ली गई सारे भारत में।

स्विटजरलैंड में भेंट हुई पृथ्वी के श्रेष्ठ विद्वान् रोमाँ रोलाँ से। इससे पहले ही सुभाष को वे उनकी पुस्तक के लिए प्रशंसा-पत्र भेज चुके थे। उस पत्र में उन्होंने लिखा था—'भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास जानना हो तो यह पुस्तक पढ़ना जरूरी है। ऐतिहासिक महत्व में निखार आ गया है आपकी लेखनी के द्वारा।.... राजनीति की असीमित कार्य व्यस्तता के बावजूद, दलीय विचारधारा ने आपके विचारों पर प्रभाव नहीं डाला है। यह दुर्लभ वस्तु है।....मैं कामना करता हूँ कि आप जल्दी

स्वस्थ हो जायें। भारतवर्ष की भलाई के लिए आपका स्वस्थ होना जरूरी है।'

१९३६ साल। लखनऊ कांग्रेस। गांधी जी की इच्छानुसार जवाहरलाल सभा-पति हुए।

तरुणों का दल चंचल हो उठा। पुरानी विचारधारा से अब वे प्रभावित न थे। उन्हें नयी तरंग, नया पथ-निर्देश चाहिए था। इस बीच कुछ लोग सोशलिज्म की ओर झुक गए थे। कुछ लोग कम्युनिज्म की ओर झुकने लगे थे। ऐसे मौके पर युवाशक्ति को कौन हिला सकता था?

जवाहरलाल?

सुभाष के बाद जवाहरलाल ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिनसे युवक लोग आशा रखते थे। इसके अलावा उनकी ओर से कोई डर भी नहीं था। उनका अपना कुछ भी मत क्यों न हो, जरूरत पड़ने पर उन्हें वश में लाना आसान है। इसके अलावा और कारण भी है। १९३५ में जो नई शासन प्रणाली चालू हुई है, उससे प्रदेशों में मन्त्री-पद पाना अब मुश्किल नहीं रह गया था। अनायास ही निर्वाचन के माध्यम से वह पद मिल सकता था।

झंझट पैदा कर रखा है इन युवकों ने। इनका कहना है कि अंग्रेजों की यह एक धोखेभरी चाल है। क्योंकि प्रान्तों में भले ही कुछ सुविधायें प्राप्त हो जायें, केन्द्रीय शासन के क्षेत्र में तो सवाल ही नहीं उठता है। युवक सम्प्रदाय यहीं आपत्ति कर रहा था। उसका कथन था कि इस शर्त पर मन्त्रित्व स्वीकार कर लेने के अर्थ होंगे, साम्प्रदायिकता को मान लेना। इसलिए कांग्रेस को सरकार के इस जाल में फँसना नहीं चाहिए।

देखना है जवाहरलाल इस मामले में क्या तय करते हैं। जवाहरलाल के सभापति निर्वाचित होने की खबर पा कर सुभाष बहुत खुश हुए।

सोलहों आने गांधी भक्त होते हुए भी जवाहरलाल की राजनैतिक दूरदर्शिता और कर्मदक्षता पर उन्हें भरोसा था। उन्होंने इसीलिए जवाहरलाल को लिखा—'आज जितने लोग नेतृत्व कर रहे हैं उनमें से केवल तुम पर मुझे भरोसा है। तुम कांग्रेस को आगे ले जा सकोगे।....मैं दिल से आशा करूँगा कि तुम अपने आदर्शों के अनुसार निर्णय लेने में अपने व्यक्तित्व का प्रयोग करोगे।...अपने को दुर्बल मत समझना।....जैसे भी हो सके कांग्रेस की गद्दी दखल करने की चेष्टा रोकनी होगी। वर्किंग कमेटी को भी बढ़ाना होगा। यह दोनों ही काम अगर तुम कर सके तो कांग्रेस को पतन होने से बचा सकोगे।....अगर मुझे लखनऊ जाने का मौका मिला तो मैं तुम्हारे पास रहूँगा।'

इस बार सुभाष ने एक नया सिद्धान्त अपनाया। सोचा, अब निर्वासित जीवन

व्यतीत न करके देश लौट जाएँगे। अंग्रेज क्या कर लेंगे ? ज्यादा से ज्यादा क़ैद ही तो करेंगे ?

देखते ही देखते समाचार-पत्रों के माध्यम से सारी दुनिया को यह बात मालूम हो गई कि सुभाष अंग्रेजों की बात की, नियमों की उपेक्षा कर भारत लौट जाएँगे। इस विषय में वे दृढ़संकल्प हैं।

उससे पहले ही आयरलैण्ड से डी० वैलेरा ने बुलाया। हाल ही में आयरलैण्ड अंग्रेजों के पंजे से छूट कर स्वाधीन हुआ था। ऐसे अवसर पर वे भारत के सर्वश्रेष्ठ मुक्ति-योद्धा सुभाष का स्वागत करना चाहते हैं।

१९३६ के फरवरी माह में डवलिन में सुभाष को वीरोचित सम्मान दिखाया गया। वे इतने दिनों तक लड़ने के बाद साम्राज्यवादियों के हाथों से मुक्त हुए थे। उन्हें भी आता है सच्चे वीर सिपाही को सम्मानित करना।

अब घर लौटना था।

वियना के अंग्रेज राजदूत जे० डब्लू० टेलर ने बाधा डालने की कोशिश की—'यह कोशिश छोड़ दीजिए। याद रखिए, हमारा वैदेशिक ऑफिस आप के इस काम का अनुमोदन नहीं करता है। इसीलिए सावधान कर रहा हूँ। आपका भारत में आसानी से प्रवेश पाना सम्भव न होगा। You cannot expect to remain at liberty.'

'मैं तो जाऊँगा। इस तरह से लगातार सालों में निर्वासित जीवन नहीं बिता सकता हूँ।'

११ अप्रैल १९३६ साल। बम्बई के जहाज की जेटी पर आज बेशुमार भीड़ लगी थी। आज चिर-विद्रोही सुभाष लौटेंगे। पुलिस ने बाधा दी—'नहीं, यहाँ कोई नहीं रहेगा। एक प्राणी तक नहीं। आने दो न सुभाष को। जो करना होगा, वह हम करेंगे। वैन तैयार है।'

हुआ भी वही। जैसे ही जहाज जेटी पर आ लगा, पुलिस की कड़ी निगरानी में सुभाष को उनकी काली वैन पर ले जाकर बैठा दिया गया। वहाँ से सीधे आर्थर रोड पुलिस अड्डे पर और अन्त में यरवदा जेल।

दूर खड़ी जनता नारे लगाती रह गई—'सुभाष बोस की जय ! सुभाष बोस जिन्दाबाद।'

और सुभाष ? जाते-जाते जनता से बस इतना ही कह सके थे—'बाहर की स्वाधीनता से देश का कारागार मुझे कहीं ज्यादा प्रिय है। Keep the flag of india's freedom flying.'

इस बार सारा भारत विद्रोह कर उठा। वर्किङ्ग कमेटी, सोशलिस्ट पार्टी तथा देश की विभिन्न पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों ने इस बात का प्रतिवाद किया। १० मई को 'सुभाष दिवस' मनाया गया, भारत में जगह-जगह।

सुभाष को क़ैद क्यों किया गया ? उनका कसूर क्या था ? अपराध अगर किया है तो खुली अदालत में मुकदमा क्यों नहीं चलाते हैं ?

प्रतिवाद किया विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने—'बंगाल के हज़ारों नर-नारी आज जेल में हैं। न्याय करने का दावा करता हूँ। उस दावे के पीछे है असह्य दुःख परन्तु ज़ोर नहीं है। जो अनिश्चित काल से बिना फैसले के दण्ड भोग रहे हैं, उनके अन्दर देश की वेदना छिपी है। उससे भी अधिक है देश का असम्मान।

'न्याय में ही मनुष्य का सम्मान निहित है। उससे हम वंचित हैं। क्योंकि हमें संसार देखता नहीं है। उनकी नज़र में हमारी कोई क़ीमत नहीं है। इस देशव्यापी अभिशाप के आक्रमण के हाथों से अगर कभी हम अपनी रक्षा कर सके तब हमारे हर अन्याय का प्रतिवाद गूँजेगा देश-विदेश में।...'

लंदन की पार्लियामेन्ट में भी यही प्रश्न उठा। 'सुभाष के बारे में सरकार की नीति क्या है? क्यों उन्हें इस तरह से पकड़कर निर्वासित जीवन जीने के लिए बाध्य किया जा रहा है?'

तुरन्त इसका उत्तर मिला—'सुभाष आतंकवादी हैं!'

बहुत सोचने-समझने के बाद, सुभाष को कार्शियांग में नज़रबन्द रखा गया। गिर्दा पहाड़ पर बने मँझले भाई शरतचन्द्र बोस के निजी बंगले में।

लखनऊ कांग्रेस की बैठक समाप्त हुई। प्रगतिवादी वामपंथियों को उस दिन जवाहरलाल से बड़ी आशायें थीं, लेकिन वह धुएँ की तरह से उड़ गईं। कहाँ गए जवाहरलाल जिन्हें स्वाधीनता चाहिए थी? ये जवाहर क्या रास्ता दिखाएँगे? सभापति जवाहरलाल मानो वृद्ध हों, सन्त हों और संग्राम विमुख।

एक चिट्ठी का कुछ अंश मैं यहाँ लिख रहा हूँ जिसे पढ़ कर तुम समझ सकोगी कि कांग्रेस सभापति जवाहरलाल की भूमिका देश की प्रगति के लिए कितनी निराशाजनक थी। यह पत्र लिखा था संयुक्त प्रदेश के विख्यात कांग्रेस नेता रफी अहमद किदवई ने।

'प्रिय जवाहरलाल जी,

आप पर हम सबको सबसे ज्यादा भरोसा था लेकिन लग रहा है आप हमारे लिए 'झूठ' साबित हुए। ...आपके सामने सचमुच एक मौका आया था। चाहते तो आप अपनी मर्जी से वर्किङ्ग कमेटी बना सकते थे।....आपने उन्हें हटा दिया जिनसे आपको ताक़त मिल सकती थी। गांधीवादियों ने चतुराई से आपको अलग कर दिया है।'

[बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स : पृष्ठ १७५]

यह तो किदवई साहब की बात हुई। गांधीजी ने अपने प्रियपात्र जवाहरलाल के लिए क्या कहा, सुनो। प्रिय शिष्य अगाथा हैरिसन की एक चिट्ठी के अंश हैं—

'आशा की बात यह है कि जब जवाहरलाल आदर्श की बातें करता है तब वह पूरी तरह से चरमपंथी हो जाता है। पर कार्यरूप में यह बात नहीं। उस समय यह बड़ा सतर्क और संयत रहता है।....मुझे लगता है जवाहरलाल अपने अधिकांश सहकर्मियों की बातें मानता रहेगा।' [बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स; पृष्ठ १७५]

फिर भी एक दिन झगड़ा उठ खड़ा हुआ। क्योंकि सब कुछ लुट न जाए, इस डर से गांधीजी की चाल के आगे सिर झुकाने पर भी, जवाहरलाल वैसे थे नहीं। असल में उनके अन्दर एक आदर्शवादी निर्भीक सत्ता निवास करती थी जो कि कभी-कभी छिटक कर बाहर निकल आती थी।

गांधीवादियों को यह पसन्द नहीं था। वे उन्हें पूरी तरह से वश में रखना चाहते थे, जहाँ स्वतन्त्र व्यक्तित्व नामक कोई चीज न होगी। इसी बात को लेकर मनमुटाव बढ़ा। उसके बाद ही एकाएक राजेन्द्रप्रसाद, वल्लभभाई पटेल, राजा गोपालाचारी, कृपालिनी वगैरह का त्यागपत्र आ पहुँचा।—'या तो हमारे कहे अनुसार चलो, नहीं तो हम तुम्हारा साथ नहीं देंगे। जैसा ठीक समझो, करो।'

दूसरे ही दिन जवाहरलाल गिरते-पड़ते गांधीजी के पास वर्धा पहुँचे।

दूसरे लोग भी पहुँच गए थे। वे तो जानते ही थे कि जवाहरलाल यहाँ आ पहुँचेंगे। नहीं आएँगे तो जाएँगे कहाँ? नरीमैन का उदाहरण तो भूलना नहीं चाहिए।

केवल मिनट भर की बात थी। क्या बात हुई गांधीजी से, कौन जाने, पर देखा गया कि सब ठीक-ठाक है। किसी को कोई शिकायत नहीं थी....किसी तरह का अभिमान नहीं। सब वही पुराने दोस्त।

इससे फायदा जवाहरलाल का ही हुआ। पुरस्कार स्वरूप गांधीजी के कहने पर, फिरोजपुर कांग्रेस का सभापतित्व भी प्राप्त हो गया। हालात फिरोजपुर कांग्रेस में और ज्यादा बिगड़ गए।

कहाँ लड़ाई? कहाँ उसकी तैयारी? १९३३ के बाद जो लड़ाई बीच ही में रोक दी गई—वहीं रुक गई। उसके बाद बस बात ही बात होने लगी। फलस्वरूप तरुण दल कांग्रेस छोड़ कर वामपंथियों में जा मिले।

एक निश्चित कार्यसूची के अभाव में उन दिनों कांग्रेस की अन्दरूनी हालत अच्छी न थी। यहाँ तक कि विदेशी राजनीतिज्ञों तक ने कांग्रेस के इस संग्राम-विरोधी ढर्रे को पहचान लिया। इसी सिलसिले में मैं यहाँ एडवर्ड टॉमसन की दो चिट्ठियों का कुछ अंश लिख रहा हूँ—पढ़ो। यह वही टॉमसन हैं जो व्यक्तिगत जीवन में जवाहरलाल के परम मित्र ही नहीं, भारत के सच्चे शुभाकांक्षी थे। १९३६ साल की १ ली नवम्बर को उन्होंने जवाहरलाल को लिखा—

...'सिर्फ एक ही बात मैं गांधीजी के बारे में कहूँगा। कानून अवज्ञा आन्दोलन किसी हद तक सफल होने के बाद आज व्यर्थ पड़ा कराह रहा है। इसके बाद भी अगर वे कोई नया रास्ता ढूँढ़ नहीं सकते हैं तो सिर्फ नाममात्र के क्षमतावान 'गणपति' बने बैठे रह जाएँगे। इन गणों को उत्तेजित भले ही करें, उन्हें किसी निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ा नहीं सकेंगे।' (बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स)

दूसरी चिट्ठी लिखी थी १९३६ की छह दिसम्बर को—....'कांग्रेस क्रमशः जन-साधारण की नजरों में गोरखधंधा सी बन गयी है। फलस्वरूप वे सन्देह करने लगे हैं। कांग्रेसी जिस भाषा में बातें करते हैं; उसका कोई अर्थ होना चाहिए। लेकिन देखने में

यह आ रहा है कि उनकी कथनी और करनी में ज़मीन-आसमान का फर्क है।' (बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स)

सुभाष को उस समय कार्शियांग के गिर्दा पहाड़ पर क़ैद रखा गया था। एक-सा जीवन। रात हो या दिन...कोई फर्क नहीं था।

फिर बीमार पड़ गए। अन्त में हार कर उन्हें ले आना पड़ा कलकत्ता मेडिकल कालेज। उस दिन थी १७ दिसम्बर। और छोड़ दिए गए १९३७ साल में १७ मार्च को। पूरे पाँच साल बाद....बिना किसी शर्त के।

सारा देश सुभाष के छूटने की खबर पाकर खुशी से झूम उठा। हमारे सुभाष लौट रहे हैं....

६ अप्रैल को श्रद्धानन्द पार्क में उनका अभिनन्दन किया गया। सभापति थे सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय। भाषण देते समय उन्होंने कहा, 'अंग्रेजों ने तुम्हारे सिर पर काँटे का मुकुट रख दिया था। देशवासियों की ओर से मैं तुम्हें फूलों का मुकुट पहना रहा हूँ।'

शरीर दुर्बल था। स्वास्थ्य सुधारने के लिए विश्राम करना ज़रूरी था। पूरा आराम, वरना फिर बीमार पड़ जाने का डर था।

विश्राम करने के लिए गए डलहौजी पहाड़ पर, डाक्टर धरमवीर के अतिथि बन कर। २५ अप्रैल १९३७ को।

७ अक्टूबर को वापस लौटे कलकत्ता। डाक्टर धरमवीर ने एक ही शर्त पर आने दिया था कि स्वास्थ्य सुधारने के लिए सुभाष को एक बार यूरोप जाना पड़ेगा। जाना ज़रूरी है, जाना ही पड़ेगा।

कलकत्ते से कार्शियांग। फिर कलकत्ता। वहाँ वर्किङ्ग कमेटी की बैठक होगी। इस समय उनका रहना जरूरी है।

१८ नवम्बर को यूरोप। धरमवीर जी का आदेश था—जाना ही पड़ेगा।

तुम्हें याद होगा मल्लिका, सुभाष ने यूरोप से जवाहरलाल नेहरू को लिखा था, —'अपने को कमजोर मत समझना। जैसे भी हो सके कांग्रेस की गद्दी दखल करने की चेष्टा रोकनी होगी।'

परन्तु इसे रोका न जा सका। निर्वाचन में कांग्रेस जीती, उसके बाद ही मंत्रित्व-ग्रहण। स्वाधीनता नहीं, स्वशासन नहीं, बिल्कुल मंत्रित्व।

हालाँकि दो दिन पहले कुछ और कहा गया था। साम्प्रदायिक बँटवारा नहीं माना जाएगा लेकिन अब देखा गया कि साम्प्रदायिक बँटवारे को मान कर मंत्रिपद ग्रहण करने में किसी को कोई एतराज न था।

हालांकि केन्द्रीय मामलों तक पहुँचने का प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रदेशों में भी पूर्ण मंत्रीपद की मर्यादा कहाँ मिली ? असली चीज़ें अपने हाथों में रख कर साधारण कुछ मसले छोड़ दिए थे। तो क्या हुआ ? मंत्री तो बन गए हैं।

सात प्रदेशों में कांग्रेस की मंत्रीसभा का निर्माण हुआ। कांग्रेस को हिन्दुओं का प्रतिनिधि माना गया। मुसलमान या दूसरे धर्मों के बारे में उन्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं दिया गया। कोई उत्तरदायित्व भी नहीं।

इससे मुसीबत आ गई।

जो कांग्रेस में मुसलमान सदस्य थे, वे न इधर के रहे न उधर के। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों में वे बाढ़ में बह कर आए पत्ते की तरह भटकते रहे।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। यह तो जानी बात थी। साम्प्रदायिक बँटवारा राष्ट्र के स्वार्थ के लिए अहितकर सिद्ध होगा, इसके बारे में सुभाष ने तो पहले ही कह दिया था। उस समय किसी ने सुना नहीं था। क्योंकि तब प्रभुता के मोह में मतवाले, राष्ट्र के नेतागण—सामने देख रहे थे—मंत्रीपद। इस बात को समझने में बड़ी देर लग गई थी। १९४५ में २३ सितम्बर को बम्बई कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह स्वीकार किया था।

'The acceptance of the principle of communal electorate was a mistake. It has created the problem.'

सरदार ने तो गलती मान कर जान बचा ली, पर देश और राष्ट्र क्या रोक सका सर्वनाश को ?

उस दिन हमारे मोहग्रस्त नेताओं ने ही पाकिस्तान की बुनियाद भारत की इसी धरती पर नहीं डाली थी ?

सिर्फ इतना ही नहीं—इस स्थिति ने बंगाल की हालत और बिगाड़ दी। सात प्रदेशों में कांग्रेस का मंत्रिमण्डल बना—बना नहीं बंगाल में।

अचानक एक मौका मिला। कृषक प्रजा पार्टी के प्रधान नेता जनाब फजलुल हक आगे बढ़ आए। कांग्रेस से बोले, 'आइए हम मिला-जुला मन्त्रिमण्डल बनाएँ। बंगाल में सम्प्रदायिक भावना नहीं है। हम सरकार बना लेंगे तो दो ही दिन में मुस्लिम लीग की जड़ उखाड़ कर फेंक देंगे यहाँ से। आओ—हाथ बढ़ाओ।'

गलती सबसे होती है, मल्लिका। गांधीजी ने भी की थी। जीवन में कई बार गलतियाँ की थीं—यह बात उन्होंने स्वीकार भी की थी। लेकिन इस गलती से बढ़ कर और कोई गलती नहीं हो सकती थी। आज तक हम उस गलती का कर्ज भर रहे हैं। बंगाल और बंगाली को भी उसका बोझ आजीवन काल ढोना पड़ेगा।

हक साहब की बात नहीं मानी गई। उन्होंने बहुत कोशिश की। कोई आगे नहीं बढ़ा। फलस्वरूप उन्होंने जाकर मुस्लिम लीग का हाथ पकड़ा, जिसकी वजह से वहाँ सरकार बनी 'मुस्लिम लीग सरकार' जिसकी वजह से बंगाल विभाजित हो गया। आज कोई इस सत्य से क्या इनकार कर सकता है ?

१९३८ साल आया। हरिपुरा कांग्रेस। इस बार कौन? न केवल जनसाधारण, गांधीजी भी यही सोच रहे थे। कौन बनेगा हरिपुरा कांग्रेस का सभापति?

एक के बाद एक सभी झुक चुके थे। जवाहरलाल तक। झुका नहीं था केवल एक आदमी। नहीं—झुकाता है सिर पर उनकी नीति के आगे नहीं। उनके व्यक्तित्व के आगे। अगर वह मिल जाता? जवाहरलाल की तरह पालतू बन जाता?

१८ जनवरी को कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी आचार्य कृपलानी ने घोषणा की—'अगले सभापति चुने गए हैं सुभाष। बंगाल और बंगालियों के सुभाष।'

सम्पूर्ण भारत में खुशी की लहर सी दौड़ गई। खासतौर से युवा सम्प्रदाय सबसे ज्यादा खुश था। अब अवश्य ही स्वाधीनता संग्राम का इतिहास नया मोड़ लेगा।

सुभाष उस समय बद्गास्टिन में थे। वहाँ से लंदन। इस बार अंग्रेज सरकार ने नहीं रोका। १० जनवरी को डॉरचेस्टर की विशाल जनसभा में उनका स्वागत हुआ।

उनकी भेंट हुई एट्ली, वेविन, हैलीफैक्स जैसे धुरंधर अंग्रेजों से। पालियामेन्ट के सदस्यगण भी मिले। मिले स्वनामधन्य जेटलैण्ड भी, जिन्होंने साल ही भर पहले पालियामेन्ट में कहा था—'मिस्टर बोस में सचमुच असाधारण योग्यता और कार्यक्षमता है। परन्तु अफसोस तो इस बात का है कि उस शक्ति का प्रयोग उन्होंने हमेशा ध्वंसात्मक कामों में किया है।'

इस बार जेटलैण्ड का कुछ और ही चेहरा था। मैनचेस्टर गार्डियन नामक पत्रिका की भी यही भूमिका रही। दूसरे दिन प्रकाशित हुआ—

'यह पहली बार है जब अंग्रेजों ने सुभाष बोस को देखा है। उनका मधुर व्यवहार, संयत आचरण और भारतीय समस्याओं पर निःसंशय और निश्चिन्त होकर राय देने के ढंग पर हम मुग्ध हो गए हैं।'

२४ जनवरी को सुभाष करांची पहुँचे। उस दिन जनसमूह करांची हवाई अड्डे पर टूट पड़ा था। सिर्फ एक झलक देखने को। पर कहाँ सुभाष? फूलों की मालाओं से उनका सारा शरीर ही ढँक गया था।

शुरू हुई हरिपुरा कांग्रेस की बैठक।

पहले थी सभापति की शोभायात्रा। शोभायात्रा इससे पहले भी निकल चुकी थी पर उस दिन लाखों लोगों ने जिस वीरोचित ढंग से उनका अभिनन्दन किया था, कांग्रेस के इतिहास में उसका दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा।

लम्बी ५ मील की शोभायात्रा। सैकड़ों सुसज्जित तोरणद्वार। रास्ते के दोनों

तरफ आग्रहयुक्त व्याकुलता लिए हजारों नर-नारी। सभी एक स्वर में नारे लगा रहे थे—'राष्ट्रपति सुभाष बोस जिन्दाबाद! भारत के कनिष्ठतम कांग्रेस सभापति सुभाष बोस जिन्दाबाद।'

अन्त में सभापति का भाषण।

पर यह क्या? गांधीवादी मुँह फाड़े देखते रह गए। चरखे का कहीं नामोल्लेख नहीं। गोरक्षा समिति की चर्चा नहीं। सिर्फ हैं नई-नई बातें। यूरोप में युद्ध ठनने वाला है, भारत को इस मौके का फायदा उठाना होगा। शिल्पकलाओं की उन्नति के लिए वैज्ञानिक योजनाएँ चलानी होंगी। बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा तैयार करनी होगी। देश को समाजतन्त्र की ओर धीरे-धीरे ले चलना होगा। ऐसी ही नई बातें.... जिन्हें आज तक कांग्रेस के सभापतियों के मुँह से कभी किसी ने नहीं सुना था।

यहाँ पर हरिपुरा कांग्रेस के एक प्रस्ताव का कुछ अंश लिख रहा हूँ, ध्यान से पढ़ना।

यूरोप में उस समय युद्ध के बादल मँडराने लगे थे। कभी भी युद्ध छिड़ सकता था। परिस्थिति की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए यह प्रस्ताव रखा गया—

'भारत किसी साम्राज्यवादी युद्ध में भाग नहीं लेगा। साम्राज्यवाद के स्वार्थ के लिए धन या जन-शक्ति नहीं लगाएगा। भारत में जो युद्ध की तैयारी चल रही है, कांग्रेस उसका समर्थन नहीं करती है। भारत को अगर युद्ध में लपेटा गया तो कांग्रेस उसका विरोध करेगी।'

सुभाष का परिचय उनकी बातों से नहीं, कामों से मिलता है। शुरू हो गया नई योजना को वास्तविकता का जामा पहनाना। सुभाष के बार-बार आग्रह करने पर जवाहरलाल नेहरू इसके सभापति हुए और समर्थक कविगुरु रवीन्द्रनाथ।

मल्लिका, यही है सुभाष की ऐतिहासिक सृष्टि—प्लानिंग-कमीशन, जो स्वाधीन भारत में आज तक चलती चली आ रही है। बाद में जवाहरलाल ने अपनी किताब में इसी प्लानिंग-कमीशन की बड़ी तारीफ की थी। गांधीवादी इसका समर्थन दिल से नहीं कर सके थे पर देश के चिन्तनशील लोगों ने इसका बड़ा स्वागत किया था, मल्लिका। रवीन्द्रनाथ ने जवाहरलाल को एक चिट्ठी लिखी थी। वह नीचे लिख रहा हूँ—

'भारत में शिल्पकला के उत्थान के लिए वैज्ञानिक योजना के बारे में उस दिन डाक्टर मेघनाथ साहा से देर तक बातचीत हुई। बातचीत बड़ी रुचिकर थी। मैं इसके प्रयोजन पर विश्वास करने लगा हूँ। कांग्रेस की दृष्टि इस ओर फेकने के लिए सुभाष ने जो कमीशन बनाया है, पता चला है कि तुम उसके सभापति बनने को तैयार हो गए हो। इसीलिए इस विषय में तुम्हारी राय जानने की इच्छा हो रही है।' [बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स : पृष्ठ २६५]

२५ जुलाई को सुभाष ने कलकत्ता कारपोरेशन से महाजाति सदन निर्माण कार्य के लिए कुछ जमीन माँगते हुए आवेदन पत्र दिया। रुपयों की चिन्ता नहीं थी, क्योंकि सहयोगियों की मदद से 'सुभाष फण्ड' में तीस हजार रुपया जमा हो गये थे।

यह आवेदन पत्र ३ अगस्त को मंजूर हुआ। कुल १ बीघा १८ बिसवा ज़मीन मिली। निन्नानवे साल लीज़ की मियाद थी। सालाना कर हुआ १ रुपया मात्र।

१९३९ साल आ गया। इस बार त्रिपुरा कांग्रेस। यह स्वाधीनता संग्राम का सबसे ज्यादा लज्जाजनक अध्याय है।

विभिन्न प्रदेशों से तीन नाम आए—मौलाना आज़ाद, डाक्टर पट्टाभि सीतारमइया और सुभाष। इन्हीं में से किसी को सभापति बनाना था।

युवा सम्प्रदाय, कम्यूनिस्ट पार्टी, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, लेबर पार्टी, राय पन्थी जैसे वामपंथियों ने कहा—हम सुभाष को चाहते हैं। यूरोप में युद्ध छिड़ने वाला है। राष्ट्र के लिए यह एक बहुत बड़ा मौका है। सुभाष के अलावा और कोई भी इस पद को न सँभाल सकेगा।

पहले माँग पेश की भारत की कम्यूनिस्ट पार्टी ने। १६ अक्टूबर को पार्टी के अखबार 'नैशनल फ्रन्ट' के सम्पादकीय में खुल कर उन्होंने अपने विचार प्रकट किए—'सामने है कठोर संग्राम के दिन। ऐसे समय में सबसे ज्यादा ज़रूरत है सुभाष की।'

१७ तारीख को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं ने अपनी माँग पेश की। इनमें थे सज्जाद जहीर; जेड० ए० अहमद, मोहनसिंह जोश, पी० सुन्दरइया, ई० एम० एस० नम्बूद्रीपाद, भगतसिंह, राममूर्ति वगैरह। 'सुभाष ही इस काम के उपयुक्त हैं—हम उन्हें ही चाहते हैं।'

२२ तारीख को आवेदन प्रस्तुत किया हुमायूँ कबीर, नवाबज़ादा सैयद, मुअज्जम अली चौधरी, अबूहसन सरकार, अबुल मंसूर अहमद, ए० रशीद खाँ जैसे कुछ मुस्लिम नेताओं ने—'हम भी सुभाष को चाहते हैं।'

आचार्य पी० सी० राय का दावा था—सुभाष ही योग्य व्यक्ति हैं। उससे किसी की तुलना नहीं हो सकती है। रवीन्द्रनाथ का भी यही कहना था। उन्होंने यह बात पत्र द्वारा साफ-साफ जवाहरलाल और गांधीजी को लिख भेजी। 'योजना आयोग जैसे नए और महत्वपूर्ण विषय को सफल बनाने के लिए सुभाष का दुबारा सभापति चुना जाना ज़रूरी है।'

पत्र के अन्त में लिखा—'काम करने का यन्त्र अगर बिगड़ जाए तो उसे वही चला सकता है जिसमें चलाने की शक्ति होती है। चालक के रास्ते में बाधा आए तो उसका काम है उस बाधा को हटाना। यन्त्र का चालक मनुष्य की नज़र में भले ही बड़ा न हो, लेकिन वह यन्त्र के बारे में पूरी जानकारी रखता है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं।' (बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृष्ठ २९६)

इसी प्रसंग में एक नाम और लेना पड़ेगा। वे थे प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर मेघनाथ साहा। उन्हीं ने कविगुरु को सुभाष के योजना आयोग के बारे में इतना उत्साही बना दिया था।

अचानक मौलाना आज़ाद ने अपना नाम उम्मीदवार के पद से हटा लिया। एक विज्ञप्ति में उन्होंने कहा कि 'कांग्रेस के प्रतिनिधियों से मेरा निवेदन है कि वे डाक्टर सीतारमइया का समर्थन करें। मैं यही आशा करूँगा कि वे सर्वसम्मति से चुने जाएँ।'

पर सुभाष ने आज़ाद का अनुसरण नहीं किया। गांधीजी बहुत बड़े हैं, पर उनसे बड़ा है देश। देश की, जनता की, युवक सम्प्रदाय की मांग को ठुकरा दें ऐसा साहस उनमें कहाँ है?

निर्वाचन हो। कांग्रेस किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। गणतन्त्रात्मक संस्था है। इसलिए कांग्रेस के निर्वाचित प्रतिनिधियों को ही वोट द्वारा तय करने दिया जाए कि वे किसे सभापति के रूप में चाहते हैं।

दूसरे ही दिन, २१ जनवरी को, अखबार में एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर सुभाष ने यह बात स्पष्ट कर दी—'मौलाना आज़ाद जैसे वरिष्ठ नेता के निवेदन पर अगर अधिकांश प्रतिनिधि मेरे पुनर्निर्वाचन के विरुद्ध वोट देंगे तो मैं उनके सिद्धान्त को मान लूँगा और एक साधारण सैनिक के रूप में कांग्रेस और देश की सेवा करूँगा।'

अत्यन्त रुष्ट हुए गांधीजी के समर्थक। अब तक गांधीजी ही तय करते आए थे कि कौन सभापति बनेगा—इस बार भी यही होगा।

२३ तारीख को यही आशा व्यक्त की बल्लभ भाई पटेल, आचार्य कृपलानी, भूला भाई देसाई, राजेन्द्र प्रसाद वगैरह ने। इन वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों ने अखबार में निकाला—

'पट्टाभि सीतारमइया को हम कांग्रेस के सभापति के बिलकुल उपयुक्त समझते हैं। हम कांग्रेस के प्रतिनिधियों से अनुरोध करते हैं कि उन्हें विजयी बनाएँ।'

सुभाष के आश्चर्य का अन्त न रहा। व्यक्तिगत रूप से कोई किसी से, जो इच्छा हो वही कह सकता है, लेकिन वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य होकर उन्होंने यह विज्ञप्ति कैसे निकाली? इस तरह करने का तर्क क्या है? ऐसा करने के लिए सभापति की अनुमति ले कर बैठक बुलाने की जरूरत होती है, प्रस्ताव पास होता है। यहाँ तो कुछ नहीं किया गया।

सारे भारत ने इसका विरोध किया। सबसे पहले संयुक्त प्रदेश के ख्यातिप्राप्त कांग्रेसी नेता और स्पष्टवक्ता रफी अहमद किदवई ने विरोध प्रकट किया। उन्होंने कहा—'सरदार पटेल और वर्किङ्ग कमेटी के कुछ सदस्यों की विज्ञप्ति पढ़ कर मैं अवाक् रह गया हूँ।....वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों को, श्री बोस के विरुद्ध, इस तरह की नुकसान-दायक विज्ञप्ति नहीं देनी चाहिए थी।

'सरदार पटेल के अनुसार वर्किङ्ग कमेटी ही कांग्रेस के कामों का संचालन करती है और सभापति नाममात्र का नेता होता है। पर वे बड़े आराम से इस बात को भूल गए कि वर्किङ्ग कमेटी सभापति ने ही बनाई है और उनकी नियुक्ति भी वह अपनी इच्छानुसार करता है।'

इससे भी ज्यादा कठोर विज्ञप्ति की डाक्टर खेर ने। उन्होंने कहा—

'कांग्रेस संचालित देश में सर्वत्र प्रभुता विस्तृत होने पर भी जो डाक्टर पट्टाभि अपने म्यूनिसिपल शहर और जिला बोर्ड को अपने वश में नहीं रख सकते हैं, उनके साथ श्री सुभाष बोस की क्या कोई तुलना हो सकती है ? जो डा० पट्टाभि अपने शहर की जस्टिस पार्टी का सामना नहीं कर सकते हैं वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सामना सफलता-पूर्वक कर लेंगे, इस बात की आशा क्या की जा सकती है ? अगर आप वास्तव में साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ कर स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं तो श्री बोस को ही वोट दीजिए। उन्हें वोट देने के मतलब होंगे गणतन्त्र और स्वराज्य को वोट देना।'

उन्हीं नरीमैन ने कहा, जिन्हें गांधीजी की आलोचना करने के लिए कठोर दण्ड दिया गया था—

'कांग्रेस की निर्माण-समिति के अनुसार, प्रतिनिधियों को अगर वास्तव में गणतन्त्रात्मक ढंग से सभापति चुनने का अधिकार है तो प्रतिनिधियों को स्वाधीन रूप से वोट देना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधिगण किसी के डर या आग्रह प्रकट करने की चिन्ता न करके अपने अधिकार का सही प्रयोग करेंगे।'

संयुक्त विज्ञप्ति निकली मीनू मसानी और यूसुफ मेहर अली की।

'यह व्यक्तिगत मामला नहीं है, राजनैतिक है। इसमें प्रादेशिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता है। इसलिए हम श्री बोस का ही समर्थन करेंगे, हम इसी सिद्धान्त पर पहुँचे हैं।'

समाजतन्त्री नेता नरेन्द्रदेव ने और सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर ने भी बड़ी निन्दा की। उनके अनुसार वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों का ऐसी विज्ञप्ति देना न केवल अन्याय है बल्कि अपराध है। प्रतिनिधियों को चाहिए कि श्री बोस को विजयी बनाएँ।'

छोटी सी साधारण बात थी। पर यही छोटी बात गांधीवादी कांग्रेस और वामपन्थियों की नजर में बहुत बड़ी बात बन गई।

ऐसा विरोध क्यों ?

सभापति के रूप में सुभाष ने क्या कांग्रेस की नीति के विरुद्ध कोई काम किया था ? नहीं किया था, इसका प्रमाण तो कांग्रेस का इतिहास है।

'विभिन्न मामलों में (सुभाष का) मतभेद था लेकिन इसके लिए उन्होंने कभी अपने को जाहिर नहीं किया था। वाद-विवाद पर भी उतारू नहीं हुए थे। पक्षपात वे कभी करते ही नहीं थे। नेताओं के साथ अगर कभी एकमत नहीं हो पाते तो इसके लिए समस्या या किसी तरह की अवांछित स्थिति उठ कर नहीं खड़ी हो जाती। कहना चाहिये सारा साल शान्ति से बीत गया। [कांग्रेस का इतिहास : डा० पट्टाभि : पृष्ठ १०४]

तो फिर सुभाष का विरोध कैसा ? इससे पहले जवाहरलाल तीन बार सभापति बन चुके थे। इससे पहले लगातार दो बार अध्यक्ष रह चुके थे। तब सुभाष के वक्त कैसी आपत्ति ? कोई कारण है क्या ?

कारण है—सुभाष और जवाहरलाल तो एक नहीं हैं। मुँह से कितना ही आदर्शवाद का नारा क्यों न लगाएँ, जवाहरलाल को अपना बनाना आसान है। जल्दी वश में आ जाते हैं। और सुभाष? १६२८ से आज तक उनका वही एक ही रूप है। एक ही बात कहते आ रहे हैं।

फिर भी सुभाष ने अन्तिम बार प्रयास किया। कहा था—'मैं सभापति के पद के लिए लालायित नहीं हूँ। आचार्य नरेन्द्रदेव की तरह के वास्तविक समाजवादी नेता निर्वाचित किए जाएँ तो मैं अभी रास्ते से हट जाऊँगा।'

इस बात के लिए गांधीवादी नेता तैयार नहीं हुए। यहाँ तो गणतन्त्र का प्रश्न नहीं था, प्रश्न नेतृत्व का था। क्षमता, प्रभुता का—वहाँ हार कैसे मानी जा सकती है?

३० जनवरी १६३६ को निर्वाचन का परिणाम निकला। सुभाष विजयी हुए थे। उन्हें मिले थे १,५७५ वोट और पट्टाभि सीतारमइया को मिले थे १,३४६ वोट। सुभाष को सबसे ज्यादा वोट मिले थे बंगाल, संयुक्त प्रदेश, पंजाब, केरल, कर्नाटक, आसाम, राजस्थान और तामिलनाडु से। सीतारमइया को समर्थन मिला था बिहार, उत्कल, गुजरात, आन्ध्र, बम्बई, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र से।

सारा भारत खुशी से नाच उठा। खासतौर से प्रगतिवादी युवा वर्ग। सुभाष दोबारा सभापति निर्वाचित हुये थे। अब कोई दाँव-पेंच नहीं। अनुनय-विनय नहीं। अब शुरू होगी असली लड़ाई।

लेकिन यह क्या हुआ?

दूसरे ही दिन अखबार में निकले एक समाचार से भारतवासी दुःख और दर्द से भौंचक्के रह गये।

'पट्टाभि सीतारमइया की हार मेरी व्यक्तिगत हार है।....फिर भी, कुछ भी हो, सुभाष बाबू देश के शत्रु नहीं हैं।....उनकी विजय से मैं खुश हूँ।'

यह किसने कहा? यह क्या देख रहे हैं लोग? आँखों का भ्रम तो नहीं? नहीं। यह सब कुछ नहीं है। इसमें कहीं कोई सन्देह नहीं। हर बात दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट है। यह विज्ञप्ति अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी की है।

पर यह कौन से महात्मा गांधी हैं? 'कुछ भी हो, सुभाष देश के शत्रु नहीं हैं'—यह तो बड़ा साफ इशारा है। महात्मा गांधी जैसे आदमी ने ऐसी बात कही कैसे?

गणतन्त्र का सब से बड़ा हथियार है—चुनाव। किसी भी गणतन्त्रात्मक राष्ट्र में, इसी निर्वाचन के माध्यम से मनुष्य मौलिक अधिकारों का उपयोग करता है। सुभाष इसी माध्यम से विजयी हुए हैं तो फिर पट्टाभि की पराजय से उनकी पराजय का प्रश्न कहाँ उठता है? सुभाष की विजय उनकी विजय क्यों नहीं है?

जिला सम्मेलन के एक समारोह में उस समय सुभाष मालदा गए थे। सभापति के रूप में। उनके मन में भी यह प्रश्न उठा। निर्वाचन में जय-पराजय तो है ही, इस बात को ले कर महात्मा जैसे बड़े आदमी ऐसी कठोर बात कैसे कह गए?

जिनके कारण इस विरोध की सृष्टि हुई वही पट्टाभि सीतारमइया भी इस गुत्थी

को सुलझाने में असमर्थ थे। बाद में उन्होंने साफ-साफ लिखा था—'सुभाष का दोबारा सभापति होना, गांधीजी की नजरों में इतना दोषपूर्ण क्यों था ? निर्वाचन के बाद भी उनका मनोभाव बदला नहीं था, यह तो खुल्लम-खुल्ला स्वीकार किया गया था।.... सुभाष के प्रति गांधीजी के इस रुख का अगर कोई दूसरा कारण होगा तो उसे वही कह सकते हैं। (कांग्रेस का इतिहास, २रा भाग : पृष्ठ ६७६)

कलकत्ता पहुँचते ही सुभाष ने गांधीजी की इस विज्ञप्ति का उत्तर दिया।

'इस बार की प्रतिद्वन्द्विता देख कर हमारे देश के शत्रु अगर यह सोचें कि कांग्रेस के भीतर फूट पड़ गई है, तो मैं साफ-साफ कहूँगा कि हमारी एकता हमेशा की तरह अटूट रहेगी। कांग्रेस के सदस्यों में मतभेद रहना असम्भव नहीं है। पर जब वे साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ते हैं तब वे एक होते हैं, अभिन्न होते हैं।

'महात्माजी के साथ किसी-किसी मामले में थोड़ा बहुत मतभेद होने पर भी उनके व्यक्तित्व के प्रति मैं किसी से कम श्रद्धावान नहीं हूँ। मेरे प्रति महात्माजी क्या भावना या विचार रखते हैं, यह तो नहीं जानता हूँ, लेकिन जो भी क्यों न हो, उनका विश्वास और भरोसा पाने के लिए मैं हमेशा ही प्रयत्नशील रहूँगा। क्योंकि, सबका विश्वास सब की आस्था पाकर भी अगर मैं सर्वश्रेष्ठ मानव की आस्था से वंचित रहा तो मेरे लिए यह सचमुच ही मार्मिक कष्ट होगा।' [आनन्दबाजार पत्रिका : ४ फरवरी : १९३९]

समझौता करने के इरादे से सुभाष १५ फरवरी को गांधीजी से मिलने सेवाग्राम गए। लेकिन दुखी होकर वापस लौटे। गांधीजी ने उपदेश दिया था, सुभाष चाहें तो उनकी इच्छा के अनुसार वर्किङ्ग कमेटी का गठन कर सकते हैं। इसके अलावा इस मामले में वे और कुछ नहीं कर सकते हैं।

लेकिन १९३६ में जब इसी तरह का विरोध उठ खड़ा हुआ था तब गांधीजी ही ने जवाहरलाल और वर्किंग कमिटी के सदस्यों के बीच का झगड़ा मिटा दिया था।

पर तब की बात और है। सुभाष, जवाहरलाल तो हैं नहीं। इसीलिए विज्ञप्ति देते हुए उन्होंने कहा था—'मुझे यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि शुरू से ही मैं उसके (सुभाष के) पुनर्निर्वाचन के पूरी तरह से विरोध में था। इसका कारण मैं बताना नहीं चाहता हूँ।'

साफ बात थी। इसमें कोई बात ढाँक कर नहीं कही गई थी। वे शुरू से ही नहीं चाहते थे कि सुभाष फिर से चुने जाएँ।

२२ फरवरी को वर्धा में वर्किङ्ग कमेटी की बैठक शुरू होने वाली थी पर फिर शरीर ने साथ नहीं दिया। बीमार पड़ गए। डाक्टर नीलरतन सरकार ने कह दिया—'ऐसी हालत में किसी भी तरह से जाने नहीं दिया जा सकता है। खास तौर से अभी।'

सुभाष ने तार भेजा—'मैं अस्वस्थ हूँ। बैठक की तारीख हटा कर आगे कर दी जाए।'

लेकिन सभापति की बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सभापति हैं तो क्या

उनकी हर बात मानी जाएगी ? इसलिए बिना सभापति के बैठक शुरू हो गई । फिर वही नाटक शुरू हुआ—यह रहे हमारे त्यागपत्र । अब तुम जो चाहे सो करो । तुम्हारे किसी मामले में हम नहीं बोलेंगे । सीधी बात है या तो आत्मसमर्पण करो या अपना काम खुद संभालो । नरीमैन की बात भूले नहीं होगे । जवाहरलाल की भी हालत देखी ही है । क्या करोगे सोच लो ।

व्यक्तिगत राय देने के मामले में जवाहरलाल की कोई तुलना नहीं—उन्होंने इस त्यागपत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए, बल्कि एक छोटी सी विज्ञप्ति दी ।

अब तक भारतवासी जिस प्रश्न का उत्तर ढूंढते-ढूंढते थके जा रहे थे, उन्हें उत्तर मिल गया जवाहरलाल की इस विज्ञप्ति से ।

'सुभाष के मामले में गांधीवादी वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों ने जो कुछ किया है वह गणतन्त्र के ही लिए किया है । इस मामले में गणतन्त्र की अवहेलना नहीं हुई है । असल में दोष सुभाष का है । गणतन्त्रात्मक ढंग से सभापति निर्वाचित होने पर भी इस हालत के लिए एकमात्र सुभाष ही जिम्मेदार हैं । इसलिए वे सुभाष की कोई मदद नहीं कर सकते हैं ।'

यह बात उन्हीं जवाहरलाल ने लिखी थी जिन्हें सुभाष बड़े भाई की तरह मानते आए हैं । जिन्हें उन्होंने यूरोप से लिखा था—'मैं तुम्हारी पूरी तरह से मदद करूंगा । अपने को तुम गलत मत समझो, कमज़ोर मत समझो । जो कठोर कर्त्तव्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है उसे पूरा करो । लखनऊ पहुँचते ही मैं तुम्हारे पास जाऊँगा ।'

सारे देश की नजर सुभाष की ओर उठ गई । अब क्या करेंगे वे ?

सामने ही त्रिपुरा कांग्रेस थी । गांधीवादी सदस्यों ने न केवल वर्किङ्ग कमेटी से बल्कि पार्लियामेन्ट बोर्ड से भी त्यागपत्र दे दिया था । इस समस्या का समाधान कैसे हो ?

सुभाष भी क्या जवाहरलाल की तरह खो जाएं ? या सिर उठा कर कहें—'मैं सुभाष हूँ । अन्याय और अत्याचार के साथ आज तक मैंने समझौता नहीं किया है—आज भी नहीं करूंगा ।'

जो पन्ने उलट चुके हैं उन्हें फिर पलटा नहीं जा सकता है । आज कहाँ गए गांधी जी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, गोविन्दवल्लभ पंत, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे लोग ? आज कोई जिन्दा नहीं हैं ।

सब की नज़र उस वक्त त्रिपुरा की ओर थी । तूफान आने वाला था । एक तरफ गांधीवादी कांग्रेस, दूसरी तरफ पहाड़ से अटल सुभाष । सुभाष क्या इस तूफान में भी सिर उठा कर खड़े रह सकेंगे ? हालांकि यह तूफान कोई अप्रत्याशित नहीं था । कांग्रेस तो एक भारतीय संगठन था—कोई भी इसका सदस्य बन सकता था । विप्लवी भी ।

सारा झंझट तो वर्किङ्ग कमेटी को बनाने के मामले को लेकर था । उस जगह

पर गांधी जी बड़े सतर्क थे, होशियार थे। वे अपने आदमियों के अलावा और किसी को वहाँ घुसने देना नहीं चाहते थे।

इसी बात को लेकर गांधी और सुभाष में कम बहस नहीं हुई थी। शुरू हो गई थी १६२६ के लाहौर कांग्रेस के समय से ही। सुभाष का कहना था कि कांग्रेस एक गणतन्त्रात्मक प्रतिष्ठान है, वहाँ सब को एक सा अधिकार है। तो फिर सिर्फ एक आदमी की इच्छा से वर्किङ्ग कमेटी नहीं बननी चाहिए।

'नहीं।' गांधी जी अचल, अडिग।

'ठीक है। तो फिर वामपंथियों में से कुछ लोगों को सदस्य के रूप में कमेटी में रखिए। वे भी तो कांग्रेस के सदस्य हैं, कांग्रेस के अन्तर्गत हैं। आप संख्या में अधिक हैं इसलिए एक कोने में धकेल कर नहीं रख सकते हैं।

फिर भी गांधीजी नहीं माने, बल्कि सुभाष ही का नाम काट दिया उन्होंने वर्किङ्ग कमेटी से। उनकी सीधी बात थी कि कमेटी में एक ही विचारों के आदमी रहने चाहिए। सुभाष के विचार भिन्न हैं इसलिए उन्हें कमेटी में रखने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

चिकित्सक की बात की उपेक्षा कर सुभाष ५ मार्च को त्रिपुरा के लिए रवाना हुए। १०२° बुखार था। और भी तकलीफें, फिर भी उनका संकल्प दृढ़ था। जैसे भी हो त्रिपुरा जाना ही होगा।

वर्किङ्ग कमिटी के सदस्यों (१२ सदस्य) के पदत्याग करने से जो स्थिति उठ खड़ी हुई थी वह कांग्रेस के इतिहास में नई थी। ऐसी हालत में वे दूर कैसे रहते?

उधर गांधी समर्थक कमर कस कर तैयार खड़े थे। गांधीजी की इच्छा के विरुद्ध निर्वाचन में खड़े होकर जीतना महान् अपराध था। ऐसे अबाध्य व्यक्ति को हम सहन नहीं कर सकते हैं।

ठीक समय पर निर्वाचित सभापति को लेकर शोभायात्रा निकली। पर कहाँ सभापति? उन्हें तब १०६° बुखार था। खड़े तक नहीं हो सकते थे। इसलिए सभापति की जगह पर एक तस्वीर रखी गई और उन्हें एम्बुलेन्स द्वारा ले जाया गया।

यह देख कर गांधीवादी व्यंग करने लगे। बीमारी का बहाना? इसी बहाने लोगों की सहानुभूति पाना चाहता है। इससे कुछ फायदा नहीं होगा—हम इतनी आसानी से भूलने वाले नहीं।

डाक्टर नीलरतन सरकार की बात छोड़ भी दी जाए तो इन्हीं लोगों द्वारा निर्वाचित मेडिकल बोर्ड ने जो राय दी उसका महत्त्व कम नहीं था। सुभाष की परीक्षा करके डाक्टरों ने कहा—हालत गम्भीर है। खतरा है।

सुभाष की तरफ से उनका भाषण मँझले भाई शरतचन्द्र बोस ने पढ़ा। अब आपसी आलोचना नहीं। किसी तरह का टालमटोल नहीं, भाव लगाने की जरूरत नहीं। एक तारीख तय कर के सरकार को सूचित किया जाए। दावा माना न गया तो लड़ाई शुरू कर देंगे। स्वाधीनता प्राप्त करने की अन्तिम लड़ाई।

किसी ने सुभाष की बात पर ध्यान नहीं दिया। गांधीजी या जवाहरलाल ने भी नहीं। पर हाँ, लड़ाई में गांधीवादी नेता कूद पड़े। कूदे अंग्रेजों पर नहीं—कूदे सुभाष के विरुद्ध ?

गांधीजी त्रिपुरा नहीं आए थे। हजार अनुरोध करने पर भी नहीं आए। उस समय वे छोटे से शहर राजकोट की समस्या में व्यस्त थे। वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों के झगड़े से कांग्रेस का सारा काम ठप्प पड़ा था। इससे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं था। खैर, वह न सही, उनके समर्थक पीछे नहीं थे।

पहले तो पंडित गोविन्दवल्लभ पंत एक प्रस्ताव ले आए वर्किङ्ग कमेटी के सामने। अब सभापति नई कमेटी बनाएँ। लेकिन उसे गांधीजी की इच्छा के अनुरूप बनाया जाए, वरना वह कमेटी मान्य नहीं होगी। प्रस्ताव मान लिया गया १२८-१३५ वोट का अन्तर था। इस बार सोशलिस्ट पार्टी अलग हो गई। आज तक समर्थन करती चली आ रही थी। यह पार्टी इसलिए हट गई क्योंकि कांग्रेस जैसी बड़ी पार्टी से वे लड़ना नहीं चाहते थे। सुभाष का समर्थन करना अब सुरक्षित नहीं है।

पंत प्रस्ताव के अन्दर छिपे कौशल को समझ सकीं तुम मल्लिका ?

एक तरफ तो गांधीजी का कहना था, सुभाष अपनी इच्छा से वर्किङ्ग कमिटी बनाएँ। दूसरी तरफ प्रस्ताव कि गांधीजी की इच्छानुसार कमिटी बने। वरना मान्य नहीं होगी।

लेकिन क्यों ? कमिटि बनाने का हक तो सिर्फ सभापति को है फिर गांधीजी के विचार और इच्छा का प्रश्न कहाँ उठता है ?

इसका उत्तर दिया अभ्यर्थना समिति के सभापति, गांधीवादी नेता गोविन्द-वल्लभ पंत ने। अपने भाषण में उन्होंने कहा—

'फासिस्टों में मुसोलिनी की, नात्सियों में हिटलर की और कम्यूनिस्टों में स्टैलिन की जो जगह है, कांग्रेस में वही स्थान है गांधीजी का। कांग्रेस के लिखित संविधान में उनकी कोई निश्चित जगह भले ही न हो पर यह सच है कि राष्ट्रपति पद के लिए गांधी जी के मनोनीत व्यक्ति का चुना जाना और राष्ट्रपति द्वारा बनी वर्किङ्ग कमिटी में गांधी जी के तय किए लोगों को रखना—प्रथा बन गई है।'

[आनन्दबाजार पत्रिका : ११ मार्च : १९३९]

जो कुछ कहना बाकी था वह समर्थकों ने नारे लगा कर कह दिया—'हिन्दुस्तान के हिटलर की जय ! महात्मा गांधी की जय।'

वे लोग खुश हुए जो गांधीवादी नेता थे। उनकी तुलना हिटलर से की गई थी। और क्यों न होते ? इस समय हिटलर का भाग्य अच्छा था।

इसका विरोध सिर्फ एक व्यक्ति ने किया। वे थे रवीन्द्रनाथ टैगोर। खबर सुन कर वे बहुत दुःखी हुए। उन्होंने लिखा—

'अन्त में आज, कांग्रेस के मंच से भी हिटलर की नीति की जय-जयकार हो रही है।....जो वेदी स्वाधीनता के मंत्रों का उच्चारण करने के लिए बनी थी, उसी वेदी पर

आज फासिस्टों का सांप फन उठाए फुँफकार रहा है ?'

आगे अपने पत्र में उन्होंने लिखा था—'कांग्रेस की क्षमता का ताप आज उसकी बीमारी का कारण बन गया है, लगता है। जो इसके केन्द्र-स्थल पर, शक्ति को विशेष रूप से पकड़े बैठे हैं, मुसीबत आई है तो उनका धैर्य भंग हो गया है। विचार बुद्धि भी सीधे रास्ते से नहीं चल रही है। एक दूसरे के प्रति श्रद्धा, सौजन्यता, मान्यता बनाए रखने के लिए जिस ढंग से कांग्रेस की शक्ति और सम्मान को सुरक्षित रखा जा सकता था, उसमें व्यभिचार का प्रवेश हुआ है। इस विकृति की जड़ में है शक्ति और स्पर्धा का प्रभाव।

'इस पूजा की जगह पर जितने लोग रक्षक के रूप में एकत्रित हुए हैं, उनका मन क्या तिरासक्त है ? वे एक-दूसरे पर चोट करके जिस तरह से भेदभाव बढ़ा रहे हैं, उसमें कोई सच्चाई है ? अन्दर ही अन्दर कांग्रेस के मंदिर में जो शक्ति-पूजा की वेदी बन गई है, उसकी स्पर्धा का प्रमाण तो आज मिल ही गया—जब महात्माजी को उनके भक्तों ने मुसोलिनी और हिटलर के बराबर कह कर सारे संसार के सामने असम्मानित किया ?

'मैं जवाहरलाल का अंतःकरण से श्रद्धा करता हूँ। मैं उनसे पूछता हूँ कि कांग्रेस के क़िले के दरवाजे पर खड़े पहरेदारों के मन में कहीं क्या व्यक्तिगत शक्ति को घमंड का लक्षण नहीं दिखाई दे रहा है ?'

सुभाष बीमार थे। मेडिकल बोर्ड के मतानुसार हालत खतरनाक थी। विरोधी दल भूल गया पर रवीन्द्रनाथ वह बात नहीं भूले। त्रिपुरा में अस्वस्थ सुभाष को उन्होंने लिखा—

'चिरंजीव,

अस्वस्थ शरीर लेकर कांग्रेस का दुःसह कार्य करने को तुम व्याकुल हुये, इससे हम सभी बड़े चिन्तित थे....आज भी घबड़ाए हुए हैं। आशा करता हूँ उपयुक्त सेवा-यत्न और विश्राम से तुम आरोग्य लाभ कर रहे हो और बंगाल की ओर से तुम्हें सम्मान प्रदर्शन का मेरे मन में जो संकल्प है, उसे पूरा करने में देर नहीं लगेगी। इति—

तुम्हारे

११. ३. ३६ (हस्ताक्षर) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अधिवेशन समाप्त हुआ। सभापति को अब विदा करने का समय आ गया। लेकिन ऐसा अशोभनीय दृश्य किसी ने इससे पहले देखा न होगा।

'हमेशा ही सभापति को खूब धूम-धाम से और तड़क-भड़क के साथ विदाई दी जाती है। त्रिपुरा में ऐसा कुछ नहीं हुआ।....विदाई के समय उनके पास थे उनके परिवार के लोग, दो डाक्टर और वर्किङ्ग कमिटी के दो सदस्य मात्र।'

[कांग्रेस का इतिहास, डा० पट्टाभि; २ रा भाग; पृष्ठ १२४]

आश्चर्य की क्या बात है। सुभाष की जय माने बापूजी की पराजय। कांग्रेस के सभापति हैं तो क्या हुआ, ऐसे आदमी को उचित मर्यादा देने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

बंगाल गुस्से और आक्रोश से जलने लगा। सुभाष का अपमान ? यह तो हमारा अपमान है। बंगाल का अपमान। बंगाली का अपमान गांधीवादियों के इस गलत आचरण को हम सहन नहीं करेंगे।

शुरू से साथ देते रहने के बाद अन्त में पीछे हटने के लिए सोशलिस्ट पार्टी की जम कर आलोचना हुई थी। गानें, कविताएँ, छन्दक....बहुत चीजें रची गई।

तब सुभाष काफी अस्वस्थ थे। त्रिपुरा से लौटते वक्त उन्हें धनबाद स्टेशन पर उतार कर, बड़े भाई सुधीर बोस के घर, जामाडोबा ले जाया गया।

कौन विश्वास करेगा ? पर बात सच है। गांधीवादी नेता वल्लभभाई पटेल ने कहा था—'यह सुभाष का पॉलीटिकल फीवर है। इसलिए यह बीमारी जल्दी जाएगी नहीं।'

और जवाहरलाल की तो बात ही न पूछो। अखबारों में, सभा-समितियों में बस एक ही बात कहने लगे। सारी गलती सुभाष की है। इस अचल हालात के जिम्मेदार सुभाष हैं। वह फासिस्ट हैं इसलिए उसका समर्थन करना संभव नहीं।

बड़े दुःख और कष्ट से पीड़ित हो सुभाष ने तब जवाहरलाल को एक पत्र लिखा। अपने राजनैतिक जीवन में जवाहरलाल ने गांधीजी से कम डाँट नहीं खाई थी। लेकिन सुभाष की लिखी उस चिट्ठी में जो तिरस्कार था, जो निर्मम आलोचना थी, वह भूलने लायक न थी। लम्बी, सत्ताइस पन्नों की चिट्ठी थी। उसके कुछ अंश यहाँ लिख रहा हूँ मल्लिका—

'कुछ दिनों से देख रहा हूँ, तुम मेरे प्रति जबरदस्त विरोधी भाव प्रकट करने लगे हो। मेरे विरुद्ध कहीं जरा सी भी त्रुटि देखी नहीं कि उसका सद्व्यवहार करने से नहीं चूकते हो। अपनी कोई गलती होती है तो तुम्हें दिखाई भी नहीं देती है।

पर व्यक्तिगत जीवन और कार्यक्षेत्र में भी, मैंने हमेशा ही तुम्हारे प्रति श्रद्धा और सौजन्य प्रकट किया है। राजनैतिक जीवन में बड़े भाई और नेता का सम्मान दिया है। कई बार उपदेश भी माँगा है।....इस पर भी, खुल्लम-खुल्ला जनता के सामने खड़े होकर तुम मुझे नीचा दिखा रहे हो ?...तुम्हारा दिल ऐसा करने से झिझका तक नहीं ?....सच पूछा जाए तो बारह वर्किङ्ग कमिटी के लोग मिल कर मुझे जितनी चोट नहीं पहुँचा सके, उससे कहीं ज्यादा चोट तुमने अकेले पहुँचाई है।

मैं वर्किङ्ग कमिटी का सभापति हूँ। मेरे पीठ-पीछे दूसरे सदस्यों ने डा० पट्टाभि को सभापति पद के लिए मनोनीत कर लिया। उसमें, अन्याय हुआ, यह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा ? वर्किङ्ग कमिटी के सदस्य होकर सरदार पटेल और दूसरों ने पट्टाभि के समर्थन में अपना आवेदन पेश किया तब भी तुम्हें अन्याय नहीं लगा।

तुम अभियोग लगा रहे हो कि मैं सभापति की जिम्मेदारी ठीक से नहीं निभा रहा था। तुम सभा में जब उपस्थित रहते हो तब किसी की हिम्मत है कि काम कर ले ? मैं ही कैसे सभापति का काम करता ? वर्किङ्ग कमिटी में तुम्हारे जैसा बोलने वाला और एक सदस्य हो जाए, तो मैं तो नहीं समझता हूँ कि कभी काम खत्म भी कर सकूँगा।

निर्मम सच्चाई तो यह है कि वर्किङ्ग कमिटी में कभी-कभी तुम बच्चों का-सा व्यवहार करते थे और अक्सर बिगड़ जाते थे। साधारणतः तुम कई घंटे तक ठीक रह सकते हो लेकिन बाद में ठनक जाते हो। सरदार पटेल और दूसरों का तुम्हारे साथ जो व्यवहार था उसमें यही चालाकी थी। वे तुम्हें बकने देते हैं और बाद में तुमसे कहते हैं कि उनके प्रस्ताव की रूपरेखा तैयार कर दो।

प्रस्ताव किसी का क्यों न हो, रूपरेखा तैयार करने को कहा जाता है तो तुम बेहद खुश होते हो। मैंने तो बहुत कम ही देखा है कि तुम अन्त तक अपने कथन पर अड़े रह सके हो।

पता नहीं, राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों के बारे में तुम क्या सोचते हो। मेरे हिसाब से तो वह क्लर्क या सेक्रेटरी से ऊपर ही होता है। राष्ट्रपति के रूप में तुम सेक्रेटरी का काम भी जबरदस्ती अपने कब्जे में किए हुए थे पर यही दूसरे राष्ट्रपति भी करेंगे, ऐसी तो कोई बात नहीं।

मुझे चाहिए कि तुम्हें बुला कर तुम्हारी नीति और कार्यप्रणाली के बारे में तुम्हें बताऊँ और खूब विस्तार से।

मैं पूछता हूँ, तुम समाजवादी हो, या वामपंथी? या मध्यपंथी, दक्षिणपंथी, गांधीपंथी या और कुछ?

तुम्हें क्या लगता है, पंत के प्रस्ताव का असली उद्देश्य महात्मा जी को मेरे खिलाफ करना नहीं है? अगर ये लोग मेरे खिलाफ लड़ना ही चाहते थे तो सामना-सामनी क्यों नहीं लड़े? महात्मा गांधी को इसमें क्यों ले आए?

यह चालाकी है अच्छी, इसमें शक नहीं, लेकिन सवाल तो यह है कि यह चाल क्या सच्चाई और अहिंसा से मेल खाती है?'

सुभाष यहीं शान्त नहीं हुए। रोगशय्या पर लेटे-लेटे उन्होंने उनचास चिट्ठियाँ और तार गांधीजी को भेजे थे।

एक के बाद एक। 'मैं बीमार हूँ। कृपा करके एक बार यहाँ आइए। अस्वस्थ न होता तो मैं स्वयं ही आपके पास आता। और यह भी सूचित कीजिए कि नई वर्किङ्ग कमिटी में अगर एक ही विचारों वाले लोग न होकर विभिन्न मतों के लोग हों तो उससे आप राजी हैं या नहीं।'

गांधीजी नहीं आए। आना संभव भी नहीं था। वृहद् भारत से कहीं ज्यादा महत्त्व रखता था राजकोट जैसा छोटा सा एक नगर—उसकी समस्या। वहाँ जब तक सब ठीक नहीं हो जाता, वे आते कैसे। इसीलिए चिट्ठी लिख कर उन्होंने मन की बात स्पष्ट कर दी—'जो कुछ कहना था पहले ही कह चुका हूँ। संभव हो तो अपने मतावलम्बी लोगों को लेकर वर्किङ्ग कमिटी बना लो।'

लेकिन त्रिपुरा में तो यह प्रस्ताव पास हुआ था कि गांधीजी के मतावलम्बी

सदस्यों को लेकर वर्किंग कमिटी बनाई जाए। उसका क्या होगा ?

इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला।

कुछ छोटे-छोटे चित्र तुम्हें दिखाता हूँ, मल्लिका। पुराने होते हुए भी आज तक वैसे ही उज्ज्वल हैं।

तस्वीरें हैं कांग्रेस और रवीन्द्रनाथ की।

एक तरफ कांग्रेस उस समय किसी भी तरह से सुभाष को हटाने पर कमर कसे हुई थी।

दूसरी तरफ उनकी मर्यादा की रक्षा करने के लिए कवि व्याकुल और दृढ़संकल्प थे। उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी थी : 'मैं जानता हूँ, बांगला देश के जननायक का प्रधानपद सुभाषचन्द्र का ही है।'

एक तरफ गांधीजी का यह कटाक्षपूर्ण इशारा—'कुछ भी हो, सुभाष देश के शत्रु नहीं हैं।'

तो दूसरी तरफ कवि ने अपने मधुर-कण्ठ से उनकी वन्दना करते हुए कहा—

'सुभाषचन्द्र, मैं बंगाली कवि हूँ, बांगला देश की ओर से मैं तुम्हें देश के नेता के पद के लिए वरण करता हूँ। गीता में कहा है, अच्छों की रक्षा और बुरों का विनाश करने के लिए रक्षक बार-बार जन्म लेता है, प्रकट होता है। जब राष्ट्र बुराइयों के जाल में फँसने लगता है तब पीड़ित देशवासियों की पुकार पर प्रकट होता है देश का नेता। ....कई साल पहले एक बार और एक सभा में मैंने बंगाली समाज के आने वाले नेता को उद्देश्य कर, अपनी लेखनीरूपी दूत को भेजा था। उसी घटना के बहुत साल बाद आज और एक मौके पर बांगला देश के अधिनायक की मैं वन्दना करता हूँ, उसकी आरती उतारता हूँ।'

बहुत पुराना चित्र है। अस्पष्ट है, लेकिन अविस्मरणीय।

इस बार भी परिस्थिति की गम्भीरता को समझ कर रवीन्द्रनाथ आगे बढ़े। गांधीवादियों की अकारण जिद्द और समझौता न करने वाला मनोभाव ही इस शोचनीय परिस्थिति का जिम्मेदार है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं था। क्षुब्ध होकर कवि ने गांधीजी को लिखा :

Uttarayan
Shantiniketan (Bangal)
March 29, 1939

Dear Mahatmaji,

At the last Congress session some rude hands have deeply hurt Bengal with an ungracious persistence. Please apply without delay balm to the wound with your own kind hands and prevent it from festering. With love.

Ever your's
(Sd.) Rabindranath Tegore

गांधीजी ने इसका उत्तर दिया, पर वही एक बात। 'सुभाष को ठीक सलाह दी गई है। फिलहाल इसके अलावा वे और कोई रास्ता नहीं दिखा सकते है।'

New Delhi
2-4-39

Dear Gurudev

I have your letter full of tenderness. The problem you set before me is difficult. I have made certain suggestions to Subhash. I see no other way out of the impassee.

I do hope you are keeping your strength. Charlie is still in the hospital With love.

Yours
(Sd.) M. K. Gandhi

उन दिनों सारे बंगाल में उत्तेजना फैली हुई थी। लोग तरह-तरह की योजनाएँ बना रहे थे, अनुमान लगा रहे थे।

अब सुभाष क्या करेंगे? जिस तरह से पूरी तैयारी के साथ वे लोग मैदान में आए हैं इससे तो लगता नहीं है कि नई वर्किङ्ग कमेटी आसानी से बन सकेगी।

या तो उनकी बात मानें या पदत्याग करें—सुभाष को इन्हीं में से एक मार्ग को चुनना है। क्या चुनेंगे—आत्मसमर्पण या पदत्याग? घटना की गम्भीरता से कवि परेशान हो उठे। नहीं, इस मामले में झटपट किसी सिद्धान्त पर पहुँचना ठीक नहीं होगा। फैसला करने की जिम्मेदारी देशवासियों की है। उन्हें सब बातें मालूम होना चाहिए, समझना चाहिए।

२ अप्रैल को इसके बारे में उन्होंने सुभाष को लिखा—

चिरंजीव,

कलकत्ता

कुछ दिनों से, कलकत्ते में आकर लोगों का मनोभाव समझने का मौका मिला है। सारा देश तुम पर आस लगाए बैठा है। ऐसा अनुकूल मौका अगर द्विविधा में तुम खो बैठो, तो दुबारा नहीं मिलेगा। बंगाल से जो शक्ति प्राप्त हो सकती है, उससे वंचित हो जाओगे। दूसरे पक्ष भी हमेशा तुम्हारी शक्ति छीनते रहेंगे। इतनी बड़ी गलती कभी मत करना। तुम्हारे लिए नहीं कह रहा हूँ, देश के लिए कह रहा हूँ।

तुम माँग करो कि महात्माजी को जो कुछ कहना है आखिरी बार कह दें। अगर वे टाल-मटोल करें तो यही कारण दिखा कर पद त्यागना। उनसे कहना। शीघ्र ही तुम्हें भविष्य की योजना बनानी है, अब देर करना संभव नहीं है। आशा है तुम स्वस्थ हो रहे हो। आज ही शान्तिनिकेतन वापस जा रहा हूँ। इति—

तुम्हारा
२.४.३९
(हस्ताक्षर) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

उन्होंने न केवल सुभाष को लिखा बल्कि देश की भलाई का ध्यान रख कर सुभाष

से मिल कर सारा मामला तय कर लेने के लिए गांधीजी को भी लिखा।

'I earnestly appeal to you to arrange meeting immediately with Subhash and save the situation from tragic disaster.'

जामाडोवा में इस सम्बन्ध में उन्होंने सुभाष को तार भेजा पर कुछ नहीं हुआ। उस समय गांधीजी राजकोट में जरूरी काम में व्यस्त थे। उनके पास समय नहीं था।

२१ अप्रैल को सुभाष जामाडोवा से कलकत्ता लौट आए। २८ अप्रैल से अखिल भारतीय राष्ट्रीय समिति की कलकत्ता में बैठक होने वाली थी। गांधीजी तथा अन्य लोग—सभी वहाँ उपस्थित होंगे। उस समय अगर कोई रास्ता निकल आए!

गांधीजी कलकत्ता पहुँचे २७ अप्रैल को। ठहरे सोदपुर आश्रम में।

लगातार चार घंटे तक बात-चीत हुई दोनों में, लेकिन व्यर्थ। गांधीजी अपने इरादे से नहीं हटे। उन्हें जो कहना था पहले ही कह चुके थे, इसलिए नई कोई बात उन्हें नहीं कहनी थी।

२८ तारीख को अधिवेशन शुरू हुआ वेलिंगडन स्क्वायर में।

अन्तिम प्रयास करने के लिए सुभाष ने नया प्रस्ताव रखा।

'दुनिया के इतिहास में हम आज क्या देख रहे हैं? क्या देख रहे हैं ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और दूसरे स्वाधीन राज्यों में?

वहाँ भी विभिन्न मतों के राजनैतिक दल हैं, लेकिन राष्ट्र पर संकट आने पर वे सब एक हो जाते हैं। क्योंकि दल बड़ा नहीं, राष्ट्र बड़ा होता है।

क्या हम इस विषय में इतिहास की मदद नहीं ले सकते? यूरोप में लड़ाई छिड़ने ही वाली है। इस समय हमारा एकमात्र कर्त्तव्य होना चाहिए, एक साथ मिल कर काम करना। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि चार वामपन्थी भी वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य बनें। इससे दूसरे पक्ष की संख्या ज्यादा ही रहेगी। इसलिए इस प्रस्ताव पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'

परन्तु गांधीवादी नेतागण तैयार नहीं हुए। होने की बात भी नहीं थी, क्योंकि वे फैसला हो जाए, यह चाहते ही कहाँ थे? उनका उद्देश्य तो बस इतना ही था कि सुभाष को सभापति पद से हटाना। इसलिए उन्होंने समवेत कण्ठ से सुभाष के प्रस्ताव के विरुद्ध आवाज उठाई। नहीं, हम तो प्रत्येक सदस्यता अपने लोगों को देना चाहते हैं।

सुभाष क्या करेंगे? आत्मसमर्पण या पदत्याग? किसमें ज्यादा सम्मान है? सुभाष के लिए कौन सी बात ज्यादा स्वाभाविक है।

इन प्रश्नों का उत्तर दूसरे दिन मिल गया। अधिवेशन में अपना त्यागपत्र देते हुए सुभाष बोले—

'त्रिपुरा कांग्रेस के प्रस्ताव के मुताबिक मैंने गांधीजी से वर्किङ्ग कमेटी संगठित करने का अनुरोध किया था, लेकिन अतीत के अनेक असफल अनुरोधों की तरह मेरा वह अनुरोध भी व्यर्थ हुआ।....गांधीजी के उपदेशानुसार अगर मैं कमेटी बनाता तो न

वह उनके मन माफिक होती और न उस पर उन्हें भरोसा होता। इसके अलावा यहाँ मेरे विश्वास का सवाल भी है।....इसीलिए बहुत सोच-समझ कर, आन्तरिक सहयोगिता का मनोभाव लिए हुए, मैं अपना त्यागपत्र आपके सामने रख रहा हूँ।'

तुरन्त त्यागपत्र स्वीकृत हुआ। नए सभापति बने बाबू राजेन्द्र प्रसाद। अब नई वर्किंग कमेटी बनाने में कोई असुविधा नहीं हुई।

बँगला देश से दो व्यक्ति कमेटी में लिए गए—एक डाक्टर विधानचन्द्र राय और दूसरे गांधीवादी नेता डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष। ये वही डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष हैं जिन्होंने आगे चल कर कांग्रेस छोड़ दिया था और पी० एस० पी०, निर्दलीय, संयुक्तफ्रंट, पी० डी० एफ०, लोकदल जैसी पार्टियों का चक्कर लगा कर फिर कांग्रेस पार्टी में लौट आए थे।

अधिवेशन सभा के बाहर तब हजारों की तादाद में उत्तेजित जनता इकट्ठा थी। उनका कहना था—'गांधीजी का यह अन्याय हम सहन नहीं करेंगे। वे किस अधिकार से बंगाल और बंगाली का अपमान करते हैं? उन्हें इसका जवाब देना ही होगा वरना किसी को छोड़ा नहीं जाएगा।'

सुभाष ने रोका। अपने आप उपस्थित रह कर उन्होंने एक-एक को गाड़ी पर चढ़ा दिया। स्वेच्छा-सेवक वाहिनी की मदद के बिना यह काम नहीं हो सकता था। 'ये तो अतिथि हैं। बंगाल का अतिथि-परायणता के लिए जो नाम है, उसे कलंकित करना ठीक नहीं।'

उसी समय कविगुरु ने पुरी से सुभाष को बधाई दी।

'अत्यन्त ही अरुचिकर अवस्था होते हुए भी तुमने जो धैर्य और मर्यादाबोध का परिचय दिया है, उससे तुम्हारी नेतृत्व क्षमता पर मेरा विश्वास बढ़ा है। श्रद्धा बढ़ी है। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए बंगाल को अभी पूरी तरह से धीरज और सभ्यता बोध का परिचय देना होगा। इस समय जिसे तुम पराजय सोच रहे हो वही अन्ततः विजय में बदल जाएगी।'

सुभाष सब की नजर में पराजित हो गए। लेकिन असली हार किसकी हुई? सुभाष की या गणतन्त्र की?

सुभाष को गांधीवादियों के असहयोग के कारण पदत्याग करना पड़ा। अब गणतन्त्र के बारे में कोई कुछ भी कहे, गांधीजी ही इसके सर्वेसर्वा हो गए। यहाँ तक कि निर्वाचित कांग्रेस सभापति का भी यहाँ कोई मूल्य नहीं रह गया। गांधीजी का व्यक्तिगत समर्थन आवश्यक था।

सुभाष ने अपने पद-त्याग के बारे में कहा था—'गांधीजी और नेहरू के साथ प्रकट विरोधिता के बावजूद, सारे देश में मेरे कितनी बड़ी संख्या में अनुगामी हैं और उनका कितना प्रभाव है, यह बात इस निर्वाचन के माध्यम से स्पष्ट हो गई है।

कांग्रेस के संविधान के अनुसार, अगले वर्ष के लिए वर्किङ्ग कमेटी का संगठन करना सभापति का काम होता है, पर यह स्पष्ट हो गया कि गांधीपंथी की पसन्द के अनुरूप अगर यह वर्किङ्ग कमिटी न बनी तो वे पहले की ही तरह विरोध करेंगे। उस हालत में स्वाधीनतापूर्वक सभापति का काम करना बिल्कुल असम्भव हो जाएगा।

गांधीवादियों के मनोभाव से स्पष्ट था कि वे मेरा आदेश नहीं मानेंगे और कांग्रेस की संचालन व्यवस्था पर मुझे नियन्त्रण रखने भी नहीं देंगे। मैं नाममात्र का सभापति बनने को तैयार नहीं हूँ। अगर ऐसा करूँ तभी वे मुझे बरदाश्त कर सकते थे।....फलस्वरूप सभापति के पद से इस्तीफा देने के अलावा मेरे लिए दूसरा कोई रास्ता न था।' [मुक्ति संग्राम : सुभाषचन्द्र बोस]

त्रिपुरा कांग्रेस में बार-बार कहने पर भी गांधीजी राजकोट छोड़ कर नहीं आए थे। वेलिंग्टन स्क्वायर में भी नहीं। किसी कारणवश वे सोदपुर आश्रम को नहीं छोड़ सकते थे।

इधर कांग्रेस के मतलब ही थे गांधीजी। वहाँ उनकी इच्छा ही सब कुछ थी। सुभाष के शब्दों में—'The entire intellect of the Congress has been mortgaged to one man'. यहाँ तक विदेशियों की नजर से भी यह बात छिपी न थी, मल्लिका। इसी संदर्भ में इतिहासकार माइकल एडवर्ड ने अपनी पुस्तक 'The Last years of British India' में लिखा है—'Gandhi now turned the technique of non-co-operation not against the British, but against Congress's own President. Bose was forced to resign.

लगभग एक ही समय पर एक और उल्लेखनीय कार्य किया गया। यह काम था राष्ट्रीय गान 'बन्दे मातरम्' का अंग-छेदन। यह तय हुआ कि सिर्फ पहली दो कड़ियों के 'बन्दे मातरम्' में से और कुछ नहीं गाया जा सकता है।

कारण ? कारण थे मुस्लिम लीग के प्रधान मि० जिन्ना। उन्होंने 'बन्दे मातरम्' पर एतराज किया है, इसलिए उन्हें खुश करना जरूरी था।

इतने दिनों के साथी—सोशलिस्ट पार्टी, कम्यूनिस्ट पार्टी, हिन्दू महासभा—अब किसी की जरूरत नहीं है। सुभाष की भी नहीं। पर जिन्ना साहब का रहना जरूरी है। कुछ भी हो, सख्त आदमी हैं। इतनी कोशिशों के बावजूद उनका मन जीता नहीं जा सका था। यहाँ तक कि गोलमेज की बैठक में ब्लैंक चेक नजराने के तौर पर देना चाहा था फिर भी उनके 'नहीं' को 'हाँ' में नहीं बदल सके थे गांधीजी। इसीलिए इस दफा अगर राष्ट्रीय गीत को काट-छाँट कर उन्हें खुश किया जा सके तो उसमें बुराई क्या है ?

क्या खुश कर सके थे ?

जीवन भर के विप्लवी थे सुभाष। फूलों की माला पहन कर जेल चले गए या पहन कर निकल आए—यही उनका राजनैतिक जीवन नहीं था। उनके अपने शब्दों में —'मैं किसी की तस्वीर नहीं हूँ, प्रतिध्वनि नहीं हूँ, किसी का prototype नहीं—I am myself.'

इस बात की सच्चाई तीन दिन बाद ही ३ मई को प्रमाणित हो गई। उसी दिन श्रद्धानन्द पार्क में खड़े हो कर उन्होंने एक नए दल की घोषणा की—'फारवर्ड ब्लाक' की। दल का लक्ष्य कांग्रेस का विरोध करना नहीं बल्कि—लड़ना था। व्यर्थ ही टाल-मटोल करते-करते सात साल बीत चुके हैं, अब और देर करना ठीक नहीं।

देखते ही देखते लाखों संग्राम-प्रिय जनता सिर उठाए आगे आ गई। हाँ, हम यही चाहते हैं। यही होना चाहिए। बातें बहुत हो चुकी हैं, अब लड़ाई होनी चाहिए।

खासतौर से जितनी विप्लवी संस्थाएँ थीं वह सारी संस्थाएँ बुलाए जाते ही आकर इकट्ठा हो गईं।

यहाँ तक कि अनुशीलन समिति भी। जिसने १९२८ से आज तक कभी भी सुभाष का दिल से साथ नहीं दिया था, आगे आई और सुभाष से हाथ मिला कर आश्वासन दिया कि हम तुम्हारे पीछे हैं।

केवल 'युगान्तर दल' ही आगे नहीं आया। हालाँकि दल के नाम पर 'युगान्तर' का अब कोई अस्तित्व ही नहीं रह गया था। एक साल पहले ही (१९३८) यह दल टूट कर कांग्रेस में मिल गया था। फिर भी हर कोई नहीं। असल में युगान्तर अकेली कोई संस्था नहीं थी, बल्कि कई संस्थाएँ मिल कर एक विशाल विप्लवी संस्था थी यह। १९३८ में कानूनी ढंग से युगान्तर को भंग करने पर भी मदारीपुर का पूर्णदास का दल, उत्तर बंगीय दल जैसी विप्लवी संस्थाएँ बराबर ही सुभाष का समर्थन कर रही थीं।

पंजाब, सीमान्त प्रदेश, मध्य प्रदेश, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मद्रास और अन्य प्रदेशों ने इसका हार्दिक स्वागत किया। 'फारवर्ड ब्लाक' जिन्दाबाद। अब किच-किच नहीं। बड़ी-बड़ी बातें भी नहीं। अब चाहिए सचमुच की लड़ाई।

सुन कर गांधीवादी बहुत नाराज हुए—'यह क्या गलत बात है! कांग्रेस ने सात-सात प्रान्तों में मंत्रिमण्डल बनाया है। उस पर भी लड़ाई की बात कर रहे हो?'

४ जून को देशवासियों से गांधीजी ने एक निवेदन किया—'अनिश्चित काल के लिए कांग्रेस का सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित किया जाता है। अब किसी तरह का आन्दोलन करना ठीक नहीं होगा।'

इतना ही नहीं। पन्द्रह दिन बाद ही बम्बई में हुए राष्ट्रीय समिति के अधिवेशन में अद्भुत दो विधि-निषेध के प्रस्ताव पास हुए। एक—कांग्रेस के समर्थन के बिना कहीं भी कोई सत्याग्रह या प्रत्यक्ष संग्राम करना मना है। दूसरा—आज से कांग्रेस के मंत्रि-मण्डल के बारे में किसी तरह की आलोचना नहीं की जाएगी।

ऐसा अद्भुत आदेश क्यों? इसका कारण क्या है?

पहले कारण थे सुभाष। गांधीजी ने अपने मुँह से यह स्वीकार किया कि सभापति का पद त्यागने के बाद ही सुभाष की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई है। खास कर संग्रामी तरुण-दल के होठों पर सिर्फ सुभाष ही का नाम था। यह लक्षण अच्छे नहीं थे। इसलिए लड़ाई रोक कर पहले सुभाष को आगे बढ़ने से रोकना जरूरी है।

लेकिन दूसरा? उसे क्यों लगाया है? गणतन्त्रात्मक नियम के मुताबिक सभी

को आलोचना करने का अधिकार है। तो क्या कांग्रेस मंत्रिमण्डल के सम्बन्ध में आलोचना की जाए, यह स्थिति आ गई है।

यहाँ मैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए कुछ पत्रों से थोड़ा-थोड़ा अंश उतार देता हूँ—तुम पढ़ो। पहली चिट्ठी उन्हीं एडवर्ड थामसन की है जो जवाहरलाल के मित्र और भारत के हितैषी थे। उन्होंने जवाहरलाल को लिखा—

'कांग्रेस की मंत्रिसभा के सदस्य हर महीने केवल पाँच सौ रुपए वेतन ले रहे हैं, जान कर मुझे खुशी हुई थी।...यह सुन कर बहुत बुरा लगा कि यह आत्मत्याग सरासर दिखावटी है क्योंकि बाकी पैसे वे भत्ते के रूप में ले रहे हैं।' (पत्र-गुच्छ : जवाहरलाल)

दूसरी चिट्ठी गांधीजी की लिखी है। जवाहरलाल को लिखा था—

'५०० रुपए वेतन, उस पर बड़ा मकान और मोटर, भत्ता इत्यादि की चारों ओर कठोर आलोचना हो रही है। जितना सोच रहा हूँ उतना ही बुरा लग रहा है क्योंकि शुरू में ही यह ज्यादती मुझे पसन्द नहीं।' (पत्र-गुच्छ)

अब जवाहरलाल की बात सुनो। वे गांधीजी को लिखते हैं—'सारे भारत में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल को लेकर जो सब घटनाएँ हो रही हैं उसकी वजह से मैं अत्यन्त दुःखी हूँ।' (पत्र-गुच्छ)

अन्तिम पत्र महात्मा गांधी के सेक्रेटरी महादेव देसाई का है। उन्होंने जवाहरलाल को लिखा—'...हमारे कुछ मन्त्रियों के काम से जो सच्चाई और अहिंसा भंग करने का प्रमाण मिल रहा है, उसके बारे में साफ-साफ पूरी बात लिखो, बापू जी यही चाहते हैं।' (पत्र-गुच्छ)

चिट्ठियाँ पढ़ कर यही लगता है न कि सच हो या झूठ—लोग कहने तो लगे ही थे।

तो फिर जबरदस्ती लोगों का मुँह क्यों बंद करवाया जा रहा है? फिर अंग्रेजों पर दोष लादने से क्या फायदा होगा? फर्क क्या रह गया है?

सुभाष ने विरोध किया। उनके साथ सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट, रैडिकल पार्टी जैसे वामपंथियों ने भी आवाज़ उठाई। इसमें आ मिले स्वामी सहजानन्द, जयप्रकाश नारायण जैसे लोग।

यह नियम पूरी तरह से गैर-कानूनी और गणतन्त्र विरोधी है। इसका एकमात्र उद्देश्य है मनुष्य की व्यक्तिगत स्वाधीनता पर हाथ लगाना। इसे हम नहीं मानेंगे।

९ जुलाई प्रतिवाद दिवस के रूप में मनाया गया। उसी के साथ 'राष्ट्रीय संग्राम सप्ताह' मानने का निश्चय किया गया १२ जुलाई से।

तुरन्त नोटिस आ गई। हमने जब लड़ाई के लिए मना कर दिया है तब तुमने किस अधिकार से इसका आह्वान किया है? फौरन कैफियत चाहिये।

बंगाल कांग्रेस के सभापति के रूप में, ७ अगस्त को, सुभाष ने कांग्रेस के नवनिर्वाचित सभापति बाबू राजेन्द्र प्रसाद को लिख कर उत्तर दिया—

'एक लम्बे अरसे से अंग्रेजों के विरुद्ध जिन अधिकारों को हासिल करने के लिये हम लड़ रहे हैं, उनमें नागरिक अधिकार और बोलने की स्वाधीनता ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। अंग्रेजों से जिन अधिकारों को पाने के लिए हम लड़ते हैं उन्हीं अधिकारों को कांग्रेस से पाना अपराध है क्या ? हम कांग्रेस में रहेंगे तो डेमोक्रेसी का दावा कर सकते हैं, कांग्रेस के बाहर रह कर नहीं ?....अन्त में मैं आपसे यह अनुरोध करूँगा कि 'प्रतिवाद दिवस' पालन करने के लिये अगर किसी कांग्रेस सदस्य को दण्ड भोगना पड़े तो उससे मुझे वंचित न किया जाए।'

कठिन प्रश्न था। इसका उत्तर देना और भी कठिन था। इसलिए इसका जवाब दूसरी तरफ से आया।

१४ अगस्त का दिन था। उस दिन वर्धा की वर्किंग कमिटी में तय हुआ कि— 'गम्भीर रूप से नियम-भंग करने के लिए श्री सुभाषचन्द्र बोस को बंग प्रादेशिक राष्ट्रीय समिति के सभापति के पद के अयोग्य घोषित किया जाता है और १६३६ के अगस्त माह से तीन साल तक वे किसी भी निर्वाचित कांग्रेस कमिटी के सदस्य नहीं बन सकेंगे।'

सम्पूर्ण बंगाल गुस्से से फट पड़ा। इसी के साथ-साथ कांग्रेस के दफ्तर में हर जिले से चिट्ठियाँ आनी शुरू हुईं। सभी सुभाष के समर्थन में। वर्किंग कमिटी के गलत आदेश को हम नहीं मानेंगे। सुभाष ही हमारे सभापति हैं। हम उन्हें ही चाहते है।

ये बात है ? तुरन्त पूरे बंगाल की कांग्रेस ही रद्द कर दी गई, और उसके बदले एक एडहॉक कांग्रेस लाकर बैठा दी गई, जिसके नेता बने किरनशंकर राय अर्थात् बंगाल या बंगाली समर्थन करे या न करे, अब आगे से यही विशुद्ध एडहॉक कांग्रेस रहेगी जो गांधीवादी है।

गांधीवादियों की इच्छा पूरी हुई। सुभाष को तीन साल के लिए कांग्रेस से बहिष्कृत कर दिया गया। बिना किसी समझौते के लड़ाई कह कर १६२८ से इस आदमी ने कम तंग नहीं किया था—अब निश्चिन्त हुए।

ठीक ही हुआ, मल्लिका। कौन जानता है, अगर वे इस तरह से कांग्रेस से निकाले न गये होते तो हम उन्हें शायद ही 'नेताजी' के रूप में देखते।

अब दो अन्य तस्वीरें देखो। एक गांधीवादी कांग्रेस की, दूसरी कविगुरु रवीन्द्र-नाथ की।

एक तरफ कांग्रेस से सुभाष बहिष्कृत, दूसरी तरफ भयंकर नियम-भंग करने के अपराध के अपराधी होते हुए भी कवि खुशी से आये थे सुभाष के महाजातीय सदन के शिलान्यास के लिए। यह काम २६ अगस्त १६३६ में हुआ। सुभाष ने वहीं एक बात कही—यूरोप में युद्ध छिड़ने वाला है। भारतीयों को इस मौके का पूरा फायदा उठाना होगा। अब व्यर्थ का समय बरबाद करना नहीं है—चाहिए संग्राम।

'आज भारत का राष्ट्रीय आकाश बादलों से घिरा है। हम भी इतिहास के एक ऐसे चौराहे पर आ गए हैं जहाँ से हर तरफ रास्ता चला गया है। अब हमारे सामने

समस्या है यह—जिस नियमतन्त्र का हमने १६२० साल में त्याग किया था, दुबारा क्या उसी रास्ते पर लौट जाएँ ? या फिर हम गण-आन्दोलन के रास्ते पर चल कर गण-संग्राम की तैयारी करें ?

यहाँ मैं किसी तरह का तर्क करना नहीं चाहता हूँ। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि नवजागृत भारतीय महाजातीय, गण-आन्दोलन और गण-संग्राम का रास्ता कभी नहीं छोड़ेंगे। इसी रास्ते पर चल कर वे सफलता प्राप्त करेंगे, मुझे इस बात का विश्वास है। सबसे बड़ी बात है कि वैदेशिक साम्राज्यवाद के साथ एक तुच्छ समझौता करके वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार—स्वाधीनता को छोड़ेंगे नहीं।' [आनन्दबाजार पत्रिका : २० अगस्त : १६३६]

सुभाष की भविष्यवाणी सच साबित हुई। कुछ ही महीने बाद (३ सितम्बर) को पूरे यूरोप में युद्ध की आग भधक उठी।

पिछले एक साल से ऐसा उदाहरण न मिलेगा, जब सुभाष ने यूरोप में आने वाले युद्ध के लिए सतर्क न किया हो। तब किसी ने नहीं सुना, न गांधीजी ने न कांग्रेस ने। अब प्रमाणित हो गया कि विदेशी राजनीतिक मामलों में सुभाष कितने दूरदर्शी हैं।

बिना किसी तरह की देर किए वे अशान्त बवन्डर की तरह भारत के कोने-कोने का दौरा कर आए। मुँह से इतना ही कहते—'भारतीयों के जीवन का परम मुहूर्त आ गया है। अब देर नहीं। संग्राम पास है—स्वाधीनता संग्राम।'

गांधीजी लेकिन इसकी उल्टी बात कहते। ५ सितम्बर को बड़े लाट लार्ड लिनलिथगो से मिल कर उन्हें सूचित किया—'इस युद्ध में उनकी सारी सहानुभूति इंगलैण्ड और फ्रांस से है। हिटलर की बमबारी से अंगरेजों का वेस्ट मिनिस्टर ऐवे या पार्लियामेन्ट भवन नष्ट हो जाए, ये वह न देख सकेंगे। इसलिये उनका कहना है :

'भारतवर्ष की स्वाधीनता के प्रश्न पर भारत और ब्रिटेन में मतभेद होते हुए भी ब्रिटेन के संकटकाल में उनकी सहायता करना ही भारत की इच्छा है। ब्रिटेन को ध्वंस करके स्वाधीनता लाभ करना, हमारा उद्देश्य नहीं है। वह रास्ता अहिंसा का नहीं है।'

यही बात जवाहरलाल ने भी कही—'जिस वक्त ब्रिटेन जीवन-मृत्यु के युद्ध में जूझ रहा है, उस समय अगर कानून-अवज्ञा-आन्दोलन शुरू किया जाये तो वह भारत के लिए सम्मानजनक बात न होगी।'

संग्राम-प्रिय जनता अवाक् रह गई। यह क्या ? यही प्रस्ताव पास हुआ था क्या हरिपुरा कांग्रेस की बैठक में ? उस दिन तो सर्व-सम्मति से युद्ध में हर तरह से असहयोग का प्रस्ताव ही पास हुआ था।

इसके अलावा यह कैसी बात कर रहे हैं ये लोग ? शत्रु की कमजोरी का फायदा उठा कर आक्रमण करना ही तो युद्ध की नीति है। इस समय भारत के दो श्रेष्ठ नेता बात कर रहे हैं सहयोग की ? भारत को पहले विश्वयुद्ध में सहायता करने पर क्या मिला था ? सिवाय जालियांवाला बाग के निष्ठुर हत्याकाण्ड के, और तो कुछ नहीं न ?

निष्ठावान खद्दरधारी भी कम चकित नहीं हुए। कांग्रेस की नीति है अहिंसा। तो फिर खून बहाने वाले युद्ध में सहयोग प्रदान करने का प्रश्न कहां से उठ आया ?

प्रथम महायुद्ध में साम्राज्यवाद का समर्थन करने के लिए विश्वविख्यात मनीषी रोमां रोलां ने जो पत्र गांधीजी को लिखा था, उसे भूल जाना इतना आसान तो नहीं। उन्होंने लिखा था—

'आप जैसा एक अदम्य साहसी और विश्वास-परायण व्यक्ति, जो बिना किसी भेदभाव के नर-हत्या की निन्दा करता है, निन्दा करता है एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से रणनीति का—वह जब स्वेच्छा से और बिना किसी के प्रेरित करने से नर-बलि में भाग लेता है तब पृथ्वी में ऐसा कुछ नहीं है, जो मुझसे आपके इस कार्य का समर्थन करा ले सके। जिन तर्कों को आपने सामने रखा है, क्षमा कीजिएगा, उनमें से एक भी तर्क महत्व नहीं रखता है। यहाँ तक कि मैं यह भी कहूँगा कि आप कोई तर्क पेश न करें तो मैं आपके इस काम को ज्यादा अच्छी तरह से समझ सकूँगा।

'केवल परिणाम का ध्यान रख कर आपकी यह राजभक्ति देखी जाय तो बड़ी सुविधाजनक नहीं लगती है। परन्तु अगर यह फलदायक होती भी, अगर इसी तरह आप ब्रिटिश साम्राज्य से अपनी स्वाधीनता की मंजूरी ले सकते, तो हे मित्र, बिना रूढ़ता के सिर्फ इतना कहने की मुझे अनुमति दें कि—लाखों लोगों के खून से सने इस ध्वंसात्मक युद्ध में स्वेच्छा से मदद करने का मूल्य देकर स्वाधीनता अर्जित करते तो ईश्वर के प्रति आप अपराध करते। भारतवर्ष को अपने माथे पर अपराध के खून से सना कलंक, शताब्दियों को ढोना पड़ता। वह खून ईश्वर के सामने उसे अपराधी साबित करता।' [Inde : पृष्ठ १९३]

१५ सितम्बर को वर्धा में वर्किङ्ग कमेटी की बैठक शुरू हुई। सुभाष कांग्रेस से बहिष्कृत थे, फिर भी उन्हें विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था।

कोई फायदा नहीं हुआ। बल्कि गांधीजी और जवाहरलाल के विपरीत अपनी राय जाहिर की उन्होंने। ब्रिटेन जीते, यह भारतवासी नहीं चाहते हैं, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य की पराजय में ही भारत अपनी स्वाधीनता प्राप्ति की आशा कर सकता है। इसलिए देर न करके संग्राम की तैयारी कीजिए।

कहाँ संग्राम ? किसी ने सुभाष की बात नहीं सुनी। कांग्रेस के इतिहास के रचयिता पट्टाभि सीतारमइया के शब्दों में—'यह सब तमाशा बहुत हो चुका है। अब संग्राम नहीं, चाहिए सहयोगिता। हालांकि इस सहयोग के बदले कितना मिलेगा इसके लिए बड़े लाट बहादुर से वादा करवा लेना है।'

परिस्थिति देख कर दुःखी कवि ने सतर्क किया—'मैंने कभी शासकों को हमारे प्रति विश्वास प्रकट करते नहीं देखा है, सन्देहात्मक शक्ति के प्रति कटाक्षपात। युद्ध जब समाप्त होगा तब शक्ति की जीत होगी, मित्रता की नहीं। शक्ति के लिए कृतज्ञता बोझ है। कृतज्ञता स्वीकार करने से नम्रता और दायित्व का बोध कराती है। शक्ति के लिए यह सब पीड़ादायक है। पिछले युद्ध में भारत को इस बात का परिचय मिल चुका है।

ठीक जिस समय हिसाब-किताब का वक्त आया था, उसी समय शुरू हो गया चाबुक, जेल, जुरमाना, गोरा-गोरखा और प्यूनिटिव पुलिस।'

बड़े लाट का उत्तर मिला १७ अक्टूबर को। कहाँ वादा? केवल प्रादेशिक मंत्रि-मण्डलों के अधिकार कम करने और देशरक्षा के बहाने व्यापक गिरफ्तारी के दूसरे प्रकार की दमनकारी व्यवस्था का सहारा लेने की बात के अलावा घोषणा में और कुछ नहीं था।

क्षुब्ध होकर वर्किंग कमेटी ने अब प्रादेशिक मन्त्रिसभाओं को पदत्याग करने को कहा। मन्त्रिसभा ने त्यागपत्र दे दिया, लेकिन इसके बाद? अगला कदम क्या होगा? लड़ाई?

नहीं। वह सब कुछ नहीं। क्योंकि गांधीजी का कहना है कि देश अभी लड़ाई के लिए तैयार नहीं है। इसके अलावा उन्हें कहीं रोशनी नहीं दिखाई पड़ रही है, इस-लिए लड़ाई का तो सवाल ही नहीं उठता है।

फिर क्या वास्तव में देश उस दिन तैयार नहीं था? या नेतागण ही बहुत पिछड़ गए थे?

२० मार्च १९४० को इसका जवाब मिल गया। रामगढ़ कांग्रेस में। दो अधि-वेशन बगल-बगल। एक तरफ मौलाना आजाद के सभापतित्व में चमक-दमक वाला व्यय-सम्पन्न कांग्रेस का अधिवेशन, दूसरी तरफ सुभाष का मिला-जुला सम्मेलन। पट्टाभि सीतारमइया ने सुभाष के सम्मेलन के बारे में लिखा था—

'सम्मेलन में बड़ी संख्या मे लोग आए थे। सभापति (सुभाष) ने अपने भाषण में एक जगह कहा—'आने वाली लड़ाई में कौन-कौन लोग हिस्सा लेना चाहते हैं हाथ उठाइए।' विशाल जनता ने तुरन्त हाथ उठा कर जताया कि वे सभी लड़ाई में भाग लेने के इच्छुक हैं।'

और कांग्रेस के अधिवेशन के बारे में लिखा—'There was really nothing new in it.'

प्रमाण स्वरूप उस दिन के प्रस्ताव का कुछ हिस्सा यहाँ लिख रहा हूँ—'The Working Committee will continue to explore all means of arriving at an honourable settlement, even though the British Government has banged the door in the face of the Congress.'

सीधी बात थी कि हमारे मुँह पर ब्रिटिश सरकार दरवाजा बन्द कर दे तो भी हम अनुरोध करते चलेंगे—इसी को कहते हैं धैर्य।

सभी भूल गए, पर गांधीजी उस वक्त भी सुभाष की बात नहीं भूल सके थे। अधिवेशन के अन्त में भाषण देते हुए कहा था—'सुभाष को मैंने लड़के की तरह चाहा था, लेकिन दुर्भाग्य, मैंने उसका प्यार खो दिया।'

हो सकता है गांधीजी के उस दिन के कथन में कोई दिखावा न रहा हो, परन्तु इतिहास कुछ और ही कहता है, मल्लिका।

राष्ट्र के स्वार्थ की चिन्ता कर कवि ने २० दिसम्बर १६३६ को गांधीजी को तार भेजा था—

'Owing gravely critical situation all over India and especially in Bengal would urge Congress Working Committee immediately to remove ban against Subhas and invite his cordial co-operation in supreme interest national unity.'

तैयार नहीं हुए गांधीजी। गुरुदेव की नितान्त इच्छा के बावजूद भी नहीं। २२ दिसम्बर को यह बात उन्होंने साफ शब्दों में जता दी--

'Your wire considered by Working Committee, with kuowledge they have they are unable lift ban. My personal opinion is you should advise Subhas babu Submit discipline if ban is to be removed. Hope you are well.'

गांधीजी यहीं शान्त नहीं हुए। १५ जनवरी १६४० को उन्होंने सुभाष के प्रति अपने मनोभाव को और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया देशबन्धु एन्ड्रूज को एक चिट्ठी में—'I feel that Sudhas is behaving like a spoilt child....'

बिगड़ा लड़का? खूब कहा है! वरना ऐसी सुख की आई० सी० एस० की नौकरी को लात मार कर कोई तकलीफों से भरा, अनिश्चितता का जीवन अपनाता है?

बिगड़ा लड़का न होता तो महासंग्राम शुरू करने से पहले रेडियो द्वारा प्रार्थना करता—Father of our nation, in this holy war for India's liberation, we ask for your blessing and good wishes.' 'राष्ट्रपिता' के नाम से आज गांधीजी हर जगह पूजे जाते हैं। यह नाम इसी बिगड़े बेटे का दिया हुआ है, किसी अच्छे लड़के का नहीं।

कलकत्ता कारपोरेशन के निर्वाचन काल में फिर झगड़ा शुरू हो गया। कारपोरेशन बंगालियों की निजी संस्था है। देशबन्धु के समय से ही वहाँ कांग्रेस का आधिपत्य रहा है। इस बार मुस्लिम लीग वालों ने बखेड़ा पैदा कर दिया। वे इस संस्था में प्रवेश करने की चेष्टा करने लगे।

सुभाष ने विरोध किया। जिस संस्था में से अंग्रेजों को हटाने में सफल हुए हैं, अब वहाँ दुबारा वे नहीं घुस सकेंगे। उसी समय 'फारवार्ड ब्लाक' और मुस्लिम लीग के बीच समझौता हुआ। फलस्वरूप सुभाष कारपोरेशन के एल्डरमैन चुने गए और मेयर मिस्टर सिद्दीकी। मिस्टर सिद्दीकी कट्टर अंग्रेज विरोधी थे।

चारों तरफ शोर मच गया। मुस्लिम लीग के साथ पैक्ट—छिः छिः।

अन्याय की तो बात ही थी। हजारों तरफ से खुशामद करके कांग्रेस उन्हें मित्र न बना सकी। गोलमेज की बैठक में ब्लैंक चेक देना चाहा तो भी नहीं, उसी मुस्लिम

लीग को सुभाष ने चुटकी बजा कर वश में कर लिया ?

इन सारी निन्दाओं का उत्तर सुभाष ने श्रद्धानन्द पार्क की एक जनसभा में दिया—

'भारत के सामने आज एक मौका आया है। क्या कांग्रेस, क्या मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा....कोई भी क्यों न हो, वे अगर आने वाली इस लड़ाई में शामिल होने को तैयार हो जाएँ तो पैक्ट क्या, मैं आजीवन काल इनकी गुलामी कर लूं। अंग्रेजों की दासता समाप्त करने के लिए मुझे अगर अपने देशवासियों की दासता करनी पड़े तो इसके लिए मैं हर समय तैयार हूँ।'

ये थे सुभाष...ये ही था उनका असली परिचय। स्वाधीनता किसे प्यारी नहीं है ? पर उसी स्वाधीनता को पाने के लिए इस तरह से क्या कोई बेचैन हो उठा था ? सुभाष हुए थे और इसीलिए आज भी वे अपने देशवासियों के हृदय में नेताजी के रूप में विराज रहे हैं। भारत में नेताओं की कमी नहीं है। तब भी नहीं थी, आज भी नहीं है पर सब तो 'नेताजी' नहीं बन सकते हैं ?

फिर हमला हुआ। अंग्रेजों की तरफ से नहीं, बल्कि विरोधियों की ओर से। महाजातीय सदन निर्माण-हेतु कलकत्ता कारपोरेशन ने सुभाष को एक लाख रुपया देने का फैसला किया है—उस फैसले को रद्द करना है। महाजातीय सदन सुभाष की क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति है ?

नहीं है तो कोई बात नहीं, पर रुपया नहीं मिलना चाहिए। इतनी चोटें खा रहा है फिर भी यह आदमी आगे ही बढ़ता जा रहा है।

इतिहास की विचित्रता को देखो। वही एक लाख रुपया सुभाष को नहीं दिया गया। और उसी के तीन साल बाद, इसी सुभाष के गले की माला का दान हुआ लाखों-लाखों रुपये।

उधर युद्ध की परिस्थिति गम्भीर हो गई थी। हिटलर ने हालैंड, बेल्जियम और पेरिस पर कब्जा कर लिया था। इंगलैंड की हालत भी वही थी। डेनमार्क में बुरी तरह से पिटे थे ये लोग।

सुभाष देखते-देखते थक गए। कांग्रेस लड़ने को तैयार ही नहीं। कांग्रेस ही क्यों, कोई भी। रायपन्थी और सोशलिस्ट पार्टी पहले ही हट गई थीं, अब कम्युनिस्ट अलग हो गए। 'राष्ट्रीय संग्राम सप्ताह' पालन करते समय यह बात उन्होंने स्पष्ट कर दी थी। कांग्रेस के बिना वे किसी भी तरह की लड़ाई में भाग लेने को तैयार नहीं हैं।

ठीक है, सभी हट जाओ फिर भी सुभाष नहीं हटेंगे। कोई साथ नहीं देगा तो भी वे स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए इस युद्ध के मैदान में कूद पड़ेंगे।

नागपुर सम्मेलन में उन्होंने अन्तिम बार अपनी इच्छा व्यक्त की। 'All power to the Indian people', भारत पर शासन करने का अधिकार सिर्फ भारतवासियों

को ही है। हमारा एक ही लक्ष्य है स्वाधीनता। कोई दल नहीं, सम्प्रदाय नहीं, व्यक्ति विशेष नहीं, हिन्दू मुसलमानों के त्याग के माध्यम से बहु आकांक्षित स्वाधीनता प्राप्त करनी है। भारत सब का है, किसी एक का नहीं, एक जाति का नहीं। मैं हृदय से विश्वास करता हूँ कि हिन्दू-मुसलमान समस्या का हल करना कठिन नहीं है।'

यह बात सच ही तो थी। कॉरपोरेशन पैक्ट के कारण दोनों एक साथ काम नहीं कर रहे थे?

और भी प्रमाण मिला १६४० की २५ मई को। प्रादेशिक राष्ट्रीय सम्मेलन के सिलसिले में सुभाष तबक ढाका में थे। वहाँ भी यही कह रहे थे। 'लड़ाई सिर पर आ गई। इस लड़ाई में हिन्दू-मुसलमान सभी को भाग लेना पड़ेगा। इसलिए सभी आगे आओ—एक हो जाओ।'

उनकी इच्छा पूरी हुई। देखते ही देखते असंख्य मुसलमान तरुण उनके पास आकर इकट्ठा हो गए। इन्होंने कहा—'बंगाली के जीवन का सबसे बड़ा कलंक है—हॉलवेल मन्यूमेन्ट। उसे बंगाल से हटा दिया जाए। हम आपके साथ हैं।'

राजी हो गए सुभाष। हालांकि मन्यूमेन्ट हटा फेंकने से स्वाधीनता नहीं मिलने वाली थी, फिर भी इसी बहाने अगर मुसलिम समाज आगे बढ़ आता है तो इसमें कौन सी बुराई है? देशबन्धु हमेशा कहते थे—'हिन्दू मुसलमानों की मिली हुई शक्ति के बिना ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को नष्ट करना संभव नहीं।'

२६ जून को एलबर्ट हॉल में सुभाष ने आगामी योजना की घोषणा की—

'हॉलवेल मन्यूमेन्ट राष्ट्र की पराधीनता का प्रतीक है। बहुत सालों से हमारे कलंक का यह प्रतीक बंगाल में खड़ा है।....इस मामले में हम सब की एक राय है। हम बंगाल की सरकार से दावा करते हैं कि ३ जुलाई तक, 'सिराजुद्दौला स्मृति दिवस' के पहले इस हॉलवेल मन्यूमेन्ट को हटा लिया जाए।'

[आनन्दबाजार पत्रिका; ३० जून १६४०]

इसी दिन फारवर्ड ब्लाक की पत्रिका में भी उनकी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई—'आगामी ३ जुलाई से हमारा अभियान शुरू होगा। मैंने तय किया है कि पहले दिन की सेना का संचालन मैं स्वयं करूँगा।'

सुन कर अंग्रेज सरकार जाग उठी। उधर इंगलैंड हाथों से निकला जा रहा है, इधर लड़ाई की तैयारी हो रही है। वह भी हिन्दू-मुसलमान मिल कर लड़ने को तैयार हैं। असम्भव। अंग्रेजों की तो प्रमुख नीति ही रही है—डिवाइड एण्ड रूल—इसलिए जैसे भी बन पड़े, हिन्दू-मुसलमान के बीच फूट पैदा करनी है। दोनों मिल गए तो मुसीबत आ जाएगी।

व्यापक धर-पकड़ शुरू हुई। गिरफ्तारी और यातना। सुभाष बोस के फारवर्ड ब्लाक का कोई भी बाहर नहीं रहा। डाक्टर पट्टाभि के शब्दों में—

'फारवर्ड ब्लॉक का चरम-पत्र पाकर अंग्रेजों ने अपना असली चेहरा दिखाया। जिससे फारवर्ड ब्लॉक लड़ाई शुरू न कर सके, वैसी तैयारी कर ली। निर्वासन देकर,

अनिश्चित काल के लिए अन्तर्ध्यान करके, तथा अन्य दूसरे तरीकों से फारवर्ड ब्लॉक के समर्थकों को अंग्रेजों ने दबा दिया। जुल्म का विरोध करने में, आत्म-सम्मान की रक्षा करने में, हजारों की संख्या में वे लोग जेल जाने लगे।

[कांग्रेस का इतिहास : डा० पट्टाभि : भाग २ : पृष्ठ १८४]

उस दिन साम्राज्यवादी शक्ति सुभाष के फारवर्ड ब्लाक पर क्यों टूट पड़ी थी? इसका उत्तर चर्चिल द्वारा लिखी पुस्तक 'ब्लर्ड वॉर' के चौथे भाग में मिलेगा। उन्होंने साफ-साफ लिखा था—'एकमात्र सुभाष जैसे लोग ही, जो चरम-पन्थी थे अक्षय शक्ति की विजय की कामना करते थे।' अर्थात् बाकी सब मित्र थे, अंग्रेजों के हितैषी थे, केवल सुभाष जैसे 'बिगड़े लड़के और उनके साथी' ही इसके विपरीत थे। सुभाष के लिए इससे बढ़ कर उल्लेखनीय 'कैरेक्टर सर्टीफिकेट' और क्या हो सकता है?

ऐतिहासिक हॉलवेल मन्यूमेन्ट अन्दोलन शुरू करने का दिन निश्चित हुआ ३ जुलाई। दूसरी तरफ भीतर-ही-भीतर एक और योजना कुछ दिनों से बन रही थी। बाहर जाना है। हिटलर की मार से अभी अंग्रेज अपने को संभालने में लगा है। इस मौके को काम में लगाना होगा। लड़ाई अन्दर-बाहर दोनों तरफ से छेड़नी है।

फारवर्ड ब्लॉक, बी० वी०, अनुशीलन पार्टी, पूर्णदास की पार्टी, अनिल राम और लीलाराय का श्रीसंघ और उत्तरी बंगाल की विभिन्न विप्लवी संस्थायें साथ दे रही थीं। साहस, शौर्य, वीर्य और आत्म-त्याग के मामले में उनकी तुलना नहीं थी। एक सच्चे सैनिक में जो गुण होने चाहिए वह उनमें थे।

पर इतना ही काफी नहीं है। साम्राज्यवादियों से लड़ने के लिए और कुछ भी भी चाहिए। चाहिए आधुनिक अस्त्र-शस्त्र। चाहिए सुप्रशिक्षित सैनिक दल, चाहिए और भी।

अभी इसी क्षण कुछ भी मिलना सम्भव नहीं था। इसलिए बाहर से भयंकर चोट करनी है। भारत इस समय अग्नि-गर्भ में है। बाहर से उचित चोट करने पर अवश्य ही महाविप्लव का आविर्भाव होगा। और इसीलिए बाहर जाना जरूरी है।

राजनीति में एक बड़े स्वार्थ के लिए किसी दूसरे शक्तिशाली देश की सहायता लेना, अनुचित नहीं होता है। इंगलैंड ने रशिया की मदद नहीं ली थी? हिटलर ने अपने महान् शत्रु स्टैलिन के साथ समझौता नहीं किया था? तो फिर भारत क्यों नहीं कर सकता है?

बी० वी० और पंजाब की कीर्ति किसान पार्टी का सम्मिलित प्रोग्राम लगभग तैयार था। तैयार थे उत्तर-पश्चिम-सीमा प्रान्त के फारवर्ड ब्लॉक के नेता अकबर शाह। प्रस्तुत थे विश्वस्त गाइड कॉमरेड भक्त राम। अब सिर्फ देर थी तो इस संग्राम में कूद पड़ने की।

बी० वी० के अलावा दूसरे दलों के एक आध प्रभावशाली लोग ही सुभाष की इस योजना के बारे में जानते थे। अनुशीलन पार्टी के सुप्रसिद्ध नेता रवि सेन उनमें से एक थे। इस संदर्भ में मैं श्रद्धेय नलिनी किशोर गुहा की 'बंगाल में विप्लववाद', नामक

पुस्तक के कुछ अंश नीचे लिख रहा हूँ।

'रवि सेन से एक दिन सुभाष बाबू बोले—जापानी कनसाल ऑफिस में आपकी पार्टी का कोई है, कहा था आपने। उसकी कोई मदद इस समय मिल सकती है?' कनसाल ऑफिस में काम करते थे जितेन बोस। रवि सेन ने जितेन बोस से कहा—'सुभाष बाबू के विदेश जाने का कोई प्रबन्ध हो सकता है या नहीं?'

उस समय कनसाल कलकत्ते में नहीं थे। वाइस कनसाल थे। जितेन बाबू ने उनसे कहा तो वे बोले—'सुभाष बाबू जिन दिनों कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट थे, तब जापान के मिलिट्री एटैची ने सुभाष बाबू से मिलने की इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होंने कोई आग्रह नहीं दिखाया था। इसलिए इस समय जापान इस मामले में favourable attitude (उत्साह) नहीं भी दिखा सकता है।' खैर वाइस कनसाल ने जितेन बाबू से कहा कि कनसाल के आते ही उनसे बात करके बतायेंगे।

इसके कुछ दिनों बाद सुभाष बाबू रवि सेन से बोले—'अब वाइस कनसाल से इस मामले में बात मत कीजिएगा, मैंने आवश्यक प्रबन्ध कर लिया है।'

उन्होंने जान-बूझ कर ऐसा करने से रोका था, क्योंकि कीर्ति किसान पार्टी के सहयोग से बी० वी० की तैयारी करीब-करीब हो चुकी थी। पहले जाना है पेशावर। वहाँ से पहाड़ पर्वत लाँघते हुए काबुल....काबुल में किसी दूसरे दूतावास की मदद से सीधे यूरोप।

अचानक कुछ दिनों के लिए सारी योजना ठंडी पड़ गई। २ जुलाई। सुभाष अत्यन्त व्यस्त थे। कल से आन्दोलन शुरू होने वाला था। जैसे भी हो, इस आन्दोलन को सफल बनाना ही है। अन्तिम क्षण तक विप्लव की यह अग्निशिखा जलाए रखना होगा।

इसी बीच जोड़ासाँको गए—कविगुरु से मिलने। सामने भयंकर संग्राम था। इस समय उनका आशीर्वाद लेना जरूरी था।

उसके बाद ही—

लगभग दो बजे थे। दोपहर। अचानक कलकत्ता पुलिस के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर जॉनफ्रिन एलगिन रोड वाले मकान में आए। भारत रक्षा कानून १२९ धारा के तहत आपको क़ैद किया जाता है। अब प्रेसीडेन्सी जेल चलिए।

सारे देश में क्षोभ की लहर दौड़ गई। कायदे-कानून की उपेक्षा कर अनेकों सभा-समितियाँ बुलाई गईं। यह गिरफ्तारी गैरकानूनी है। सरकार ने यह आक्रमण किया है सिर्फ बदला लेने के लिए।

कॉरपोरेशन के मेयर मिस्टर सिद्दीकी बेहद नाराज हुए। बोले—'सुभाष बोस जैसे एक सर्वसम्मानित नेता को अकारण गिरफ्तार करना हमारे लिए निःसन्देह भयंकर आघात के समान है।'

बम्बई के कॉरपोरेशन ने अपना अधिवेशन स्थगित कर दिया सुभाष की गिरफ्तारी के विरुद्ध प्रतिवाद स्वरूप। मुख्यमंत्री जनाब फजलुल हक़ ने कहा—'हम सुभाषबाबू को

प्यार करते हैं। श्रद्धा करते हैं। हम सब उनके अनुगत हैं। इस देश के राजनैतिक क्षेत्र में वे सबसे ज्यादा लोकप्रिय हैं।'

सिर्फ कांग्रेस ही ने कुछ नहीं किया। बल्कि दूसरे ही दिन, ३ जुलाई को, दिल्ली में वर्किङ्ग कमिटी की बैठक हुई। सुभाष के बारे में कुछ नहीं कहा गया—सुभाष उनके होते ही कौन हैं? पर वास्तव में ऐसी बात न थी मल्लिका। उनके दिल में सुभाष के बारे में असीमित कौतूहल इकट्ठा हो गया था—

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने जवाहरलाल को लिखा था—

'....चार-पाँच दिन पहले बर्लिन से सुभाष का एक भाषण रेडियो से प्रसारित हुआ था। दूसरे दिन घोषणा हुई कि भाषण रेकार्ड किया गया है जिसे सुभाष की आवाज में ही सुना जा सकता है। मैंने सुना। सुभाष की ही आवाज थी। लेकिन मुझे लगा कि रेकार्ड नहीं है, वे स्वयं बोल रहे हैं। लेकिन टोकियो से जो रेडियो पर भाषण सुनाया गया था वह रेकार्ड किया हुआ था। साफ समझ में आ रहा था कि रेकार्ड बिजली से बजाया जा रहा है।' (पत्र-गुच्छ : जवाहरलाल)

वादे के मुताबिक हिन्दुओं के बगल में चलने लगे मुसलमान। हिन्दू-मुसलमान-जिन्दाबाद। सुभाष बोस-जिन्दाबाद।

१३ जुलाई को एलबर्ट हॉल में जनाब अब्दुल क़रीम साहब के सभापतित्व में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। सभा में जितने मुसलमान थे उतने ही हिन्दू.... सभी की एक ही माँग थी....सुभाष बोस को छोड़ा जाए और हॉलवेल मन्यूमेन्ट हटा लिया जाए, वरना हम आन्दोलन करेंगे।

अंग्रेज सरकार घायल सिंह की तरह गरज उठी। कड़ा आदेश दिया गया कि अखबार में हॉलवेल मन्यूमेन्ट सम्बन्धी कोई खबर न छापी जाए। और छात्र सम्प्रदाय सावधान। किसी भी तरह की सभा समिति या आन्दोलन में तुम हिस्सा लोगे तो कठिन दण्ड के भागीदार होगे।

इस पर बिगड़ गए इस्लामिया कालेज के मुसलमान छात्र। ये आदेश गैर-कानूनी है। हम किसी हालत में इस आदेश का पालन नहीं करेंगे। हम कालेज में सभा बुलाएँगे। इनक्लाब-जिन्दाबाद! सुभाष बोस-जिन्दाबाद! हॉलवेल मन्यूमेन्ट हटाओ!

उनका शोर सुन कर उन्मत्त पुलिस सेना कूद पड़ी। जबरदस्त लाठी चार्ज हुआ।

उस दिन पुलिस के आक्रमण से कोई नहीं बच पाया।

यह खबर ज्यों ही फैली, सारा छात्र समाज तिलमिला कर सड़क पर आ गया। कितनी ताकत है अंग्रेजों के गुलाम इन पुलिसों में....अभी देखते हैं?

भागे-भागे आए मुख्यमंत्री जनाब फजलुल हक़। छात्र नाराज हो गए हैं, यह तो बहुत बड़ी और भयंकर बात है। किसी भी तरह से इन्हें शान्त करना ही होगा।

उसी दिन रात को सरकार के सिद्धान्त का पता चला हक़ साहब की एक

विज्ञप्ति से। हालवेल मन्यूमेन्ट हटा लिया जाएगा। अब तुम सब शान्त हो जाओ।

विजय हुई सुभाष की। हिन्दु-मुसलमान की सम्मिलित शक्ति की।

एक-एक करके सभी छोड़ दिए गए। केवल सुभाष नहीं छूटे। उनके विरुद्ध अनेक अभियोग थे....गैरकानूनी सभाएँ करना, राष्ट्रद्रोही निबन्ध लिखना, इत्यादि, इत्यादि। इसलिए ऐसे आदमी को छोड़ने के पक्ष में न थी सरकार।

परन्तु सुभाष को तो बाहर आना ही था। कानों के पास वही एक स्वर बज रहा था रात-दिन—मुक्ति चाहिए। देश की मुक्ति।

२८ अक्टूबर को सुभाष केन्द्रीय कानून सभा के सदस्य चुने गए, बिना किसी प्रतिद्वन्द्विता के।

ठीक उसी के एक महीने बाद २६ नवम्बर को, नींद से जागते ही एक समाचार को सुन कर स्तब्ध रह गई जनता।

मुक्ति का दावा करते हुए सुभाष ने आमरण अनशन शुरू कर दिया है। इससे पहले उन्होंने बंगाल के गवर्नर और मन्त्रियों को सूचित कर दिया था,

—'आज मेरा विवेक का दरवाजा बार-बार खटखटा रहा है। इस अन्याय और उद्दंडता को क्या मैं मुँह बन्द करके मान लूँ? या इस न्याय-नीतिहीन अविचार के खिलाफ अपना विरोध प्रकट करूँ? विशेष रूप से सोच कर मैंने तय किया है कि इस उद्दंडता के आगे मैं सिर नहीं झुकाऊँगा। अन्याय करने से बढ़ कर अपराध है अन्याय के आगे झुकना, इसलिए प्रतिवाद तो मैं करूँगा ही।

'अब मैं अपने देशवासियों से कहूँगा—यह न भूलना कि दासता से बड़ा जीवन में और कोई अभिशाप नहीं। यह न भूलना कि अन्याय और दुर्नीति से समझौता करना बड़ा भारी अपराध है। याद रखो, जीवन को पूरी तरह से पाने के लिए जीवन ही को दाँव पर लगाना पड़ता है। याद रखो, सारा नुकसान स्वीकार करके ही अन्याय के विरुद्ध लड़ते रहना है।'

उन्हें छोड़ा गया ५ दिसम्बर को।

उधर शासक वर्ग निश्चिन्त था। मुक्ति मिली है तो क्या हुआ? चारों तरफ सतर्क पहरा है। उस पर सादे पोशाक में अनगिनत गुप्तचर। इनकी आँख बचा कर जाएगा कहाँ?

इसके अलावा—कितने दिन की बात है? २७ जनवरी मुकदमें की तारीख है। फिर तो जाकर घुसना पड़ेगा लोहे की छड़ों के पीछे। तब तो किसी हालत में नहीं बच सकेंगे।

लेकिन तब सुभाष कहाँ?

भारत के अकेले प्रतिनिधि के रूप में वे बहुत दूर पहुँच गए थे। शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की पहुँच के बाहर—बहुत दूर....दुर्गम पहाड़ पर्वत लाँघ कर, सीमा पार।

देखते ही देखते देश के कोने-कोने में यह खबर फैल गई। सुभाष गायब हो गए

हैं। अदृश्य हैं। उन्हें हर जगह ढूँढ़ा जा रहा है लेकिन कहीं पता नहीं।

सब भौंचक्के रह गए। सभी की नजर भविष्य को निहार रही थी। सभी कह रहे थे—सुभाष तुम धन्य हो। काँटों से तुम क्षत-विक्षत हुए, सारे शरीर पर खून, फिर भी तुम अन्याय और जुल्म के खिलाफ सिर उठाते ही रहे। नीलकण्ठ की तरह सारा विष अकेले पी गए और दिखाया हमें नव जागरण का रास्ता। तुम्हारे ही जैसे एक सर्वत्यागी संन्यासी के लिए लेखक व उपन्यासकार शरतचन्द्र ने 'पथ के दावेदार' में लिखा है—

'तुम तो हम लोगों की तरह साधारण आदमी नहीं हो, तुमने देश के लिए सब कुछ दे दिया है, इसीलिए देश की नाव तुम्हें ढोने में अक्षम है। तैर कर तुम्हें पद्मा नदी पार करनी पड़ती है, इसीलिए देश के राजपथ तुम्हारे लिए बन्द हैं। 'दुर्गम पहाड़ पर्वतों को तुम्हें लाँघना पड़ता है, कभी अतीत काल में तुम्हारे ही लिए पहली शृङ्खला निर्मित हुई थी। कारागार भी तुम्हारी ही बात सोच कर पहली बार बनाया गया था—यही तो तुम्हारा गौरव है।

'तुम्हारी अवहेलना करे, किसकी हिम्मत है? ये जितने अनगिनत पहरेदार हैं, विशाल सेना है—यह तो केवल तुम्हारे लिए है। दुःख का बोझ उठा सकते हो, तभी तो भगवान् ने तुम्हारे कन्धों पर इतना बड़ा बोझ लाद दिया है!

'मुक्ति पथ के अग्रदूत! पराधीन देश के हे राजद्रोही। तुम्हें शत-शत प्रणाम!'

[प्रथम खण्ड समाप्त]

मैं सुभाष बोल रहा हूं

[खण्ड दो]

में पढ़िए

नेताजी कैसे ब्रिटिश सरकार की आंखों में धूल झोंक कर देश के बाहर गए और कितना कष्ट सह कर जर्मनी पहुँचे, जहाँ उन्होंने सर्वप्रथम 'आजाद हिंद फौज' का संगठन किया और फिर कैसे जापान पहुँचे....

यह खण्ड पहले से भी अधिक रोचक, उत्तेजक और प्रेरणादायक है।